ॐ ह्रीँ श्रीँ सिद्धचक्राय नमः

समर्थ विद्वान् उपाध्याय श्री विनयविजयजी और उपाध्याय श्री यशोविजयजी का
संगीतमय गुजराती ४८ ढालों सहित

# श्रीपाल-रास और हिन्दी विवेचन

: हिन्दी विवेचन लेखक :

श्रीसौधर्मबृहत्तपागच्छीय

**मुनिश्री न्यायविजयजी महाराज**

साहित्य रत्न, काव्यतीर्थ ज्योतिष विशारद



* प्रकाशक *

फोन : १०६

**श्री राजेन्द्र जैन भवन**

तलाटी रोड पालीताणा (सौराष्ट्र)

मूल्य ५०-००

# श्रीपाल-रास–हिन्दी विवेचना

लेखकः–श्री सौधर्म बृहत्तपागच्छीय मुनि श्री न्यायविजयजी महाराज,
साहित्य-रत्न, काव्यतीर्थ, ज्योतिष-विशारद

| विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| **प्रथम खण्ड–कहां क्या ?** | |
| मंगलाचरण ( विनयविजयजी ) | १ |
| मंगलाचरण ( न्यायविजयजी ) | २ |
| गणधर देशना | ३ |
| दिव्य शक्ति | ५ |
| मोक्ष स्वरूप | ६ |
| **ग्रंथारंभ—ढाल पहली** | ७ |
| प्रसव-विज्ञान | १० |
| इच्छा शक्ति का चमत्कार | १० |
| गर्भवती महिला का भोजन | ११ |
| सगर्भा के मनोरथ | १३ |
| कन्याओं का जन्मोत्सव | १५ |
| बच्चों से संभाषण और व्यवहार कैसे करें? | १६ |
| आपको चाहिए | १८ |
| स्त्री की चौसठ कला | १९ |
| सम्राट् प्रजापाल के प्रश्न | २१ |
| **प्रथम खण्ड़--ढाल दूसरी** | २२ |
| जो करणी अंतर वसे | २४ |
| कौन वस्तु है खरी ? | २६ |
| **प्रथम खण्ड--ढाल तीसरी** | २७ |
| पिता पुत्री का वाद विवाद | २८ |
| मंत्री की समयज्ञता | ३० |
| **प्रथम खण्ड--ढाल चौथी** | ३१ |
| सम्राट् बाग में पधारे | ३२ |
| कुष्टी का अभिवचन | ३३ |
| लड़कपन न कर | ३४ |
| **प्रथम खण्ड़--ढाल पाँचवीं** | ३५ |
| कौन बेटा ? कौन बाप | ३७ |
| आपकी सवारी कहां जा रही है ? | ३८ |
| इतिहास क्या कहेगा ? | ४० |
| **प्रथम खण्ड़--ढाल छठी** | ४१ |
| दाम्पत्य जीवन | ४१ |
| राणा और मयणा का संवाद | ४३ |
| जिन दर्शन का फल | ४५ |
| दशत्रिक, पांच अभिगम | ४७ |
| आचार्य श्री का प्रवचन | ४८ |
| **प्रथम खंड़--ढाल सातवीं** | ४९ |
| अपने धड़कते दिल से पूछो | ४९ |
| एक गुप्त मंत्र | ५१ |
| भाग्योदय का समय दूर नहीं | ५३ |
| आराधना का मार्ग दर्शन | ५४ |
| देव वंदन कैसे करें ? आत्मारामजी (विजयानंदसूरिजी) का अभिप्राय | ५४ |
| **प्रथम खण्ड़-[ढा]ल आठवीं** | ५७ |

| विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| नव जीवन मिला | ५८ |
| प्रवास परिचय | ६० |
| अब मेरा जीना बेकार है | ६२ |
| **प्रथम खंड ढाल नवमीं** | ६३ |
| मेरे घर पालना बंधा | ६५ |
| मृत्यु की दवा नहीं | ६७ |
| वे अचानक चल बसे | ६७ |
| **प्रथम खंड-ढाल दसवीं** | ६८ |
| अजितसेन का षड्यंत्र | ६९ |
| कोई हमारा बाल बांका न कर सका | ७० |
| रहेगा नर तो बसेगा घर | ७० |
| मैंने अनेक वैद्यों के द्वार खट खटाएं | ७३ |
| **प्रथम खंड-ढाल ग्यारहवीं** | ७४ |
| अरे ! तैने यह क्या किया ? | ७६ |
| मेरा संशय गलत था | ७७ |
| धन्य है बेटी ! मयणासुंदरी | ७८ |
| **दूसरा खंड-कहां, क्या ?** | |
| मंगलाचरण (विनयविजयजी महाराज) | ७९ |
| मंगलाचरण (मुनि न्यायविजयजीमहाराज) | ८० |
| यह कौन आ रहे हैं ? | ८२ |
| **द्वितीय खंड-ढाल पहली** | ८३ |
| क्या आपका किसी ने अपमान किया है ? | |
| हमारे पास लड़ाई के विपुल साधन है | ८४ |
| मां का आशीर्वाद, विजय मुहूर्त में प्रयाण | ८६ |
| **द्वितीय खन्ड-ढाल दूसरी** | ८७ |
| मयणासुन्दरी का अनुरोध | ८८ |
| स्वर विज्ञान, चन्द्र और सूर्य स्वर के कार्य | ९० |
| एक योगी से भेट और दिव्य औषधियाँ, धवल सेठ | ९३ |
| **द्वितीय खन्ड-ढाल तीसरी** | ९७ |
| अक्कल चरने तो नहीं गई ? | ९८ |
| नगर में भयंकर उत्पाद | १०० |
| पराधीन सपनें सुख नांहि | १०३ |
| **द्वितीय खन्ड-ढाल चौथी** | १०४ |
| क्या आपको फले फूले रहना है ? | १०५ |
| इसे उल्टे मुंह झाड़से लटकादो | १०६ |
| सम्राट् महाकाल का सन्मान | ११० |
| **द्वितीय खन्ड-ढाल पांचवीं** | ११२ |
| कन्या कहाँ दे ? | ११४ |
| मां की बेटी को सीख | ११७ |
| परिवार की दृष्टि से न गिरो | ११८ |
| महिला पति के हृदय क्यों खटकती हैं ? हृदय में लिखलो | ११९ |
| वेद पुराण कुरान मां रे | १२१ |
| रात्रि भोजन का एक प्रत्यक्ष उदाहरण | १२२ |
| आत्मा का स्वाभाविक धर्म | १२५ |
| सेठ के तन में आग लग गई | १२६ |
| **द्वितीय खन्ड-ढाल छठी** | १३२ |
| एक अद्भुत घटना | १३४ |
| भविष्यवाणी की चर्चा | १३७ |
| अजी ! दर्शन करें ! या धंधा | १३८ |
| **द्वितीय खन्ड-ढाल ७वीं** | १३९ |
| दृढ़ संकल्प का चमत्कार | १४० |
| विद्याचारण मुनि का प्रवचन | १४३ |
| जो जाके हृदय बसे | १४६ |

| विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| **दूसरा खंड–ढाल ८वीं** | **१४९** |
| मदनमंजूषा का विवाह, श्रीफल | १५१ |
| स्थापना, चंवरी, हथलेवी बेटा किसका | १५२ |
| बनकर रहोगी मेरे हृदय की स्वामिनी | १५३ |
| पाऊं तुम्हारा प्यार मैं | १५६ |
| मदनमंजूषा की बिदाई | १६० |
| **तिसरा खंड–कहां क्या ?** | |
| मंगलाचरण (विनयविजयजी महाराज) | १६२ |
| मंगलाचरण (मुनि श्री न्यायविजयजी महाराज) | १६३ |
| एक अनुभूत योग दृढ़ संकल्प | १६४ |
| आपना जीवन न बिगाड़ें | १६५ |
| **तीसरा खंड–ढाल पहली** | **१६६** |
| मृत्यु को निमन्त्रण न दें | १६८ |
| चार पैर सोलह आंखें | १७० |
| पल में उस पार उनकी आंख लग गई | १७२ |
| **तीसरा खंड–ढाल दूसरी** | **१७४** |
| घर बैठे गंगा | १७५ |
| सूर्य ढलने पर भी छाया स्थिर रहेगी | १७६ |
| महामन्त्र का प्रत्यक्ष फल | १७८ |
| **तीसरा खंड-तीसरी ढाल** | **१७६** |
| शहद लपेटी छुरी | १८१ |
| जहाज में खलबली मच गई | १८३ |
| लंपटता एक अभिशाप है | १८५ |
| अरे ! पोल खुल गई | १८६ |
| आंखो में अन्धेरा | १८८ |
| **तीसरा खंड–चौथी ढाल** | |
| झूठ की दौड़ कहां तक ? | १९५ |
| पाप का प्रत्यक्ष फल | १९७ |
| सेठजी चल बसे | १९८ |
| गुणसुन्दरी की प्रतिज्ञा | २०१ |
| **तीसरा खंड–पांचवीं ढाल** | **२०२** |
| आप जाना चाहते हैं ? | २०४ |
| क्या यही कुण्डलपुर है ? | २०६ |
| जनता चकित हो गई | २०९ |
| नाच न आवे तो आंगन टेढा | २११ |
| **तीसरा खंड–छट्ठी ढाल** | **२१३** |
| त्रैलोक्यसुन्दरी का परिचय | २१५ |
| चक्कर काट रहे थे | २१६ |
| मैदान में कूद पड़ा | २१८ |
| **तीसरा खंड–सातवीं ढाल** | |
| श्रृंगारसुन्दरी और उसकी सखियां | २२० |
| धन्य है सम्राट कुमारपाल और वस्तुपाल, तेजपाल | २२७ |
| जयसुन्दरी का विवाह | २३१ |
| **तीसरा खंड-आठवीं ढाल** | |
| थाणानगर का निमन्त्रण | २३२ |
| राज्याभिषेक | २३४ |
| जंगल में मंगल | २३६ |
| उज्जयिनी में कमलप्रभा का द्वार | २३९ |
| **चौथा खंड-कहाँ. क्या ?** | |
| मंगलाचरण (मुनि न्यायविजयजी) | २४० |
| चांदी बरसाना तो बांये हाथ का खेल है | २४२ |
| **चौथा खंड-पहली ढाल** | **२४३** |
| अनुभूत आनन्द, अमृत क्रिया | २४४ |
| मां के प्यार के आगे, स्वर्ग भी तुच्छ है | २४५ |
| अब भी संशय शेष है ? | २४८ |

| विषय | पृष्ठ संख्या |
|---|---|
| **चौथा खंड–दूसरी ढाल** | |
| नेपाल में बिक गई | २५० |
| विधि के लेख | २५३ |
| हस्तगत करलें ! | २५६ |
| **चौथा खंड–तीसरी ढाल** | **२५७** |
| रण का आमन्त्रण | २५८ |
| मैं अभी आता हूँ | २५९ |
| भुजाएं फड़क उठी | २६० |
| **चौथा खंड–चौथी ढाल** | **२६१** |
| मुंह लाल हो गया | २६२ |
| अजितसेन का भाषण | २६६ |
| आत्मशुद्धि का मार्ग | २६९ |
| जीवन का मोड़ | २७० |
| **चौथा खंड–पांचवी ढाल** | |
| छक्के छुड़ा दिये | २७२ |
| नय विज्ञान | २७६ |
| आत्म-दृष्टा योगी | २७७ |
| **चौथा खंड–छट्ठी ढाल** | **२७९** |
| नगर प्रवेश | २८० |
| नाम ही भूल गए | २८३ |
| सन्मार्ग दर्शन | २८६ |
| **चौथा खन्ड–सातवीं ढाल** | |
| राजर्षि का प्रवचन | २८७ |
| तेरह काठिया | २९१ |
| ध्यान कैसे करें | २९६ |
| क्षमा की साधना के उपाय | ३०० |
| ब्रह्मचर्य ही जीवन है | ३०४ |
| आज का दिन मंगलमय हो | ३०६ |
| वीर्य कैसे बनता है ? | ३०८ |
| रोग दूर करनेका एक अद्भुत उपाय | ३१० |
| साधना क्यों ? और कैसे ? | ३१४ |
| शुद्ध क्रिया के लक्षण | ३१६ |
| **चौथा खन्ड–आठवी ढाल** | **३२०** |
| हृदय कांप उठा | ३२५ |
| बुराई का बदला ? | ३२६ |
| कौन, कहाँ ? | ३३० |
| धना हाथ मलता रह गया | |
| **चौथा खन्ड–नवमीं ढाल** | **३३२** |
| आँख खोलो, आगे बढ़ो | ३३४ |
| प्रवृत्ति किसे कहते हैं ? | ३३५ |
| श्रावक के इक्कीस गुण | ३३९ |
| **चौथा खन्ड–दसवीं ढाल** | |
| उजमणा इसे कहते हैं | ३४२ |
| मंगल बंधाई | ३४४ |
| वान प्रस्थ बन गए | ३४७ |
| सिद्ध अर्हन्त में मन रमाते चले | ३४७ |
| **चौथा खन्ड–ग्यारहवीं ढाल** | **३४४** |
| चौंतीस अतिशय | ३५० |
| वाणी के पैंतीस गुण | ३५१ |
| अठारह दूषण | ३५८ |
| देव गुरु धर्म | ३५९ |
| द्वादश व्रत | ३६३ |
| कहीं भी ठिकाना नहीं | ३६७ |
| भगवान महावीर | ३७१ |
| **चौथा खन्ड–बारहवीं ढाल** | **३७२** |
| मानव से भगवान | ३७३ |
| सुन्दर राजा मार्ग | ३७४ |
| रंगीले रंग में | ३७५ |
| **चौथा खन्ड–तेरहवीं ढाल** | **३७६** |
| अन्तिम कलश | ३८० |
| ग्रंथ लेखक के वंश परंपरा | ३८१ |
| समाप्तोऽयं ग्रंथ | ३८३ |


— * —

ॐ अर्हंनमः

ॐ ह्रीं श्रीं सिद्धचक्राय नमः

श्री अभिधान राजेन्द्र कोष रचयिता श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वर पादपद्मेभ्योनमः

# श्रीपाल-रास

## ( हिन्दी अनुवाद सहित )

अनुवादक—श्रीमद् विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के शिष्य मुनि श्री न्यायविजयजी

## प्रथम-खण्ड

### मंगलाचरण ( ग्रंथकार की ओर से )

कल्प वेली कवियण तणी, सरसती करी सुपसाय।
सिद्धचक्र गुण गावतां, पूर मनोरथ मांय ॥ १ ॥
अलिय विघन सवि उपशमें, जपतां जिन चोवीश।
नमतां निज-गुरु पयकमल, जगमां वधे जगीश ॥ २ ॥

हे शारदे ! तु कवियों की कामनाओं को सफल बनाने में कल्पलता के समान है ! मैं भी आपकी कृपा से सिद्धचक्र महिमा दर्शक श्रीपाल-रास लिखता हूं, मेरी इस भावना को तू सफल कर। श्री ऋषभ, अजित, संभवादि चौबीस तीर्थङ्करों के नाम स्मरण और सद् गुरू के वंदन से जन्म जरा मरण आदि समस्त भव-रोग दूर हो जाते हैं ! मैं अपने परम कृपालु गुरु उपाध्याय कीर्त्तिविजयजी को वंदन कर ग्रंथारंभ करता हूं ! मुझे अवश्य ही सांहित्य सेवा एवं यश की प्राप्ति होगी !

## मंगलाचरण

( हिन्दी अनुवाद कर्ता की ओर से )

( १ )

सिद्ध-चक्र महायंत्र है, सेवे चौसठ इन्द्र ।
लेखक 'विनय, वाचक प्रवर,' यशोविजय, कवीन्द्र ॥
वंदन 'सूरि-राजेन्द्र, को, 'सूरीश्वर यतीन्द्र' ।
अनुवाद यह श्रीपाल का, सफल करो जिनेन्द्र ॥

( २ )

हे वीणापाणि भगवति ! तू प्रार्थना स्वीकार कर ।
अब सफल कर इस कार्य को सु-बुद्धि बल प्रदान कर ॥
अनुवाद हिन्दी में लिखूँ श्रीपाल के इस रास पर ।
मुनि न्याय का अनुरोध है आनन्द लें पाठक प्रवर ॥

## प्रस्तावना

गुरु गौतम राजगृही आव्या प्रभु आदेश ।
श्री मुख श्रेणिक प्रमुख ने इणि परे दे उपदेश ॥
उपगारी अरिहंत प्रभु सिद्ध भजो भगवंत ।
आचारिज उवज्झाय तिम साधु सकल गुणवंत ॥
दरिसण दुर्लभ ज्ञान गुण चारित्र तप सुविचार ।
सिद्धचक्र ए सेवतां पामो जे भव पार ॥
इह भव पर भव एह थी सुख संपद सुविशाल ।
रोग सोग रौरव टले जिम नरपति श्रीपाल ॥
पूछे श्रेणिक राय प्रभु ते कुण पुण्य पवित्र ।
इन्द्र भूति तव उपदिशे श्री श्रीपाल चरित्र ॥

आज हम जिस कथा का वर्णन पाठकों के सामने रखना चाहते हैं, वह बीसवें तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रत स्वामी के समय का है। कथा निर्देशक श्रमण भगवान महावीर के गणधर इन्द्रभूति ( गौतम स्वामी ) हैं।

उस समय भारतवर्ष के मगध देश में बडे प्रतापी महाराजा श्रेणिक ( बिम्बसार ) राज्य करते थे। उनके समान वीर, धीर, ज्ञानी, राजनीति-विशारद प्रजापालन में तत्पर दूसरा कोई न था, इसी कारण उन्हें लोग सम्राट मानते थे। उनकी राजधानी राजगृही में थी, वे श्रमण भगवान महावीर के परम भक्त थे।

एक बार श्री गौतम गणधर, भगवान का आदेश प्राप्त कर राजगृही में पधारे। ये समाचार हवा के समान क्षण मात्र में चारों ओर फैल गए। घर घर में बस यही एक चर्चा थी कि 'श्री प्रथम गणधर का नगर में पदार्पण हुआ है" शीघ्र ही उन्हें वन्दन कर अपना जीवन सफल बनाएं। स्त्री पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड 'शतं विहाय' वचनामृत पान की लालसा से समवसरण की ओर प्रस्थान कर भगवान महावीर की जय! गौतम गणधरकी जय हो! जय हो!! जय घोष के साथ आगे बढ़ते चले जा रहे थे। सम्राट श्रेणिक भी अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ यथा-समय समवसरण में आ पहुँचे। समस्त श्री संघ ने अनुपम श्रद्धा, भक्ति, और विधि से गुरु वन्दन कर प्रार्थना की गुरुदेव! कृपा कर धर्मोपदेश दें।

श्री गणधर भगवान की देशना

## वित्तेन ताणं न लभे पमत्ते, इमम्मि अदुवा परत्था।

प्रिय महानुभावों!

आलसी और स्वार्थी मनुष्य केवल धन से अपना संरक्षण नहीं कर सकते हैं। उन्हें न यहां शांति मिलती है, न परलोक में।

मानव सुख की खोज करने चला है, पर मार्ग में भटक गया है। उसे अपने लक्ष्य का पता है, पर राह भूल गया है। मानव ने सुख देखा है पैसे में, उसके श्रम का केन्द्र हो गया है पैसा। आज मनुष्य पैसे के लिए अपनी मानवता बेच रहा है।

भाई, भाई का नहीं, मां बेटी की नहीं, पिता, पुत्र का नहीं, पति पत्नी का नहीं, मालिक मजदूर का नहीं, सेठ मुनीम के आपस में लडाई झगडे, मन मुटाव का कारण है पैसा। कई क्रोधी निर्दयी मनुष्य मानवता को भूल एक दूसरे के प्राण तक ले लेते हैं।

आज मानव को पैसे से जितना मोह है उतना मानव से नहीं। उसके दिल में प्रेम नहीं, पैसा है। क्योंकि उसने अपने सुख की खोज पैसे में की है।

पैसे का सुख अपूर्ण है। पैसे से आप चश्मा खरीद सकते हैं किन्तु पैसा आपको आँख नहीं दे सकता है। पैसा आपको कलम दिला सकता किन्तु लेखन कला दिलाने में असमर्थ है। पैसे के द्वारा आप रोटी, रोटी ही क्यों रस गुल्ले जलेबी, घेवर, मोहन थाल भी खरीद सकते हैं, किन्तु पैसे से आप भूख नहीं खरीद सकते जो कि सूखी रोटी और चने को भी स्वादिष्ट बना देती है। भूख के अभाव में सुन्दर मिष्टान्न भी कड़वे हैं। पैसे से तलवार खरीद सकते हैं किन्तु पैसा आपको वीरत्व नहीं दे सकता है। पैसे से आप जगत् के भौतिक पदार्थ अपने आधीन कर सकते हैं किन्तु मानसिक शांति एवं अद्वितीय आध्यात्मिक आनन्द नहीं पा सकते हैं। पैसे का सुख, सुख नहीं सुखाभास है। पैसा साध्य नहीं जीवन का एक साधन है।

सुख है ज्ञान सहित त्याग, तपश्चर्या, अनासक्त प्रवृत्ति एवं आत्म स्वभाव की रमणता में आप अपनी आत्मा से पूछियेगा कि

(१) हे आत्मन्! तेरे जीवन की अनमोल घड़ियां किस भाव बिक रही हैं?

(२) केवल रोटी कपड़े और जगत के भौतिक पदार्थों तक ही तेरा मनुष्य भव सीमित है?

(३) गिनती के चन्द सिक्कों में अपने जीवन की कीमती घडियों को बदल देना क्या बुद्धिमानी है? आप शांत चित्त से बैठकर विचार करियेगा। यदि आप अपने भूतपूर्व जीवन का अध्ययन करेंगे तो आपको एक नई रोशनी मिलेगी।

हाय! मैंने कितना ग...वा...या? अंतर की आँखें खोलो, अपनी अनन्त दर्शन, ज्ञान चारित्र युक्त शक्तिमान् विशुद्ध आत्मा का अनुभव करो।

यह दृढ़ संकल्प करो कि मैं सिर्फ रोटी कपड़े का दास नहीं, भौतिक पदार्थोंका भूखा नहीं, किन्तु 'मैं अजर, अमर, दृष्टा ज्ञाता सच्चिदानंद विशुद्ध आत्मा हूं।"

संसार के सुख दुःख पूर्व संचित पाप पुण्य के विकार हैं पहले बांधे हुए कर्म हैं उन्हें तो जैसे तैसे भोगना ही पड़ेगा। तू इतना घबराता क्यों है? इसमें हर्ष शोक की कोई बात नहीं। अपने शुभाशुभ कर्मों को शांति से भोग अवश्य एक दिन इन कर्मों का अंत होगा। तू आत्म-शक्ति का दीपक ले आगे बढ़ता चल, रात्रि के बाद सुनहले प्रभात का होना निश्चित है।

प्रेम, समभाव, संतोष एवं सहृदयता आत्मा की संपत्ति हैं। मन को केन्द्रित करो।

स्थिर मन में एक दिव्य गुप्त शक्ति है, उस शक्ति के समक्ष संसार की विपुल संपत्ति आपके चरणों की दासी बन कर रहेगी। एक दिन आप जिन लोगों के घर घर भटक कर उनकी कृपा व उनसे कुछ गिनती की मुद्राए प्राप्त करने को गिड़ गिड़ाया करते थे वे ही स्त्री पुरुष आप की विकसित दिव्य शक्ति से प्रभावित हो हाथ जोड़े आपके चारों ओर चक्कर काटते दिखाई देंगे।

## दिव्यशक्ति जागृत कब होगी ?

जबकि तुम निंदा, ईर्षा, छिद्रान्वेषण, चन्चलता और मोह से बच कर। प्रेम समभाव एवं सन्तोष से अपने मन को सुशिक्षित करोगे।

भय मनुष्य का भयंकर शत्रु है, इस की जड़ को मन से निर्मूल कर दो, पतन की ओर ले जाने वाली चिंताओं को हृदय से सदा के लिए अलग कर दो। ध्वंसकारी विचार ही तुम्हें निर्बल और मुर्दा बनाते हैं। इससे न तो जीवन को नवीन प्रकाश मिलता है न नसों में नए रक्त का संचार होता है। रक्त संचार के अभाव में मनुष्य दीन हीन बन, असमय में युवावस्था से हाथ धो, अपनी शकल सूरत को बुढेपन में बदल देते हैं।

कर्मठ बनो, जो होना है सो होकर रहेगा। व्यर्थ की चिंताओं से घुल घुल कर मरना महान् पाप है। गड़े पत्थर, मरे मुर्दे मत उखाड़ो। आत्म चिंतन करो। अपने मन मन्दिर में आज से निष्काम प्रेम, समभाव, सन्तोष एवं सहृदयता की स्थापना कर कायर जीवन की रंगभूमि को ही बदल दो। निम्न गीत सदा मन ही मन गुन गुनाते रहो।

तर्ज: ओ दूर जाने वाले

आनंद शांति मय हम, मंगल स्वरुप पाएं।
अविचल विमल सु-पद में, अविलम्ब जा समाएं ॥ १ ॥
अरिहन्त सिद्ध शरण है, परमात्म भाव अपना।
जग का ममत्व सारा, समझा अनित्य सपना ॥२॥
हम हैं सदा अकेले, क्यों मुग्ध मन बनाएं।
अविचल विमल सु-पद में, अविलंब जा समाएं ॥३॥
अपवित्र देह म अब, आसक्ति छोड़ देंगे।
मिथ्यात्व अव्रतों से निज वृत्ति मोड़ देंगे ॥४॥

**सम्यक्त्व धर्म संयम, तप में हृदय रमाएं।**
**अविचल विमल सु-पद में, अविलंब जा समाएं ॥५॥**

इस गीत का बार बार चिंतन करने से तुम्हारे हृदय में एक आनन्द की अपूर्व लहर दौड़ने लगेगी, आपके दिल का पुराना उजड़ा बाग हरा भरा होकर रहेगा। तुम अपने अन्दर एक विशेष स्फूर्ति का अनुभव करोगे तुम्हारा मन आनन्द और उत्साह से भर जायगा।

यदि मानव आत्म-पुरुषार्थ का वास्तविक प्रयोग कर वीतराग दशा की ओर लगन लगाले तो, वह सहज ही जन्म जन्मान्तर के कर्मों से मुक्त हो मोक्ष-श्री प्राप्त कर लेता है।

## मोक्ष का स्वरूप—

बंध और बंध के कारणों का अभाव होकर आत्मिक विकास के परिपूर्ण होने का नाम 'मोक्ष' है। अर्थात् ज्ञान और वीतराग भाव की पराकाष्ठा ही 'मोक्ष' है।

अनन्त सुख एवं मोक्ष साधना के अनेक मार्ग हैं, उनमें अति सरल और श्रेष्ठ श्री सिद्धचक्र अर्थात् नवपद आराधन एक सुन्दर मार्ग है। यह देव, गुरु और धर्म इन तीन तत्त्वों में विभक्त है।

(१) देव तत्त्व में श्री अरिहन्त और सिद्ध भगवान है।
(२) गुरु तत्त्व में आचार्य उपाध्याय और साधु हैं।
(३) धर्म तत्त्व में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप की गणना है।

कई पुण्यवान् स्त्री पुरुष इन तीनों तत्वों की विधि सहित आराधना कर शारीरिक रोग, मानसिक व्यथा एवं दुर्गति के बंध से छुटकारा पाते हैं, तथा नवपद के अलौकिक प्रभाव से इस लोक में नाना प्रकार की ऋद्धि-सिद्धि सुख-सौभाग्य भोग कर राजा श्रीपाल के समान भवान्तर में सद्गति को प्राप्त करते हैं।

सम्राट श्रेणिक-पूज्य गुरुदेव! राजा श्रीपाल कौन हैं? उन्होंने श्री सिद्धचक्र की आराधना किस प्रकार की? कृपया परिचय दें।

# ग्रंथारंभ

ढाल पहली, राग, ललना

देश मनोहर मालवो, अति उन्नत अधिकार-ललना।
देश अवर मानु चिहुँ दिशे, परवरिया परिवार-ललना ॥१॥देश०
तस सिर मुगट मनोहरु, निरुपम नयरी उजेण ललना।
लखमी लीला जेहनी, पार कलीजे केण ललना ॥२॥देश०
सग्ग पुरी सरगे गई, आणी जस आशंक ललना।
अलका-पुरी अलगी रही, जलधि झंपानी लंक-ललना ॥३॥ देश०
प्रजापाल प्रतपे तिहां, भूपति सवि सरदार ललना।
राणी सौभाग्य सुन्दरी, रूप सुन्दरी भरतार ललना ॥४॥ देश०
सहेजे सोहग सुन्दरी मन, माने मिथ्यात ललना।
रूप सुन्दरी चित्तमां रमे सुधी समकित वात ललना! ॥५॥ देश०

भारत वर्ष के इतिहास में मालव देश का गौरवपूर्ण एक प्रमुख स्थान था, इस देश की प्राचीन नगरी अवन्ति का नूतन नाम उज्जैन है। यह मालव भूमि के मध्य केन्द्र पर है। इसके चारों ओर नगर-गांव खेडे ऐसे सुन्दर ढंग से बसे हैं कि ये नगर-गांव खेड़े नही किन्तु पुण्य भूमि उज्जैन का मानो एक विस्तृत परिवार ही है, ऐसा ज्ञात होता था। मालव देश में समृद्धिशाली वैभव सम्पन्न अनेक नगर थे किन्तु अवन्तिका उज्जैन को ही वेद पुराण एवं कथानक ग्रन्थों ने तीर्थ स्वरूप मुकट-मणि स्वीकृत कर उसकी मुक्तंकठ से प्रशंसा की है।

उज्जैन का स्वास्थ्यप्रद जलवायु उपजाऊ भूमि, शीत, ग्रीष्म और वर्षाकाल में लहलहाने वाली नाना प्रकार की फसलों का सुन्दर दृश्य वन उपवन उद्यान-वाटिकाओं के विकसित रंग बिरंगे पुष्पों की सुगन्ध से मिश्रित वायु, सिप्रा-नदी की विमल जल राशि से निनादित वन प्रदेश, सूर्य की किरणों से चमकते मन्दिरों के स्वर्ण कलश, भक्तजनों को आह्वान करती मन्दिरों पर लहराती ध्वजाएं, सिप्रा तट पर सौध शिखरी भगवान श्री पार्श्वनाथ का चैत्य, प्राकृति सौन्दर्य और श्रीमन्तों के भवनों पर उड़ती हुई राष्ट्रीय पताकाओं में इतना सामर्थ्य है कि वे दर्शकों के मन को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं।

उस समय उज्जैन में महाराज प्रजापाल राज्य करते थे। इनकी दो रानियां थीं, एक का नाम सौभाग्य सुन्दरी व दूसरी का नाम रूप सुन्दरी था।

प्रजापाल के शासनकाल में दरिद्रता दुःख सन्ताप कहीं भी सुनाई नहीं देता था। चोरी, दुष्कर्म, अत्याचार, जूंआ आदि दुर्गुणों का कहीं नाम निशान भी न था। एकता और शान्ति सर्वत्र छा रही थी। ईर्षा द्वेष और बुरी कल्पनाएं स्वप्न में भी किसी के मन में कभी उत्पन्न न होती थी। महाराज प्रजापाल के न्याय-नीति तथा वीरता का डंका चारों ओर बज रहा था, जिससे उनके शत्रु लोग भी उनकी धाक मान कर सदा भय कम्पित रहते थे।

महाराज प्रजापाल ने ऐसा प्रबन्ध कर रखा था कि धर्म वृद्धि के लिए व्रत, अनुष्ठान, देवपूजा आदि एक न एक सत्कार्य प्रतिदिन हुआ ही करते थे। सारी प्रजा उन पर पिता समान श्रद्धा भक्ति रखती थी। वे भी पुत्रवत् उनका पालन कर यथा नाम, तथा गुण, का परिचय दे चुके थे।

उज्जैन सुख, सन्तोष, आनन्द, उदारता तथा धन धान्य, कला कौशल से इतना परिपूर्ण था कि उसकी तुलना में इन्द्र की स्वर्गपुरी भी हार खाकर स्वर्ग को लौट गई। कुबेर की अलका सामना तक न कर सकी। लंका के पास प्रचुर स्वर्ण था किन्तु समता नहीं। तमोगुणी प्राय दूसरों को फला फूला नहीं देख सकते हैं। लंका भी ईर्षाग्नि से इतनी सन्तप्त हो गई थी कि उसे शान्ति पाने को समुद्र में झंपापात करना पड़ा।

सौभाग्यसुन्दरी और रूपसुन्दरी दोनों सौत थी, फिर भी उनमें प्रेम का स्रोत बहता था। वे क्रोध, लोभ, ईर्षा, अहंकार तथा छल कपट से सदा दूर ही रहती थी। आपस में एक दूसरी के सुख-दुःख की साथिन थी। उनके मिलन सार स्वभाव से समस्त परिवार एवं परिचारक भृत्य वर्ग प्रभावित था। महाराज प्रजापाल के सम्बन्धी जन और राजमहल के सम्पर्क में आने वाले स्त्री पुरुष कहा करते थे कि — "देखो! सहोदर बहिन बहिन की भी आपस में एक दूसरी की नहीं पटती। जरा जरा सी समस्याओं की दिवार बीच में खड़ी कर, बुरी तरह से झगड़ती हैं, एक दूसरी के पति देव व बाल बच्चों को कोसती हैं, अपशब्दों का बौछार से कुलीनता को धब्बा लगाती हैं, यह निश्चित विनाश की जड़ हैं। धन्य है इन सुकुलीनी राजमाताओं को, सचमुच इनका यह अभेद व्यवहार एवं शांत स्वभाव अभ्युदय का सूचक है।

सौभाग्य सुन्दरी और रूप सुन्दरी दोनों में जिस प्रकार प्रेमभाव था उसी प्रकार उनमें सैद्धान्तिक मतभेद भी। सौभाग्यसुन्दरी वैष्णव धर्म से प्रभावित थी, और रूपसुन्दरी श्री वीतराग देव प्रणीत जैनधर्म की अनन्य उपासिका थी।

परिवार के सभी सदस्य एक ही सिद्धांत के अनुगामी या मानने वाले हों, ऐसी कोई बात नहीं। "भिन्न रुचिर्हि लोकाः" की उक्त्यानुसार मनुष्यों की धारणाएं, विचार शक्तियां एवं अभिरुचियां भिन्न भिन्न होती हैं। उसी के अनुकूल वे आचरण करते हैं। सम्प्रदाय, धर्म तो साधन मात्र हैं। धर्म बाजार की वस्तु नहीं जो कि ठोक पीट कर अथवा पैसे आदि के बल से किसी के सिर पर लादा जा सके।

सम्प्रदाय की बातों पर विवाद और भेद हो सकता है, किन्तु धर्म के सम्बन्ध में कभी मतभेद न हुआ और न हो सकता है। "शाश्वतोऽयं धर्मः" धर्म तो नित्य है, वह अनित्य जीवन से कहीं अधिक मूल्यवान है। "अंत करण शुद्धित्वं धर्मः" अंतःकरण की शुद्धि ही धर्म है, और वही भवसागर से पार लगाने वाला है। साधन की भिन्नता भले हो किन्तु अपना विशुद्ध लक्ष पापों से मुक्ति कर्म क्षय करने के उपाय को भूल धर्म की ओट में आपस में लड मरना, महान् भूल है।

सुर परे सुख संसारना भोगवतां भूपाल ललना।
पुत्री एके की पामिए राणी दोय रसाल ललना ॥६॥ देश०
एक अनुपम सुर-लता वाधे वधते रूप ललना।
बीजी बीज तणी परे इन्द्र कला अभि रूप ललना ॥७॥ देश०
सोहग्ग देवी सुता तणो नाम ठवे नरनाह ललना।
सुर सुन्दरी सोहामणो आणी अधिक उच्छाह ललना ॥८॥ देश०
रूप सुन्दरी राणी तणी पुत्री पावन अंग ललना।
नाम तास नरपति ठवे मयणा सुन्दरी मनरंग ललना ॥९॥ देश०
वेद विचक्षण विप्र ने सोंपे सोहाग्ग देवी ललना।
सयल कला गुण सीखवा सुर सुन्दरी ने हेवी ललना ॥१०॥ देश०

**मयणा ने माता ठवे जिन मत पंडित पास ललना ।
सार विचार सिद्धांतना आदरवा अभ्यास ललना ॥११॥ देश०**

प्रजापाल का जीवन अत्यन्त सुखमय था । उन्हें दोनों महारानियों की नीति रीति एवं नम्र व्यवहार से पूर्ण संतोष और गौरव था ।

एक बार सौभाग्य से दोनों रानियां साथ ही गर्भवती हुई । प्रजापाल गर्भाधान के समाचार सुन फूला न समाया, प्रसन्नता वश उनका मन मयूर नाचने लगा । राजा ने परिवार की वृद्ध महिलाओं को बुला कर उन्हें आदेश दिया कि वे सदा दोनों महारानियों के पास उपस्थित रह कर उन्हें प्रसव विज्ञान की शिक्षा दें ।

## प्रसव विज्ञान :–

स्त्री को साहित्य, विज्ञान और दर्शन जानने की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी कि उसे सु-माता बनने की रीति जानने की । जिस जाति में सुमाताओं की संख्या अधिक हैं, वह जाति उतनी ही उत्तम और श्रेष्ठ है । मानव जीवन के निर्माण में माता का विशेष हाथ रहता है । माँ का पुत्र पर क्या प्रभाव पड़ता है । यह जानना हो तो प्रसिद्ध महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़िये ।

(१) शरीर शास्त्र के विद्वानों का कहना है गर्भ स्थिर होने के बाद ६ महिने तक गर्भस्थ-जीव का केवल शारीरिक विकास होता रहता है, इसके बाद मस्तिष्क का उसमें मानवी चेतना आने लगती है । फलतः बालक की बाह्य सुन्दरता याने उसका शारीरिक गठन, स्वस्थता और सौंदर्य लाने के लिए गर्भाधान से लेकर प्रथम छः मास तक प्रयत्न करना चाहिए तथा मानसिक सौन्दर्य अर्थात् सुरुचि बुद्धिमत्ता, दया, विवेक आदि गुणों के लिए सातवें मास से जन्म समय तक प्रयत्न करना आवश्यक है ।

इच्छा शक्ति में अतुल बल, अनोखा चमत्कार है । इच्छा शक्ति का अर्थ है, मनुष्य की मन पसन्द वस्तु का निःसंदेह प्राप्त होना । संतान पर पिता से अधिक प्रभाव माता का पड़ता है । स्त्रियों को चाहिये कि वे इच्छा शक्ति का प्रयोग कर अपने भाग्य को चमकावें ।

## इच्छाशक्ति का मंत्रः–

(१) मेरे गर्भ में एक ऐसा जीव पनप रहा है, जो कि महान् आत्मा होगा. उसके जीवन से लाखों का उपकार होगा, वह राष्ट्र और समाजका चमकता चांद होगा ।

(२) मेरी संतान गौर वर्ण, कमल नयन, अति सुन्दर, हृष्ट पुष्ट, तेजस्वी और संयमी होगी। मेरा लाल आज्ञाकारी, प्रसन्न मन और दृढ़ संकल्प एक आदर्श नररत्न होगा।

(३) मेरी संतान आदर्श, सेवाभावी, पुरुषार्थी और दानवीर होगी।

(४) मेरी संतान साहसी, धीर, वीर और आत्मनिष्ठ होकर रहेगी।

(५) मेरी संतान अवश्य हमारे अनुशासन में रहकर, बड़े-बूढ़ों की सेवा करेगी।

आप उपरोक्त शब्दोंको हँसी मजाक न समझे, यह इच्छा शक्ति का वह चमत्कारिक जादूई मन्त्र है जो कि अधिक नहीं सिर्फ दो ढाई माह के बाद ही प्रत्यक्ष रूप से एक अनमोल निधि कुल दीपक प्रदान कर आपके मन को प्रफुल्लित कर देगा, आपके अड़ोसी पड़ोसी रोती सूरत संतान के मां बाप देखते रह जायेंगे। उक्त मंत्र कण्ठस्थ कर बार बार मनन कर अपने सोये भाग को जगाएं।

# गर्भवती भोजन कैसा करे ?

जीवन को सुरक्षित रखने के लिए भोजन एक आवश्यक वस्तु है। "जैसा खाए अन्न वैसा हो मन" मनुष्य जैसा भोजन करता है उसी प्रकार उसकी मति-गति होती है। खाद्यपदार्थों का पहले रस, फिर रक्त बनता है। गर्भ-स्थित जीव के लिए सब काम माता का रक्त ही करता है। यदि माता का रक्त शुद्ध और निरोग हुआ तो बालक सुन्दर, स्वस्थ और सदाचारी होगा। रक्त शुद्धि के लिए उचित भोजन, आचार, विचार की बड़ी आवश्यकता है। गर्भवती को अपने भोजन पर सदैव ध्यान रखना चाहिए। अर्थात् अधिक चरपरी, अधिक खट्टी, मीठी तथा बासी तेल की चीजों को यथा संभव कम व्यवहार में लाना चाहिये। गरिष्ट और बादी कारक भोजन भी नहीं करना चाहिए। गर्भवती स्त्री को दाल, भात, रोटी, साग घी, फल और दूध, रुचि तथा भूख के अनुसार लेना चाहिए। अधिक भोजन न करें। गर्भवती स्त्रियों को चाहिये कि वे भोजन करते समय वात, पित्त और कफ कारक पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन न करें।

*(१) वात-बादी कारक चने, आदि तथा ठण्डे पदार्थ खाने से प्रायः बच्चे कुबड़े, वामन, ठींगने और ऊँचे पैदा होते हैं।

---

* वातलैश्च भवेत् गर्भः कुब्जान्ध जड़ वामनः ।
पित्तलैः स्खलितः पिङ्गः, श्वित्रो पाण्डुः कफात्मभिः ॥

(२) पित्त कारक पदार्थों के सेवन से प्रायः गर्भपात तथा बच्चों के नेत्र-शरीरादि पीले पड़ जाने की संभावना रहती है।

(३) कफ कारक पदार्थों के सेवने से प्रायः बच्चे चितकबरे और पांडुरोग वाले पैदा होते हैं। भविष्य में उन्हें सफेद कोढ होने की संभावना रहती है।

+(४) गर्भवती स्त्री यदि अधिक नमक, खारे पदार्थ खाती है तथा आंखों में विशेष कज्जल लगाती है तो प्रायः उसके बच्चे अंधे, नेत्र रोगी होते हैं।

(५) गर्भवती गरम पदार्थ सेवन न करे। गरम पदार्थों से प्रायः बच्चे निर्बल पैदा होते हैं। गर्भवती को तेज जुलाब व दवाई न दें।

(६) गर्भवती स्त्री अधिक रुदन न करे, रोने से प्राय बच्चों की आंखे चीपड़ी, अधिक गीत गान करने से प्राय. बच्चे बहरे (बधिर), अधिक बोलने से प्रायः बच्चे वाचाल, अधिक हंसने से तथा अधिक गालियों की बोछार करने से प्राय बच्चे दुराचारी पैदा होते हैं।

(७) गर्भवती स्त्रियों के अधिक हंसने से प्रायः बच्चों के होठ, दांत काले हो जाते हैं। गर्भवती स्त्री के चांदनी-खुले स्थान पर सोने से प्रायः बच्चे वाडे (रावणसंडे) पैदा होते हैं।

(८) गर्भवती स्त्री के पास किसी पतित ईर्षालु, निंदक और क्रोधी स्त्री को बैठने न दें।

(९) गर्भवती स्त्रियों को सदा प्रसन्न रखने का प्रयत्न करें। उन्हें बात बात पर अपमानित कर चिढ़ाना, अथवा उन्हें भयानक, चिन्ताजनक शोक समाचार सुनाना उचित नहीं।

(१०) गर्भवती स्त्री को आवश्यक परिश्रम और विश्राम भी अवश्य करना चाहिए।

(११) गर्भवती को छल, कपट, चुगलखोरी, चोरी, काम, क्रोध, लोभ, अहंकार आदि मानसिक विकारों से बचकर मन सदा पवित्र रखना चाहिये।

(१२) गर्भवती के वस्त्र साफ स्वच्छ ढीले हों। वह तेज चाल व दौड कर न चले।

(१३) गर्भवती का यदि स्वास्थ ठीक न हो तो उसे वैद्य की सम्मति विना कोई औषध न दें।

(१४) गर्भवती स्त्री को प्रतिदिन आंवले का मुरब्बा बड़ा हो तो एक, छोटा हो तो दो

---

+ अति लवण नेत्र हरं, अतिशीत मारुतं प्रकोपति।
अत्युष्णं हरति बलं, अति कामं जीवितं हरन्ति॥
—अभिधान राजेन्द्र कोष भा. ३ पष्ठ ८५९

नग प्रवाल, वंशलोचन और गिलोय-सत्व आदि मिला कर दें। इस प्रयोग से भावी संतान की मस्तिष्क शक्ति बड़ी तेज होती है।

(१५) विशेष-गर्भवती स्त्रियों को अपनी इच्छाएं अतृप्त न रखनी चाहिए। घरवालों को भी चाहिए कि वे गर्भिणी के मनोभावों को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से समझ कर उसे पूर्ण करने का प्रयत्न करें, इसी इच्छा का दूसरा नाम है दोहद इच्छा के अपूर्ण रह जाने से बालक दुर्बल हृदय, लालची हतोत्साह-सुस्त पैदा होते हैं।

कल्प सूत्र में सिद्धार्थ त्रिशला के जिस दोहद ( इच्छा ) को पूर्ण न कर सके थे, उसे पूर्ण करने के लिए स्वयं इन्द्र महाराज को हार खाकर इन्द्राणी के कुण्डल देना पड़े थे।

कर्मणा-चोदितं जन्तोर्भवितव्यं पुनर्भवेत् ।
यथा तथा दैवयोगा-द्दोहदं जनयेत् हृदि ॥१॥

पूर्व जन्म के कर्मानुसार गर्भ में जैसा बालक-बालिकाओं का भवितव्य होता है, उसी प्रकार गर्भवती स्त्री को दोहद ( दोहला ) इच्छा जागृत होती है।

## दोहद (दोहला) का फलः—

गर्भवती स्त्री को यदि किसी राजा के दर्शन की इच्छा हो तो वह धनवान, महान् भाग्यशाली पुत्र को जन्म देती है। उसे प्रसूति के समय प्रायः कष्ट नहीं होता है।

गर्भवती स्त्री की सेवा भक्ति करने की, सिंहासन पर बैठ कर राज्य-शासन करने की, तीर्थ यात्रा, धार्मिक उत्सव महोत्सव आदि की आकांक्षा ( दोहला ) जागृत हो तो वह स्त्री कुलदीपक-शासन प्रभावक सन्तान को जन्म देती है।

विशेषः—श्री जैनागम-श्री भगवती सूत्र, स्थानांग सूत्र, तन्दुल वेयालिय, एवं श्री अभिधान राजेन्द्र कोष भाग ३ पृष्ठ ८३९ आदि ग्रन्थों में गर्भ स्थिति, संरक्षण, अंगो पांग आहारादि का माननीय विस्तृत वर्णन है। जिज्ञासु गण गुरु मुख से श्रवण कर अथवा स्वयं पढ़ कर लाभ लें।

पंडित राज वाग्भट्ट का अभिप्राय है कि गर्भ स्थिति के नव में मास में प्रसूति गृह की और दाई की व्यवस्था बड़ी सावधानी से करना आवश्यक है।

(१) प्रसूति गृह में स्वच्छ वायु और प्रकाश के लिए मार्ग खिड़कियांहोना चाहिये।

(२) प्रसूति-गृह के आस-पास गन्दी और विषैली गैस (वायु) उत्पन्न करने वाली वस्तुएं न हो। मकान में अधिक सीत न हो।

(३) प्रसूति गृह में रहने वाली स्त्रियां स्वस्थ हों एवं उनके वस्त्र स्वच्छ धुले हों, तथा उन्हें चाहिए कि वे प्रत्येक काम मनोयोग और स्वच्छता से करें।

(४) प्रसूता और नव-जात शिशु की सेवा में सु-योग्य सेवाभावी दाई रखें। अज्ञान, स्वच्छन्द रोगीष्ट और सनकी दाइयों से काम न लें।

सौभाग्यसुन्दरी और रूपसुन्दरी दोनों रानियां वृद्ध महिलाओं के मार्ग दर्शन के अनुसार ही आचरण करती थीं।

प्रतिहारी-बहिन आज तुम घर न जाना। राजमाताएं कुछ अस्वस्थ हैं। दासी-हाँ, बहिन! कुछ ऐसा ही ज्ञात होता है। आज सुबह से उन्हें कष्ट और घबराहट मालूम हो रही है। भाग्य की कसौटी पर कौन नहीं कसा जाता, उस पर विरला ही खरा उतरता है। यह तो मानना पड़ेगा कि सच-मुच दोनों रानियों ने प्रसव-विज्ञान के नियमों का ठीक तरह से आचरण किया है। संभव है वे आज ही सकुशल सफल हो जायं।

मालिन—सच है बहिन! वास्तव में यह कड़ी परीक्षा का समय है। देखो कल की ही बात है। मेरी प ेसिन मरते मरते बची। भगवान ने ही उसके नन्हें नन्हें बच्चों की लाज रखी! अभी भी उसका जीवन संकट में है। प्रधान-वैद्या बहिनजी कहती थी कि इस अभागिन ने अपना मुंह वश में न रखा! गर्भावस्था में कंकर, पत्थर, कोलसे, राख, मिट्टी और खट्टे नमकीन रूक्ष पदार्थ खा खा कर अनर्थ कर डाला; प्रकृति के विरुद्धाचरण कर मरणासन्न कष्ट को आमंत्रित किया। रसना (जिह्वा) की लोलुपता का ही यह परिणाम हुआ कि बच्चे को काट काट कर बाहिर निकालना पड़ा। यदि विदुषी वैद्या का समय पर सहारा नहीं मिलता तो सारे शरीर में विष फैल जाता। जहां सर्वत्र विष व्याप्त हुआ कि फिर शेष क्या था? निश्चित ही मृत्यु।

कंचुकी-सम्राट अंतःपुर में पधार रहे हैं। दोनों रानियां अपने वस्त्रों को सम्भाल कर बोलीं-पधारें।

दोनों रानियों की निर्बलता देख, प्रजापाल ने कहा। देवियों! लेटी रहो! कष्ट न करो। फिर भी दीवार का सहारा ले पलंग से नीचे उतर कर विनम्र शब्दों में आर्यपुत्र! सु-स्वागतम्! अशक्ति से दोनों के भाल पर पसीने की बिन्दु मोती सी चमक रही थी, आंखों में मादकता, ललाई थी। उनके मन्द स्वर में वह आकर्षण, ममता थी, जिसे

श्रवण कर महाराज प्रजापाल मन्त्र-मुग्ध हो गए। इस दृश्य ने राजा के हृदय में स्फूर्ति और नवजीवन का संचार कर दिया! उन्हें अब पूर्ण विश्वास हो गया है कि वे शीघ्र ही सम्राट होने के साथ ही पिता होने का भी गौरव प्राप्त करेंगे। साथ ही दोनों महारानियां जनता द्वारा आरोपित बांजपन के कलंक से मुक्त हो माँ कहलायेगी।

## जन्मोत्सव

चन्द्र अस्ताचल की ओर प्रयाण कर रहा था, आकाश, में कहीं कहीं नक्षत्र गण–तारे मुस्करा रहे थे। ताम्रचूड़ (मुर्गे) सोई हुई जनता को जागृत होने का संदेश दे रहे थे। उषाकाल का मन्द मन्द सुवासित पवन नागरिकों को स्वस्थता एवं स्फूर्ति प्रदान कर रहा था।

पशु, पक्षियों के शुभ स्वर मंगल घड़ी के सूचक थे। पूर्व दिशा से सूर्य देव प्रजापाल की भावी संतान को शुभाशीर्वाद देने को ऊपर उठ रहे थे।

आज सुबह से राज–प्रासाद में स्त्री पुरुषों की विशेष चहल पहल थी। कर्मचारीगण एवं नागरिकों के मुंह पर प्रसन्नता एवं अनूठा प्रेम झलक रहा था।

दास दासियों–'महाराजाधिराज की जय हो! जयघोष के साथ सादर सेवा में निवेदन किया। कृपालु नाथ! आज सूर्योदय की मंगल वेला में दोनों राजमाताओं की कौख से एक एक कन्या रत्न का जन्म हुआ है। यह शुभ समाचार सुन महाराज प्रजापाल फूले न समाए तथा उन्होंने बधाई देने वाले सेवक सेविकाओं को अपने शरीर के बहुमूल्य आभूषण उतार प्रदान कर दिये। बंदियों को कारागार से मुक्त कर दिया गया। राज्य कर्मचारीगण, एवं नगर के गणमान्य प्रतिष्ठित सज्जनों का योग्य सत्कार कर, विद्यार्थियों को पुरस्कार बांटा गया।

राज्य प्रासाद तोरण, ध्वजापताकाओं से सजाया गया, चारों ओर मंगल–गीत की स्वर लहरी व नगारों की ध्वनि उज्जैन के नागरिकों को जन्मोत्सव में सम्मिलित होने का आह्वान कर रही थी। आज जनता को वर्षों की प्रतिक्षा के बाद ही सम्राट प्रजापाल के द्वार पर जन्मोत्सव की, पहली दीपावली देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

महाराज प्रजापाल ने सभा बुलाकर दोनों कन्याओं की नाम संस्कार विधि सम्पन्न कर एक का नाम सुरसुन्दरी व दूसरी का नाम मयणासुन्दरी रखा।

राज माताएं दोनों कन्याओं का लालन–पालन बड़े मनोयोग से करती थी। वे समझती थी कि आरम्भ में बच्चे अपने बड़ों के उदाहरण से बहुत कुछ सीखते हैं। विशेष कर उनकी वाणी वर्तन और दिनचर्या का उन पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है।

# बच्चों से संभाषण कैसे करें ?

बच्चों को आरंभिक संभाषण का वरदान माता-पिता से ही प्राप्त होता है। बच्चे बड़ों की बात सुन कर ही, बहुत कुछ सीखते हैं। अतएव जब आप उनसे बात करें, उन्हें खिलौना न समझ कर एक व्यक्ति समझें। बच्चों में तर्क बुद्धि नहीं होती। वे अपने बड़े बूढों की बात को ही सच समझते हैं। सुनी सुनाई बातों पर वे विश्वास कर लेते हैं।

बच्चों से बातचीत करते समय उसकी समझ तथा जानकारी का ध्यान अवश्य रखें। छोटे वाक्य, सरल भाषा तथा परिचित विषय सुनने चाहिये। बच्चे आपकी बोल-चाल की भाषा ही समझ सकते हैं।

बच्चों से बात-चीत करते समय जोर-जोर से हंसना, धमका कर या चिल्लाकर बोलना, हंसी मजाक में अशिष्ट-गन्दे शब्दों का प्रयोग, हाथ-मुंह बनाकर बातें करना आदि ढंग बुरे हैं। बच्चे इन दुर्गुणों की झट नकल कर लेते हैं। बात-चीत में दोष आजाने से बच्चों का व्यक्तित्व प्रभाव-हीन हो जाता है। जल्दी-जल्दी बोलना कुछ तकिया कलाम यथा-समझे न, 'हां तो,' 'क्या समझे,' 'बड़े आये, ठीक है बड़े अच्छे, दा पट्टी, कई नाम जो, आदि निरर्थक शब्दों का प्रयोग बच्चे सुन सुन कर ही सीख जाते हैं। इसी प्रकार हाथ हिला-हिला बात करना, मुंह फुलाना, आंखें झपकना, कचर-कचर जल्दी-जल्दी कतरनी सी जीभ चलाना आदि दोष भी बच्चों में देखा, देखी ही आ जाते हैं। अत: बच्चों के साथ माता-पिता को बड़ी ही सावधानी से संभाषण करना चाहिए।

# बच्चों से व्यवहार कैसे करें ?

बच्चों से न अधिक लाड़ करें और न उन्हें मार-पीट कर दुतकारें। अधिक लाड़ प्यार से वे सर पर चढ़ कर भविष्य में अपना जीवन बिगाड़, आपको दु:ख देंगे। यदि आप बच्चे के स्वभाव को न समझ कर उसे डाट डपट बार बार मार-पीट करते हैं, तो आप बच्चों के दिल से गिर जायगें, वह समझ लेगा कि मां बाप दो तमाचे लगा कर रह जायगें, और इससे अधिक क्या होगा? आपके इस व्यवहार से संभव है बच्चे भविष्य में चोर लुटेरे बन आपके नाम को बदनाम कर दें!

बच्चों को पता नहीं कि आप अपने जीवन की घड़ियां किस प्रकार बीताते हैं? आपकी आय, व्यय क्या है? उनकी जाने बलाय। बाल राजा ठहरे। सूर्य अस्त और बच्चे अपने हाल में मस्त।

पड़ौसी के बेटे के नये जूते, नये कपड़े, नया बस्ता, नया खिलौना देखा, घर आकर मचल गए। बच्चे की मांग सामने आते ही आप एक दम आग बबूला न हो जांय। क्रोध कर चिढ़ चिढ़ाना छोड़ दें, मुन्ने को प्यार भरे शब्दों में अधिक नहीं थोड़ा दें, समय को शांति से टाल दें। बच्चे प्यार के भूखे हैं। बच्चों के लिये माता-पिता के प्रेम से बढ़कर दुनिया में कोई चीज नहीं। उन्हें प्रसन्न मन देख शिक्षा दें।

बच्चों की आरम्भ से ही ऐसी आदत डालो कि वे बिना मारपीट के ही प्रत्येक काम करते समय आपके अनुशासन का ध्यान रखें।

## दैनिक-चर्या का प्रभावः—

हम बच्चों को अपने अनुशासन में रखना चाहते हैं, तो हमें भी अपने दैनिक कार्यक्रम व्यवस्थित और यथा समय करना आवश्यक है। आपके नियमित आचरण से बच्चों को सुन्दर प्रेरणा मिलती है। आप प्रातः काल उठ कर अपने बड़े बुढ़ों को प्रणाम कर आर्शीर्वाद प्राप्त करते हैं, सामायिक, प्रतिक्रमण कर नवकारसी, पोरसी, पचक्खाण करते हैं, जिन मंदिर दर्शन कर ही चाय दूध भोजन करते हैं, तो आपके बच्चे भी निःसन्देह ठीक वैसा ही अनुकरण करेंगे। यदि आप पक्के रहे तो! अन्यथा आप आलसी, व्यसनी बन बच्चे को आदर्श बालक के रूप में देखें यह कैसे संभव हो सकता है?

एक व्यक्ति आप पर सौ रुपये मांगता है। आपने कहा कि मैं कल शाम को जरूर दे दूंगा। दूसरे दिन दर्वाजे की खड़खड़ाट सुन आपने मुन्ने से कहा कि जा रे मुन्ना मोदी से बोल दे, कि बाबूजी बाहर गये हैं। मुन्ना बेचारा चुप-चाप खड़ा देखता रहा. यह क्या नाटक बाजी? फिर बाहर से खड़ खड़ाहट आरम्भ हुई, पिताजी ने आँखें लाल कर बेटे को उत्तर देने को बाध्य किया। भोला भाला मुन्ना—पिताजी आप तो यही अन्दर हैं! डंडा उठाकर अरे जाता है या...न...हीं बच्चा कांप उठा उसके हृदय पर छाप लग गई की अपने घराने की यही प्रथा है।

आपकी एक साधारण भूल बच्चों के भविष्य का अभिशाप है। आप जीवन के प्रत्येक कार्य प्रमाणिकता और परिमित ढंग से करें। इसमें कोई संशय नहीं कि बच्चे आपका अनुकरण न करें। वे अवश्य ही एक दिन आदर्श मानव बनेंगे।

## आरंभ से बच्चों में संस्कार डालें:—

(१) शरीर और बच्चों की सफाई का पूर्ण ध्यान रखना :

(२) भोजन से पहले और बाद में मुंह हाथ साफ करना।
(३) पेट, दांतों, बालों तथा हाथों को सदा साफ रखना।
(४) निश्चित स्थान पर ही कफ, थूक, मलःमूत्र त्यागना।
(५) बाज़ार की मिठाइयां, होटलों की चाय नमकीन से बचकर अपने स्वास्थ का पूरा पूरा ध्यान रखना। आलू, मूला, गाजर आदि अभक्ष अनंत काय से दूर रहना।
(६) मुंह, नाक, कान में बार बार अंगुली नहीं डालना।
(७) खांसते समय हमेशा रुमाल का उपयोग करना, आसपास की जगह गंदी न करना।

## आपको चाहिये कि:-

बच्चों को आत्म निर्भर बनने की विशेष शिक्षा दें। स्वयं न्हाना, धोना, कपड़े पहनना साफ सफाई करना, अपनी पुस्तकें, बिस्तर, कपड़े बर्तन आदि वस्तुएं उठा कर यथा स्थान रखना। अतिथि महमानों का स्वागत करना। अपनी दिनचर्या बड़े मनोयोग से करना।

बच्चों के समय का महत्त्व समझें अपने अल्प स्वार्थ के लिये उनके अध्ययन में विघ्न न डालें। बच्चों को मारपीट कर अपने अपमान की खाई न खोदें।

बच्चों को आज्ञा देते समय आपकी आवाज अधिकार पूर्ण ढंग से न होकर सप्रेम निवेदन के रूप में हो। बच्चों में आप अविश्वास न रखें और न उन्हें बदनाम करें। अवसर देख प्रेम से समझाएं।

अनजान में पट्टी फूटने, खेल कूद में कपड़े फटने पर बच्चों को दण्ड न दें। उसे प्रेम से हानि लाभ समझावें।

महारानी सौभाग सुन्दरी और रूपसुन्दरी प्राणनाथ! बालिकाओं को विशेष अध्ययन के लिए कहीं भेजने की कृपा करें।

महाराज प्रजापाल ने सुरसुन्दरी को वेदान्ती, कर्मकांडी पंडित शिवभूति और मयणासुन्दरी को जैनागम के ज्ञाता पंडित सुबुद्धि के पास पढ़ने भेजी।

चतुर कला चौसठ भणी, ते बेउ बुद्धि निधान ललना।
शब्द शास्त्र सवि आवडया, नाम निघण्टु निदान ललना॥१२॥ देश०
कवित्त कला गुण केवले, वाजित्र गीत संगीत ललना।

ज्योतिष वैद्यक विधि जाणे, राग रंग रस रीत ललना ॥१३॥ देश०
सोल कला पूरण शशि, करवा कला अभ्यास ललना ।
जगति भमे जस मुख देखी, चौसठ कला विलास ललना ॥१४॥ देश०
मयणासुन्दरी मति अति भली, जाणे जिन सिध्दान्त ललना ।
स्याद्वाद तस मन वस्यो, अवर असत्य एकान्त ललना ॥१५॥ देश०
नय जाणे नव तत्वना पुद्गल गुण पर्याय ललना ।
कर्म ग्रंथ कण्ठे कर्या, समकित शुद्ध सुहाय ललना ॥१६॥ देश०
सूत्र अर्थ संघयणना, प्रवचन सारोद्धार ललना ।
क्षेत्र विचार खरा धरे, एम अनेक विचार ललना ॥१७॥ देश०
रास भलो श्रीपाल नो, तेहनो पहेली ढाल-ललना ।
विनय कहे श्रोता घरे, होजो मंगल माल ललना ॥१ । देश०

रूपसुन्दरी और मयणासुन्दरी गुरु-कुल के शान्त वातावरण अभेद व्यवहार एवं शिक्षा की नीति-रीति से बड़ी सन्तुष्ट थीं । राज-प्रासाद को भूल उनका एक ही लक्ष्य था 'गुरु सेवा' विद्या-अध्ययन और भगवान का भजन ।

माता-पिता से भी अधिक उत्तरदायित्व "गुरु" का है । गुरु की परिभाषा है कि जो बच्चों को किताबी ज्ञान न दे परन्तु अपने सदाचार, ज्ञान व्यवहार-कुशलता की उन पर ऐसी छाप डाले कि वे सब कुछ सीख जांय । विद्यार्थीयों को साक्षर बनाना ही गुरु का ध्येय नहीं होना चाहिए । यह तो ज्ञान प्राप्ति का एक साधन मात्र है । सच्चा अध्यापक वही है जो बच्चों की विशेष बुद्धि को जागृत कर दे,

सुरसुन्दरी ने भक्ति एवं सेवा सुश्रुषा से गुरुजी को प्रसन्न कर अल्प समय में ही स्त्रियों चित चौंसठ-कला का ज्ञान प्राप्त कर लिया था ।

---

## चौंसठ कला:-

व्यवहारिक-४४ कलाएँ-(१) ध्यान, प्राणायाम, आसन आदि की विधि । (२) हाथी, घोड़ा, रथ आदि चलाना । (३) मिट्टी और कांच के बर्तनों को साफ रखना । (४) लकड़ी के समान पर रंग-रोगन सफाई करना । (५) धातु के बर्तनों को साफ करना और उन पर पालिश करना । (६) चित्र बनाना ।

मयणासुन्दरी ने सुरसुन्दरी के समान ही पंडित सुबुद्धि से अध्ययन किया था। किन्तु उसकी अभिरूचि जैन सिद्धान्त नवतत्त्व, कर्मग्रंथ, प्रवचन सारोद्धार, संग्रहणी, द्रव्य गुण पर्याय, स्याद्वाद की ओर थी उसका प्रमुख विषय था जैन दर्शन।

जैन दर्शन एक आध्यात्मिक दर्शन है। जैन संस्कृति आत्मवाद की संस्कृति है। आत्मा अपने विशुद्ध स्वरूप में रह सके, तथा आ सके अतः जैन दर्शन असत् का प्रतिषेध करता है। भौतिक विकास जैन दर्शन का साध्य नहीं, वहां इसका गौण स्थान रहा है। जैन दर्शन मोक्ष शास्त्र है।

राजकुमारी मयणासुन्दरी ने अनेकान्त का गहन अध्ययन कर निश्चित कर लिया था कि 'कला कला के लिये है' कला में विष और अमृत दोनो तत्त्व निहित हैं। कला का स्वार्थ भाव, शोषण वृत्ति, काम लिप्सा से प्रयोग करना विष है। कला का परमार्थ भाव, कर्तव्य परायणता से प्रयोग करना अमृत तुल्य है भव सागर से पार लगाने वाला है।

राज कुमारी सुरसुन्दरी और मयणासुन्दरी की कला कौशल में समता प्राप्त करने के लिए चन्द्र देव बहुत भटके किन्तु फिर भी वे सोलह कला से अधिक न पा सके, जब कि राजकुमारियाँ चौसठ कला में निपुण थीं।

श्रीमान् विनय विजयजी महाराज कहते हैं कि श्रीपाल-रास की यह पहली ढाल संपूर्ण हुई। श्रोतागण और पाठकों के घर आनन्द मंगल होवे।

## दोहा

एक दिन अवनी-पति इस्यो, आणी मन उल्लास।
पुत्री नुं जोऊं पारखुं विद्या विनय विलास ॥ १ ॥
सभा मांहे शणगार करी, बोलावी बेहुँ बाल।
आवी अध्यापक सहित, मोहन गुणमणि माल ॥ २ ॥

---

(७) तालाब, बावड़ी, मकान आदि बनाना। (८) घड़ी, बाजों और दूसरी मशीनों को सुधारना। (९) वस्त्र-रंगना। (१०) न्याय, काव्य, ज्योतिष, व्याकरण सीखना। (११) नाव, रथ आदि बनाना (१२) प्रसव-विज्ञान। (१३) कपड़ा, बुनना, सूत कातना, धुनना। (१४) रत्नों को परीक्षा करना। (१५) वाद-विवाद, शास्त्रार्थ करना। (१६) रत्न एवं धातुएं बनाना। (१७) आभूषणों पर पालिश करना। (१८) चमड़े की मृदंग, ढोल नगारे, वीणा वगैरह तैयार करना। (१९) वाणिज्य। (२०) दूध दुहना (२१) घी,

अर्थ अगोचर शास्त्रना, पूछे भूपति जेह।
बुद्धि बले बेहु बालिका, आपे उत्तर तेह ॥३॥
अध्यापक आणंदिया, सज्जन सवे सुख पाय।
चतुर लोक चित्त चमकिया, फल्या मनोरथ माय ॥४॥
विनय वल्लभ निज बालनी, शास्त्र सुकोमल भाख।
सरस जिमी सहकारनी, साकर सरसी साख ॥५॥

प्रजापाल–प्रिये कोमल मति बच्चों को अध्यापकों के हाथ सौंप कर निश्चिन्त बैठे रहना उचित नहीं। बचपन के भले बुरे संस्कार मिटाये नहीं मिटते। सुरसुन्दरी और मयणासुन्दरी को बुलाया जाय। देखें, उनमें विनयादि गुणों का विकास और उनका अध्ययन कैसे क्या हुआ है?

पिता श्री की सूचना से सद्गुणी दोनों बहिनें सुन्दर वस्त्रालंकार पहिन कर अपने अध्यापकों के साथ राजसभा में आ उपस्थित हुई। पश्चात् वे प्रजापाल के चरणस्पर्श कर, अपनी माता के पास जा बैठी। अध्यापकों ने भी राजा को आशीर्वाद दे, आसन ग्रहण किया।

कई दिनों के बाद राजकुमारियों को देख राजा का हृदय भर आया, आंखें डबडबा आई। आशीर्वाद दे राजा ने परीक्षा लेना आरम्भ की।

प्रश्नः–(१) बिना आग के कौन जलाती है?

उत्तरः–ईर्षा, तृष्णा, चिन्ता, कर्जदारी, नव-जवान, कुंआरी लड़की, विधवा बहु बेटी।

प्रश्नः–(२) वशीकरण का सिद्ध मन्त्र क्या है?

उत्तरः–अभिमान का त्याग, निःस्वार्थ जन सेवा, मधुर भाषण सत्संग, सत्य व्यवहार।

प्रश्नः–(३) सुख कहां है? भोजन में, भोग में, भटकने में, भगवान के मन्दिर में, भजन में?

उत्तरः–नहीं, कहीं नहीं। सुख है अच्छे आचरण में। अपनी आत्मा में। बाहर नहीं।

---

मक्खन तपाना। (२२) कपड़े सीना। (२३) तरना। (२४) घर को सुव्यवस्थित रखना (२५) काड़ धोना। (२६) केश-शृंगार (२७ मृदु भाषण वाक्पटुता। (२८) बांस के टोकने, पखे, चटाई आदि बनाना। (२९) कांच के बर्तन बनाना। (३०) बाग बगीचे लगाना, वृक्षारोपण, जल सींचन करना। (३१) शस्त्रादि निर्माण (३२) गादी गोदड़े-तकिये बनाना (३३) तैल निकालना। (३४ वृक्ष पर चढ़ना। (३५) बच्चों का पालन पोषण करना। (३६) खेती करना। (३७) अपराधी का

प्रश्न –(४) वायु से भी अधिक तेज दौड़ किनकी है?

उत्तर:–मन और मस्तिष्क की।

प्रश्न:–(५) सबसे बड़ा मकान कौनसा है जो कभी सकड़ा न पड़े?

उत्तर:–पृथ्वी इसमें कई समा गए हैं, फिर भी यह खाली है।

राजकुमारियों की तर्क बुद्धि, पांडित्य और रसीली वाणी ने शर्करा मिश्रित आम्ररस को भी मात कर दिया। महाराज प्रजापाल, अध्यापकगण, राज्य परिषद् आदि जनता मंत्रमुग्ध हो, सुरसुन्दरी और मयणासुन्दरी की प्रशंसा करने लगी।

## ढाल-दूसरी

प्रश्नोत्तर पूछे पिता रे, आणी अधिक प्रमाद।
मन लागे अति मीठड़ा रे, बालक वचन विनोद रे॥
वत्स! विचारजो, देई उत्तर एह रे, संशय वारजो॥१॥
कुण लक्षण जीवित तणुं रे, कुण मन मथ घर नारि।
कुसुम कुण उत्तम कहुं रे, परणी शुं करे कुमारी रे॥२॥वत्स०
एक वयणे एहनो रे, उत्तर एणी परे थाय।
सुरसुन्दरी कहे तातजी रे, सुणजो "सासरे जाय" रे।
नृप! अवधारजो, अरथ सुणी अम एह रे महत्त्व वधारजो॥३॥

महाराज प्रजापाल–सुरसुन्दरी! हमारे चार प्रश्नों का उत्तर तुम एक ही शब्द में दो।

(१) प्रश्न जीवन, मरण का चिन्ह क्या है? –उत्तर– सास।–

(२) प्रश्न कामदेव की स्त्री कौन है? –उत्तर– रति रे।–

---

उचित दंड देना। (३८) भांति भांति के अक्षर लिखना। (३९) पान सुपारी बनाना और खाना। (४०) प्रत्येक काम सोच समझ कर करना (४१) समयज्ञ बनना। (४२) रंगे हुए चावलों से मंडल मांडना। (४३) सुगन्धित द्रव्य, तैल-धूपादि बनाना। (४४) हस्त कौशल-जादू के खेल से मनोरंजन करना।

संगीत की ७ कलाएं:–

(१) नृत्य (२) वादन (३) शृंगार (४) आभूषण (५) हास्यादि हाव-भाव। (६) शय्या-सजाना (७) शतरंज आदि कौतुकी क्रीड़ा करना।

स्त्रियों में देवताओं तथा मुनियों का सा तेज है।



(३) प्रश्न फूल कौनसा उत्तम है? —उत्तर— जाय।—

(४) प्रश्न कन्या विवाह के बाद क्या करे? —उत्तर— सासरे जाय।—

सुरसुन्दरी—पिताजी! एक ही शब्द से चारों प्रश्नों के उत्तर हल हो सकते हैं। "सासरे जाय"

मयणा ने मंहि पति कहे रे, अर्थ कहो अम एक।
जो तमे शास्त्र संभालता रे, आव्यो हृदय विवेक रे, ॥४॥ वत्स०
आदि अक्षर विण जेह छे रे, जग जीवाड़ण हार।
ते ही मध्याक्षर विना रे, जग संहारण हार रे, ॥५॥ वत्स०
अन्त्याक्षर विण आपणुं रे, लागे सहुने मीठ।
मयणा कहे सुण जो पिता रे, ते में नयणे दीठ रे, नृप० ॥६॥

प्रजापाल — मयणासुन्दरी! साहित्य शास्त्र में तुम्हारी विशेष गति है। तुम तीन प्रश्नों का उत्तर एक ही शब्द में दे सकोगी? एक शब्द है जिसका पहला अक्षर अलग कर दें तो वह शब्द जलती दुनिया के प्राण रचा देता है। उत्तर -'जल' यदि उसी शब्द के मध्य का अक्षर निकाल दें तो शेष शब्द का नाम सुनते ही सारा संसार कांपने लगता है। उत्तर—'काल' यदि उसी एक शब्द का अंतिम अक्षर निकाल दें तो उससे वशीकरण की सिद्धि होती है 'काज' अर्थात् मनुष्य को काम प्यारा है।

मयणासुन्दरी - पिताजी! आपके इन तीनों प्रश्नों का उत्तर मेरे नत्रों में अंकित हैं। उत्तर—'काजल'।

प्रश्नों के उत्तर सुन महाराज प्रजापाल बहुत प्रसन्न हुए। अब तक दोनों कन्याओं से भिन्न भिन्न प्रश्न पूछे जा चुके थे, किन्तु इस बार दोनों कन्याओं से एक समान समस्या पूछी गई।

---

## आयुर्वेद-शास्त्र की ८ कलाएँ

(१) आसव, सिर्का, आचार, चटनी, मुरब्बे बनाना। (२) कांटा-सूई आदि शरीर में से निकालना, आंख का कचरा कंकर निकालना। (३) पाचक चूर्ण बनाना (४) औषधी के पौधे लगाना (५) पाक बनाना (६) धातु, विष, उपविष के गुण दोष जानना। (७) भभके से अर्क खींचना। (८) रसायन-भस्मादि बनाना।

## धनुर्वेद सम्बन्धी ५ कलाएं

(१) लड़ाई-लड़ना (२) कुश्ती लड़ना (३) निशाना लगाना। (४) व्यूह प्रवेश-निर्गमन एवं रचना। (५) हाथी, घोड़े, मेंढे सांड, लड़ाना।

की शिक्षा देने में पिता के समान है।



सुगुण समस्या पुरजो रे, भूपति कहे धरी नेह।
अर्थ उपाई अभिनवो रे, पुण्ये पामिजे एह रे। ॥७॥ वत्स०
सुरसुन्दरी कहे चातुरी रे, धन यौवन वर देह।
मन वल्लभ मेलावड़ो रे, पुण्ये पामिजे एह रे ॥८॥ वत्स०
मयणा कहे मति न्याय नी रे, शीयल सु निर्मल देह।
संगति गुरु गुणवंतनी रे, पुण्ये पामिजे एह। ॥९॥ नृप०

प्रजापाल सुरसुन्दरी ! पुण्योदय से किन किन वस्तुओं की प्राप्ति होती है? पिताजी ! धन, यौवन, शारीरिक आरोग्य, रूप सौन्दर्य और मन-पसन्द भर्तार पुण्योदय से ही प्राप्त होता है।

मयणासुन्दरी–पिता श्री ! न्याय सम्पन्न धनोपार्जन की बुद्धि, प्राण-प्रण से ब्रह्मचर्य पालन की दृढ़ प्रतिज्ञा, गुणानुराग, सुदेव, गुरु, धर्म और सत्संग पुण्योदय से ही प्राप्त होता है।

'जो करणी अन्तर बसे, निकसे मुख की बाट'

मानव के सत्-असत् विचार एवं आचरण का मापदण्ड है प्रश्नोत्तर कला। प्रश्न एक है किन्तु दोनों 'राजकन्याओं के जीवन का मोड़' भिन्न भिन्न है। सुरसुन्दरी भौतिक पदार्थों को साध्य मानती है तो मयणासुन्दरी उसे साधन मानती है।

इण अवसर भूपति, भणे रे, आणी मन अभिमान।
हूँ त्रुट्यो तुम उपरे रे, देऊँ वंछित दान रे० ॥१०॥ वत्स०
हूँ निर्धन ने धन देऊं रे, करूं रंक ने राय।
लोक सकल सुख भोगवे रे, पामी मुज पसाय रे ॥११॥ वत्स०
सकल पदारथ पामिये रे मे तूठे जगमांहि।
में रूठे जग रोलिये रे, उभो न रहे कोइ छांहि रे ॥१२॥ वत्स०

प्रजापाल–धन्य है सुरसुन्दरी, मयणासुन्दरी ! बड़े ही हर्ष की बात है कि तुमने बचपन में ही इतनी विशेष योग्यता प्राप्त कर अपने वंश का गौरव बढ़ाया। आज मेरी आत्मा बड़ी प्रसन्न है, हृदय प्रफुल्लित हो रहा है। कहो तुम्हे क्या पारितोषिक दूं ! दोनों कन्याएं मुस्करा कर चुप रह गई।

प्रजापाल – संकोच न करो। मैं कह रहा , तुम निर्भय अपनी कामना प्रकट करो, जो मांगोगी वही पाओगी। राजा को रंक और रंक को श्रीमन्त बनाना मेरे हाथ की बात है। आज तुम लोग सुख-शांति का अनुभव कर रहे हो यह किसका प्रताप है? सारे सुख-दुःख मेरी कृपा पर ही निर्भर हैं। मेरी दृष्टि से गिरे हुए व्यक्ति की कोई छाया में भी खड़ा नहीं रह सकता है।

सुन्दरी कहे सांचु पिता रे, एहमां किश्यो संदेह।
जग जीवारण दोय छे रे, एक महिपति दूज मेह रे॥१३॥ नृप०
साचुं साचुं सहु कहे रे, सकल सभा तेणी वार।
ए सुरसुन्दरी जेहवी रे, चतुर न को संसार ॥१४ नृप०

सुरसुन्दरी – पिताजी, आपका कहना ठीक है। इसमें तनिक मात्र भी संशय नहीं। वास्तव में वर्षा और राजा ही जगत् की इच्छा पूर्ण करने वाले हैं। राजसभा के सदस्य – धन्य बड़ी बाई साब, सचमुच यह सब महाराज प्रजापाल का ही प्रताप है।

राजा पण मन रंजियो रे, कहे सुन्दरी वर मांग।
वंछित वर तुज मेळवी रे, देऊँ सयल सौभाग रे ॥१५॥ वत्स०
तिहां कुरु जंगल देश थी रे, आव्यो अवनिपाल।
सभा मांहे शोभे घणों रे, यौवन रूप रसाल रे ॥१६॥ नृप०
शंखपुरी नगरी धणी रे, अरिदमन तस नाम।
ते देखी सुरसुन्दरी रे, अंगे उपज्यो काम रे ॥१७॥ वत्स०
पृथ्वीपति तस ऊपरे रे, परखी तास सनेह।
तिलक करी अरिदमन ने रे, आपी अंगजा तेह रे ॥१८॥ वत्स०
रास रच्यो श्रीपाल नो रे, तेहनी बीजी ढाल।
विनय कहे श्रोता घरे रे, होजो मंगल माल रे ॥१९॥ वत्स०

मान बढ़ाई की बातें सुन महाराज प्रजापाल ने कुछ मुस्करा कर कहा – सुरसुन्दरी! बेटी मांगो, तुम्हें कौनसा वर दे सौभाग्यवती करूं?

दोनों राजकुमारियाँ महाराज प्रजापाल के पास बैठीं थीं। इस समय शंखपुरी के राजकुमार अरिदमन वहाँ आ पहुँचे। युवक का गौर वर्ण, गठीला बदन, चमकीली आंखें, सुन्दर दन्त पंक्ति, चौड़ा भाल, नौकदार नाक, विशाल वक्षस्थल, लम्बी भुजाएं, मुस्कराता मुख देख सुरसुन्दरी अपने मन पर संयम न रख सकी, राजकुमार भी युवती के रूप सौन्दर्य को देख अपने आपको भूल गया। दोनों के हावभाव देख महाराज प्रजापाल ने अरिदमन को तिलक कर सुरसुन्दरी ब्याह दी।

कविवर—विनय विजयजी कहते हैं कि श्रीपाल रास प्रथम खण्ड की यह दूसरी ढाल सम्पूर्ण हुई। श्रोतागण और पाठकों के घर, सदा आनन्द मंगल हो।

## दोहा

मयणा मस्तक धूणती, जब निरखी नरराय ।
पूछे पुत्री वात ए, तुम मन किम न सुहाय ? ॥१॥
सकल सभा थी सो गुणी, चतुराइ चितमांह ।
दीसे छे ते दाखवो, आणी अंग उत्साह ॥२॥
उचित नहीं इहां बोलवुं, मयणा कहे महाराज ।
मोहे मन माणस तणा, विरुआ विषय कषाय ॥३॥
निर्विवेक नरपति जिहां, अंश नहीं उपयोग ।
सभा लोक सहु हांजिया, सरिखी मल्यो संयोग ॥४॥

मयणासुन्दरी को अपनी बड़ी बहिन और पिताश्री का व्यवहार ठीक न लगा। संयमी जीवन आर्य संस्कृति का आदर्श है।

कौन वस्तु है खरी, और कौन खोटी है यहां।
ये परखने की किसी को, ज्ञान शक्ति है कहां॥

मयणासुन्दरी की मुखमुद्रा देख प्रजापाल ने कहा क्यों मयणा ! तू अपने आपको बड़ी बुद्धिमान समझती है ? दूसरे लोग भी कुछ समझते हैं या नहीं ? कहो क्या बात है ? मयणासुन्दरी पिताश्री ! धृष्टता के लिए क्षमा करें। बड़ों के सामने बोलना उचित नहीं।

क्षत्रियों के लिये "सत्ता का गर्व और शिष्ट मर्यादा का अतिक्रम एक अभिशाप है।" विषयवासनाएं भौतिक पदार्थों की तृष्णा ही मानव को सहज ही अधोगति की ओर ढकेल देती है। लोग तो केवल हां में हां, मिलाने वाले हैं। इनका बिगड़े क्या ?

मन मंदिर दीपक जिम्योरे, दीपे जास विवेक ।
तास न कहिये परा भवेरे; अंग अज्ञान अनेक ॥
पिताजी म करो झूठ गुमान, ए ऋद्धि अथिर निदान ।
जेहवो जलधि उधान, पिताजी म करो झूठ गुमान ॥१॥
सुख दुःख सहुए अनुभवेरे, केवल कर्म पसाय ।
अधिकुं न ओछुं तेहमां रे, कीधुं कोणे न जाय ॥२॥

मनुष्यके मन मन्दिर हृदय में यदि विवेक (दीपक) है, तो उसे संसार की कोई भी शक्ति परास्त नहीं कर सकती है। संभव है उसे कठोर परीक्षा का सामना पड़े। प्रकाश के सामने अन्धेरा टिक ही कैसे सकता है? जीवन में अज्ञान क्रोध, मान, माया और लोभ का जागृत होना स्वाभाविक है किन्तु बुद्धिमान मनुष्य सदा सावधान रहते हैं। पिताश्री! आप निरर्थक अभिमान न करें। 'मैं सत्ता के बल से किसीको सुखी या दुःखी कर सकता हूं' यह केवल एक भ्रांति है। प्राणी मात्र को अपने कर्मानुसार फल भोगना ही पड़ता है। सत्ता, ऋद्धि सिद्धि एवं वैभवादि आज हैं कल नहीं। समुद्र में भरती आकर लौट जाती है। उससे क्या लाभ? पिताजी! आप व्यर्थ ही गर्व न करें।

राजा कोपे कलकल्योरे, सांभलता ए वात ।
व्हाली पण वेरण थई रे, कीधो वचन विघात रे ।
बेटी भली रे भणी तू आज, तें लोपी मुज वात रे । बेटी०
विण माड्यु निज काज रे बेटी, न मूरख शिरताज रे ॥३॥
पाली ने मोटी करी रे, भोजन कूर कपूर ।
रयण हिंडोले हिंचतीरे, भोग भला भरपूर रे ॥४॥ बेटी०
पाट पटम्बर पहेरणे रे, परिजन सेवे पाय ।
जगमां सहु जी जी करे, ए सवि मुज पसाय रे ॥५॥ बेटी०

प्रजापाल आवेश में आकर मयणा! यह क्या? छोटे मुंह बड़ी बात! तू बेटी नहीं शत्रु है! तू राजसभा में अपने पिता का अपमान कर उन्हें सीख देने लगी कि "पिताजी! म करो झूठ गुमान" अरे नादान बेसमझ क्यों तू व्यर्थ ही अपने पैरों पर कुल्हाड़ा मारती है। यही तेरी शिक्षा का सार है? वाह रे वाह!

तुझे पैदा किया हमनें, तुझे हमने खिलाई है।
तुझे पाली है हमनें, अरु तुझे विद्या पढ़ाई है॥
तुझे अपनी समझ के ही, माननीया हमनें बनाई है।
तेरी शक्ति कितनी? शक्ति को हमने बढ़ाई है॥
सभी तो मेरा ही है, अपना तू किसको बनाएगी।
हमारे किस उपकार का बदला भला तू चुकाएगी॥

नादान! तू नित्य रत्नजड़ित झूलों में झूलती है, मिष्टान्नादि बढ़िया भोजन, सुन्दर भांति भांति के वस्त्रालंकार पहनती है। ये सेवक-सेविकाएं समय समय पर तेरी सेवा में उपस्थित रहती हैं यह किसकी कृपा है? फिर भी तू मेरी बातों को ठुकराना चाहती है?

तत्त्व विचारो तातजी! रे मन आणो मत रोष।
कर्मे तुम कुल अवतरी रे, मैं किहां जोया जोष॥ पि०॥६॥
भल हावो मोटे मने रे, नव नव करो निवेद।
ते सवि कर्म पसाउले रे, ए अवधारो भेद॥ पि०॥७॥

मयणासुन्दरी – पिताजी! मेरा आपसे अनुरोध है कि आप एक बार शान्त-चित्त से बैठ कुछ विचार करें। यदि आप मेरी बात को समझकर कुछ मनन करेंगे तो निःसन्देह आप कहेंगे कि मयणा ने आपके यहां जन्म लिया है वह न किसी ज्योतिषी के कहने से, न आपकी इच्छा से; किन्तु मैंने अपने पूर्वकृत शुभा-शुभ कर्मों के संयोग से ही, यह सब कुछ पाया है। अब रही पालन-पोषण, खान-पान, सुन्दर वस्त्राभूषण और शाही ठाट-बाट की बात। पिताश्री! दरअसल बात यह है कि मानव अन्तराय कर्म के क्षय होने से ही बढ़िया खान-पान, स्वर्गीय सुख का आनन्द ले सकते हैं, नहीं तो कई मनुष्य ऐसे भी हैं कि उनके पास विपुल सम्पत्ति, मेवा मिष्टान्न उत्तम भोजन की

प्रजापाल—" हूँ निर्धन ने धन देऊँ रे, करू रंकने राय " राजकुमारी अपने पिताश्री के यह शब्द सुन चौंक पड़ी अरे ? क्या कोई राजा को रंक। और रंक को राजा बना सकता है ? नहीं। भाग्य निर्माण पराधीन नहीं सदा स्वाधीन है।

सुव्यवस्था होने पर भी वे बेचारे कर्मवश संग्रहणी, मन्दाग्नि, गेस, अपेन्डिस, खाज-खुजली आदि शारीरिक रोग के कारण उनके उपयोग से वंचित रहते हैं। अतः पिताजी! आप व्यर्थ ही गर्व न करें।

जो हठवाद तुझने घणो रे, कर्म उपर एकांत।
तो तुझने परणावशुं रे, कर्मे आण्यो कंत रे बेटी ॥८॥ भ०
मान हण्यो जुओ एणीये रे, माहरुं सभा समक्ष।
फल देखाडुं एहने रे, सकल प्रजा प्रत्यक्ष रे बेटी ॥९॥ भ०

प्रजापाल – मयणा! यदि तू कर्म को ही प्रधान मान बैठी है, तो याद रखना: हटीली! तेरा विवाह ऐसे व्यक्ति के साथ करूंगा कि तू आजन्म याद करेगी, और सारा संसार कहेगा कि सभा के समक्ष अपने बाप का अपमान करने का ऐसा बुरा परिणाम होता है। तब तो मेरा नाम प्रजापाल है।

सखी ए शुं शिखव्युं रे, अध्यापक अज्ञान।
सज्जन लोक लाजे सहु रे, देखी ए अपमान रे बेटी ॥१०॥
नगर लोक निंदे सहु रे, भण्यो एहनुं धूल।
जुओ वातनी वातमां रे, पिता कर्यो प्रतिकूल रे बेटी ॥११॥
मिथ्यात्वी कहे जैननी रे, वात सकल विपरीत।
जगत नीति जाणे नहीं रे, अबला ने अविनीत रे बेटी ॥१२॥
अवसर पामी रायनो रे, गेप सभावण काज।
कहे प्रधान पधारिये रे, रयवाडी महाराज रे बेटी ॥१३॥
रास भलो श्रीपालनी रे, तेहनी त्रीजी ढाल।
विनय कहे मद परिहरो रे, जेहथी बहु जंजाल रे बेटी ॥ ४॥

प्रजापाल और मयणासुन्दरी के संवाद से राज-सभा में चारों ओर काना-फूसी होने लगी।

सदस्य – राजकुमारी मयणासुन्दरी ने अध्ययन तो ठीक किया है किन्तु इसमें समयज्ञता नहीं। इसका अध्ययन वृथा है। कामदार – अजी! बाई साब को क्या कहें? एक साधारण सी बात पर महाराज को अप्रसन्न कर दिया। चोपदार – इसमें राजकुमारी का क्या दोष? यदि पढ़ाने वाले पंडित ठीक होते तो आज यह दिन क्यों आता? कभी नहीं।

नागरिक ये जैनी लोग जगत की नीति रीति, जानते तो कुछ हैं नहीं, और यों ही बकवाद करते हैं ! जनता तो ठहरी, जिसके जो मन में आया सो बोलने लगे किन्तु मयणासुन्दरी शांत भाव से सब सुनती रहीं। इनका समय है, आज ये जी चाहे सो बोल ले।

बाप और बेटी में बहुत ज्यादा विषमवाद बढ़ चुका था। प्रधान मन्त्री महाराज ! अब सन्ध्याकाल निकट है। उद्यान में पधारने की कृपा करें।

ग्रन्थकार श्रीमान् उपाध्याय विनय विजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास की तीसरी ढाल सम्पूर्ण हुई। श्रोता एवं पाठकगण दुर्गतिदायक अभिमान से सदा दूर रहें।

## दोहा

राजा रयवाड़ी चढ्यो, सबल सैन्य परिवार।
मदमाता मयगल घणां, सहस गमें असवार ॥१॥
सुभट सिपाही सामटा, जिस्या पंचायण सिंह।
आयुध आडंबर सहित, अटल अभंग अबीह ॥२॥
वाघा केसरिया किया, रढियाला रजपूत।
मुछाला मछरायला, योध जिस्या जमदूत ॥३॥
पाखरिया पंखी परे, उडे अंबर जाम।
पंचवरण नेजा नवल, गयण चोक चित्राम ॥४॥
सरणाइ वाजे सरस, घूरे घोर निसाण।
पूर बाहिर नृप आविया, भाला जलहल भाण ॥५॥

संध्या के समय महाराज प्रजापाल बड़ी सजधज से बाहर उद्यान में घूमने निकले। उनके साथ चतुरंगिणी सेना, हजारों मदोन्मत्त हाथी, घोडे रथ पालकी, बड़े बड़े शूरवीर योद्धा सिंह-समान, अजोड़ मूंछ मरोड सेनापति, केशरिया वस्त्रों से सुसज्जित चोपदार, ढाल तलवार, बर्छी, तीर कमान, ले तड़क भड़क से चलने वाली पैदल सेना, राष्ट्रीय-ध्वज-रंगबिरंगी पताकाएं, तथा आतंककारी चोर लूटेरे, विद्रोहियों के लिए यमराज के समान चमकीले भाले वाले नवयुवक घुडसवार नगारे-शहनाइयां आदि सवारी की शोभा बढ़ा रहे थे। चारों ओर दर्शक-स्त्री पुरुषों की अपार भीड़ थी।

## ढाल-चौथी

( राग-रामचंद्र के बाग चंपो मोरी रह्यो री )

मारग सन्मुख ताम, उडे खेह घणी री ।
पूछे भूपति दृष्टि देई, मंत्री भणे री ॥१॥
कुण आवे छे एह, एवड़ा लोक घणा री ।
कहे मंत्री रहो दूर, दरिसण एह तणा री ॥२॥
ए कुष्टी सय सात, थाई एक मणा री ।
थापी राजा एक, जाने राय राणा री ॥३॥
मारग मूको जाम, नरपति दूर टले री ।
गलितांगुली तस दूत, आवी ताम मले री ॥४॥
उत्तम मारग कांई, जाये दूर तजी री ।
उज्जेणी ना राय, कीर्ति सजी री ॥५॥
निर्मुख आशा भंग, जाचक जास थयारी ।
भारभूत जग मांहि निर्गुण तेह कह्यारी ॥६॥

महाराज प्रजापाल – प्रधानजी ! देखो उधर सामने बहुत धूल उड़ रही है, चलो देखें, बात क्या है ? ये कौन चले आ रहे हैं ? मनुष्य तो बहुत अधिक मालूम होते हैं। प्रधान मंत्री – महाराज ! नहीं नहीं ! आप उस ओर न पधारें, वहां जाना उचित नहीं। देखियेगा कितनी मक्खियां भिनभिना रही हैं। बड़ी बुरी दुर्गन्ध आ रही है। ये लूले, लंगड़े, अंधे भयंकर संक्रामक रोग से पीड़ित सात सौ कुष्टी हैं। एक बालक को अपना नायक-राणा बना ये उसके पीछे चारों ओर गांव, नगर, शहरों में घूम-फिर कर अपनी आजीविका चलाते हैं। महाराज ! जल्दी करियेगा ; यहां न ठहरें। महाराज प्रजापाल उसी समय दूसरी ओर मुड़ जाते हैं, इतने में एक कुष्टी नंगे पैर नंगे सिर जिसके हाथ की अंगुलियां गल गई हैं, चपटी सी नाक, बांके पैर चिप-चिपी आंखें, मैला सा फटा कपड़ा कंधे पर डाले अपने सिर के बिखरे बालों को खुजालता हुआ प्रजापाल के सामने आ खड़ा हुआ।

पहरेदार सिपाही, उसे लाख मना करना चाहते थे किन्तु कुष्टी के हाथ पैरों से झरता पीप, दुर्बल अस्थिपंजर देह, लड़खड़ाती बोली दयनीय दशा देख करुणा से उनकी जिह्वा स्तब्ध हो गई, वे मूक से चुप-चाप खड़े देखते रहे, कुष्टी को अंदर जाने से मना न कर सके।

प्रधान मंत्री कुष्टी को राजा के समक्ष खड़ा देख बहुत कुड़-कुड़ाए, अरे! तेरा इतना साहस?

कुष्टी – हाथ जोड़ प्रणाम कर महाराज की जय हो! जय हो!! जय हो!!! दीनबन्धु ये दिन किसी को देखने को मिले। हम कौन थे और क्या हो गए। क्या कहें? कुछ कहा नहीं जाता। राजन्! हमारी तकदीर ने तो राह बदली किन्तु खेद है कि मालव देश के सुप्रसिद्ध दानवीर महाराज प्रजापाल भी हमें देख किनारा कर रहे हैं, फिर तो हो चुका......हो चुका!! वे नर इस पृथ्वी पर भारभूत हैं जो कि शक्तिमान होकर भी समय आने पर किसी का साथ नहीं देते हैं।

श्री जाचो छो वस्तु, विगते तेह भणोरी ।
राय कहे अम आज, कीरति कांई हणोरी ॥७॥
दूत कहे अम राय सघली, ऋद्धि मली रे ।
राज बट्ट पर गट्ट, कीधी अमे भली री ॥८॥
पण सुकुलिणी एक, कन्या कोई दिये री ।
तो तस राणा होये, अम एह हर्ष हिये री ॥९॥

प्रजापाल – कहो क्या बात है? निराश न हो!

कुष्टि – महराज! हमें धन-दौलत-भवन-भूमि की चाह नहीं, यह तो आप श्रीमान की अनुकंपा से सर्वत्र उपलब्ध है। हम जहां भी गये, वहां के नागरिकों ने हमें सहयोग दे, तन-मन-धन से हमारी सेवा-शुश्रूषा की, अपनी उदारता का परिचय दिया। अब तो हमें उंबर राणा के लिए एक अच्छी सुशील कुलवान कन्या की आवश्यकता है।

मन चिन्ते तव राय, मयणाने देऊँ परी री ।
जग मांही राखुं कीर्ति, अविचल एह खरी री ॥१०॥
फल पामे प्रत्यक्ष मयणां कर्म तणां री ।
साले हैड़ा मांही वयणां तेह घणांरी ॥११॥

वले रूंख धन बूंठ, दाध्यां जेह दवे री।
कवयण दाध्यां जेह न वले तेह भवे री ॥१२॥
रोष तणे वश राय, शुद्धि बुद्धि सर्व गई री।
कहे दूत तुझ राय, अम घर आणो जइ री ॥१३॥
देऊँ राजकुमारी, रूपे रंभा जिसी री।
दूत तणे मन वात, विस्मय एह वसी री ॥१४॥
किश्युं विमासे मूढ, में जे वात कही री।
न फरे जगमां तेह, अविचल सांची सही री ॥१५॥
श्री श्रीपालनो रास, चोथी ढाल कही री।
विनय कहे निर्वाण, क्रोधे सिद्धि नहीं री ॥१६॥

महाराज प्रजापाल – हां। "एक पंथ दो काज"। इन रोगियों की मांग भी पूर्ण हो जायगी और मयणा भी जीवन पर्यंत याद करेगी कि प्रत्यक्ष भौतिक सुखों को ठुकराने का भविष्य में कैसा परिणाम आता है ? अब तक मयणासुन्दरी राजमहल के रम्य स्थल, सुन्दर वस्त्रालंकार, स्वादिष्ट भोजन, क्रीड़ागण, आदि मनोरंजन के साधनों में पली है, इसे पानी मांगने पर दूध मिलता, अंगुली के संकेत पर सेवक-सेविकाएं नाचा करतीं थीं। अब कुष्ट रोगी के साथ भूमिशयन, पैदल-गमन, असमय भोजन, मैले वस्त्र, फटे चीथड़े, धर्मशाला, सराय के गन्दे बरण्डों चौतरों में वास करेगी तब नानी दादी याद आएगी। भयंकर जंगलों में भटकेगी, सर्दी, गर्मी का कटु अनुभव होगा तब छोटा सा मुंह ले, भाग कर आयगी तो मेरी ही शरण। जायगी कहां ? "पिताजी में करो झूठ गुमान" क्या यह शब्द मैं भूल सकूंगा ? कदापि नहीं। दावाग्नि से जले वन-उपवन, वृक्ष वर्षा से फल फूल सकते हैं किन्तु मर्म वचनों से जला हृदय कभी हराभरा नहीं होने का। तू मुझे सीख देने आई है, देखता हूं। प्रजापाल – तुम्हें कन्या चाहिए ? विलंब न करो, जाओ शीघ्र ही अपने स्वामी को ले आओ। मैं अपनी कन्या तुम्हारे स्वामी उंबर राणा को ब्याह दूंगा।

कुष्टरोगी (स्वगत)—ओह ! यह मैं क्या सुन रहा हूं ! क्या सचमुच ही हमारे राणा के भाग्य जागे ! कहीं मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं ! नहीं नहीं, ऐसी बात नहीं, सामने सूर्यास्त हो रहा है। कुष्टरोगी – महाराज ! क्षमा करें ! हमारे भाग्य में आपकी

लाड़िली बेटी! राजकुमारी पाने के लिए बड़े भाग्य और योग्यता चाहिए। महाराज हम तो चले! हमारी मांग तो एक साधारण सुशील कन्या के लिए थी न कि श्रीमान् की राजपुत्री! महाराज! हंसी न करियेगा। समय को मान देना पड़ता है।

प्रजापाल – चमको मत! तुम्हें आश्चर्य हो रहा है। मैं हंसी दिल्लगी नहीं करता। सदा यह स्मरण रहे कि क्षत्रियों के वचन कभी टल नहीं सकते हैं। "प्राण जाहि पर वचन न जाहि"।

ग्रंथकार श्री विनयविजय जी महाराराज कहते हैं कि श्रीपाल-रास की चौथी ढाल संपूर्ण हुई। क्रोधी मनुष्य ऋद्धि-सिद्धि से वंचित रहते हैं, अतः श्रोतागण और पाठक भी क्रोध न करें।

## दोहा

कोप कठिन भूपति हवे, आव्यो निज आवास।
सिंहासन बेठो अधिक, अति अभिमान विलास ॥१॥
मयणा ने तेडी कहे, कर्म तणो पख छोड़।
मुज पसाय मन आण जिम, पूरुं वांछित कोड़ ॥२॥
मयणा कहे दूरे तजो, ए सवि मिथ्यावाद।
सुख दुःख जे जग पामिये, ते सवि कर्म प्रसाद ॥३॥
बालक ने बनलावतां हटे चड़ावे राय।
वाद करंता बाल शुं, लघुता पामे न्याय ॥४॥
कोई कहे ए बालिका, जुओ हठीली थाय।
अवसर उचित न ओलखे, रीस चड़ावे राय ॥५॥

महाराज प्रजापाल उद्यान से वापस लौट कर सीधे राजमहल में आए और सिंहासन पर जा बैठे। वे क्रोध भरे तो थे ही, आवेश में आ द्वारपाल से कहा अरे चौबदार! जाओ, मयणासुन्दरी को शीघ्र ही ले आओ।

मयणासुन्दरी – पिताश्री प्रणाम। कैसे याद किया?

प्रजापाल – मयणा! अब तू सयानी हुई है। लड़कपन न कर, मैं ठीक कह रहा हूं। देख! तुझे जन्म भर पछताना पड़ेगा, कर्म के चक्कर में पड़ अपना जीवन नष्ट न कर। मयणा – पिताजी! कहीं जीवन भी नष्ट हुआ है, जीवन के साधन जो आज है कल नहीं।

क्या कुलीन कन्याएं यह कहेंगी कि मैं........साथ ही " विवाह करूंगी " ? मर्यादा का अतिक्रम करना सन्नारियों का धर्म नहीं। जो कि निरंकुश ही कुलटा के समान अपनी इच्छानुसार पति वरे और त्याग दे।

किसी को बनाना और बिगाड़ना मानव के हाथ की बात नहीं। भावी भाव बलवान हैं।

आज कई लड़कियाँ विवाह के बाद अपने सर पर हाथ धर बेचैन हैं, रो रो कर घर भरती हैं। पतिपत्नी का संबन्ध एक मात्र दिग्दर्शन है, दोनों के हृदय एक दूसरे से कोसों दूर हैं। वे मानसिक चिन्ताओं से संतप्त हैं। अनेक युवावस्था में विधवा हो एक कोने में बैठ सिसक रहीं हैं। इसे आप क्या कहेंगें ? यही तो भाग्य का खेल है।

पिताजी ! मेरा आपसे अनुरोध है कि आप इस जंजाल में न पड़ें कि जनता का सुखदुःख मेरी कृपा पर ही निर्भर है, यह उचित नहीं। "पिताजी म करो झूठ गुमान"

मयणासुन्दरी की निर्भय स्पष्ट बातें सुन जनता चकित हो गई।

सभासद - महाराज से क्या कहें : वृद्ध हो बच्चों से क्या वाद विवाद करना ! कोई कहते थे राजकुमारी पढ़ी है, पर गुणी नहीं। एक साधारण सी बात पर राजा को क्रोधित कर रही हैं।

## ढाल-पांचवी

(इडर आंबा आंबली रे)

राणो ऊंबर तिण समेरे, आव्यो नयरी मांहि।
सटित करण सूपड़ जिस्यो रे, छत्र करे शिर छांही
चतुर नर कर्म तणी गति जोय
कर्मे सुखदुःख होय चतुर नर, कर्मे न छूटे कोय
चतुर नर कर्म तणी गति जोय ॥१॥
श्वेतांगुली चामर धरे रे, अविगत नाम खवास।
घोर नाद घोघर स्वरे रे, अरज करे अरदास ॥२॥ चतुर नर०
वेसर असवारी करी रे, रोगी सवि परिवार।
चले बावलिए परिवर्यो रे, जिस्यो दग्ध सहकार ॥३॥ चतुर नर०

केई टूटा केई पांगला रे, केई खोड़ा केई खीण।
केई खसिया केई खासिया रे, केई दद्दुर केई दोण ॥४॥ चतुर नर०

एक मुखे माखी भणभणे रे, एक मुख पड़तो लाल।
एक तणे चांदा चगेरे, एक शिर नाठा बाल ॥५॥ चतुर नर०

उम्बर राणा का दूत कुष्ट रोगी – राणा की जय हो! जय हो!! राणा के साथियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। कुष्टरोगी दूत – अहा! हां···हां···हां··हंसकर प्रसन्न हो बोला बन गया,···बन गया! अपना काम बन गया। आज बड़े जोरदार शकुन हुए। जाते समय मेरे दाहिनी ओर घोड़ा हिन-हिनाया, सामने बड़ी जोर से नंदी (सांड) डकारा, मैंने सोचा आज अवश्य ही अपनी मनोकामना सफल होगी। आगे बढ़कर देखा तो मालवपति राज-मार्ग को छोड़ दूसरी ओर लौट रहे थे, मैं दौड़ कर सीधा महाराज प्रजापाल के पास जा पहुंचा, उनसे बात-चीत की, उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर अपने राणा को राजपुत्री देने का वचन दिया है। राणा के सभी साथी प्रसन्न हो उछलने लगे। राणा की····जय हो! जय हो!! कोढ़ी एक दूसरे से कहने लगे जल्दी करो। झट चलो। प्रजापाल की राजसभा में पहुँचना है। राणा जन्म से बड़े सुन्दर थे किन्तु संक्रामक चेपी कोढ़ रोगसे उनका सारा शरीर कुमला गया था, मैला दुपट्टा ले एक खच्चर घोड़े पर सवार हो चलते समय वे ऐसे मालूम होते थे मानों शीतकाल में ठण्ड से जले हुए बबूलों की पंक्ति में एक मुर्झाया हुआ आम का पेड़ खड़ा हो। एक लम्बे कान वाले कोढ़ी ने छत्र लिया, सफेद चट्ठे की अंगुलियां दुर्बल बाहु वाले कोढ़ी ने चंवर लिया एक। कोढ़ी ने गले में ढोलक डाली। एक बांकी कमर श्वास से पीड़ित कोढ़ी खों....खों करते हुए हाथ में बांस की छड़ी ले आगे आगे चल रहा था। राणा के पीछे लूले, लंगड़े गूँगे बहरों की फौज थी। सभी ने अपनी लड़खड़ाती जबान से धौंधाट करते हुए अपने राणा की बिरुदावली, जयघोष के साथ नगर में प्रवेश किया। कोढ़ियों के मुंह से टपकती लारें। भिनभिनाती मक्खियां, गंजे सिर देख लोगों को बड़ी दया आती थी, उज्जैन के नागरिक कहते थे देखो! कर्म की कैसी विचित्र गति है! बेचारे दम, खांसी, खाज, खुजली से बड़े व्याकुल हैं, अरे भगवान्। बापरे....बाप। मरा...रे मरा। ओ बुड़ी....ए। ओ....बाई। बुरी तरह से छटपटा रहे हैं, गत जन्मों में इन लोगों ने कैसा भयंकर पाप किया होगा? अब वे रोते हैं, पीटते हैं फिर भी शान्ति नहीं।

पांडेजी — भाई इनकी व्यथा तो मुझ से देखी नहीं जाती है। रोना आता है, देखो! बेचारों की हड्डियां निकल आई हैं, ढोल सा पेट फूल रहा है, दराद खुजालते खुजालते रक्त बहने लगा, मक्खियां घावों को नोच रही हैं, बेचारे कोढ़ी अपने सड़े गले हाथों से उन्हें भगाने की चेष्टा करते हैं किन्तु फिर भी कर्म-राजा की सेना के समान मक्खियां बारबार लौटकर उन पर टूट पड़ती हैं।

रोगों को कोई न्यौता देने नहीं जाता है, किन्तु फिर भी अनेक प्रकार के रोग बिना निमंत्रण के ही मानव को चारों ओर से आ घेरते हैं। "कर्म को किसी की शर्म नहीं" सत्पुरुषों का अभिप्राय है कि संचित शुभ-अशुभ कर्म भोगना ही पड़ते हैं।

जो जैसी करणी करे भुगते अपने आप।
करणी का फल पायगा कौन बेटा? कौन बाप?॥

जागीरदार — हाँ! वजन को तो आपस में एक दूसरा ले भी सकता है, किन्तु पूर्वसंचित, अपने बांधे हुए कर्मों में बटवारा कैसे हो सकता है?

चहुटा मांहे चालतां रे, सोर करे सय सात।
लोक लाख जोवा मल्यां रे, एह किश्यो उत्पात ॥६॥ चतुर नर०
ढोर धसे कुतर भसे रे, धिक धिक कहे मुख वाच।
जन पूछे तमे कोण छो रे, भूत के प्रेत पिशाच ॥७॥ चतुर नर०
कहे रोगी तुम राय नी रे, पुत्री रूप निधान।
ते अम राणो परणशे रे, एह जाए तस जान ॥८॥ चतुर नर०
नगर लोक साथे थया रे, कौतुक जोवा काज।
उम्बर राणो आवियो रे, जहां बेठा महाराज ॥९॥ चतुर नर०

उम्बर राणा (श्रीपाल)की सवारी नगर के द्वार पर पहुंचते ही, चारों ओर से कुत्ते भौंकने लगे, कोढ़ियों का कोलाहल सुन, पशु गाय, बैल, घोड़े आदि भड़कने लगे, कोढ़ी लोगों की डरावनी सूरत देख मारे भय के छोटे छोटे बच्चे दूर दूर भाग, अपने साथियोंसे कहते थे भागो···भागो···बा···बा आया, खिल-खिले लड़के लड़कियां पी···पी···फुर्र पी···पी फुर्र कर कोढ़ियों को चिढ़ाते, उन पर धूल फेंक कर भाग जाते थे, नर-नारियां कोढ़ी जन के

विकृत शरीर को देख नाक-भौं सिकुड़ते, नाक के आगे कपड़ा लगा कहते बड़ी दुर्गन्ध आ रही है, ये यहाँ कहाँ से आ टपके। कोई कहता छी....छी....छी कैसे हैं, सारा शरीर फूट रहा है, मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। क्या महामारी मूर्त रूप धारण कर आई है? ये कंकाल भूत प्रेत तो नहीं आ घुसे! मारो मारो भगाओ इनको, ये रोग फैलाएंगे! चलो अलग हटो। एक सेठजी – भाई कंकर पत्थर मत फेंको. ये बेचारे भूत, प्रेत, ईश्वर नहीं हैं, हमने शास्त्र में सुना है कि भूत प्रेतादि देवों के पैर ज़मीन से नहीं छूते, देव आंख नहीं टिमटिमाते, देव को पसीना नहीं होता, देव के गले की माला कभी नहीं कुमलाती है। ये लोग विपद् के मारे दुःखी हैं। ज़रा शान्ति रखो, किसी को दुत्कारो मत, इनसे पूछो तुम कौन हो! कहां से आए? आने का प्रयोजन क्या है? देखो! इनके पैर धरती पर टिके हैं, इनके शरीर से कोढ़ झर रहा है, मरे को क्या मारना? ये लोग आपसे कुछ मांगते हैं! नहीं, तो फिर व्यर्थ ही किसी को क्यों सताना।

नागरिकों ने उन्हें रोक कर पूछा। आपकी सवारी कहां जा रही है? कोढ़ी-जन के मुखिया ने आगे बढ़ कर बड़ी शान्ति और नम्रता से प्रणाम कर – महानुभावो! इन बच्चों और नागरिकों को बड़ा कष्ट हुआ। हम भूत नहीं! प्रेत नहीं। चोर लुटेरे नहीं! हम हैं कर्म– राजा के बंदी। हाय! हाय!! हमने भवान्तर में महान् पाप किया है! पूर्व जन्म में किसी को सताया होगा, किसी का अपमान किया होगा, किसी पर झूठा आरोप लगा उसे कलंकित किया होगा, किसी की कमाई में विघ्न किया होगा, किसी के भोग आदि खान-पान, पढ़ने लिखने में धर्म-ध्यान में अंतराय की होगी, किसी के बच्चे का उसके मां-बाप से वियोग कराया होगा, पशु-पंखी को पिंजरे में बाड़े में बंद कर कष्ट दिया होगा, विश्वासघात कर किसी को डुबाया होगा, उसीका यह प्रत्यक्ष फल भोग रहे हैं। भगवान्! भगवान्!! हमारी सी दुर्दशा किसी ओर की न हो! चतुर मनुष्यों को चाहिए कि वे कर्मबंधन के कारणों से सदा सावधान रहे। कोढ़ी सरदार की करुण कथा सुन नागरिक-जन का हृदय भर आया। वे अपने नगरनिवासियों की निर्विवेकता पर बहुत लज्जित हुए। आपने कैसे कृपा की? कोढ़ी सरदार – हम उम्बर राणा को ब्याहने आए हैं। कुछ लोगों ने कोढ़ी सरदार की बात पर विश्वास न कर कहा, सरदारजी! अच्छा, राणा की बरात कहां ठहरेगी? कोढ़ी सरदार – महाराजा प्रजापाल की राज-सभा में। सभी नागरिकों ने एक साथ – वाह साहब वाह! आपने ब्याईजी तो ठीक ढूंढे! क्या बात कहना! असंभव बात सुन लोगों को बहुत आश्चर्य हुआ। घर घर यही चर्चा होने लगी। कई लोग कोढ़ी सरदार को संबोधन कर कहते थे, भाई जल्दी करो, कहीं राणा के लग्न चूक न जाय।

अनोखा दृश्य, विचित्र बातें सहज ही जनता को अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं। राणा के विवाह की बात सुन हजारों लाखों स्त्री-पुरुष रोगियों के साथ चल पड़े। राजमहल के द्वार पर राणा की जय हो! जय हो!! जयघोष से सारा अकाश गुंज उठा।

मयणा ने भूपति कहे रे, ए आव्यो तुम नाह!
सुख संपूरण अनुभवो रे, कर्मे कर्यो विवाह ॥१०॥ चतुर नर०
मयणा मुख नवि पालटे रे, अंश न आणे खेद।
ज्ञानी नुं दीठुं हुवे रे, तिहां नहीं किश्यो विभेद ॥११॥ चतुर नर०
जेह पिताए पांत्र नी रे, साखे दीधा कंत।
देव परे आराधवो रे, उत्तम मन ए खंत ॥१२॥ चतुर नर०
करि प्रणाम निज तात ने रे, वयण विमल मुख रंग।
आवी ने ऊभी रही रे, उंबर ने वामांग ॥१३॥ चतुर नर०

प्रजापाल ने अंगुली से संकेत कर कहा—मयणा, ये राणा तुम्हारे स्वामी हैं, अब इनके साथ तू ठीक तरह से अपने भाग्य को परख ले।

मयणा ने मुस्करा कर कहा—पिताजी, माता पिता पंचों की साक्षी से अपनी कन्या को श्रीमन्त या निर्धन के घर जहां भी मन चाहे दें दे, कुलीन बालाओं का कर्तव्य है कि वे प्रसन्न मन हो जन्म भर अपने पति की सेवा करें, सन्नारियों के लिये पति ही परमेश्वर है।

उसी समय मयणासुन्दरी ने राणा का कर स्पर्श कर, प्रजापाल से हंस कर कहा, पिताजी, प्रणाम। श्री सर्वज्ञ देव ने अपने ज्ञान में जो देखा है वही होकर रहेगा। इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं।

जनता—अरे रे....रे सचमुच यह तो राजा का जमाई बन गया। भगवान भगवान् यह अनमेल संबन्ध कैसा? देखो! इसके भी भाग्य हैं।

तव उम्बर एणी परे भणे रे, अनुचित ए भूपाल।
न घटे कंठे काग ने रे, मुक्ता फला नी माल ॥१४॥ चतुर नर०
राय कहे कन्या तणो रे, कर्मे ए बल कीध।
घणुं कह्युं में एह ने रे, दोष न को में लीध ॥१५॥ चतुर नर०

रोगी स्लीआयत थया रे, देखी कन्या पास।
परमेसर पूरण करी रे, आज अमारी आश ॥१६॥ चतुर नर०
सुगुण रास श्रीपाल नो रे, तेहनी पांचमी ढाल।
विनय कहे श्रोता घरे रे, होजो मंगल माल ॥१७॥ चतुर नर०

राजकुमारी को राणा से सगाई करते देख कोढ़ी लोग फूले न समाए, वे प्रसन्न हो सभी एक स्वर से "राणा की जय हो। राजमाता की जय हो! जय हो!!" अपनी मूछों पर ताव दे एक दूसरे से कहने लगे–वाह रे हम! बस क्या कहना! गढ़ जीते, आस फली।

राणा – राजन्! यह क्या? राजदुलारी मेरे साथ? आप कुछ तो विचार करें, भविष्य में इसका क्या होगा। काग के गले मोती की माला? जगत का इतिहास आप को क्या कहेगा? यह तो एक नादान कन्या है, किन्तु आप तो महाराजाधिराज हैं।

प्रजापाल–आप मुझे दोष न दें। इस बाई के कुछ भाग्य ही ऐसे हैं। यह अपने विचारों से टस से मस होना नहीं चाहतीं। आप तो इसे सहर्ष ले पधारें।

श्रीमान् विनय विजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल रास की पांचवीं ढाल सम्पूर्ण हुई। श्रोतागण और पाठकों के घर सदा आनंद मंगल होवे। यही शुभकामना।

## दोहा

कोई कहे धिक राय नो, एवडो रोष अगाध।
कोई कहे कन्या तणो, ए सगलो अपराध ॥१॥
उतारे आव्या सहु, सुणतां इम जन वात।
अनुचित देखी आथम्यो, रवि प्रगटी तव रात ॥२॥
यथा शक्ति उत्सव करी, परणावी ते नार।
मयणा ने उम्बर मली, बेठां भुवन मझार ॥३॥

राजकुमारी मयणासुन्दरी के संबन्ध से नगर में चारों और सनसनी फैल गई। किसी ने कन्या को भला-बुरा कहा, तो किसी ने प्रजापाल को। अरे! माना, लड़की में छिछोरापन था, पर महाराज तो समझदार थे। बच्चों पर इतना रोष। इस अनुचित व्यवहार से सूर्य देव भी खिन्न हो अस्ताचल की ओर प्रयाण कर गए।

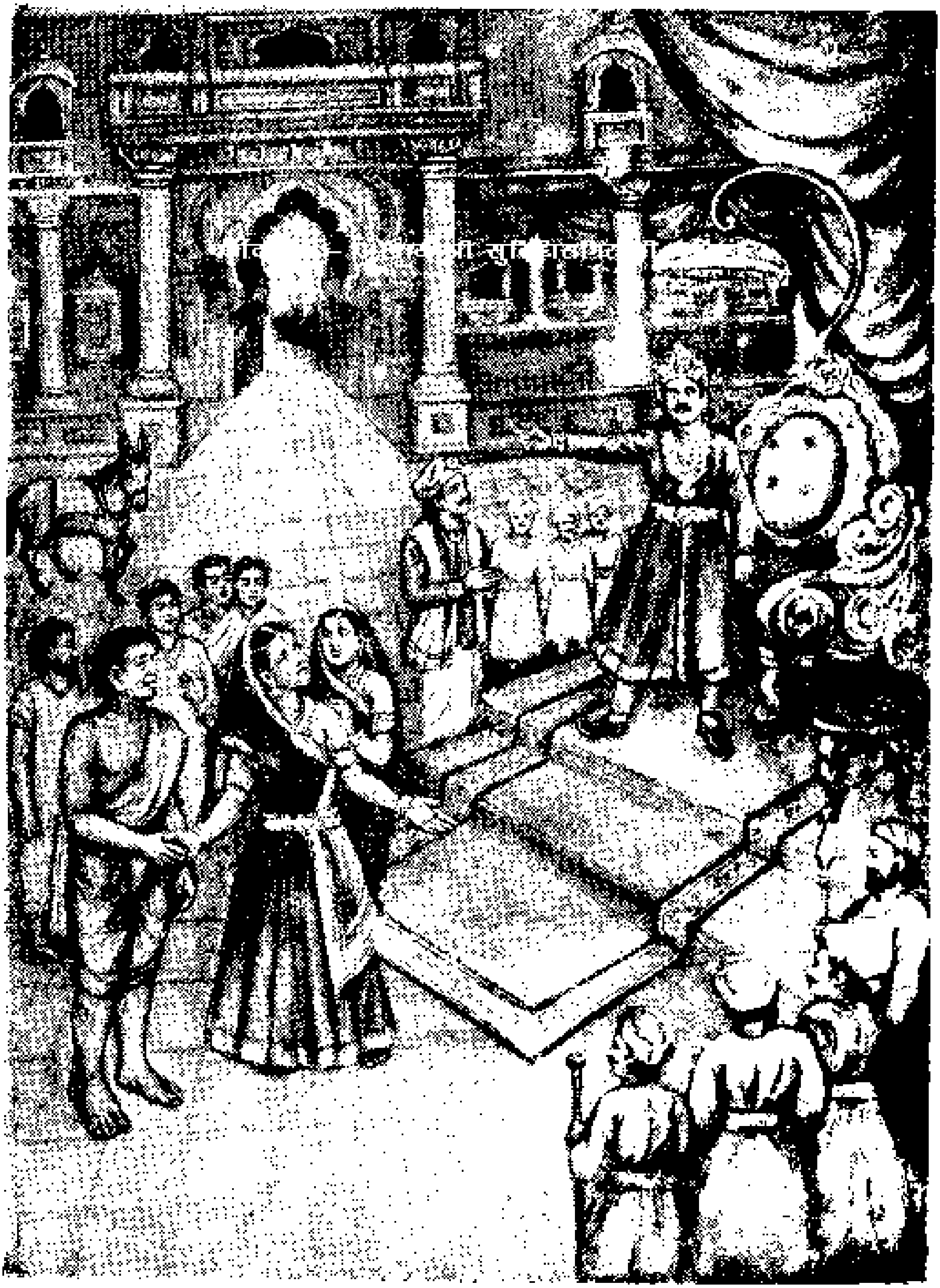

सम्राट् प्रजापाल को आवेश में देख राजकुमारी मयणासुन्दरी ने मुस्कराते हुए कहा। पिताश्री। कन्या कहाँ ! देना ? यह तो उसके माता-पिता की इच्छा पर ही निर्भर है किन्तु उसका भविष्य उसके हाथ नहीं।

रूपसुन्दरी – मयणा ! आज तू पराई बन हमें छोड़ चली। अपनी प्यारी बेटी की विदा में रानी की आँखें प्रेम के मोती बिखेर कर रह गईं। चारों ओर अंधेरा छा गया।

कुष्टी लोग अब क्यों सुनने लगे, वे तो अपना काम पटा सीधे अपने स्थान पर आ पहुँचे। पश्चात् बड़े रंग ढंग से रात्रा की सम्बन्धविधि संपन्न की। वर वधू के मिलन का यह प्रथम अवसर था। मयणासुन्दरी पतिसेवा के लिये उत्सुक थीं।

## ढाल-छठी

(तर्ज - कोईक पर्वत धुंधलो रे लो)

उंबर मन मां चिंतवे रे लो, धिक् धिक् मुज अवतार रे छबीली।
मुज संगत थी विणसशे रे लो, एहवी अद्भूत नार रे रंगीली ॥१॥
सुन्दरी हजिय विमासजो रे लो, ऊँडो करो आलोच रे छबीली।
काज विचारी कीजिये रे लो, जिम न पड़े फरी सोच रे रंगीली ॥२॥
सुन्दरी हजिय विमासजो रे लो।
मुज संगे तुज विणसशे रे लो, सोवन सरखी देह रे छबीली।
तू रूपे रंभा जिसी रे लो, कोढ़ी थी श्यो नेह रे रंगीली ॥३॥ सुं०
लाज इहाँ मन नाणिये रे लो, लाजे विणशे काज रे छबीली।
निज माता चरणे जई रे लो, सुन्दर वर राज रे रंगीली ॥४॥ सुं०

## दाम्पत्य जीवनः–

अगर यह कहा जाय कि सांसारिक सुख का आधा भाग दाम्पत्यसुख है और आधे में बाकी सब, तो यह अतिशयोक्ति न होगी। परन्तु जिस दाम्पत्य की इतनी महिमा है उसका ठीक उपयोग करने के लिये बड़ी चतुराई, विवेक, संयम, और भाग्य की आवश्यकता है। थोड़ी-सी भी गलती दाम्पत्य के सब सुखों पर पानी फेर सकती है, जीवन को नरक बना देती है। ऐसे समय पर बड़ी सावधानी से रहना आवश्यक है।

जिस प्रकार दाम्पत्य की छोटी छोटी प्रेमभीनी बातें हृदय में गुदगुदी पैदा कर असीम आनंद से दिल को हराभरा कर देती हैं उसी प्रकार छोटी छोटी स्वार्थ या द्वेष भरी बातें भी जीवन के आनन्द को किरकिरा कर डालती हैं।

राणा कुछ चिन्तित थे, उनके मुंह से लारें हाथ-पैरों से रक्त और पीप की बूंदें टपकती देख मयणासुन्दरी ने कपड़े से उसे साफ करने को हाथ लम्बा किया कि तुरन्त ही राणा ने कहा – राजकुमारी ठहरो! ठहरो!! जल्दी न करो। तुम बुरी तरह से ठगी जा रही हो। तुम्हारे पिता ने तुम्हारे साथ घोर अन्याय किया है। दाम्पत्य जीवन हंसीखेल नहीं, यह एक जीवन का सौदा है। तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलना इतना कठिन नहीं जितना कि दाम्पत्य जीवन। आवेश में आ अपना जीवन नष्ट न करो। ठीक तरह से सोच विचार कर आगे कदम बढ़ाओ। क्षणिक भूल लज्जा भविष्य में चिन्ता का पिटारा बन जायगी। अब भी समय है।

मुझे तुम्हारी कंचन सी काया, चान्द सा मुख, कोयल सा मधुर कंठ, मृग नयन, विनम्र स्वभाव, भोलेपन पर बड़ा तरस आता है। यह प्रत्यक्ष है कि मेरे संसर्ग से तुम्हारा रूप-रंग–सौन्दर्य शीघ्र ही मुर्झा जायगा। तुम असह्य वेदना की शिकार बन पछताओगी, एक कोढ़ी के साथ सुकमाल राजदुलारी का संबन्ध कैसे निभ सकेगा? रंगीली मयणा!

भला के बुरा कुछ काम कीजे, किन्तु पूर्वापर सोच लीजे।
बिना विचारे यदि कार्य होगा, कभी न अच्छा परिणाम होगा॥

तुम शीघ्र ही लौट जाओ। ममतामयी मां का हृदय तुम्हें कभी छेद नहीं देगा। वह तुम्हें गले लगा उचित व्यवस्था करेगी। इसी में तुम्हारा भला है। मेरी गत जन्मों की भूलों का यही प्रत्यक्ष फल तुम्हारे सामने है। मैं अपने स्वार्थ के लिए तुम्हारे जीवन को कुचलना नहीं चाहता। अब तक तुम्हारा जीवन राजमहल में बीता है। देखो यहां :–

न कोमल स्वच्छ सैया है, न टिकने का ठिकाना है।
न सेवक है न दासी है, न दाना है न खाना है॥
न साधन है न शासन है, न आना है न जाना है।
न हाथी है न घोड़े हैं, न पैसा अब खजाना है॥

मयणा तस वयणा सुणी रे लो, हियडे दुःख न मायरे वालेसर।
ढलक ढलक आंसू पड़े रे लो, विनवे प्रणमी पाय रे वालेसर॥५॥ व०
वचन विचारी उच्चरो रे लो, तुम छो चतुर सुजाण रे वालेसर।
एह वचन केम बोलिये रे लो, एणे वचने जीव जाय रे वालेसर॥६॥ व०

जीव जीवन तुम वालहा रे लो, अवर न नाम खमाय रे वालेसर।
पश्चिम रवि नवि उगमे रे लो, जलधि न लोपे सीम रे वालेसर।
सती अवर इच्छे नहीं रे लो, जां जीवे तां सीमरे वालेसर ॥७॥ व०

राणा के स्पष्ट शब्दों से मयणासुन्दरी के हृदय को बड़ा आघात पहुँचा। उसकी आंखों से टप टप आंसू बहने लगे। किन्तु उसी क्षण उसे एक नई चेतना मिली, उसके हृदय ने कहा -

जगत् के इतिहास में स्त्रियों के लिये कितने युद्ध छिड़, रक्त की नदियां बहीं। छल कपट के नाटक खेले गए। आज भी आए दिन काम-वासना की तृप्ति के लिए नर पिशाच मानव क्या नहीं करते ?

राणा ! आप धन्य हैं ! आप स्वार्थी कामी कीट नहीं किन्तु नारी हृदय की गतिविधि के मर्मज्ञ एक आदर्श मानव हैं। आपकी निस्पृह उदार भावना पर मेरा यह जीवनधन निछावर है। मैं आपके चरणकमलों की दासी हूं।

लिया है आप को वर मैंने, तुम्ही अब प्राण प्यारे हो।
आपही आराध्य हो मेरे, न म इस मन से न्यारे हो ॥
आप प्राणेश मेरे हैं, आपको सिर झुकाऊँगी।
बजा कर हृदय की तन्त्री, आपके गुण गान गाऊँगी ॥

प्राणनाथ ! आपका संकेत इस दासी को अपनी मां की शरण जाने का है। यह एक बड़ी बुरी खटकने वाली बात है। हृदय विदीर्ण हुए जाता है।

पतिसेवा से मन चुरा कर जगत् के भौतिक पदार्थों की चटकमटक पर ललचाना, स्वच्छंद आचारण करना सन्नारियों के लिये एक महान् अपराध है। कलंक है।

विश्व की सब शक्तियां, कर्तव्य से मुंह मोड़ लें।
प्रकृति की ऋतुएं सभी अपने नियम को छोड़ दें ॥
फिर भी पति को छोड़ सती किसी और को भज सकती नहीं।
प्राण तज सकती है पर, पति का संग तज सकती नहीं ॥

प्राणनाथ ! आर्य ललनाएं पति की सेवा में रह दुःख को भी सुख ही मानती हैं। सुखदु ख वस्तु में नहीं, मान्यता में है।

मानव एक श्रीमन्त की मोटर, लाखों का भव्य भवन, देख, हीरे की अंगुठी, उसकी सुन्दर वेशभूषा चटकमटक देख कर अपने भाग्य को कोसता है। किन्तु

उसे पता नहीं कि सेठ का क्या हाल है! बाह्य जड़ पदार्थों में सुख की कल्पना महान् भूल है।

यदि सेठ साहबसे एकान्त में बैठकर पूछा जाय कि श्रीमान्‌जी! हृदय से सच कहो, आप सुखी हैं? रात को नींद आती है? भोजन स्वादिष्ट लगता है? बच्चों का रमत, गम्मत मनोविनोद के साधनों से शान्ति तो है? उत्तर में क्या पायेंगे? "ना····रे····ना, दिल का बाव दिल ही जाने" मत पूछो बात।

प्राणेश! यह आपकी उदारता है कि आप मेरी भलाई का इतना ध्यान रखते हैं। अब मैं राजकुमारी नहीं, आपके चरणों की दासी हूं।

पश्चिम में सूर्योदय होना, समुद्र का सीमा अतिक्रम करना असंभव है। उसी प्रकार कुलीन कन्याएं पति के चरणों में एक बार जीवन अर्पण कर अन्य वर की कामना नहीं करती हैं।

कौन से हैं कार्य जिसको स्त्रियां करती नहीं।
कौन सी है विपदा ऐसी जिसको स्त्रियां सहती नहीं॥
विश्व में सीता सती की, कीर्ति अब भी व्याप्त है।
मान आशातीत जिन से हिन्दुओं को प्राप्त है॥

राणा — धन्य है मयणा! तुम्हारे पतिव्रत धर्म को धन्य है! तुम्हारी विद्या, रूप-गुण और विनीत नम्र स्वभाव को धन्य है। अच्छा अब मैं तुम्हें अपना हृदय अर्पण करता हूं।

जिस देश में जिस भूमि में, तुम सी सती हों नारियां।
उस देश का उस भूमि का, निश्चित ही उद्धार है॥
जिस देश म हों गुण भरी, शिक्षित सुशील नारियां।
उस देश के दुःख दूर हैं, सुख का वही संसार है॥

राणा—प्रिये! तुम सती साध्वी हो, तुम पूजनीय देवी हो। अब मेरे दुर्दिनों का अन्त निश्चित है। दोनों पतिपत्नी आमोद-प्रमोद की बातें कर निद्रादेवी की गोद में लेट गए।

उदयाचल ऊपर चढयो रे लो, भानु रवि परभात रे वालेसर।
मयणा मुख जोता भणी रे लो, शील अचल अवदात रे वालेसर ॥८॥

चक्रवाक दुःख चूरतो रे लो, करतो कमल विकास रे वालेसर।
जगत लोचन जब ऊगियो रे लो, प्रसर्यो पुहवी प्रकाशरे वालेसर॥९॥

सुनहले बादलों में वियोगी पक्षियों को सुखद, कमल-वन को विकसित करते हुए उदीयमान सूर्य का दृश्य बड़ा सुन्दर था—मानों सूर्यदेव भूमि पर प्रकाश फैलाने के बहाने ही झांक झांक कर सती साध्वी पतिव्रत-परायणा मयणासुंदरी के मुखारविन्द के दर्शन करना चाहते हों।

आवो देव जुहारवा रे लो, ऋषभ देव प्रासाद रे वालेसर।
आदीश्वर मुख देखतां रे लो, नासे दुःख विषवाद रे वालेसर॥१०॥
मयणा वयणे आवियो रे लो, उम्बर जिन प्रासाद रे जिनेसर।
तिहुअण नायक तू बड़ो रे लो, तुम सम अवर न कोय रे जिनेसर॥११॥
मयणांए जिन पूजिया रे लो, केशर चंदन कपूर रे जिनेसर।
लाखीणों कंठे ठव्यो रे लो, टोडर परिमल पूर रे जिनेसर ति०॥१२॥
चैत्यवंदन करी भावना रे लो, भावे करी काउसग्ग रे जिनेसर।
जय जय जग चिंतामणि रे लो, दायक शिवपुर मग्ग रे जिनेसर ति०॥१३॥

मयणासुन्दरी – प्राणनाथ! सूर्योदय हुआ, मंदिर पधारें। राणा – जिन दर्शन का फल क्या है? प्राणनाथ! दर्शन की इच्छा करने से एक उपवास, खड़े होने से दो, चलने से तीन, चलते समय मार्ग में श्री वीतराग के गुणों के चिंतन से चार, मंदिर में प्रवेश करने से पांच, देवाधिदेव जिनेन्द्र भगवान के दर्शन होते ही निसीहि णमो जिणाणं कहने से पंद्रह, और सविधि चैत्यवंदन करने से तीस उपवास का लाभ होता है।

पद्म चरित्र में:- जिन मंदिर में प्रवेश करने से छः मास, दर्शन से बारह मास, पूजन से एक हजार वर्ष उपवास का लाभ तथा जिनेन्द्र भगवान के गुणगान से अनंत गुणे फल की प्राप्ति होती है।

राणा – जिन दर्शन की विधि क्या है ?

मयणासुन्दरी – प्राणनाथ ! जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करते समय दश त्रिक* और पांच अभिगम का लक्ष्य रखना आवश्यक है।

पूजन का थाल ले नवदम्पती ने निसीहिणमो जिणाणं कह कर मंदिर में प्रवेश किया। शांत मूर्ति श्रीऋषभदेव स्वामी के दर्शन कर राणा का हृदय प्रफुल्लित हो उठा, वे हाथ जोड़ मयणासुंदरी के साथ देवाधिदेव की स्तुति करने लगे।

झल हल ज्योति स्वरूप हो, केवल कृपा निधान।
चरण शरण आए प्रभो, भय भंजन भगवान ॥१॥
अविनाशी अरिहंत तू, तव उपकार महान्।
क्लेशहरण चिंता चूरण, भय भंजन भगवान ॥२॥
क्षण क्षण मम अधीरता, हृदय भरा अभिमान।
इन से मुक्ति दो हमें, भय भंजन भगवान ॥३॥
आधि व्याधि उपाधि है, काम क्रोध बलवान।
दयानिधि करुणा करो भय भंजन भगवान ॥४॥
हर आलस दरिद्रता, हरो तिमिर अज्ञान।
सम्यग्दर्शन पाएं हम, भय भंजन भगवान ॥५॥

मयणासुन्दरी – प्राणनाथ ! आप रोगग्रस्त हैं अतः पूजन तो हो न सकेगी। कृपया आप सभा मण्डप में बैठ ध्यान करें। मैं श्री जिनेन्द्र देव की अष्ट प्रकारी पूजन कर लूं।

मयणासुन्दरी ने सविधि अष्ट प्रकारी पूजन कर एक सुन्दर सुगन्धित फूलों का हार भगवान के गले में पहना कर हाथ में गुल-दस्ता चढ़ाया। पश्चात् वापस लौट कर सभा मण्डप में बैठ दोनों पति-पत्नी ने जगचिंतामणी आदि चैत्यवंदन विधि की।

---

* दस त्रिकः–

(१) तीन बार निसीहि कहना। (२) तीन बार प्रदक्षिणा (३) तीन खमासमणा देना (४) त्रिकाल पूजन (५) छद्मस्त, केवली, और सिद्ध इन तीनों अवस्थाओं का क्रमशः चिंतन करना (६) दिशा त्रिक इधर उधर न देखें दर्शन करते समय सिर्फ भगवान के सामने ही अपनी दृष्टि रखना। (७) तीन बार भूमि प्रमार्जन करना (८) विधि सूत्रों का अर्थ समझ कर शुद्ध उच्चारण

इह भव पर भव तुज विना रे लो, अवर न को आधार रे जिनेसर।
दुःख दोहग दूरे करो रे लो, अम सेवक साधार रे जिनेसर ति० ॥१४॥
कुसुम माल निज कंठ थी रे लो, हाथ तणुं फल दीधरे जिनेसर।
प्रभु पसाय सहु देखतां रे लो, उंबर ए बेउ लीध रे जिनेसर ति० ॥१५॥
मयणा काउसग्ग पारियो रे लो, हियड़े हर्ष न माय रे जिनेसर।
ए सही शासन देवता रे लो, कीधो अम सुपसाय रे जिनेसर ति० ॥१६॥
सुगुण रास श्री पाल नो रे लो, तिहां ए छट्ठी ढाल रे जिनेसर।
विनय कहे श्रोता घरे रे लो, हो जो मंगल माल रे जिनेसर ति०॥१७॥

मयणासुन्दरी ने अपने पतिदेव के साथ चैत्यवंदन विधि कर काउसग्ग ध्यान में प्रार्थना की—हे प्रभो! आप हम पर ऐसी कृपा करें कि हमारा चंचल मन अनेक संकल्प विकल्प की भूल-भुलैया में न भटक कर सदैव आप के प्रेमरस का पान करता रहे।

परम कृपालु! काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, शारीरिक रोग और चिंता आदि विकार हमारे निकट न आने पाएं। भवोभव में हमें एक मात्र आप का ही सहारा है। पतिदेव को आरोग्यता, पूर्ण शान्ति और विशुद्ध सम्यक्त्व की प्राप्ति हो।

प्रार्थना में अनंत बल अतुल शक्ति है, करने वाला चाहिये। सच्चे हृदय से की हुई प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती। जब तक हम उस शक्ति को नहीं पहचानते तब तक हमारा जीवन निरस और शून्य है। ठीक उसी तरह जैसे फूल तब तक हमारे लिये बेकार है, जब तक हम उसकी सुन्दरता और सुगन्ध का आनन्द नहीं जान पाते। थाली में स्वादिष्ट भोजन रखा है, यदि जीमने वाला न हो तो इस में भोजन का क्या दोष?

करना तथा सूत्र और (९) योग मुद्रा से नमुत्थुणं, जावंति चे०, जावंत केवि० और जयवीयराय बोलना। (१०) जावंत चेई० जावंत केवि० और जयवियराय इन तीनों का नाम प्रणिधान सूत्र है।

## पांच अभिगमः—

(१) सचित्त फल फूलादि का त्याग, (२) अचित्त ढाल, तलवार, चंवर छत्र बहु मूल्य नगदरकम मंदिर उपाश्रय में जाते समय साथ न रखना (३) मन, वचन और काया को स्थिर रखना। (४) उत्तरासन से भूमि प्रमार्जन कर श्री देव, गुरु को वंदन करना। (५) वीतराग देव को देख निसीहि णमो जिणाणं और उपाश्रय में प्रवेश करते ही उच्च स्वर से निसीहि णमो खमासमणाणं कहना।

मानव में सब से बड़ी भूल यह है कि वह कई बार अच्छे काम को हंसी मजाक या कल परसों पर टाल देता है। इसी तरह उस की सारी आयु बरबाद हो जाती है, किन्तु कल परसों कभी नहीं आता।

मयणा की प्रार्थना में बल था, शक्ति थी, हृदय की खरी पुकार थी। उसी समय देवाधिदेव के गले हार, हाथ का गुलदस्ता अदृश्य रूप से निकल कर राणा के पास जा पहुंचे। कई लोगों ने यह दृश्य अपनी आँखों से देखा। मयणासुन्दरी ने णमो अरिहंताणं बोल कर काउसग्ग पारा। वह समझ गई कि यह किसी देव का संकेत है। उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। वह आनंदविभोर हो गई। अब उसकी आत्मा में पूर्ण विश्वास हो गया कि आज से राणा निश्चत ही जनता के गले के हार लोक-प्रिय बन कर रहेंगे। इनके धवल यश की सुगन्ध दसों दिशाओं में फैले बिना न रहेगी।

श्रीमान् विनयविजय जी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल रास की छठी ढाल सम्पूर्ण हुइ गुणज्ञ श्रोता और पाठकों के घर सदा आनंद मंगल होवे।

## दोहा

पासे पोषह शाल मां, बेठा गुरु गुणवंत।
कहे मयणा दिये देशना, आवो सुणिये कंत ॥१॥
नर नारी बेउ जणा, आव्या गुरु ने पाय।
विधि पूर्वक वंदन करी, बेठा बेसण ठाय ॥२॥
धर्मलाभ देई धुरे, आणी धर्म सनेह।
योग्य जीव जाणी हवे धर्म कहे गुरु तेह ॥३॥

मयणासुन्दरी – प्राणनाथ ! यहां पास ही उपाश्रय में पूज्य गुरुदेव विराजते हैं। दर्शन का लाभ लें। दोनों पति-पत्नी ने निसीहि णमो खमासमणाणं कह उपाश्रय में प्रवेश किया। गुरुदेव – धर्मलाभ। सविधि वंदन कर वे उचित स्थान देख बेठ गए। गुरुवर ने धर्म देशना आरम्भ की।

# ढाल सातवीं

(तर्ज - बाल म काढो हो व्रत तणी)

ममता एह संसार मां, दुलहो नर भव लाधो रे।
छांडी नींद प्रमाद नी, आप सवारथ साधो रे ॥
चेतन चेतो रे चेतना, आणि चित्त मझार रे ॥१॥ चेतन०
सामग्री सवि धर्म नी, आले जे नर खोई रे।
माखी नी परे हाथ ते, घसतां आप विगोई रे ॥२॥ चेतन०
जान लई बहु जुगति शुं, जेम कोई परणवा जाय रे।
लगन वेला गई ऊँघ मां, पछी घणुं पस्ताय रे ॥३॥ चेतन०

जिंदगी थोड़ी है, समय उससे भी कम। जैसे जैसे समय बीतता है, वैसे वैसे हम मृत्यु के निकट पहुँचते जाते हैं। आँखें खोल कर श्मशान की तरफ जाते हुए मुरदों की तरफ देखो और सोचो कि एक दिन हमारी भी यही हालत होगी। फिर क्यों न हम अनंत भव भटकने के बाद प्राप्त अति दुर्लभ अनमोल मानव भव को सफल बना लें।

क्या आप सुदेव सुगुरु और श्री सर्वज्ञ देव प्रणित सुधर्म का सुयोग पाकर उसे यों ही गँवा देंगे? मक्खी सड़े गले मैले-कुचेले गंदे पदार्थों में लुभा, पंख फड़फड़ा हाथ मल मल कर अपने प्राण गँवा देती है। उसी प्रकार आप भी विषयवासना के कीट बन भोगोपभोग में उलझने से ही जीवन बरबाद कर हाथ मलते रह जायेंगे?

आँखें बन्द कर लो। अपने हृदय पर हाथ धरो और धड़कते दिल से पूछो कि यदि मैं मनुष्य हूं, संसार के सर्व प्राणियों से श्रेष्ठ हूं तो मेरे जीवन धारण करने का क्या रहस्य है? मैं इस संसार में क्यों आया हूं?

यदि कुछ है पास में तो उस का सदुपयोग करो। शोषणवृत्ति को तिलाञ्जली दे दो। आज तुम्हारे सैकड़ों भाई बहिन, स्त्री पुरुष बिल-बिला रहे हैं। वे विचारे मारे लज्जा के अपना हाथ किसी के सामने पसारना नहीं चाहते, वे अपने हृदय की ठण्डी आह किसी दूसरे को जताना नहीं चाहते, वे भीखमंगे दंभी नहीं, वे हैं आप के स्वधर्मी बन्धु आप उनके घरों में जाइये, उन्हें आश्वासन दे उनके दुःखदर्द की कहानी सुनिये, उनसे पूछिये कि आपके बच्चों का क्या हाल है? उनकी शिक्षा का क्या प्रबंध है? आपकी आय – व्यय क्या है? आप बेकार

तो नहीं हैं? आपको रहने को स्थान है या नहीं? तुम्हारे बच्चों में धार्मिक संस्कार कितने पनपे? वे धर्म के काम में, समाजसेवा में हिचकिचाते तो नहीं हैं? वे अपना सर्वस्व होमने को तैयार हैं? वीतराग के उपासकों में वीतरागता की कितनी झलक है? इतना कार्य आपने किया हो तब तो आपका जीवन सार्थक है। अन्यथा धान्य के कीट धनेरिये में और आप में कोई अंतर है?

सच कहो, अपनी अंतर आत्मा से पूछो, आप इतने बड़े हो गए, सफेदी आ गई आपने कितने स्वधर्मी बन्धुओं की सुध ली? आप हमेशा कितने घर घूमते हैं? आप के प्रयत्न से, आपकी प्रेरणा से कितने मानवों का भला हुआ? कितने ऊपर उठे? असहाय की सहाय करना महान् सेवा है। आप पर्व तिथि को पौषध करते हैं? सज्झाय की पवित्र पंक्तियां आपको क्या संदेश देती हैं?

**"परोवयारो, साहम्मिआण वच्छल्लं, करण दमो,**
**चरण परिणामो, संघोवरी बहुमाणो, पुत्थयलिहणं"**

कहिये ये पंक्तियां आप के होटों तक ही सीमित हैं? या कुछ कार्य रूप में भी उपयोग में आई? कहो किस भव में? किस जन्म में कार्यान्वित होंगी? या ये सारी भावनाएं आपके मन की मन में रह जाएंगी? हां! आप बात बनाने में बड़े निपुण हैं।

आप यही कहेंगे कि हमारी शक्ति नहीं! इसका वास्तविक निर्णय आप अपनी अंतरात्मा से करियेगा। किन्तु कहीं ऐसा न हो कि लाड़ की बरात तो बड़ी सज धज के गई और लग्न का समय नींद में निकल जाय। अर्थात् आप अपने ब्याह *शादी, भवन-निर्माण खान-पान-आरंभ-समारंभ में तो खुले हाथ द्रव्य खर्च कर, यदि* पास में न भी हों तो किसी को भाई दादा कर कर्ज लेने में भी नहीं चूकते हैं। किन्तु जहां जनसेवा, आत्म-कल्याण, परमार्थादि काम पड़ते हैं वहां आपकी नाड़ी खिसकने लगती है। हां करेंगे, जल्दी क्या पड़ी है? इस प्रकार आप मोह नींद में रह कर एक दिन सब यहां छोड़ छोड़ कर रवाना हो जाओगे, और अनंत भवों तक अपनी भूल का पश्चात्ताप करना पड़ेगा। अब भी अवसर है, चेत जाओ। धर्मध्यान, परमार्थ का अपना मानव जीवन सफल बनाओ।

आप हृदय से कहते हैं, धन नहीं है? चिंता नहीं। निराश न हो, साधना के कई मार्ग हैं। आपकी सम्पत्ति है तन और मन। इन का महत्त्व धन से कम नहीं। आप इन के बल पर बहुत कुछ कर सकते हैं। आगे बढ़ो, नवयुग का निर्माण करो।

दुःख, पाप रोग और अनेक संकटों पर विजय पाने के तन-मन अचूक साधन हैं– यह हृदय से निकाल दो कि मैं गरीब हूं। दरिद्रता से मुक्त हो श्रीमन्त बनने का सरल उपाय है:—

## हमेशा प्रसन्न रहना, आनन्दमय जीवन व्यतीत करना।

आनंद का अर्थ यह नहीं होता कि, माल-पानी उड़ा कर लेटे रहना, नींद लेना, पराई निंदा कर गप सप लड़ाते रहना। असली आनंद का सूर्योदय तो तब होता है जब कि मनुष्य स्वार्थ से बचकर परमार्थ की और आगे बढ़ता है।

### सफलता का गुप्त मंत्र:—

मैं महान् हूं, अब तक मैं बाह्य जड़ पदार्थों में लुभा कर सुख की खोज करता रहा किन्तु कहीं शान्ति न मिली, वास्तव में सुख है आत्मा में। सम्पूर्ण सुखों का केन्द्र है आत्मा। मैं प्रेमी हूं, प्रेम ही मेरा जीवन है, मैं प्राणी मात्र की सेवा का प्रेमी हूं। मैं सुखी हूं। सफलता मेरे दाये बाँये चलती है।

इन शब्दों को बार बार दोहराने से, यह मंत्र-स्त्री पुरुष दोनों के लिए एक सा लाभ प्रद है। जब उक्त मंत्र का आप को अच्छा अभ्यास हो जायगा तब आप अपने को एक अद्भुत प्रकाश की तरफ बढ़ते पाओगे। प्रेमज्योति आपको बहुत ऊँचे आसन पर बिराजमान कर देगी। प्रेम ही ऐसी विपुल सम्पत्ति है, जिसे त्रैलोक्य की कोई ताकत छीन नहीं सकती है।

प्रेमी मनुष्यों की बातचीत में इतना माधुर्य होता है कि वे जिस से दृष्टि मिलाते हैं उनके मन में सनसनी उत्पन्न कर उसे अपने बस में कर लेते हैं।

पणी परे देई देशना, करे भविक उपकार रे।
गुरु मयणा ने ओलखी, बोलावि तेणिवार रे चेतन० ॥४॥
रे कुँवरी ! तू रायनी, साथे सबल परिवार रे।
अम उपासरे आवती, पूछण अर्थ विचार रे चेतन० ॥५॥
आज किश्युं इम एकली, ए कुण पुरुसु रतन रे।
धूरथी बात सवि कही, मयणा थिर करी मन चेतन० ॥६॥
मन मांहे नथी आवतुं, अवर किशुं दुःख पूज्य रे।
पण जिन-शासन हेलना, साले लोक अबुझ रे चेतन० ॥७॥

गुरु कहे दुःख न आणजो, ओछु अंश न भाव रे ।
चिंतामणी तुम कर चढ्यो, धर्म तणे परभाव रे चेतन० ।।८।।
वड़वखती वर एह छे, होशे राया राय रे ।
शासन सोह वधारशे, जग नमशे एह पाय रे चेतन० ।।९।।

प्रवचन समाप्त होने पर गुरुदेव ने कहा – मयणा ! सदा तुम दास-दासियों से घिरी रहती, तत्त्वचर्चा करती थी, आज कुछ सुस्त और अकेली कैसे ? ये महानुभाव कौन हैं ? इनका परिचय ? मयणासुन्दरीने मुस्कराकर नीची दृष्टि कर ली । राणा का परिचय देते समय उसकी आंखों में आंसू भर आए । उसकी जिह्वा स्तब्ध हो गई ।

मुनिश्री – मयणा ! तुम चिंता न करो । सदा किसी का समय एक सा नहीं रहता है । रात्रि के बाद सूर्योदय होना निश्चित है । दुःख मनुष्य की कसौटी है । जो भले हैं, उन का गौरव दुःख-रूपी कसौ पर चढ़ने से दूना बढ़ जाता है । राम को वनवास न होता, तो वे मर्यादा पुरुषोत्तम न कहलाते । हरिश्चन्द्र पर विपत्ति न पड़ती तो उनका चरित्र इतना उज्वल दिखाई न देता । सीता की छिपी हुई कीर्ति दुःख पड़ने से ही चांदनी की तरह अब तक चारों ओर व्याप्त है ।

गुरुदेव ! मुझे और कोई चिन्ता नहीं । केवल दुःख यही है कि ये वे समझ लोग मेरे निमित्त से अनर्गल भद्दे शब्दों का प्रयोग कर श्री जिन शासन की अवहेलना करते हैं ।

मुनिश्री ने राणा का सिर से पैर तक निरीक्षण कर कहा—मयणा । निंदा की कोई बात नहीं । यदि कोई बेसमझ मानव आग से चिढ़ कर उसे दो घूंसे टिका दे, नेत्ररोगी यदि चमकते सूर्य पर मुट्ठीभर धूल डालने की चेष्टा करे तो भला उसका परिणाम क्या होगा ? तुम्हारा महान् सौभाग्य है, ये महानुभाव सामान्य व्यक्ति नहीं, चमकते चान्द हैं । इनसे श्री जैन शासन की महान् प्रभावना होने की संभावना है । ये भविष्य में राज-राजेश्वर होंगे ।

मयणा गुरु ने विनवे, देई आगम उपयोग रे ।
करी उपाय निवारिये, तुम श्रावक तनु रोग रे चेतन० ।।१०।।
सूरि कहे ए साधु नो, उत्तम नीं आचार रे ।
यंत्र जड़ी मणि मंत्र जे, औषध ने उपचार रे चेतन० ।।११।।
पण सुपुरुष एह थी, थाशे धर्म उद्योत रे ।
तेणे एक यंत्र प्रकाशसु, जस जग जागति ज्योत रे, चेतन० ।।१२।।

श्री मुनिचन्द्र गुरुए तिहां, आगम ग्रंथ विलोई रे।
माखणनी परे उद्धर्यो, सिद्धचक्र यंत्र जोई रे, चेतन० ॥१३॥
अरिहंतादिक नव पदे, ॐ ह्रीं पद संयुक्त रे।
अवर मंत्राक्षर अभिनवा, लहिए गुरुगम तत्त रे, चेतन० ॥१४॥
सिद्धादिक पद चिहु दिशे, मध्ये अरिहंत देव रे।
दरिसण नाण चरित ते तप विहुँ विदिश सेव रे, चेतन० ॥१५॥
अष्ट कमल दल इणि परे, यंत्र सकल शिरताज।
निर्मल तन मन सेवतां, सारे वांछित काज रे चेतन० ॥१६॥

मयणासुन्दरी – गुरुदेव ! संत महात्माओं के आशीर्वाद और उन के सत्संग से क्या नहीं होता ? आप का अभिप्राय है कि अब ऊंवर राणा ( मेरे पतिदेव ) का भाग्योदय दूर नहीं। इन से श्री जिनशासनकी महान् प्रभावना होना संभव है। यह मेरा अहोभाग्य है। मैं आप की इस सिद्धवाणी के लिए बहुत ही आभारी हूं। किन्तु इस समय तो इन की असह्य वेदना देखी नहीं जाती। भगवान्! भगवान्!! गुरुदेव ! कोई उचित उपाय कर हमें इस संकट से बचाए।

मुनिचंद्रसूरिजी—मयणासुन्दरी ! यह हमारा आचार नहीं। जैन मुनि सदा जादू-टोना गण्डे ताविज के प्रपंच से दूर रहते हैं। मानव भूल कर भी इस मायाजाल में न फँसे, हजारों व्यक्ति इस में उलझकर अपने सर्वस्व से हाथ धो बैठे हैं।

दुःख-सुख तो एक शुभ-अशुभ कर्मों का विकार है। इस से छुटकारा पाए बिना आज तक न किसी को सुख-शांति मिली है और न भविष्य में मिलना ही संभव है। यदि तुम्हारे हृदय में ऊंवरराणा के स्वास्थ्य और सुख–शांति की शुभकामना है तो इस का एक ही सर्वश्रेष्ठ उपाय है कि आप शांत विहाय स-विधि श्री सिद्धचक्र की आराधना करो।

आसो मांहे मांडिये, सातमथी तप एह रे।
नव आयंबिल करी निर्मला, आराधो गुण गेह रे, चेतन० ॥१७॥
विधि पूर्वक करी धोतिया, जिन पूजो त्रण काल रे।
पूजा अष्ट प्रकारनी, कीजे थई उजमाल रे चेतन० ॥१८॥

निर्मल भूमि संथारिये, धरिये शील जगीश रे ।
जपिये एक एकनी, नोकरवाली वीश रे चेतन० ॥१९॥
* आठे थोईए देव वांदिये रे, देव सदा त्रण काल रे ।
पड़िकमणा दोय कीजीये रे, गुरु वैयावच्च सार रे चेतन० ॥२०॥
काया वश करी राखिये, वचन विचारी बोल रे ।
ध्यान धर्मनुं धारिये मनसा कीजे अडोल रे चेतन० ॥२१॥
पंचामृत करि एकठा परि गल कीजे पखाल रे ।
नवमे दिन सिद्धचक्रनी, कीजे भक्ति विशाल रे चेतन० ॥२२॥

**श्री सिद्धचक्र आराधन—**

श्री सिद्धचक्र आराधन का दूसरा नाम है नवपद ओली । इस की आराधना वर्ष में दो बार आश्विन शुक्ला सप्तमी और चैत्र शुक्ला सप्तमी से प्रारंभ होती है ।

सप्तमी से पूर्णिमा तक अष्टकारी जिनपूजन प्रत्येक पद के जितने गुण हों उतने ही स्वस्तिक, प्रदक्षिणा, खमासमण, वीस माला, त्रिकाल देववंदन, आयंबिल प्रतिक्रमणादि

---

* "आठ थोईए देव वांदिये रे" यह एक एकान्त अभिप्राय है । क्यों कि विक्रम संवत् १४२८ में रचित श्रीमान् रत्नशेखरसूरिजी की प्राकृत श्रीपाल-कथा; विक्रम संवत् १५१४ में रचित श्रीमान् सत्यराजगणि के संस्कृत श्रीपाल चरित्र और विक्रम संवत् १७४० में रचित श्री जिनहर्ष गणिवर्य के श्रीपाल-रास में तथा अनेक दिगंबर, श्वेताम्बर श्रीपालचरित्र और नाटकों में कहीं भी अंश मात्र ऐसी चर्चा या आग्रहपूर्ण उल्लेख-वर्णन नहीं है कि आठ थुई से ही देव वंदन करे, वही आराधक है, अन्य नहीं ।

श्री जैनागम सूत्र, निर्युक्ति, भाष्य चूर्णी और टीका तथा चैत्यवंदन-पंचाशक आदि ग्रंथों में देववंदन करने की विधि सापेक्ष है । जैसे कि श्री सौधर्म बृहत्तपागच्छ की समाचारी छः थुई से देववंदन करने की है तो खरतर गच्छ, पायचंद गच्छ, अंचल गच्छ का विधि-विधान एक दूसरे से भिन्न है । अतः विधि-विधान के लिए आपस में वैर-विरोध से बचकर त्याग, तप, विशुद्ध सम्यग्दर्शन की ओर आगे बढ़ना ही कल्याण मार्ग है ।

एक वार प्रभु वंदना रे, आगम रीते थाय ॥ जि०
कारण सते कार्यनी रे, सिद्धि प्रतीत कराय ॥ जि० ॥ ५ ॥
प्रभु पणे प्रभु ओलखी रे, अमल विमल गुण गेह ॥ जि०
साध्य दृष्टि साधक पणे रे, वंदे धन्य नर तेह ॥ जि० ॥ ६ ॥
जन्म कृतारथ तेहनो रे, दिवस सफल पण तास ॥ जि०
जगत शरण जिन चरणने रे, वंदे धरीय उल्लास ॥ जि० ॥ ७ ॥

धर्म क्रियाएं शान्त भाव और एकाग्र मन से करना चाहिए। यदि हो सके तो आराधना के समय मौन रख, मोह ममता, मर्मवचन, कषायादि का त्याग कर, साधु मुनिराज की सेवा-भक्ति और प्रति दिन पंचामृत (दही-दूध-घी-मिश्री और केशर) से श्री सिद्धचक्र यंत्र का प्रक्षालन करें। पूर्णिमा के दिन व्रत-आराधक स्त्री-पुरुष और समस्त संघ मिल कर नवपद-पूजन पढ़ाएं। श्री सिद्धचक्र का ध्यान आदि विशेष भक्ति करें।

सुदि सातम थी इणी परे; चैत्री पूनम सीम रे।
ओली एह आराधिये, नव आंबिलनी नीम रे चेतन० ॥२३॥

एम एक्यासी आंबिले, ओली नव निरमाय रे।
साढ़ा चार संवत्सरे, ए तप पूरण थाय रे चेतन० ॥२४॥

उजमणुं पण कीजिये, शक्ति तणे अनुसार रे।
इह भव पर भव सुख घणा, पामीजे भव पार रे चेतन० ॥२५॥

इस यंत्र की आराधना सविधि इक्यासी आयंबिल करने से होती है। पुरुष क्रमशः साढ़े चार वर्ष में और स्त्रियां प्रसूति आदि के कारण पांच वर्ष में पूर्ण कर यथा-शक्ति उजमणादि करें।

आराधना फल एहना, इह भव आए अखंड रे।
रोग दोहग दुःख उपशमे, जिम घन पवन प्रचंड रे चेतन० ॥२६॥

नमण जले सिद्धचक्र ने, कुष्ट अढारे जाय रे।
वाय चोरासी उपसमे, रुझे गुंबड़ घाय रे चेतन० ॥२७॥

भीम भगंदर भय टले, जाय जलोदर दूर रे।
व्याधि विविध विष वेदना, ज्वर थाए चक चूर रे चेतन० ॥२८॥

खास खयन खस चक्षुना, रोग मिटे सन्निपात रे।
चोर चरड़ डर डाकिणी कोई न करे उपघात रे चेतन० ॥२९॥

हीक हरस ने हेड़की, नाड़ा ने नासूर रे।
पाठा पीड़ा पेट नी टले, दुःख दंतना सूल रे, चेतन० ॥२९॥
निर्धनिया धन संपजे, अपुत्र पुत्रिया होय रे।
विण केवलो सिद्धयंत्र ना, गुण न शके करी कोय रे, चेतन० ॥३०॥
रास रच्यो श्रीपाल नो, तेहनी सातमी ढाल रे।
विनय कहे श्रोता घरे, होजो मंगल माल रे चेतन० ॥३१॥

क्या आप मानसिक चिन्ताएं, उदासी, दुःख-दर्द आर्थिक, संकट से अपना पीछा छुड़ाना चाहते हैं? तो आप आज ही दृढ़ संकल्प कर लें कि मैं शीघ्र ही नवपद ओली अवश्य करूंगा।

आश्विन या चैत्र शुक्ला में व्रत आरंभ कर दें। जिस प्रकार आंधी घनघोर घटाओं को छिन्नभिन्न कर देती है, सूर्य सारे संसार को अपने प्रकाश से जगमगा देता है, उसी प्रकार आपके कर्म मूल को नष्ट कर, सोए भाग्य को चमकाने का सरल और सुन्दर साधन है श्री सिद्धचक्र यंत्र आराधन।

इस यंत्रके प्रक्षालन जल से अठारह प्रकार के कुष्ट, चौरासी प्रकार के वात रोग, फोड़े फुन्सियां, जलंदर, जगंदर, दंतशूल, नेत्रपीड़ा, उदरशूल, बवासीर, खाज, खुजली, नाखर इत्यादि रोगों का सहज ही उपशमन होने लगता है, भूत-प्रेत, डाकन, चूड़ेलों के उपद्रव दूर हो जाते हैं, नवपद आराधक स्त्री-पुरुष धनधान्य, पुत्रादि सौभाग्य प्राप्त कर यशस्वी बनते हैं।

श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि महान् प्रभाविक सिद्धचक्र यंत्र के अपार गुणों का पार श्री सर्वज्ञदेव के बिना कौन पा सकता है?। श्रीपाल रास की यह सातवीं ढाल सम्पूर्ण हुई। श्रोतागण और पाठकों के घर सदैव आनन्द मंगल होवे।

## दोहा

श्री मुनिचन्द्र मुनिश्वरे, सिद्ध यंत्र करी दीध।
इह भव पर भव एह थी, फलशे वांछित सिद्ध ॥१॥
श्री गुरु श्रावक ने कहे, ए बेउ सुगुण निधान।
कोइक अवसर पामिए, सेवो थई सावधान ॥२॥

## भगवान का अभिषेक :—

मयणासुंदरी अपने प्राणनाथ उंबर–राणा ( श्रीपालकुंवर ) का एक महाभयंकर कुष्ट रोग से पीछा छुडाने स–विधि अभिषेक जल तयार कर रही है। इधर ऊंबरराणा भी श्री सिद्धचक्र भगवान का ध्यान कर रहे हैं।

साहम्मी ना सगपण समुं, अवर न सगपण कोय।
भक्ति करे साहम्मी तणी समकित निर्मल होय ॥३॥
पधरावे आदर करी, साहम्मी निज आवास।
भक्ति करे नव नव परे, आणी मन उल्लास ॥४॥
तिहां सघलो विधि सांचवे, पामी गुरु उपदेश।
सिद्धचक्र पूजा करे, आंबिल इम सुविशेष ॥५॥

आचार्य मुनिचंद्रसूरिजी ने एक सिद्धचक्र यंत्र लिख कर मयणासुन्दरी से कहा, लो बेटी! इस यंत्र के प्रभाव से तुम्हारा इस लोक और पर लोक में कल्याण हो। तुम्हारी मनोकामनाएं सफल हों, इस यंत्र की अवश्य आराधना करना। पश्चात् आचार्य देव ने श्रावकों से कहा। महानुभावो! यह आत्मा अनादि काल से अपने कुटम्ब परिवार का पोषण करता चला आ रहा है, अनिच्छा से भी उन का पोषण तो करना ही पड़ता है। किन्तु स्वधर्मी व्रतधारी बन्धुओं की सेवा का लाभ पुण्योदय से हाथ लगता है। श्रद्धालु त्यागी, तपस्वी, गुणीजन, असहाय श्रावक-श्राविकाओं की सेवा-भक्ति करने से सम्यक्त्व की निर्मलता होती है।

ये पति-पति होनहार और गुणवान हैं। आप इनकी भक्ति का अवश्य लाभ लें। श्री-संघने उन का हृदय से स्वागत कर भोजन आदि की सुव्यवस्था की। वे भी पति पत्नी गुरुदेव की आज्ञानुसार ज्ञान, ध्यान, श्री सिद्धचक्र पूजन आयंबिलादि तप में मग्न हो आनंद से रहने लगे।

## ढाल आठवीं

(चौपाई छंद)

आसो सुदि सातम सुविचार, ओली मांडी स्त्री भरतार।
अष्ट प्रकारे पूजा करी, आंबिल कीधा मन संवरी ॥१॥
पहले आंबिल मन अनुकूल, रोगतणो तिहां दाझ मूल।
अंतर दाह सयल उपशम्यो, यंत्र नमण महिमा मन रम्यो ॥२॥

---

मिथ्या दृष्टि सहस्रेषु, वरमेको हि अणुव्रती। अणुव्रती सहस्रेषु वरमेको महाव्रती ॥ १ ॥
महाव्रती सहस्रेषु, वरमेको हि तात्त्विकः। तत्तात्त्विक समं पात्र, न भूतं न भविष्यति ॥ २ ॥

बीजे आंबिल बाहिर त्वचा, निर्मल थई जपतां जिन रुचा।
एम दिन दिन प्रति वाध्यो वान, देह थयो सोवन्न समान ॥३॥
नवमें आंबिल थयो निरोग, पामो यंत्रनमण संयोग।
सिद्धचक्रनो महिमा जुओ, सकल मन अचरिज हुओ ॥४॥
मयणा कहे अवधारो राय, ए सवि सद्गुरु तणो पसाय।
मातपिता बन्धव सुत होय, पण गुरु सम हितुओ नहीं कोय ॥५॥

मयणासुन्दरी ने राणा से अनुमति प्राप्त कर आश्विन शुक्ला सप्तमी से श्री नवपद ओली प्रारम्भ की। दोनों पति-पत्नि बड़े मनोयोग से देववंदन, स्वस्तिक, खमासमण, कायोत्सर्ग, और आयंबिल करते। मयणासुन्दरी पूजन कर यंत्र का प्रक्षालन-जल उन रोगियों पर छिड़कतीं। जलके प्रभाव से पहले दिन ही रोग की जड़ निर्मूल हो उन्हें बड़ी शान्ति का अनुभव हुआ। दूसरे दिन घाव सूकने लगे, क्रमशः नव आयंबिल ने उन की कायापलट कर दी। रोगियों का रंग रूप कुछ और ही हो गया। जनता उन्हें देख चकित हो गई।

राणा – मयणा! धन्य है तुम्हें। तुम्हारे सद् प्रयत्न से ही हमें नवजीवन मिला। —प्राणनाथ! यह वास्तव में श्री गुरुदेव की कृपा समझियेगा। ऐसे तो हमारे उपकारी माता पिता बान्धवादि माने जाते हैं। किन्तु निस्पृही परम हितैषी यदि कोई है तो एक मात्र परम तारक गुरुदेव ही हैं।

कष्ट निवारे गुरु इह लोक, दुर्गति थी वारे परलोक।
सुमति होय सद्गुरु सेवतां, गुरु दीवो ने गुरु देवता ॥६॥
धन गुरु ज्ञानी धन ए धर्म, प्रत्यक्ष दीठो जेहनो मर्म।
जैन धर्म पशंसे सहु, बोधि बीज पाम्या तिहां बहु ॥७॥
सात सौ रोगीना रोग, नाठा यंत्र नव्हण संयोग।
तेओ सात से सुखिया थया, हर्ष्या निज निज थानक गया ॥८॥

मयणासुन्दरीने कहा—अहो! धन्य है श्री जैनधर्म और निस्पृह निग्रन्थ गुरुको, आज जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव हमारे सामने है। गुरु दीपक और देव के समान हैं, वे सन्मार्ग का प्रकाश

कर मानव को यहां अनेक संकटों से, और भवान्तर में दुर्गति के दारुण दुःखों से बचा लेते हैं। आत्मस्वरूप, भेद विज्ञान समझने की चाबी गुरुकृपा से ही हाथ लगती है।

राणा के सभी साथी सम्यक्त्व ले मुक्त कण्ठ से श्री जैनधर्म की प्रशंसा करते हुए सहर्ष आनन्द से वापस अपने घर लौट गए।

एक दिन जिनवर प्रणमी पाय, पाछा वलता दीठी माय।
हर्ष धरीने चरणे नमे, मयणा मयणा पण आवी तिण समे ॥९॥
सासु जाणी पाए पड़े, विनय करता गिरु आई चढ़े।
सासु बहू ने दे आशिष, अचरिज देखी धूणे शीष ॥१०॥
कहे कुंवर माताजी सुणो, ए पसाय सहु तुम बहू तणो।
गयो रोग ने वाध्यो रंग, वली लह्यो जिन धर्म प्रसंग ॥११॥
सुगुण बहू निर्मल निजनंद, देखी माय अधिक आणंद।
पूनम परे बहू ते जश लीध, कल कला पूरण पिउ कीध ॥१२॥

श्रीपाल कुंवर और मयणासुन्दरी एक दिन जिन मंदिर से दर्शन कर वापस घर लौट रहे थे। मार्ग में सहसा कमलप्रभा सामने आ मिली। "मां" के दर्शन कर श्रीपालकुंवर चरणों में झुक पड़े। मयणासुन्दरी ने भी बड़े विनय के साथ सास के चरणस्पर्श कर नीची निगाह कर ली। मां वर्षों के बाद अपने लाल का स्वस्थ और चांद सा मुखड़ा देख फूली न समाई। कमलप्रभा नववधू का धर्म स्नेह श्रीपाल की कंचन सी काया देख बड़े आश्चर्य में पड़ गई। वह अपने सिर पर हाथ धर बोली— वाह रे! वाह कर्मचन्द-भाग्य तेरी गत तू ही जाने। मैं व्यर्थ ही बेटे के मोह में आर्त्तध्यान कर रोती बिलखती थी किन्तु वास्तव में आज गुरुदेव के वचन अक्षरशः खरे उतरे। धन्य हैं सद्गुरुदेव! आपकी मैं क्या प्रशंसा करूँ?

---

वर्ण की ओली करने वाले क्रमशः चांवल, गेहूँ, चने मूंग, उड़द और शेष चार दिन तक चांवल प्रायः एक ही द्रव्य या उसी एक द्रव्य के बिना नमक के बने पदार्थ ही काम में लें। यदि एक से अधिक द्रव्य काम में ले तो बिना नमक के ही पदार्थ लें।

इस समय आयंबिल में सेंदा नमक, काली मिर्च, सूंठ आदि काम में लेते हैं किन्तु यह उचित नहीं। यदि आपको सेंदानमक आदि लेना है तो आप आयंबिल का पच्चक्खाण न लेकर निवी का ही पच्चक्खाण करें।

श्रीपाल – पूज्य माताजी ! यह सारा श्रेय आपकी बहू को है, मैं इसी के सहवास, प्रेरणा से नवजीवन और प्रत्यक्ष प्रभावी श्री जैन धर्म को पा सका हूं। कमलप्रभा ने पुत्रवधू को गले लगा आशीर्वाद दिया "बेटी ! तेरा सुहाग अमर रहे। तू सौभाग्यवती हो चिरंजीव ! पूर्ण-चंद्र के समान तेने अपने गुणों से श्रीपाल को धर्मप्रेमी बना उज्वल यश प्राप्त किया।"

सुणो पुत्र कोसंबी सुण्यो, वैद्य एक वैद्यक बहु भण्यो।
तेह भणी तिहां जाउँ जाम, ज्ञानी गुरु मुज मलिया ताम ॥१३॥
म पूछयो गुरु चरणे नमी, कर्म कदर्थन में बहु खमी।
पुत्र एक छे मुज वालहो, ते पण कर्मे रोगे ग्रह्यो ॥१४॥
तेह तणो किम जाशे रोग ? के नहीं जाए कर्म संजोग ?
दया करी तुज दाखो तेह, हूं छुं तुम चरणों नी खेह ॥१५॥
तव बोल्या ज्ञानी गुणवंत, म कर खेद सांभल वृत्तन्त।
ते तुज पुत्र कुष्टीये ग्रह्यो, उम्बर राणो करी जश लह्यो ॥१६॥
मालवपति पुत्रीए वर्यो, तस विवाह कुष्टीए कर्यो।
धरणी वयणे तप आदर्युं, श्री सिद्धचक्र आराधन कर्युं ॥१७॥
तेथी तुज सुत थयो निरोग, प्रकटयो पुण्य तणो संयोग।
वली एह थी वधसे लाज, जीती घणा भोगवशे राज ॥१८॥

## कमलप्रभा का प्रवास परिचयः–

बेटा ! मैं तुम्हें छोड़ रोती बिलखती किसी वैद्य की खोज में कोसंबी जा रही थी। मार्ग में मेरी एक मुनिराज से भेट हुई। उन्हें सविधि वंदन कर, मैंने अपना परिचय दिया। मेरी करुण कथा सुन गुरुदेव ने हृदयस्पर्शी मार्मिक शब्दों में बड़ा सुन्दर उपदेश दे मुझे धीर बंधाया। किन्तु फिर भी मोहवश मेरा दुर्बल हृदय उनसे पूछ बैठा। कृपालु ! मेरे लाल का क्या होगा ? गुरुदेव ने जो कहा था वही आज प्रत्यक्ष तुम्हें मालवपति का जमाई देख मेरा मनमयूर आनन्द विभोर हो नाच रहा है। धन्य है उन सद्गुरुदेव को धन्य है।

गुरु वचने हुँ आवी आज, तुम दीठे मुज सरिया काज।
त्रणे जण हवे रहे सुख वास, लील करे साहमी आवास ॥१९॥
सिद्धचक्र नो उत्तम रास, भणतां गुणतां पुगे आस।
ढाल आठमी इणी परे सुणी विनय कहे चित्त धरजो गुणी ॥२०॥

कमलप्रभा—श्रीपाल ! मैं पूज्य गुरुदेव की शुभासीस ले यहां आई, तुम्हें स्वस्थ और बहू का विनय-सेवा-भक्ति देख मेरा हृदय ठर गया। बेटा ! सुखी रहो। युग युग सु-धर्म की आराधना कर जन्म सफल करो ! वे तीनों अपने स्वधर्मी बन्धुओं के निवासस्थान पर आनन्द से रहने लगे।

श्रीमान् उपाध्याय विनयविजयजी कहते हैं कि श्री सिद्धचक्र महिमा दर्शक श्रीपाल रास की यह आठवीं ढाल पाठक मन लगाकर पढ़ेंगे और श्रोतागण उसे श्रवण करेंगे तो उनकी मनोकामनाएं अवश्य सफल होगी।

## दोहा

एक दिन जिन पूजा करी, मधुर स्वरे एक चित्त।
चैत्यवंदन कुंवर करे, सासु बहु सुणंत ॥१॥
मयणानी माता घणुं, दुह वाणी नृप साथ।
जब मयणा मत्सर धरी, दीधी उम्बर हाथ ॥२॥
पुण्यपाल नामे नृपति, निज बांधव आवास।
रीसाई आवी रही, मुके मुख निसास ॥३॥
जिनवाणी हियड़े धरी, विसारो दुःख दर्द।
आवी देव जुहारवा, तिण दिन तिहां आणंद ॥४॥
माए मयणा ओलखी, अनुसारे निज बाल।
आगल नर दीठो अवर, यौवन रूप रसाल ॥५॥
कुल खंपण ए कुंवरी, कां दीधी किरतार।
जेणे कुष्टी नर परिहरी अवर कियो भरतार ॥६॥

वज्र पड़ो मुज कूखने, धिक् धिक् मुज अवतार।
रूपसुंदरी इणी परे घणुं, रुदन करे तेणीवार ॥७॥

मयणासुन्दरी के अनमेल विवाह से उसकी मां रूपसुन्दरी को बड़ा आघात पहुँचा। वह खिन्न हो अपने भाई पुण्यपाल के यहाँ पीयर में आ गई थी। वहाँ भी चिन्ता से सदा उसका मन उदास रहता था, और खान-पान, देव-दर्शन आदि में कहीं भी उसका मन नहीं लगता था। अन्त में उसने सोचा, जैनागमों का सार यही है कि आर्त्तध्यान से तिर्यंच गति और रौद्रध्यान से नरक गति का बन्ध होता है, अतः अब रोने पीटने से क्या होगा? मैं कई दिनों से व्यर्थ ही श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शनों से वंचित हूँ।

एक दिन वह मन्दिर दर्शन करने गई। सभामंडप में पहुंचते ही उसके प्राण सूक गए। मयणा को एक नवयुवक के साथ स्वर में स्वर मिलाते देख वह स्तब्ध हो गई। उसका सिर चकरा गया। सुन्दर हृष्टपुष्ट नवयुवक श्रीपाल अपनी मां और धर्मपत्नी के साथ चैत्यवन्दनादि विधि कर ताल लय में बड़े मधुर स्वर से भगवान के गुणगान में मस्त था। युवक के सुरीले शब्द महारानी रूपसुन्दरी के हृदय को विदीर्ण कर रहे थे। वह चीख उठीं। हाय बेटी! तेने यह क्या किया? पगली हाड़ मांस के रूपसौन्दर्य पर लुभा कर अनर्थ कर डाला। तूने जन्म ले क्यों मेरी कोंख लजाइ? जन्मते ही मर जाती तो आज मुझे इतना संताप तो न होता, मैं समझती मेरे उदर में पत्थर ही पड़ा था। बड़े बूढ़ों की धवल यशःश्री पर धब्बा तो न लगता। अब मैं दुनिया के सामने अपना मुंह बताने की न रही, अब मेरा जीना बेकार है। वह रो पड़ी।

रोती दीठी दुःख भरे, मयणाए निज माय।
तव आवी उतावली, लागी जननी पाय ॥८॥

हर्ष तणे स्थानक तुमे, का दुःख आणो माय।
दुःख दोहग दूरे गया, श्री जिन धर्म पसाय ॥९॥

निसिही करीने आविया, जिण हर मांहे जेण।
करतां कथा संसार नी, आशातना होये तेण ॥१०॥

हमणा रहिये छे जिहां, आवो तिण आवास।
वात सयल सुणजो तिहां, होशे हिये उल्लास ॥११॥

तिहां आवी बेठा मली, चारे चतुर सुजाण।
जे दिन स्व जन भेलावड़ो, धन ते दिन सुविहाण ॥१२॥

मयणाना मुखथी सुणी, सघलो ते अवदात।
रूपसुंदरी सु प्रसन्न थई, हियड़े हर्ष न मात ॥१३॥

मयणासुन्दरी ने राणी के चरण स्पर्श कर कहा – माताजी! देव दरबार में संकल्प विकल्प कैसा? जिन मंदिर के प्रवेशद्वार पर आरंभ-समारंभ-दुर्ध्यान आदि का त्याग कर दिया जाता है, अतः यहां बातचीत करना उचित नहीं। कृपया आप अपने निवासस्थान पधारें। आप रंज न करें। वह घड़ी धन्य होगी जब कि अपने वियोगी हृदय का पुनर्मिलन न होगा, एक दूसरे के निकट बैठ शान्ति से बात-चीत करेंगे।

मयणासुन्दरी—माताजी! श्री जैनधर्म, और श्री सिद्धचक्र यंत्र के प्रभाव से अब वे दुर्दिन गए। आपको प्राणनाथके परिचय से बड़ा संतोष होगा। महारानी-मयणा! धन्य है, तुम्हारी सद्बुद्धि श्रद्धा और साहस को।

## ढाल नवमी

(तर्ज - गोरी नागीला रे)

वर वहु बेहु सासु मलीं रे, करे वेवाहण वात रे।
कमला रूपा ने कहे रे, धन तुम कुल विख्यात रे॥

जुओ अगम गति पुण्यनी रे, पुण्ये वांछित थाय रे।
सवि दुःख दूर पलाय रे, जुओ अगम गति पुण्य नी रे ॥१॥

वहु अम कुल उद्धर्युं रे, कीधो अम उपकार रे।
अमने जिन धर्म बुझव्यो रे, उतार्यो दुःख पार रे ॥२॥ जुओ०

सूई जिम दोरा प्रते रे, आणे कसीदो ठाम रे।
तिम वहुए मुज पुत्रनी रे, घणी वधारी माम रे ॥३॥ जुओ०

रूपा कहे भाग्ये लह्यो रे, अमे जमाई एह रे।
रयण चिंतामणि सारीखो रे, सुन्दर तनु स स्नेह रे ॥४॥ जुओ०

सुणवा अम इच्छा घणी रे, एहना कुल घर वंश रे।
प्रेमे तेह प्रकाशिये रे, जिम हिंसे अम हंश रे ॥५॥ जुओ०

कमलप्रभा–वेवाणजी! धन्य है आपके जीवन और वंश को। जिन प्रकार सुई, धागे से सुन्दर बेल बूटे बनाकर वस्त्र की कायापलट कर देती हैं, उसी प्रकार आपकी इस लाडिली बेटीने अपनी तीक्ष्ण बुद्धिसे मेरे लाल श्रीपाल को नवजीवन दिया और उसे श्री जैनधर्म का मर्म समझाकर हमारे वंश की लाज रख उसकी शोभा बढ़ाई। बहूको शतशः धन्यवाद है।

रूपसुन्दरी–हा! कर्म के लेख ज्ञानी बिना कौन बांच सकता है? हमारा महान् सौभाग्य है कि हमें ऐसे सुन्दर आदर्श नररत्न जमाईजी मिले। आप इनके निवास-स्थान आदि का परिचय देने का कष्ट करोगी?

कहे कमला रूपा सुणो रे, अंग अनूपम देश रे।
तिहां चंपानगरी भली रे, जिहां नहीं पाप प्रवेश रे ॥६॥ जुओ०
तेह नगरनो राणियो रे, राज गुणे अभिराम रे।
सिंह थकी रथ जोड़ता रे, प्रकट होसे तस नाम रे ॥७॥ जुओ०
राणी तस कमलप्रभा रे, अंग धरे गुण सेण रे।
कोंकण देश नरिंद नो रे जे सुणीये लघु बहेन रे ॥८॥ जुओ०
राजा मन चिंता घणी रे, पुत्र नहीं अम कोय रे।
राणी पण आरति करे रे, निश दिन झूरे दोय रे ॥९॥ जुओ०
देव देहरडां मानता रे, इच्छतां पूछतां एक रे।
राणी सुत जनम्यो यथा रे, विद्या जणे विवेक रे ॥१०॥ जुओ०
नगर लोक सवि हरखिया रे, घर घर तोरण त्राट रे।
आवे घणा वधामणा रे, शणगार्यां घर हाट रे ॥११॥ जुओ०

## कमलप्रभा का परिचय

कमलप्रभा–वेवाणजी! अंगदेश की प्रसिद्ध नगरी चम्पापुरीके सम्राट सिंहरथ बड़े उदारचेता दानवीर यशस्वी थे। राज्य में चारों ओर उनकी बड़ी धाक थी, चोर लुटेरे डाकू उनमें

सदा भयकम्पित रहते थे। किन्तु फिर भी वे अपनी ढलती वय देख चिन्तित थे। उन्हें राजपाट भोग-उपभोग के साधन निरस मालूम होते थे। प्राणनाथको उदास देख मेरा मन भी खिन्न रहता, क्यों कि मेरी गोद सूनी थी। हमारे बाद क्या होगा यही एक समस्या थी।

मेरे बड़े भाई कोंकण देश के महाराज वसुपाल हमें समझाते धीर बंधाते; फिर भी जीव का स्वभाव, मोह ममता पीछा नहीं छोड़ती। बांझपन के कलंक से मुक्त होने के यंत्र, मंत्र, तंत्र औषधादि अनेक उपाय किये। जिस प्रकार विद्या-अध्ययन से विवेक की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार हमारा श्रम सफल हुआ। वर्षों के बाद हमारे घर पालना बंधा। पुत्रजन्म की बधाई सुन नागरिक और महाराजा आनंदविभोर हो उठे। चारों ओर मंगल गीतों की स्वर लहरी, ढोल-नगारे शहनाइयों से आकाश गुंज उठा, ध्वजा पताकाएं वंदनवार बांधी गई।

राजा मन उल्लट घणो रे, दान दिये लख कोड़ी रे।
वैरी पग संतोशिया रे, बंदिखाना छोड़ी रे ॥१२॥ जुओ०
धवल मंगल दिये सुन्दरी रे, वाजे ढोल निशाण रे।
नाटक होवे नवनवा रे, महोत्सव अधिक मंडाण रे ॥१३॥ जुओ०
न्याति सजन सहु नोतर्या रे, भोजन षट्रस पाक रे।
पार नहीं पकवान नो रे, शालि सुरहां घृत शाक रे ॥१४॥ जुओ०
भूषण अम्बर पहेरामणी रे, श्रीफल कुसुम तंबोल रे।
केशर तिलक वली छांटणा रे, चंदन चूआ रङ्गरोल रे ॥१५॥ जुओ०
राजरमणी अप पालशे रे, पुण्ये लह्यो ए बाल रे।
सजन भूआ मली तेहनुं रे, नाम ठवे श्र  रे ॥१६॥ जुओ०
रास रच्यो श्रीपाल नो रे, तेहनी नवमी ढाल रे।
विनय कहे श्रोता घरे रे, होजो मंगल माल रे ॥१७॥ जुओ०

महाराज सिंहरथ ने पुत्र जन्मोत्सव के उपलक्ष में अनेक प्रकार के नाटक भजन कीर्तन संगीत आदि मनोरंजन के कार्यक्रम रखे, नागरिक तथा गणमान्य विद्वानों को प्रीतिभोज दे उनका स्वागत किया। बंदी-गृह से कैदियों को मुक्त कर जनता की भलाई के लिये लाखों करोड़ो

की विपुल संपत्ति प्रदान की पश्चात् नाम-संस्करण की, विधि कर बच्चे की बुआ ने सर्वानुमत से मेरे लाल का नाम श्रीपाल रखा।

श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि श्रीपाल रास की यह नवमी ढाल सम्पूर्ण हुई। पाठक और श्रोताओं के घर सदा आनन्द मंगल होवे।

## दोहा

पांच वरस नो जब हुओ, ते कुँवर श्रीपाल।
ताम शूल रोगे करी, पिता पहोतो काल ॥१॥

शिर कूटे पीटे हियो, रोवे सकल परिवार।
स्वामी ते माया तजी, कुण करशे अम सार ॥२॥

गयो विदेशे बाहुडे, वहालां कोईक वार।
इण वाटे बोलाविया, कोई न मले बीजी वार ॥३॥

हे जे हँसी बोलावता, जे क्षण मां केई वार।
नजर न मंडे ते सजन, फूटे न हिया गमार ॥४॥

नेह न आण्यो माहरो, पुत्र न थाप्यो पाट।
एवड़ी उतावल करी, शूं चाल्या इण वाट ॥५॥

कमलप्रभा – वेवाणजी! आनन्द के दिन बहुत जल्दी बीत जाते हैं। धीरे धीरे बात की बात में पांच वर्ष पूरे होने आए। प्राणनाथ श्रीपाल के लिये सोचते, अब चिन्ता नहीं, बच्चा सयाना होने लगा है। इसका विनीत स्वभाव, निर्मल बुद्धि, स्मरणशक्ति देख वे कहते, हमें इससे बहुत कुछ आशा है।

समय करे नर क्या करे, समय समय की बात।
किसी समय के दिन बड़े, किसी समय की रात॥

कमलप्रभा – वेवाणजी! मनुष्य सोचता क्या है और होता कुछ और ही है। मेरे प्राणनाथ के मन की उमंगें, और श्रीपाल के भव्य भविष्य को सहसा एक दिन

यमराज ने बड़ी निर्दयता से कुचल डाला। पतिदेव के पेट में दर्द हुआ, शूल चली, मिनिटों में चट पट हो गए। हमें रोते बिलखते छोड़ वे चल बसे।

कञ्चन के आसन, बासन सब कञ्चन के, कञ्चन के पलंग अमानत ही धरे रहे।
हाथी हुडसालन में, घोड़े घुड़सालन में, बंद जामदानन में कपड़े भी धरे रहे॥
सेवक सेविका अरु दौलत का पार नहीं, जवाहरात के डिब्बों पर ताले ही जड़े रहे।
यह देह छोड़ कर लंबे हुए प्राण जब, कुल के कुटम्बी सब रोते ही खड़े रहे॥

मेरा सुहाग लुट गया। मैं दो घड़ी पतिदेव के पास बैठ आमोद-प्रमोद की बातें करती, उनकी सेवा-शुश्रूषा कर अघ हरती। किन्तु उनके वियोग से पगली बन मैंने उन्हें कहा, नाथ! श्रीपाल का राज्याभिषेक किये बगैर ही आप चल बसे! ऐसी जल्दी क्या थी, यदि आप देश विदेश पधारते तो मैं झरोखे में बैठ, द्वार पर खड़ी रह कर आपकी प्रतीक्षा करती, किन्तु महा-यात्रा से आज तक कौन लौटा है? अब हमारी सुध कौन लेगा? विवश हो चुप होना पड़ा। हाय! आज भी विरह की घनघोर बड़ी रातें हृदय को विदीर्ण किये बिना नहीं रहतीं।

रोती हिये फाटती, कमला करे विलाप।
मतिसागर मंत्री तिसे, इम समझावे आप ॥६॥
हवे हियड़ो काठो करी, सकल सम्भालो काज।
पुत्र तुमारो नानड़ो, रोता न रहे राज ॥७॥
कमला कहे मंत्री प्रते, हवे तुमे आधार।
राज्य दई श्रीपाल ने, सफल करो अधिकार ॥८॥

मंत्री – रानीजी! हमारे दुर्भाग्य हैं कि सम्राट् अचानक चल बसे। क्या किया जाय Death defies the doctor मृत्यु की दवा नहीं। एक सत्पुरुष वीर क्षत्रिय की मृत्यु पर इस तरह रंज करना, रोना-पीटना उचित नहीं। राजकुमार पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। चिंता छोड़ कृपया आप अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दें।

रोना उसके लिये, जो बुरे कर्म कर मरता है।
रोना उसके लिये, जो परधन ईर्षा से जलता है॥

रोना उसके लिये, जो कर्ज रोग से मड़ना है।
रोना उसके लिये, जो सत् छोड़ असत् की ओर बढ़ता है॥
सिंहरथ धर्मध्यान जनसेवा में तन मन धन को लुटा गये।
सम्राट मरे कहाँ? वे अमर हैं, अपने कर्तव्य को निभा गये॥

हृदय नहीं मानता मंत्रीश्वर! अब यह मुन्ना आपका है। इसे राजतिलक कर शासन की व्यवस्था करियेगा।

## ढाल दसवीं

(राग मारू)

मृत कारज करी राय ना रे, सकल निवारी शोक;
मतिसागर मंत्रीसरे रे, थिर कीधा सवि लोक।
देखो गति दैव नी रे, दैव करे ते होय; कुणे नहीं चाले रे॥१॥
राज ठवी श्रीपाल ने रे, वरतावी तस आंण।
राज काज सवि चालवे रे, मंत्री बहु बुद्धि खाण, देखो०॥२॥
इण अवसर श्रीपाल नो रे, पीतरीओ मतिमूढ़।
परिकर सघलो पालटी रे, गुझ करे इम गूढ़ देखो०॥३॥
मतिसागर ने मारवा रे, वलि हणवा श्रीपाल।
राज लेवा चंपा तणु रे, दुष्ट थयो उजमाल देखो०॥४॥

प्रधानमंत्री मतिसागर ने, सम्राट सिंहरथ का अंतिम विधि-विधान कर जनता को धीर बंधाया पश्चात् शुभ मुहूर्त में एक परिषद् बुलाकर सर्वानुमति से श्रीपाल को राज-तिलक कर सर्वत्र उनकी दुहाई फेर दी गई।

मतिसागर समयज्ञता और बड़ी बुद्धिमानी से शासन व्यवस्था करते थे। भविष्य के गर्भमें क्या है? ज्ञानी बिना इसका निराकरण कौन कर सकता है? अखण्ड यश आज तक किसने पाया है? यही हाल प्रधान मंत्री का हुआ। श्रीपाल के काका अजितसेन ने अल्प समय में ही सारी बाजी उलट दी।

अजितसेन सत्ता का लोभ संवरण न कर सका, उसकी चालबाजी ने राजमाता के वैधव्य घाव पर नमक का काम किया। विद्रोह की आग भड़क उठी। मंत्री को गुप्तचर से पता लगा कि सम्राट् श्रीपाल की कुशल नहीं।

किमहिक मंत्रीसर लही रे, ते वैरी नी वात।
राणी ने आवी कहे रे, नासो लई अधरात। देखो० ॥५॥

जो जाशो तो जीवशो रे, सुत जीवाड़ण काज।
कुंवर जो कुशलो हशे रे, तो वली करशो राज। देखो० ॥६॥

राणी नाठी एकली रे, पुत्र चड़ावी केड़।
उवटे उजानी पड़े रे, विषमी जिहां छे वेड़। देखो० ॥७॥

जास जड़ोजड़ झांखरां रे, खाखर भाखर खोह।
फणिधर मणिधर ज्यां फरे रे, अजगर ऊंदर गोह। देखो० ॥८॥

उजड़ अबला रड़वडे रे, रयणी घोर अंधार।
चरणे खूंचे कांकरा रे, वहे लोही नी धार। देखो० ॥९॥

वरु वाघ ने वग्घड़ा रे, सोर करे शीयाल।
चोर चरण ने चीतरा रे, दिये उछलती फाल। देखो० ॥१०॥

घू घू घू घूअर करे रे, वानर पाड़े हीक।
खल खल परवत थी पड़े रे, नदी निझरण नीक। देखो० ॥११॥

बलियुं बेउनु आउखुं रे, सत्य शियल संधान।
वखत बलो कुंवर वड़ो रे, तिणे न करे कोई घात। देखो० ॥१२॥

रयण हिंडोले हींचती रे, सूती सावन खाट।
तस सिर इम वेला पड़ी रे, पड़ो दैव सिर दाट। देखो०॥ १३॥

वेत्राणजी! प्रधानमंत्री ने मेरे से आकर कहा, अजितसेन ने एक षड्यंत्र रचा है, महाराज श्रीपाल के अनिष्ट की संभावना है, अतः आप शीघ्र ही इसी समय यहाँ से चल दें। परिस्थिति

बड़ी गंभीर है। "**रहेगा नर तो बसाएगा घर**" इतना बोलते बोलते मतिसागर मंत्री का हृदय भर आया। उन की आँखों से आँसू टपकने लगे। फिर वे आगे कुछ न बोल सके।

मैं उसी समय अपने प्यारे लाल को गोद में ले राजमहल से उल्टे पैर चुपचाप भाग निकली। अँधियारी रात, अनजान मार्ग देख मेरे प्राण सूख गये। मेरे पैर सपाटे से आगे बढ़ते चले जा रहे थे। चलते चलते मैं एक निर्जर वन में जा पहुँची। चारों ओर सिर तक लंबा घास, पहाड़ी घाटियाँ, जंगली सियार, सूअरों की भगदौड़, बंदरों की किलकारियाँ, रह रह कर गो घुग्घू सांप, अजगरों के शब्द, झाड़ियों में जंगली चुहों की चूं चूं खड़बड़ाहट, गुफाओंमें गुर्राते शेर, चीतों की डरावनी प्रतिध्वनि मेरे हृदय को विदीर्ण कर रही थी। ठण्डी रात में बहती नदियाँ पानी के झरनों की आवाज दिल में कसक पैदा करती थी। चोर लुटेरों का भय मुझे आगे बढ़ने से मना कर रहा था, कटीली झाड़ियों ने मेरे वस्त्रों के चिंदे चिंदे कर डाले। कंकर-पथरों की ठोकरों से मेरे पैर लोहुलुहान हो गये फिर भी मैं अपने प्यारे सलोने मुन्ने श्रीपाल के रक्षार्थ मोह-वश भगवान भरोसे आगे बढ़ती ही गई। किन्तु बच्चे की दीर्घायु तथा किसी पुण्योदय, बड़े बूढ़ों के आशीर्वाद मार्ग में कोई हमारा बाल बांका न कर सका।

रड़वड़ता रजनी गई रे, चरी पंथ शिर शुद्ध।
तब बालक भूख्यो हुओ रे, मांगे साकर दूध देखो० ॥१४॥
तब रोती राणी कहे रे, दूध रह्या वत्स दूर।
जो लहिये हवे कूकशा रे, तो लह्या कूर कपूर देखो० ॥१५॥

**कमलप्रभा** – वेवाणजी! सूर्योदय हुआ। आगे जाकर साफ रास्ता मिला। मैं बहुत थक चुकी थी। एक वृक्ष के नीचे बैठ वस्त्र ठीक कर, कुछ विश्राम लिया। दिन चढ़ने पर बच्चा भूखा हुआ। समय पर कलेवा न मिलने से वह मचल पड़ा। उसे क्या पता कि मेरी माता पर क्या बीत रही है। इस समय हम कहां हैं। बच्चों को तो

---

**श्रीपाल रास लेखक का अभिप्राय:—**

रत्नजड़ित झूले, स्वर्ण पलंग, कोमल शैया, भव्य राजप्रासाद में रंगरेलियां करने वाली राजमाता के भाग्यमें आज दो घड़ी विश्राम लेने को हाथभर जगह भी नहीं। वाह रे वाह! कुटिल कर्म तुझे क्या कहूँ? कैसा संघर्ष? फिर भी वीरांगना कमलप्रभा निडर थी, उसके मुंह पर ग्लानि नहीं, सत्य-सतीत्व के बल का तेज था, प्रसन्नता थी।

सुख, दुख के साथ घनिष्ठ रूप में मिला हुआ है, जैसे दूध और पानी। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं है। दुःख ही सुख की अनुभूति और प्रगति का मूल है।

चाहिए समय पर दूध बताशे। श्रीपाल की प्यारी बोली भोली सूरत देख मेरा हृदय भर आया, मेरी आंखों से आँसू रुक न सके। यह भी कैसे हो सकता था कि मैं कानों से बहरी बनने का दंभ करती। श्रीपाल मां! मां!! दूध। बेटा! दूध तो दूर रहा, यदि अपने को रूखा सूखा अन्न भी हाथ लग जाय तो घी-घेवर पाए। अभी तेरी अभागिनी मां को न मालूम कितनी कर्मों की यातना भोगना शेष है।

मैंने अवश्य किसी जन्म में गरीबों के गले नख दे, उन के भोगोपभोग में विघ्न कर उन्हें दुःखी किया होगा, निरपराध जीवों की हिंसा कर अपना स्वार्थ साधा होगा, किसी के बालबच्चे–स्त्री–पुरुषों में मन मुटाव पैदा कर उन्हें कलंकित करने की चेष्टा की होगी, अथवा श्री देव गुरु धर्म की आशातना कर कर्म बंधन किया होगा—उसी का यह प्रत्यक्ष कटु फल है।

वेत्राणजी! जो मन में आया बड़बड़ा कर हृदय हलका किया, बच्चे को फुसला कर मैं वहां से आगे चल पड़ी।

इवे जाता मार्गे मली रे, एक कुष्टी नी फोज।
रोगी भलिया सात से रे, हींडे करता मोज देखो० ॥१६॥

कुष्टी पूछया पछी रे, सघल सुणावी वात।
वलतुं कुष्टी इम कहे रे, आरति म माय। देखो० ॥१७॥

आवी अम शरणे हवे रे, मन राखो आराम।
ए कोई अम जीवतां रे, कोई न ले तुम नाम। देखो० ॥१८॥

वेसर आपी बेसवा रे, ढांकी सघलुं अंग।
बालक राखी सोड़मां रे, बेठी थई खडंग। देखो० ॥१९॥

कमलप्रभा – वेत्राणजी! धूप अधिक चढ़ चुकी थी। जंगल में किसानों की बैलगाड़ियाँ बीड़ में चरते ढोर आदि की जरा भी आहट सुन मैं भय से कांप उठती, मेरा हृदय धड़कने लगता। बच्चे को छाती से चिपका पीछे फिर कर देखती और चल देती। कुछ दूरी पर बहुत से मनुष्यों को जाते देख मेरे जी में जी आया। वे प्रायः सभी रुग्ण थे। एक दो नहीं किन्तु सैंकड़ों की संख्या में बिचारे बड़े दुःखी मालूम होते थे, कई असह्य वेदना से कराह रहे थे। उन में से एक वृद्ध बड़ा भला और चतुर था। उसने शीघ्र ही मेरे हृदय की बात ताड़ ली। वह वहां से चलकर

मेरे पास आ, हमें धीर बंधाया और संरक्षण का अभिवचन दे, बैठने को एक टट्टू देने की उदारता की। उस की बातचीत से ज्ञात हुआ कि वे सातसौ पथिक कर्मवश इधर-उधर मारे-मारे भटक रहे हैं।

ए हवे आव्या शोधवा रे, वैरी ना असवार।
कोई स्त्री दीठी इहां रे, पूछे वारोवार। देखो० ॥२०॥
कोई इहां आव्यो नथी रे, झूठ म झंखो आल।
वचन न मानो अमतणो रे, नयणे जुओ निहाल। देखो० ॥२१॥
जो जोशो तो लागशे रे, अंगे रोग असाध।
नाठा बीहता बापड़ा रे, वलगे रखे विराध। देखो० ॥२२॥

कमलप्रभा – वैद्याणजी ! मैं वस्त्र से अपने शरीर और प्यारे मुन्ने को ढक कर चुपचाप आगे निकल गई। पीछे से घोड़ों के टापों की आवाज सुन मैंने जैसे ही घूमकर देखा तो यमराज की सेना के समान बहुत से स-शस्त्र सैनिक हमारी खोज करते हुए चले आ रहे थे! दूरसे उन्हें देख मेरे प्राण सूक गये। वे हमारे साथियों को लालपीली आँखें कर तलवार और डंडों के संकेत से डाट-डपट दे संतप्त कर रहे थे। किन्तु एक वृद्ध महोदय ने बड़ी बुद्धिमानी और नम्रता से उन सैनिकों का शान्ति से समाधान कर आपना पिण्ड छुड़ाया। वे रोग का नाम सुनते ही दुर्गन्ध से घबड़ा कर बिचारे अपने प्राण लेकर भाग गये।

कुष्टी संगत थी थयो रे, सुत ने उंबर रोग।
माडी मन चिंता घणी रे, कठिन करम ना भोग। देखो० ॥२३॥
पुत्र भलावी तेहने रे, माता चाली विदेश।
वैद्य औषध जोवा भणी रे, सहेती घणा किलेश। देखो० ॥२४॥
ज्ञानी ने वचने करी रे, सफल फलो मुज आश।
तेहिज हुँ कमलप्रभा रे, आ बेठी तुम पास। देखो० ॥२५॥
रास रूडो श्रीपाल नो रे, तेहनी दशमी ढाल।
विनय कहे पुण्ये करी रे, दुःख थाये विसराल। देखो० ॥२६॥

रानी कमलप्रभा अपने प्राणों की बाजी लगा, श्रीपाकुंवर के प्राण बचाने एक निर्जन वन में जा निकली। वहां वह राजकुमार को गोद से नीचे उतार कर भय से पीछे मुड़ कर देख रही है कि कहीं कोई सैनिक आ न जाय।

कमलप्रभा – वेवाणजी ! मानव दुःख, दर्द, अलाय, बलाय से बचने के अनेक प्रयत्न करता है। वह अंतिम सांस तक भी यह नहीं चाहता कि मेरे जीवन की इतिश्री हो जाय। कीन्तु फिर भी पूर्वसंचित अशुभ कर्म के प्रतीक ज्वर, खाँसी, पक्षाघात-लकुवा, तपेदिक आदि रोग आधि-व्याधि-उपाधि देह की परछांई की भांति मानव का पीछा नहीं छोड़ते हैं।

यही हाल मेरा हुआ। दुःखिनीके भाग्यमें सुख कहाँ ? मैं उधर अपने देवर अजितसेन के चंगुल से बची तो इधर श्रीपाल कुष्ट रोग का शिकार बन गया। मेरे राजा बेटे का दिन पर दिन स्वास्थ्य गिरता देख मैं चिन्ता से घुलने लगी। बैठते उठते, खाते पीते मुझे कहीं चैन नहीं। मैं कर ही क्या सकती थी ? अन्त में विवश हो एक दिन बच्चे को वृद्ध कुष्टी के भरोसे अकेला छोड़ मैं किसी निपुण वैद्य की खोज में चल पड़ी।

कमलप्रभा – वेवाणजी ! मार्ग में मैंने अनेक वैद्यों के द्वार खटखटाए। कई वृद्ध स्त्री-पुरुषों से सलाह ली। मुझे कहीं भी संतोष प्राप्त न हुआ। मैं जहाँ जाती वहाँ हँसी का पात्र बनती। फिर भी मेरे लाल श्रीपाल की ममता मुझे अपने ध्येय से पीछे हटने नहीं देती, और वास्तव में लोगों का कहना सही था कि वर बिना बरात, और रोगी को देखे बिना दवा कैसी ?

अन्त में आप के और हमारे समागम का सारा श्रेय परम कृपालु सद्गुरुदेव को ही है। उन्हीं की शुभासीस से मैं आज आपके सामने उपस्थित हू।

श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि नाना प्रकार के संकट दुःख दर्द कर्म बंधन मुक्त होने का अनुभूत सिद्ध मंत्र है सत्संग, सद्विचार और सत्कार्य श्रीपाल-रास की यह दसवीं ढाल सम्पूर्ण हुई।

## दोहा

रूप सुन्दरी श्रवणे सुणी, विमल जमाई वंश।
हरखे हियड़े गही गही, इणी परे करे प्रशंस ॥१॥
वचन वंत मयणा समी, नारी न को संसार।
जेणे बेउ कुल उद्धर्यां, सती शिरोमणि सार ॥२॥

महारानी रूपसुन्दरी अपने जमाई श्रीपाल का वंश परिचय और बाल्य जीवन की अद्भुत घटनाएं सुन चकित हो गई। उसने अपनी प्यारी बेटीको गले लगा, आशीर्वाद दिया। बेटी! तुम युग युग श्री जैनधर्म-सिद्धचक्र यंत्र की आराधना कर अपना जीवन सफल करो।

म्हारा सुहाग अमर रहे, तुम चिरायु हो। तुम-सी विनीत स्वभावी पतिव्रता नारियों से ही आज महिला जगत् का सिर ऊंचा है। धन्य है मयणा! तेने अपनी श्रद्धा, अनुपम धैर्य और शान्त भाव से एक महान् विपदा का सामना कर, ससुराल और पीयर दोनों कुलों को उज्वल कर धवल यश श्री प्राप्त की।

वर पण पुण्ये पामियो, नरपति निर्मल वंश।
पुत्र सिंहरथ राय नो, क्षत्रिय कुल अवतंस ॥३॥
रूपसुन्दरी रंगे जई, वात सुणावी सोय।
निज बंधव पुण्यपाल ने, ते पण हर्षित होय ॥४॥
चतुरंगी सेना सजी, साथे सबल परिवार।
तेजी तुरिय नचावता, अवल वेष असवार ॥५॥
रतन जड़ित झलके घणा, धर्या सूरियां पान।
ढोल नगारा गड़गड़े, नेजा फरके निशान ॥६॥
भाणेजी वर जिहां वसे, त्यां आव्या तत्काल।
निज मंदिर पधरावता, पुण्यवंत पुण्यपाल ॥७॥

रूपसुन्दरी अपनी वेराण कमलप्रभा से विदा ले घर आई और पुण्यपाल से कहा, बन्धु! आज अपने भाग्य जागे। अब तक हम मयणा के पतिदेव को एक कुष्टी साधारण पथिक मान संतप्त थे। किन्तु हमारा महान् सौभाग्य है कि वास्तव में उनका क्षत्रिय वंश राजघराने में हुआ है, और वे चंपानगरी के सम्राट् सिंहरथ के पुत्र श्रीपाल हैं।

यह सुन पुण्यपाल बड़े प्रसन्न हुए। वे उसी समय हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, पाय-दल, रत्नजड़ित तलवारें, डंके निशान, ढोल, नगारे आदि मंगल कलश ले अपने भानजा जमाई का स्वागत करने चल दिये।

## ढाल ग्यारवीं

देशी – (राय कहे राणी प्रत्ये सुण कामिनी रे)

आवो जमाई प्राहुणा, जयवंताजी, अम घर करो पवित्र गुणवंताजी।
सहु ने अचरिज उपजे, जयवंताजी, सुणता तुम चरित्र गुणवंताजी ॥१॥

गज बेसारी उत्सवे, जयवंताजी, पधारवा निज गेह गुणवंताजी।
माउलो ससरो पूरवे, जयवंताजी, भोग भला धरी नेह गुणवंताजी ॥२॥

पुण्यपाल का आवागमन सुन महाराज श्रीपाल सामने आए और अपने मामी ससुर को प्रणाम कर उन्हें बड़े आदर से अन्दर ले गये। पुण्यपाल जमाई का विनीत स्वभाव, रूप-सौन्दर्य देख चकित हो गए। मारे हर्ष उनका हृदय गदगद हो गया। वाह रे वाह क्या बात है! "त्रिया चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवोपि न जानाति" स्त्री का चरित्र और पुरुष का भाग्य कौन जान सकता है? भविष्य के गर्भ में क्या है? यह सामान्य व्यक्ति के वश की बात नहीं। मयणा! तू महा भाग्यवान है, आज जमाई का मुंह देख मेरा हृदय ठर गया।

मयणासुन्दरी ने आगे बढ़कर अपने मामा पुण्यपाल के चरणस्पर्श किये। पुण्यपाल – जमाईराज! धन्य है, आपने बचपन में अनेक कष्ट सहे। विपदा के बादल आपके भौंहों पर सल तक नहीं डाल सके। हम आशा करते हैं कि आप भविष्य में एक महान् व्यक्ति होंगे। आपसे हमें बहुत कुछ आशा है। अब अपने यहाँ पधारने की कृपा करें। पुण्यपाल दोनों पति-पत्नी को बड़ी धूम-धामसे हाथी पर बैठाकर अपने महल में ले गए और उन के ठहरने आदि की व्यवस्था की।

एक दिन बेठा मालिये, जयवंताजी, मयणा ने श्रीपाल गुणवंताजी।
वाजे छंदे नव नवे, जयवंताजी, मादल भुन्गल ताल गुणवंताजी ॥३॥
गय राणी रंगे जुवे, जयवंताजी, थेई थेई नाचे पात्र गुणवंताजी।
भरह भेद भावे भला, जयवंताजी, वाले पर परि गात्र गुणवंताजी ॥४॥
इण अवसर रयवाड़ी थी, जयवंताजी, पाछो वलियो राय गुणवंताजी।
नृत्य सुणी उभो रयो, जयवंताजी, प्रजापाल तिण ठाय गुणवंताजी ॥५॥
सुख भोगवतां स्वर्गनां, जयवंताजी, दीठां स्त्री भर्तार गुणवन्ताजी।
नयणे लाग्या निरखवा, जयवंताजी, चित्त चमक्यो तिणीवार गुण० ॥६॥
तत्क्षण मयणा ओखली, जयवंताजी, मन उपज्यो संताप गुणवंताजी।
अवर कोई वर पेखियो, जयवंताजी, है है प्रकट्युं पाप, गुणवन्ताजी ॥७॥

धिक् धिक् क्रोध तणे वशे, जय० मैं अविचार्यु कीध गुण०।
मयणा सरखो सुन्दरी जय० कोढ़ी ने कर दीध गुण० ॥८॥
ए पण हुई कुल खंपणी, जय० मुज कुल भरियो छार गुण०।
परण्यो प्रीतम परिहरि, जय० अवर कियो भरतार गुण० ॥९॥

दोनों पति पत्नी पुण्यपाल के भवन में बैठ तत्त्वचर्चा धर्मध्यान कर आनन्द से रहते थे। महाराज श्रीपालकी उदारता, गुणानुराग देख कई अच्छे अच्छे कलाकार दूर दूर से आकर उनका मनोरंजन करते। एक दिन एक नाट्यशास्त्रके विज्ञ अपनी कला का प्रदर्शन कर रहे थे। संगीताचार्य ने मृदंग, वीणा आदि वाद्यों की ताललय से उनके नृत्य को विशेष आकर्षित बना दिया था। उसी समय उद्यान से वापस लौटते समय उज्जैन नरेश प्रजापाल भी उधर आ निकले। मार्ग में संगीत की मधुर ध्वनि सुन वे वहीं स्तंभित हो गये, आगे न बढ़ सके। नर्तकों का हावभाव, कलाचातुर्य देख वे मुग्ध हो गए। अभिनय संपन्न होते ही मयणासुन्दरी को देख उनके मुंहकी आकृति बदल गई। प्रजापाल-अरे! नादान तेने यह क्या किया? महान् अनर्थ कर डाला, आवेश में आ प्रजापाल आपे से बाहर हो गये, किन्तु अब हो ही क्या सकता था? अंत में उन्हें अपनी अवस्था और दुराग्रह का स्मरण हो आया। हाय! कड़वा फल छे क्रोधना, क्रोध का परिणाम कभी ठीक नहीं होता है। मयणा के साथ एक सुन्दर नवयुवक को देख उनके हृदय को बड़ा आघात पहुंचा।

इणी परे उभो झूरतो जयवंताजी जब दीठो ते राय, गुणवंताजी।
पुण्यपाल अवसर लही जयवंताजी, आवी प्रणमें पाय, गुण० ॥१०॥
राज पधारो मुज घरे, जयवंताज, जुओ जमाई रूप, गुणवंताजी।
सिद्धचक्र सेवा फली, जयवंताजी, ते कह्युं सकल स्वरूप, गुण० ॥११॥
राये आवी ओलख्यो, जयवंताजी, मुख इंगित आकार, गुणवंताजी।
मन चिंते महिमा नीलो, जयवंताजी, जैनधर्म जगसार, गुण० ॥१२॥
मयणा ते सांची कही, जयवंताजी, सभा मांहे सवि वात, गुणवंताजी।
मैं अज्ञान पणे कर्युं, जयवंताजी, ते सघलो मिथ्यात, गुण० ॥१३॥

**मैं तुझ दुःख देवा भणी, जय० कीधो एह उपाय, गुण०।**
**दुःख टली ने सुख थयुं जय० ते तुज पुण्य पसाय, गुण०॥ ४॥**

प्रजापाल सुस्त हो आगे बढ़ रहे थे, उसी समय पुण्यपाल वहां आ पहुंचे। वे अपने बहनोई के विचारों को भांप गये। पुण्यपाल – आप जो सोच रहे हैं वह उचित नहीं। श्री सद्गुरु की कृपा से मयणा के भाग्य जागे। अपने जमाईजी को श्री सिद्धचक्र की सेवा फली। कृपया आप महल में पधारें। प्रजापाल सालेजी का आग्रह टाल न सके।

श्रीपाल ने खड़े हो, ससुर का स्वागत कर अभिवादन किया। मयणासुन्दरी पूज्य पिताश्री के चरण स्पर्श कर बाजू में खड़ी हो गई। श्रीपाल की आकृति—मुंह हाथ नाक, देख अब प्रजापाल की आत्मा में पूर्ण विश्वास हो गया कि वास्तव में मेरा संशय गलत था। उन्हें अपनी भूल पर आत्मग्लानि, महान् पश्चात्ताप हुआ, वे मयणा का सरल हृदय, भोली सूरत देख रो पड़े, लज्जा से उनका सिर झुक गया। अब उनके अंतरंग में ठीक तरह से जैन सिद्धान्त का बीजारोपण हुआ और विशुद्ध श्रद्धा का अंकुर फूट निकला।

**मयणा कहे सुण तातजी, जय० इहां नहीं तुम शंक गुण०।**
**जीव सयल वश कर्म ने, जय० कुण राजा कुण रंक। गुण०॥१५॥**
**मान तजी मयणा तणी, जय० गये मनाती माय। गुण०।**
**सजन सविथया एक मना, जय० उल्लट अंग न माय। गुण०॥१६॥**

मयणासुन्दरी – आप मानते हैं कि मैंने मयणा को महान् दुःख देने की चेष्टा की। पिताजी! सुख-दुःख बाजार की वस्तु नहीं, जिसे कि मानव अपनी इच्छानुसार आदान-प्रदान कर सके। "सव्वे जीवा कम्म वस" राजा हो या रंक, देव, दानव, तीर्थंकर गणधर प्रत्येक व्यक्ति को अपने पूर्वसंचित शुभ अशुभ-कर्म जीवन में भोगना ही पड़ते हैं। वे मानव धन्य हैं, जो कि कर्म-बन्धनके कारणों से सदा सावधान रहते हैं। आप रंज न करें। मुझे दुःख नहीं हुआ किन्तु श्री सिद्धचक्र आराधन करने का एक सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ।

प्रजापाल मयणासुन्दरी के वचनों से बहुत प्रभावित हुए। उन्हें अपने जीवन में प्रकाश और शान्ति का अनुभव होने लगा। चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। वे महारानी रूपसुन्दरी की धृष्टता को भूल उसे अपने साथ ली और चलते समय महाराज श्रीपाल को भी अपने राजप्रासाद में पधारने की विशेष प्रार्थना की

नयर सवि सणगारियुं, जय० चहुँटा चोक विशाल गुण० ।
घर घर गुड़ी उछले, जय० तोरण झाक झमाल। गुण० ॥१७॥
घरे जमाइ महोत्सवे, जय० तेड़ी आव्यो राय गुण० ।
संपूरण सुख भोगवे, जय० सिद्धचक सुपसाय। गुण० ॥१८॥
नयर मांहि प्रगट थई, जय० मुख मुख एहिज बात गुण० ।
जिन शासन उन्नति थई, जय० मयणा ए राखी ख्यात गुण० ॥१९॥
रास रूडो श्रीपालनो, जय० तेहनी अगियारमी ढाल गुण० ।
विनय कहे सिद्धचकनी, जय० सेवा फले तत्काल, गुण० ॥२०॥

चौपाई

खण्ड खण्ड मीठो जिम खण्ड, श्री श्रीपाल चरित्र अखण्ड ।
कीर्ति विजय वाचक थी लह्यो, प्रथम खंड इम विनये कह्यो ॥

उज्जैन के सम्राट् प्रजापाल का आदेश पा सेवकों ने महाराज श्रीपाल के भव्य स्वागत का प्रबंध किया। ध्वजा पताकाओं से सारा नगर सजाया गया। स्थान स्थान पर सुन्दर द्वार बना कर उन पर तोरण लटकाए।

जमाईराज के नगर प्रवेश करते समय श्री सिद्धचक्र यंत्र की जय हो! जय हो!! जयघोष से सारा आकाश गुंज उठा। सर्वत्र एक यही चर्चा थी कि "सत्यमेव जयते" सदा सत्य की ही विजय होती है। ये दम्पती चिरायु हो। धन्य है सौभाग्यशालिनी मयणा! तेने अपने सतीत्वबल से राणा के सोए भाग्य को चमका सुयश प्राप्त किया। दोनों पतिपत्नी आनंद से प्रजापाल के यहां रहने लगे।

श्रीपाल रास के लेखक श्रीमान् उपाध्याय विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि जिस प्रकार सांटे-ईख के प्रत्येक खण्ड में अधिक से अधिक मधुरता रहती है। उसी प्रकार श्रीपाल-रास के प्रथम खण्ड की यह ग्यारह ढाल सम्पूर्ण हुई। प्रत्येक ढाल एक से एक बढ़कर शिक्षाप्रद मननीय और रसीली है। मैंने यह कथा अपने गुरु परम कृपालु उपाध्याय कीर्तिविजयजी के मुख से श्रवण कर पाठकों के सामने प्रस्तुत की है। इस कथा के पाठक और श्रोताजन श्रीपाल-मयणासुन्दरी के समान श्री सिद्धचक्र आराधन कर सफलता प्राप्त करें। यही शुभ कामना।

—o—

ॐ अर्हन्नमः

ॐ ह्रीं सिद्धचक्राय नमः

# श्रीपाल-रास

## ( हिन्दी अनुवाद सहित )

अनुवादक—श्रीमद् विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के शिष्य मुनि श्री न्यायविजयजी

## द्वितीय - खण्ड

मंगलाचरण ( ग्रन्थकार की ओर से )

सिद्धचक्र आराधतां, पूरे वांछित कोड़ ।
सिद्धचक्र मुज मन वस्युं, विनय कहे कर जोड़ ॥१॥
सारद सार दया करी, दीजे वचन विलास ।
उत्तर कथा श्रीपाल नी, कहेवा मन उल्लास ॥२॥

जैसे दीपक घर को जगमगा देता है, उसी प्रकार आप के जीवन को चमकाने का एक मात्र उपाय है, श्री सिद्धचक्र आराधन । यदि आप जीवन, भाग्य और भविष्य के समस्त अन्धकार को दूर करना चाहते हैं तो शीघ्र ही नवपद – ओली, श्री सिद्धचक्र आराधन करें ।

### आप वंचित न रह जांय ?

आप जीवन में जो कुछ प्राप्त करना चाहते जिस से आप को अधिक मोह है, वह वस्तु वह व्यक्ति आप से कोसों भागते हैं, अनायास अनेक कठिनाइयाँ बीमारियाँ, उलझनें आकर आप को घर दबाती है । इस का प्रमुख कारण है, आप अब तक श्री सिद्धचक्र आराधन से वंचित रहे हैं । मन पर नियंत्रण करने का सरल और सुन्दर साधन है श्री सिद्धचक्र आराधन । मन में अपार शक्ति, जादुई चमत्कार है ।

# मन क्या है ?

इसे न तो तुम्हारी तेज आँखें देख सकतीं हैं न हाथ ही उसे अपने आधीन रख सकते हैं। मन का न कोई रूप है, न रंग, न आकार। वह विचित्र है, सब देखता है, सब सुनता है। हम जिस शक्ति द्वारा सुख-दुःख का अनुभव करते हैं उसी अदृश्य शक्ति का नाम है मन।

मनुष्य के लिये विजय प्राप्त करने के सबसे बड़े दो साधन हैं। पहली मन शक्ति और दूसरी तलवार। लेकिन मनशक्ति के सामने तलवार निर्बल सिद्ध हो चुकी है। महाराज श्रीपाल के जीवन में सफलता की जड़ है मन। वे मन की शक्ति के सम्राट थे। उन के मन में, रोम रोम में श्री सिद्धचक्र की भक्ति थी, वे आश्विन और चैत्र में केवल नौ दिन बीस बीस माला गिन कर ही चुप नहीं बैठते थे। वे महान घातक अन्तरंग शत्रु ईर्षा, क्रोध, घृणा, घमण्ड, संदेह और निराशा से सदा सावधान रहते थे। पाठक गण आगे पढ़ेंगे, श्रीपाल पर धवल सेठ ने जब जब भी आघात-प्रत्याघात किये हैं, तब तब वे मनशक्ति के बल से ही विजयी हुए हैं।

आज सौ में से निन्यानवे स्त्री-पुरुष ऐसे हैं जो श्री सिद्धचक्र आराधना से दूर हैं, इस के रहस्य से अनभिज्ञ हैं। कुछ स्त्री-पुरुष वर्ष में दो बार नवपद ओली करते अवश्य हैं, किन्तु वे केवल तप से शरीर सुखा कर रह जाते हैं। वे अपने मन की दिव्य शक्ति के गुप्त रहस्य को नहीं जान पाते हैं। ओली करने के बाद उन के दैनिक जीवन में परिवर्तन पैदा नहीं होता है। मन पर संयम न रखने के कारण खतरनाक शत्रु ईर्षा, क्रोध, घृणा, घमण्ड, संदेह और निराशा से लुट जाते हैं।

ईर्षा, क्रोध आदि घातक शत्रुओं से सदा सावधान रहो। श्री सिद्धचक्र की आराधना करो। विनय विजयजी कहते हैं कि मेरा निज का अनुभव है कि जीवन की सफलता का मूल मंत्र है सिद्धचक्र आराधना। मनुष्य भव पा कहीं आप श्री सिद्धचक्र की आराधना से वंचित न रह जांय।

हे शारदे! अब मैं श्रीपाल रास की उत्तर कथा लिखने का साहस करता हूँ तू मुझे विशुद्ध बुद्धि प्रदान कर। मैं तेरी शुभासीस से अवश्य सफलता प्राप्त करूँगा।

**मंगलाचरण** (अनुवादकर्ता की ओर से)

( १ )

**यह सिद्धचक्र चिंतामणि, सेवे सुर नर इन्द्र।**
**वंदन से लक्ष्मी मिले, कीर्ति बढ़े जिम चन्द्र॥**

सूरिवर राजेन्द्र को, वंदन सूरि यतीन्द्र।
हिन्दी अनुवादक न्याय है, लेखक विनय कोन्द्र ॥

( २ )

हे शारदे ! अब कर कृपा, मुनि न्याय के प्रयास पर।
द्वितीय खण्ड अनुवाद लिखूं, श्रीपाल के इस रास पर ॥
सफलता पाओगे निश्चित, सिद्ध भक्ति का प्रयास कर।
यह पाठक पढ़ो तुम ध्यान से, लक्ष्मी मिले साहस कर ॥

एक दिन रमवा निकल्यो, चहुँटे कुंवर श्रीपाल।
सबल सैन्य सु परवर्यो, यौवन रूप रसाल ॥३॥

मुख सोहे पूरण शशि, अर्ध चन्द्र सम भाल।
लोचने अमीय कचोलड़ा, अधर अरुण प्रवाल ॥४॥

दंत जिस्या दाड़िम कली, कंठ मनोहर कंबु।
पुर कपाट परि हृदय तट, भुज भोगल जिम लंबु ॥५॥

केड़ लंक केहरी समो, सोवन वन्न शरीर।
फूल खरे मुख बोलतां, ध्वनि जलधर गंभीर ॥६॥

चोक चोक चहुटे मल्या, रूपे माह्या लोक।
महेल गोख मेड़ी चढ़े, नर नारी ना थोक ॥७॥

महाराज श्रीपाल की अर्गला सी लम्बी भुजाएं, विशाल वक्षस्थल (छाती) अष्टमी के चन्द्र सा चमकता ललाट, तेजस्वी मुस्कराता मुख, अमृत के कटोरे से नेत्र, अनार दाने सी दंत-पंक्ति, होठों की लाली, शंख सी लंबी गर्दन, सिंह सी मजबूत पतली कमर, कंचन सी काया युवावस्था की सूचक थी, उनकी मेघ सी गंभीर मधुर सुकोमल वाणी और रूप सौन्दर्य में बड़ा आकर्षण था। उज्जैन के नागरिकों को श्रीपाल महाराज के दर्शन कर उनसे वार्तालाप करने की बड़ी उत्कण्ठा रहती थी।

एक दिन महाराज श्रीपाल हाथी, घोड़े, रथ, पायदल के साथ बड़ी सज-धज से घूमने निकले। जनता को ज्ञात होते ही चौराहों पर पैर धरने की जगह नहीं, अपार भीड़। हजारों स्त्री-

पुरुष, अपने मकानों की छतों और झरोखों पर चढ़ कर उनके दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे। स्थान स्थान पर प्रतिष्ठित नागरिक लोग अक्षत, मोतियों के स्वस्तिक, फूलों की वृष्टि कर उनका स्वागत करते थे। श्री सिद्धचक्र की जय ! श्रीपाल नरेश की जय ! जय हो ! जय हो !! बढ़े जाओ महरबान। जय निनाद से सारा आकाश गुंज उठा।

मुग्धा पूछे माय ने, मां ए कुण अभिराम।
इन्द्र चन्द्र के चक्कवी, श्याम राम के काम ॥ ६ ॥

माय कहे म्होटे स्वरे, अवर म झंखे आल।
जाय जमाई राय नो, रमंश कुंवर श्रीपाल ॥७॥

वचन सुणी श्रीपाल ने, चित्त मां लागी चोट।
धिक् ससरा नामे करी, मुझ ओलखावे लोक ॥८॥

उत्तम आप गुणे सुण्या, मज्झिम बाप गुणेण।
अधम सुण्या माउल गुणे, अधमाधम ससरेण ॥९॥

एक नादान बालिका ने झरोखे में अपना हाथ लम्बा कर अंगुली के संकेत से कहा, मां ! मां !! ये घोड़ा कुदाते कौन आ रहे हैं ? राम हैं ? कृष्ण हैं ? इन्द्र हैं ? चक्रवर्ती हैं ? कामदेव हैं ? उत्तर कौन दे ! मां का जी तो सवारी की तड़क भड़क में चिपटा था। वह तो जनता के गहने-गांठे, भांति भांति के कपड़ों की चमक दमक, देखने में लगी थी।

लड़की ने झुंझला कर मां का ओढ़ना खींच लिया। बुढ़िया ने लाज ढकते हुए कहा, अरे, यह क्या करती है ? लड़की ने मुस्कराते हुए कहा, मां ! बता, ये कौन हैं ? बुढ़िया ने झिड़क कर कहा – पगली, क्यों झूठ मूठ इन्हें राम, कृष्ण कह रही है ? ये न राम हैं, न कृष्ण। " ये हैं अपने सरकार प्रजापाल के बेटी-जमाई "।

वृद्धा के कर्कश शब्द सुन छोटी सी बालिका चुप रह गई, वह आगे कुछ न पूछ सकी, कि ये कहां के हैं ? कब आए ? इत्यादि।

बूढ़ी मां के चिड़चिड़े स्वभाव, कटु स्वर ने बच्ची के मन को ही नहीं किन्तु श्रीपालजी के हृदय को भी विदीर्ण कर दिया। उन्हें बड़ी ठेस पहुँची। सहसा उनकी मुखाकृति बदल गई, हर्ष के बदले उद्वेग आ खड़ा हुआ। वे अब आगे बढ़ न सके।

उनके होठ फरकने लगे। श्रीपालजी – (मन ही मन में) माँ! मुझे तुम्हारी वृद्धावस्था का विचार आता है। नहीं तो......देता।

विषैले इन वचन बाणों ने, दिल मेरा खसोटा है।
अब बता दूंगा! यह सोना खरा है? या कि खोटा है॥१॥

मानव में आवेश का आना स्वाभाविक है, किन्तु समझदार व्यक्ति अपना संतुलन बनाए रखते हैं, वे उसमें बहते नहीं हैं।

उसी समय महाराज श्रीपाल के विचार बदले। ओह! मैंने यह क्या किया? यह बूढ़ी मां का मर्मवचन नहीं किन्तु एक सही प्रेरणा है। मार्गदर्शक पर क्रोध कैसा? इसमें अप्रसन्न होने की बात ही क्या है? जिस प्रकार अन्य नागरिक मेरा स्वागत कर अभिनंदन करते हैं, उसी प्रकार यह भी एक उपहार है।

रे मानव! तू किसी को भार स्वरूप न बन। स्वावलम्बी बन। अपनी दुर्बलता को तिलांजली दे मैदान में आ पुरुषार्थ कर। कूपमण्डूक न बन। उन्नति और अवनति की बागडोर स्वयं तेरे हाथ में है। जीवन का कोई सुन्दर सिद्धान्त बना उस पर दृढ़-संकल्प हो आगे बढ़ता चल।

महाराजा श्रीपाल उसी समय महल की ओर वापस लौट गए। उन्होंने सोचा कि मनुष्य चार प्रकार के होते हैं। उत्तम, मध्यम, अधम और अधमाधम।

(१) जो लोग अपने गुणों से प्रसिद्धि प्राप्त कर यशस्वी बनते हैं, वे उत्तम हैं। (२) जो लोग अपने पिता के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं वे मध्यम हैं। (३) जो लोग मामा के नाम से ख्याति प्राप्त करते हैं, वे अधम हैं। (४) जो अपने श्वसुर के नाम से ख्याति प्राप्त करते हैं, वे अधमा-धम हैं। अतः मुझे इस चौथी श्रेणी में रहना पसंद नहीं।

## ढाल पहली

(राग जेतश्री)

क्रीड़ा करी घर आवियो, चपल चित्त श्रीपालो रे।
उच्चक मन देखी करी, बोलावे प्रजापालो रे॥१॥ क्री०

राज कोणे आज रीसव्या, कोणे लोपी तुम आण रे।
दीसो छो कांइ दूमणा, तुम चरणे अम प्राण रे॥२॥ क्री०

चित्त चाहो तो आपणुं, लीजे चंपा राज रे।
छडे प्रयाणे चालिये, सबळ सैन्य लइ साज रे ॥३॥ श्री०

बाहर से लौट कर मयणासुन्दरी ने राजप्रसाद में देखा कि आज प्राणनाथ का न चल विचल हो रहा है, उसने उनके मनोरंजन के अनेक उपाय किये, किन्तु फिर भी उसे सफलता न मिली। उधर से प्रजापाल भी वहाँ आ पहुँचे। किन्तु महाराज श्रीपाल को पता नहीं कि उनके पीछे कौन खड़े हैं। वे तो चुपचाप तकिये के सहारे गाल पर हाथ लगा, अपने विचारों में मग्न थे।

प्रजापाल]- कहिये सा'ब ! आज तो आप जल्दी पधार गए? महाराज श्रीपाल ने खड़े होकर अभिवादन किया, उन्हें अपने पास आसन पर ऊंचा बैठाया। महाराज श्रीपाल-कोई बात नहीं! चलता है! प्रजापाल – नहीं, नहीं! आप संकोच न करें। कहीं किसी सेवक, सेविका ने आपकी आज्ञा का अनादर तो नहीं किया? मालूम होता है, कि आज आपके मन में कुछ खेद है। संभव है, आप अपनी बपौती चंपानगरी की सत्ता हस्तगत करने की कुछ सोचते हों? इसमें आप तनिक मात्र भी संकल्प-विकल्प न करें। यदि आप की यही इच्छा है, तो आप आज ही प्रयाण कर दें, हम प्राणों की बाजी लगा कर भी आप का साथ देने को तैयार हैं। आप कोई चिंता न करें। हमारे पास लड़ाई के विपुल साधन हैं।

कुंवर कहे सुसरा तणे, बळे न लीजे राज रे।
आप पराक्रम जिहां नहीं, ते आवे कुण काज रे ॥४॥ श्री०
तेह भणी अमे चालशुं, जोशुं देश-विदेश रे।
भुज बळे लखमी लही, करशुं सकल विशेष रे ॥५॥ श्री०

महाराज श्रीपाल—राजेन्द्र! धन्यवाद। यह आपकी बड़ी उदारता है। जीवन उन्हीं का सार्थक है, जो कि अपने भुजबल से आगे बढ़े। मैं निःसंदेह एक दिन चंपानगरी सत्ता हस्तगत करके रहूँगा। मुझे अपनी मातृभूमि और बपौती का गौरव है। किन्तु इस समय "देशाटनं पंडित मित्रता च" मुझे पहले कुछ सत्पुरुषों का सत्संग और देश-विदेश में परिभ्रमण कर अनुभव करना आवश्यक है। मैं अपने पुरुषार्थ से ही धनोपार्जन कर सारे काम करूंगा। आप कष्ट न करें।

## हार्दिक आशीर्वाद :—

श्रीपाल-रास पृष्ठ ८५

कमलप्रभा — श्रीपालकुंवर ! स्वास्थ्य ही धन है । तुम इस ओर सदा सावधान रहना । प्रवास में बे-भान हो सोना बहुत ही बुरा है । याद रखो ! श्री सिद्धचक्र का भजन-पूजन-स्मरण करना कदापि न भूलना, अनेक संकटों से पीछा छुडाने का यह एक ही अचूक उपाय है । मेरे लाल ! तुम्हारा प्रवास सफल हो ।

माय सुणी आवी कहे, हुँ आवीश तुज साथ रे।
घड़ीय न धीरूं एकलो, तुहिज एक मुज आथ रे ॥६॥ की०
कुंअर कहे परदेश मां, पग बंधन न खटाय रे।
तिणे कारण तुम इहां रहो, दो आशीष पसाय रे ॥७॥ की०

कमलप्रभा, श्रीपाल के परदेशगमन के समाचार सुन रो पड़ी। वह शीघ्र ही दौड़ कर अपने पुत्र के पास आ बोली : बेटा ! क्या सचमुच तुम जाने की तैयारी कर रहे हो ? परदेश सिधाते समय तुम मुझे न भूलना, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।

महाराज श्रीपाल – पूज्य माताजी ! धृष्टता के लिये क्षमा करें। प्रवास एक ऐसी समस्या है कि उसमें पग बंधन उचित नहीं। अतः विवश हुँ। कृपया आप आनंद से यहीं पर विराजियेगा। बेटा ! मेरा जी नहीं चाहता है कि तुम एक घड़ी भी मेरी आँखों से दूर रहो। तू ही एक मेरे जीवन का सहारा आँखों का तारा है। माताजी ! यदि आपकी कृपा है तो मैं आपसे दूर नहीं। आप सदा मेरे मनमन्दिर में आसीन हैं। आप का आशीर्वाद चाहिए।

जल में बसे कुमुदिनी, चंदा बसे आकास।
जो जाके हृदये बसे, सो वाही के पास॥

मांय कहे कुशला रहो, उत्तम काम करजो रे।
भुज बले वैरी वश करी, दरिसण वहेलुं देजो रे ॥८॥ की०
संकट कष्ट आवी पड़े, करजो नवपद ध्यान रे।
रयणी रेहजो जागतां, सर्व समय सावधान रे ॥९॥ की०
अधिष्ठायक सिद्ध चकना, जेह कह्या छे ग्रंथ रे।
ते सवि देवी देवता, यतन करो तुम पंथ रे ॥१०॥ की०
एम शिखावण देइ घणी, माता तिलक वधावे रे।
शब्द शकुन होय भला, विजय मुहूर्त पण आवे रे ॥११॥ की०
रास रच्यो श्रीपाल नो, तेह ने खण्डे रे।
प्रथम ढाल विनये कही, धर्म उदय थिति मंडे रे ॥१२॥ की०

कमलप्रभा ने अपने लाल के भाल पर कुंकुम अक्षत का तिलक कर आशीर्वाद दिया।

यश बढ़े, दौलत बढ़े, मन में सदा संतोष हो।
धर्म सत् उपकार का, जीवन अलौकिक कोष हो ॥
ताप सब जाते रहें, दुश्मन सदा न्यारे रहें।
पाप कर्म जो कुछ रहे हों, लेश वे सारे बहें ॥
ज्ञान हो सम्मान हो, नित नवपद का ध्यान हो।
हाथ डालोगे वहीं विजय श्री का वरदान हो ॥

कमलप्रभा – वत्स श्रीपाल! तुम्हारी विदेशयात्रा सफल हो, श्रीसिद्धचक्र यंत्र के अधिष्ठायक देव-देवियाँ सदा तुम्हारा साथ दे। परदेश का काम है, रात्रि के समय अधिक निद्रा न लेना। देखो! परदेश में सफलता प्राप्त कर शीघ्र ही वापस लौट आना।

महाराज श्रीपाल मां की सीख शिरोधार्य कर, विजय मुहूर्त में जैसे ही आगे बढ़ घोड़ा हिह हिनाया, छींक का शब्द सुनाई दिया। पक्षियों की अस्पष्ट बोली जय-विजय की सूचक थी।

श्रीमान् विनय विजयजी महाराज कहते हैं कि भावी भाव अवश्य बन कर रहता है। मां और बेटे का वियोग होते क्या देर लगी? श्रीपाल रास के दूसरे खण्ड की यह पहली ढाल सम्पूर्ण हुई।

## दोहा

हवे मयणा इम विनवे, तुम से अविहड़ नेह।
अलगी क्षण एक नवि रहूँ जिहाँ छाया तिहाँ देह ॥१॥
अग्नि सहेतां सोहिलो, विरह दोहिलो होय।
कंत विछोही कामिनी, जलण जलंती जोय ॥२॥
कहे कुंवर सुन्दरी सुणो, तूं सासु पय सेव।
काज करी उतावलो, हुं आवुं छु हेव ॥३॥

---

कई लोग शुभ काममें अथवा प्रयाण में छींक होते ही घबरा जाते हैं, मन में शंका करने लगते हैं। किन्तु छत शरीखे आदि के ऊपर से होने वाली छींक सदा सिद्धिदायक शुभ की सूचक है। डाबी छींक, जिमणी खांसी भी शुभ मानी जाती है।

मन पाखे मयणा कहे, पियु तुम वचन प्रमाण।
छे पंजर सूनु पड्युं, तुम साथे मुज प्राण ॥३॥

प्राणनाथ ! आपका मेरा अभिन्न हृदय, अभेद व्यवहार है। आपके देह की परछांही के समान ही मैं भी सदा आपके साथ हूँ। मुझे न भूलना। विरह एक ठण्डी आग है। नारीहृदय को आग उतना संतप्त नहीं करती है, जितना पतिवियोग।

महाराज श्रीपाल ने मुस्करा कर कहा—प्रिये! देशाटन में निश्चिंतता आवश्यक है। अतः तुम परम पूज्य माताजी की सेवा में रहो। इतनी अधीर न होओ, चिन्ता न करो। मैं अपनी मनोकामनाएं सफल कर शीघ्र ही वापस लौट आऊँगा।

प्राणनाथ ! दासी आपकी आज्ञा का अतिक्रम कैसे कर सकती है। किन्तु मेरा हृदय, और सद्भावनाएं तो सदा आपके साथ हैं, केवल नाम मात्र की यह जड़ देह यहां समझियेगा।

चन्द्र बिना चातक दुःखी, स्वाति जल बिन सीप।
पतिव्रता पति बिन दुःखी, ज्योति बिना जस दीप ॥

## ढाल-दूसरी

( राग मल्हार, तर्ज कोश्या उभी आंगणे )

वालम वहेला रे आवजो, करजो माहरी सार रे।
रखे रे विसारी मूकता, लही नव नवी नार रे, वालम० ॥१॥

आज थी करीश एकासणुं, कर्यो सचित्त परिहार रे।
केवल भूमि संथारशुं, तज्यां स्नान शणगार रे, वालम० ॥२॥

ते दिन वली कदी आवशे, जिहां देखीश पियु पाय रे।
विरहनी वेदना वारशुं, सिद्धचक्र सु पसाय रे, वालम० ॥३॥

मयणासुन्दरी प्राणनाथ ! आप के रूप-सौन्दर्य, साहस, बल, पुरुषार्थ, धैर्य, सद्गुण आदि प्रबल पुण्योदय से आकर्षित हो अनेक राजा-महाराजा अपनी कन्याएं आपको प्रदान करेंगे

आप उन नई स्त्रियों की चकाचौंध, रसीली बातों मुझे भूल न जाना।

मैं आपकी शुभ मंगल कामना के लिये आज से प्रतिदिन एकासणा व्रत करूँगी। अंजन मंजन, स्नान, सचित पदार्थ, बहुमूल्य वस्त्र-आभूषण आदि शृंगार का परित्याग कर भूमिशयन विरह की वेदना के समय मंगलमय श्री सिद्धचक्र का ध्यान कर आपके शुभागमन की प्रतीक्षा करूँगी। वह दिन, वह घड़ी धन्य होगी कि जिस दिन पुनः आपके पवित्र चरणों के इस दासी को दर्शन होंगे। कृपया आप शीघ्र ही वापस लौट कर इस दासी की सुध लें।

**सज्जन बोलावी इणी परे, लेई ढाल कृपाण रे।**
**चन्द्र नाड़ी स्वर पेसता, कुंवरे कीध प्रयाण रे, वा० ॥४॥**

## स्वरविज्ञान—

आज स्वरविज्ञान का अध्ययन लुप्त सा हो रहा है। यह वह प्रसिद्ध चमत्कारिक विद्या है जिसे जान कर मानव स्वस्थ दीर्घायु बन जीवन को सफल बना सकता है। ध्यान की विधि से मन को केन्द्रित कर अनेक भवों के कर्मों को क्षय कर सहज ही परमपद को प्राप्त कर लेता है

**स्वर विज्ञान का एक संक्षिप्त परिचय :—**

नाड़ी के नाम और स्थान:—(१) इडा, दाहिनी नाक, सूर्य स्वर (२) पिंगला-बांई नाक चन्द्रस्वर। (३) सुषुम्णा-नासिका का मध्य भाग अर्थात् दोनों नासिका से एक साथ हवा निकलता। (४) हस्ति जिह्वा दाहिना नेत्र। (५) गान्धारी-बांया नेत्र। (६) पूषा-दाहिनो कान। (७) यशस्विनी बांया कान। (८) अलबुषा मुख (९) कुहू-मूत्रस्थान। (१०) शंखिनी-गुदा, ये नाड़ी के दस स्थान है।

इन में इडा, पिंगला, सुषुम्णा ये तीन नाड़ियां और पृथ्वी, जल, अग्नि वायु और आकाश ये पंच तत्त्व प्रमुख हैं।

| दिशा में बलवान | तत्त्व | आकार | रंग | स्वाद | बीज | अंगुल | कार्य | स्थान | स्वामी | वार सुबह |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पश्चिम | पृथ्वी | □ | पीला | मधुर | लं | १२ | स्थिर | नासिक का मध्य | चंद्र | बुध सोम |
| पूर्व | जल | ◡ | सफेद | तुरा | वं | १६ | चर | नाक का नीचे का मध्य | चंद्र | शनि रवि |
| दक्षिण | अग्नि | △ | लाल | चरका | रं | ४ | क्रूर | उपर का भाग | सूर्य | म शुक्र |
| उत्तर | वायु | ○ | हरा | खट्टा | यं | ८ | उच्चाटन | बांका देखा | सूर्य | गुरु |
| त्याज्य | आकाश | निराकार | काला | बे मालूम | हं | नाक में अस्पष्ट | धर्मध्यान | दोनों स्वर शून्य गति | सूर्य | |

स्वयं महाराज श्रीपाल मयणासुन्दरी और अन्य अपने परिचित जनों से विदा ग्रहण कर केवल ढाल तलवार ले वे उज्जैन से चल दिये। न तो उन्होंने किसी से वाहन आदि का प्रबंध करने के लिये कहा और न किसी से कुछ सहायता की याचना। वे तो अपने चन्द्र स्वर के बल पर ही निर्भर थे। अपना भविष्य चमकाने की एक सिद्ध कला है स्वरविज्ञान।

देश पुर नगरना नव नवां, जोतो कोतुक रंग रे।
एकला सिंह परे म्हालतो, चढ्यो एक गिरि शृंग रे ॥५॥ वालम०

सरस शीतल वन-गहन मां, जिहां चंपक तरु छाह रे।
जाप जपतो नर पेखियो, करी उरध बांह रे ॥६॥ वालम०

जाप पूरो करी पुरुष ते, बोल्यो करिय प्रणाम रे।
सु-पुरुष तू भले आवियो, सर्यु माहरूं काम रे ॥७॥ वालम०

कुंवर कहे मुज सरीखो, कहो जे तुम्ह काज रे।
घणे आगे उपकार ने, दीधां देह धन राज रे ॥८॥ वालम०

ते कहे गुरु कृपा करी घणी, विद्या एक मुज दीध रे।
घणो उद्यम कार्यो साधवा, पणं कारज न सिद्ध रे ॥९॥ वालम०

| तिथि | समय | कृष्ण पक्ष | शुक्ल | फल | वार | स्वामी |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १-२-३ | प्रातः | सूर्य स्वर | चन्द्र स्वर | शुभ | मं. श. र. | सूर्य स्वर |
| ४-५-६ | प्रातः | चन्द्र स्वर | सूर्य स्वर | शुभ | बु गु शु सो | चन्द्र स्वर |
| ७-८-९ | प्रातः | सूर्य स्वर | चन्द्र स्वर | शुभ | राशि का | स्वामी |
| १०-११-१२ | प्रातः | चन्द्र स्वर | सूर्य स्वर | शुभ | मे. म कर्क तु. | सूर्य स्वर |
| १३-१४-१५ | प्रातः | सूर्य स्वर | चन्द्र स्वर | शुभ | वृ. धु. मि. कु. | चन्द्र स्वर |
| अमावस्या | प्रातः | सूर्य स्वर | चन्द्र स्वर | शुभ | कन्या | सुषुम्णा स्वर |

उत्तर साधक नर विना, मन रहे नहीं ठाम रे।
तिणे तुम ए करूं विनती, अवधारि ये मम स्वाम रे ॥१०॥ वालम०

महाराज श्रीपाल अनेक गांव, नगर, देहात, वन-उपवन में घूमते फिरते एक किसी ऊँचे पहाड़ पर जा पहुँचे। वहाँ देवदारु, चंदन सेमल, ढाक के वृक्ष, लताओं के झुरमुट, हिरण, खरगोश, बारहसिंगे, मयूर, सारस आदि पशुपक्षी ताल तलैया, निर्मल जल का दृश्य बड़ा सुन्दर था। उन्होंने चम्पे की ठण्डी छाया देख विश्राम किया। मन्द मन्द शीतल सुगन्धित पवन से उनकी सारी थकावट दूर हो गई। वे जलपान कर बैठे थे कि उन्हें सामने एक साधक तपस्वी दिखाई दिया। वह उर्ध्वभूजा कर ध्यान कर रहा। महाराज श्रीपाल भी श्रीसिद्धचक्र के ध्यान में मस्त थे।

साधक पलक खोलते ही अपने सामने एक हृष्ट-पुष्ट सुन्दर नवयुवक को देख चकित हो गया! उसने आगे बढ़ कर महाराज श्रीपाल को अभिवादन कर कहा। महानुभाव! आपने बड़ी कृपा की आज चिर प्रतीक्षा के बाद आप श्रीमान् के दर्शन हुए।

श्रीपाल—मेरे योग्य कोई सेवा? वे मानव धन्य हैं, जो सदा सत्संग-परोपकार-परमार्थ में अपना समय और संपत्ति अर्पण करते हैं। साधक-महानुभाव! हार्दिक धन्यवाद। मुझे आपका शान्त स्वभाव, निस्पृह सेवा, उदार भावना देख मुझे बहुत संतोष हुआ। एक बार मेरे गुरुदेव ने प्रसन्न हो मुझे एक विद्या प्रदान की थी। उसकी कठोर साधना में आज वर्षों बीत गये किन्तु शरद ऋतु के बादल के समान मेरा सारा श्रम विफल हुआ। वह विद्या अब तक सिद्ध न हुई। क्या आप इस साधना में कुछ सहयोग दे सकेंगे? बड़ी कृपा होगी।

---

## चंद्र स्वर के कार्य :—

कलशारोपण, खात मुहूर्त, मूर्ति-प्रतिष्ठा, भवन-निर्माण, नवीन घर में वास, दान देना, लग्न, तोरण मारना, देव-गुरु-दर्शन, औषधि लेना अथवा बनाना, परमार्थ-परोपकार, दीक्षा व्रत-ग्रहण, जलपान, किसी से मित्रता करना। व्यापारादि कार्य करना, पश्चिम तथा दक्षिण में गमन करना शुभ माना जाता है। जलपान—पेशाब करना।

## सूर्य स्वर में :—

यंत्र, मंत्र, तंत्र युद्ध, विद्या अध्ययन, शास्त्रार्थ, व्यायाम, नगरप्रवेश, किसी को कर्ज देना, शयन, भोजन और पूर्व तथा उत्तर दिशा में गमन करना श्रेष्ठ माना जाता है।

(१) प्रातःकाल और मध्याह्न में चन्द्र स्वर संध्या के समय सूर्य स्वर का चलना शुभ माना है। (२) किसी से लेन देन, वाद विवाद, या कोई सलाह-विचार करना हो तो अपना चन्द्र या सूर्य स्वर जो भी समय पर चलता हो उसके बांई तरफ सामने वाले व्यक्ति को बैठा कर बात करनेसे मनोकामनाएं सफल होती हैं। ऐसा स्वर शास्त्र का अभिप्राय है। आहार निहार (शौच) करना।

कुंवर कहे साध विद्या सुखे, मन करी थिर थोभ रे।
उत्तर साधक मुज थकां, करे कोण तुज क्षोभ रे ॥११॥ वालम०
कुंवरना सहाय थी ततखिणे, विद्या थई तस सिद्ध रे।
उत्तम पुरुष जे आदरे, तिहां होय नव निद्ध रे ॥१२॥ वालम०
कुंवर ने तेणे विद्या धरे, दीधी औषधि दोय रे।
एक जल तरणी अवर थी, लागे शस्त्र नहीं कोय रे ॥१३॥ वालम०

महाराज श्रीपाल – भय एक विष है। यह मानव की सफलता में अनेक रोड़े अटकाता है। आज जीवन को सफल बनाने में लाखों स्त्री-पुरुष इसी लिये असफल हो रहे हैं कि उनके मस्तिष्क में भय का भूत सवार है। आप मानसिक चंचलता का परित्याग कर निर्भय हो फिर से अपनी साधना करियेगा। अवश्य सिद्धि-सफलता आपका स्वागत करेगी। मैं आपके साथ हूँ।

नवयुवक की प्रेरणा ने साधक के रक्त में सनसनी पैदा कर दी, विद्युत् बल से उसका वर्षों का काम घण्टों में निपट गया। वह सफलता प्राप्त कर फूला न समाया। उसने प्रसन्न हो दो दिव्य औषधियाँ यथा नाम तथा गुण एक जल तरणि और दूसरी शस्त्र हरणि महाराज श्रीपाल के चरणों में भेंट कर उनका आभार माना। सिद्धियाँ तो सदा पुण्यवान पुरुषों के चरणों में लौटा करती हैं।

कुंवर विद्याधर दोय जणा, चाल्या पर्वत मांहि रे।
धातुरवादी रस साधता, दीठा तरु छांहीं रे ॥१४॥ वालम०
तेह विद्याधरने कहे, तुमें विधि कह्यो जेह रे।
तिणे विधे खप अमे बहु कर्यो, न पामे सिद्धि एह रे ॥१५॥ वालम०
कुंवर कहे मुज देखतां, वली एह करो विधि रे।
कुंवरनी नजर महिमां थकी, थई तत्क्षण सिद्धि रे ॥१६॥ वालम०
धातुरवादी कहे नीपनुं, कनक तुम अनुभव रे।
एहमांथी प्रभु लीजिये, तुमतणो जे मन भाव रे ॥१७॥ वालम०

कुंवर कहे मुज खप नहीं, कुण उचले भार रे ।
अल्प तिणे अंचल बांधियुं, करी घणी मनुहार रे ॥१८॥ वालम०

साधक और श्रीपाल कुंवर दोनों पर्वत की घाटियाँ पार कर आपस में बातचीत करते हुए बहुत दूर निकल गए । आगे उन्हें एक सघन वटवृक्ष के नीचे दो कीमियागर मिले जो कि अपने कार्य में असफल हो बेचारे चुपचाप अपना सा मुंह लिये बैठे थे । साधक को देखते ही एक ने आँख बदल कर कहा—रे ढोंगी ! तेरे चक्कर में फँस हम अपने समय और संपत्ति दोनों से हाथ धो बैठे । दुविधा में दोनों गये, "माया मिली न राम"

श्रीपाल कुंवर ने मुस्करा कर कहा—अंतराय कर्म क्या नहीं करता । अपनी भूल दूसरों पर न मढ़ो । कहो क्या बात है ? तुम्हें स्वर्ण चाहिए ? लो श्री सिद्धचक्र का नाम, और फिर से करो तुम्हारा काम । कीमियागर की क्या शक्ति थी जो कुंवर की बात को टाले ? उसने जैसे ही दुबारा भट्टी चढ़ाई, तो पो बारह पच्चीस बावन तोला पाव रत्ती कार्य सिद्ध होते देर न लगी । स्वर्ण का ढेर देख वह चकित हो गया । उसकी प्रसन्नता का पार नहीं । वह मान गया कि वास्तव में महापुरुषों की दृष्टि में अमृत बरसता है । उसने हाथ जोड़ कर कहा—प्रभो ! अपनी इच्छानुसार स्वर्ण ग्रहण कर इस दास को अनुगृहीत करियेगा । दोनों मित्र कीमियागर की बात सुन बड़ी द्विधा में पड़ गए । उन्हें स्वर्ण की चाह नहीं थी, कौन बेकार भार उठाए ! लाख मना करने पर भी उसने एक स्वर्ण का ढेला कुंवर के पल्ले बांध ही दिया ।

अनुक्रमे कुंवर आवियो, भरू अच्च नगर मझार रे ।
हेम खरची सजाई करी, भला वस्त्र हथियार रे ॥१९॥ वालम०
सोवन मढ़िये ते औषधि, बांधी दोय निज बांही रे ।
बहुविध कौतुक देख तो, फरे भरू अच्च मांही रे ॥२०॥ वालम०
खंड बीजो एह रासनो, बीजा ए तस ढाल रे ।
विनय कहे धर्म थी सुख हुए, जेम राय श्रीपाल रे ॥१२॥ वालम०

श्रीपाल कुंवर अपने मित्र-साधक और कीमियागरों से विदा ग्रहण कर आनंद से घूमते-फिरते भरूंच आ पहुँचे । आज यहाँ आने का उनके जीवन में पहला अवसर था । नगर के सौध शिखरी जिन चैत्य, भव्य भवन, नागरिकोंकी सौजन्यता, रहन-सहन वेषभूषा देख वे बहुत प्रसन्न हुए । आगे

बढ़ कर एक सराफ के यहाँ स्वर्ण बेच उन्होंने बाजार से अनेक बहुमूल्य अस्त्र, शस्त्र, वस्त्रादि खरीदे। एक सुनार से स्वर्ण का आवरण ( तावीज ) बना उसमें अपने प्रिय मित्र का उपहार दिव्य औषधि रख अपने भुज पर धारण की, अब वे आनन्द से भरूच में रहने लगे थे, प्रतिदिन सुबह-शाम बड़े ठाठ से घूमने जाते।

श्रीपाल रास के लेखक श्रीमान् उपाध्याय विनय विजयजी कहते हैं, यह दूसरे खण्ड की दूसरी ढाल सम्पूर्ण हुई। जिस प्रकार श्री सिद्धचक्र की आराधना, धर्म ध्यान के प्रभाव से श्रीपाल कुंवर को सुख सौभाग्य प्राप्त हुआ उसी प्रकार श्रोतागण और पाठक भी भाग्यशाली बनें।

## दोहा

कोसंबी नयरी वसे, धवल सेठ धनवंत।
लोक अनर्गल धन भणी, नाम कुबेर कहंत ॥१॥
शकट ऊँट गाड़ाभरी, करियाणा बहु जोड़ी।
ते भरू अच्चे आवियाँ, लाभ लहे लख कोड़ी ॥२॥
वस्तु सकल वेची तिणे, अवर वस्तु बहु लीध।
जल वट प्रवरण पूरवा, सकल सजाई कीध ॥३॥

## व्यापारी धवल सेठ :-

भरूच नगर एक अच्छा व्यापारिक केन्द्र है। वहाँ दूर से अनेक सेठ साहूकार आ बसे थे। आसपास गांवों से कृषक लोग गेहूँ, जुवार, चने, उड़द, कपास आदि कच्चा माल लाते और बदल में सोना, चांदी, लोहा, वस्त्रादि गृहोपयोगी पक्का सामान ले जाते थे। दूकानदार सुबह से शाम तक क्रय-विक्रय करते करते बेचारे थक जाते फिर भी ग्राहक उनका पीछा नहीं छोड़ते थे।

एक दिन अच्छा मोटा ताजा एक सेठ अपनी मूंछों पर हाथ फेरते हुए बड़े ठसक उसके साथ मंडी में आ निकला। उसे देखते ही मधु-मक्खियाँ की तरह चारों ओर से उस पर दलाल लोग टूट पड़े। परिचय से उन्हें ज्ञात हुआ कि आप कोसंबी निवासी धवल सेठ हैं। इनके साथ हजारों घोड़े, बैल, ऊँट गाडियाँ माल से लदी देख कोई इन्हें लक्ष्मीपुत्र कहता तो कोई कुबेर पति। सेठ ने अल्प समय में ही लाखों-करोड़ों का क्रय-विक्रय कर मनचाहा धनोपार्जन किया फिर भी उन्हें संतोष न हुआ।

अचल अचल कैलाश हो, कनक रजत ते पूर।
लोभी तृण सम मानता, तृष्णा नभ सी दूर ॥
लोभी धन में रत रहे, मूर्ख भोग रत जान।
मेधावी नर शान्ति में, मिश्र तीन में मान ॥

रात्रि के समय सेठ शैय्या पर लेटे लेटे कई संकल्प-विकल्प करते कभी पंसारी बनते तो, कभी सर्राफ, कभी कपड़े बाजार के अधिपति बनने की सोचते। क्षण क्षण में उनके विचार बदलते रहते। अनेक बार करवटें बदलने पर भी उनको आँखों में नींद नहीं आई। अंत में उन्हें समुद्र—यातायात का धन्धा करने की सूझी।

एक, जुंग वहाण कियुं, कुआ थंभ जिहाँ सट्ठ।
कुआ थंभ सोले सहित, अवर जुंग अड़सट्ठ ॥४॥

वड़ सफरी वहाल घणां, बेड़ा बेगडा द्रोण।
शिल्ला खूर्प आवर्त्त म, भेद गणे तस कोण ॥५॥

इणी परे प्रवहण पांच, पूर्यां वस्तु विशेष।
बंदर मांहे आणिया, पामी नृप आदेश ॥६॥

मालिम पट पुस्तक जुए, सूखाणी सूखाण।
ध्रू अधिकारी ध्रूनणी, दोरी भरे निशान ॥७॥

करे किराणी साचवण, नाखूदा ले न्याउ।
वायु परखे पंजरी, नेजामां निज दाउ ॥८॥

खरी मसागति खारू आ, सज्ज करे सह दोर।
हलक हलेसा हाल वे, वहु बेठा बिहुँ कोर ॥९॥

पंचवर्ण ध्वज वावटा, शिर करे चामर छत्र।
वहाण सवि शणगारिया, माहे विविध वाजित्र ॥१०॥

सूर्योदय होते ही सेठ को बड़ी चिन्ता हुई, अब कैसे क्या करना? व्यापार बच्चों का खेल नहीं। यह एक शत्रंज की चाल है, जहाँ "नजर चुके, माल पराया"। धवल सेठ ने सुबह से शाम तक कई लोगों से विचार-विमर्श किया। बात की बात में यह समाचार जनता के कानों तक पहुँच गया। फिर क्या कहना? श्रीमन्तों को मार्ग-दर्शन का खर्च नहीं लगता है। कई बेकार वाचाल भाग्यहीन लोग अपनी महत्त्वपूर्ण अनोखी सूझ पान-सुपारी के बदले औरों समर्पित कर चल देते थे तो कई बेकार की सिरपच्ची कर रस्ता नापते। सेठ बड़े बूढ़े बूढ़े थे। उनका सिद्धान्त था कि "सुनना सब की और करना मन की"।

मनुष्य उधार लेनदेन, भाड़े के वाहन, दूकान और मकान में भाग्य से ही पनपता है। महापुरुषों का अभिप्राय है कि सदा कर्ज और भाड़े के कीटाणु से बच कर रहो। फले फूले रहना है तो प्रत्येक काम सचाई और रोकड़ दाद से करो।

धवल सेठ ने भाड़े के जहाज न लेकर अच्छे कुशल कलाकारों से अपने स्वतंत्र पान सौ नवीन जहाज बनवाये! उसमें जूंग जलयान बहुमूल्य और कलापूर्ण थे। एक साठ कूप स्तंभ का, व दूसरे अड़सठ जहाज सोलह कूप स्तंभ के थे। शेष सफरी, बेगड़, द्रोण-मुख, शिल्प, सूर्प आवर्त्त आदि जहाज भी एक से एक बढ़ कर थे।

धवल सेठ ने भरूच राज्य से अनुमति प्राप्त कर अपने जहाजों को बंदरगाह पर लगाये। पश्चात् उनमें गुड़-शक्कर, श्रीफल, वस्त्र किराणादि माल भरा कर अन्य व्यापारियों को भी भाड़े से अपने साथ चलने को आमंत्रित किया गया।

जहाज चालक हवा पानी, चट्टाने कीचड़ जल की गहराई, और दिशा आदि देखने में बड़े निपुण थे। अपने कार्य में वे सतर्क हो चलने के लिये आदेश की प्रतीक्षा कर रहे थे।

सातभूई वाहणतणी, निविड़ नालिनी पाति।
वयरी ना वाहण तणी, करे खोखरी खाति ॥११॥

सुभट सनूरा सहस दश, बड़ा बड़ा जूंझार।
बेठा चिहुँ दिशि मोरचे, हाथ विविध हथियार ॥१२॥

इंधण जल संबल ग्रही, बहु व्यापारी लोक।
सोहे बेठा गोखड़े, नूर दिये धन शेक ॥१३॥

हवे नांगर उपाड़वा, वड़ा जुंगनी जाम।
नाल धड़ू की नाल सवि, हुई धड़ो धड़ ताम ॥१४॥

सवि वहाणना नांगरो, करे खराखर जोर।
पण नांगर हाले नहीं, सबल मच्यो तव शोर ॥१५॥

भरूच बंदर पर रंगबिरंगी ध्वजा-पताकाए और आम के कोमल पत्तो के तोरणों से सुशोभित जहाजों का जमघट सुन दूर दूर से कई लोग उन्हें देखने आये थे, कई अपने सगे-सम्बन्धी जन को विदा देने एकत्रित हो रहे थे, कई लोग जल-मार्ग की यात्रा की उमंग में सेठ को मुँह मांगा भाड़ा दे चलने को उतावले हो रहे थे तो कइ प्रवास में पीने को मीठा जल खाद्य पदार्थों का संग्रह कर रहे थे। जहाजों के प्रबंध और संरक्षण के लिये हजारों स-शस्त्र सैनिक साथ थे। चारों ओर बड़ी चहलपहल थी। धवल सेठ का संकेत होते ही जुंग जहाज के सातवें खण्ड पर दन से तोप छूटी, एक के पीछे एक ऐसे क्रमशः सौ तोपों की आवाज से सारा गगन मण्डल गुंज उठा। लोग अपने कानों पर हाथ रख देखते रह गये। जहाज चालकों ने तोपें छूटते ही लंगर उठाए, किन्तु वे अनेक प्रयत्न करने पर भी सफल न हो सके। वे अपना सा मुंह ले बैठ गये।

धवल सेठ झांखो थयो, चिंता चित्त न माय।
शीकोतर पूछण गयो, हवे किम करवुं माय ॥१६॥

शीकोतर कहे सेठ सुण, वहाण थंभ्या देवी।
छांडे बत्रीश लक्षणों, पुरुष तणो बलि लेवी ॥१७॥

जहाज स्तंभित देख धवल सेठ का मुंह उतर गया। वे सुस्त हो चिन्ता के मारे बेचारे ज्योतिषी, भोपे, बड़वों के द्वार खटखटा इधर उधर भटक ने लगे। रंग में भंग होते देख चारों ओर अशांति फैल गई। एक शीकोतर ने कहा—सेठ! यह किसी व्यन्तरी-देवी का उपद्रव है, देवी बिना भख के नहीं छोड़ेगी। तुम्हें किसी बत्तीस लक्षण पुरुष का बलिदान देना पड़ेगा।

# द्वितीय खण्ड-तीसरी ढाल

( तर्ज-श्रेणिक मन अचरिज थयो )

धवल सेठ लई भेटणुं, आव्यो नरपति पायरे।
कहे एक नर मुजने दियो, जेम बलि बाकुल थाय रे॥ ध० १॥
राय कहे नर ते दियो, सगो नहीं जस कोय रे।
ग्रहि कर गो ग्रही तेहने, जे परदेशी होय रे॥ ध० २॥
सेवक चिहुं दिसी सेठना, फरे नयर मां जोता रे।
कुंवर देखी सेठ ने, बात कहे सम होता रे॥ ध० ३॥
दीठो बत्रीश लक्षणो, पुरुष एक परदेशी रे।
कहो तो झाली आणीये, शुद्धि न को तस लेशी रे॥ ध० ४॥
धवल कहे आणो इहां, म करो घड़ीय विलंब रे।
वलो देईने चालिये, बाहर नहीं तस बूंब रे॥ ध० ५॥

धवल सेठ बड़े चतुर थे।वे उसी समय एक सोने का थाल फल फूल, वस्त्र और बहु मूल्य आभूषणों से सजा कर भरूच नरेश की सेवा में पहुँचे। राजा को सादर उपहार भेंट कर उनसे व्यन्तरी के बलिदान के लिये एक बत्तीस लक्षण पुरुष की प्रार्थना की।

राजा ने कहा, सेठजी! अपने स्वार्थ के लिए किसी निरपराध नर का वध करना मानवता नहीं। किसी अज्ञान स्वार्थी भोपे बडवे म्लेच्छ लोगों के दम झांसे में आकर धर्म के नाम पर या शान्ति की कामना से देवी देवताओंको मुर्गे, पाड़े, बकरे आदि का बलिदान देने वाले व्यक्ति अपने आपको धोखा देते हैं। हिंसात्मक बलि देना मानों जान बूझ कर अपने पैरों पर कुठाराघात करना है। जगदम्बा को सृष्टि के सभी जीव समान रूप से प्रिय हैं। मां अपने बच्चों के रक्त से कदापि काल अपने हाथ रंगना नहीं चाहती है।

सेठ को इतना समझाने पर भी वे न समझे—गिड़गिड़ाने लगे। स्वार्थी कीट क्या नहीं करते हैं? अन्त में विवश हो राजा ने कहा, कि तुम जानों, तुम्हारी करणी तुम्हारे साथ। किन्तु देखो! किसी नागरिक पर हाथ साफ न करना!

धवल सेठ को तो आपना स्वार्थ सिद्ध करना था वे राजेन्द्र को प्रणाम कर, वहां से खिसक कर सीधे अपने स्थान पर आये और बड़ी देर तक अपने विश्वसनीय सेवकों से बातचीत करते रहे। अन्त में एक सैनिक ने उठ कर कहा, मालिक! मैंने आज सुबह बाजार से लौटते समय बाजार के चौराहे पर एक बड़े सुन्दर नवयुवक को घूमते फिरते देखा था। संभव है वह कोई परदेशी हो। सेठ ने अपने सिपाही की पीठ ठोक कर कहा, वाह रे वाह! सरदारजी धन्य है! दृष्टि बड़ी तेज है। यदि कोई एक अनजान भोला भाला परदेशी कहीं हाथ लगे तो आप शीघ्र ही उसे पकड़ कर ले आइयेगा। अपन उसका बलिदान कर यहां से चुपचाप चल देंगे। किसी को पता भी न लगेगा कि कहां क्या हुआ। सरदार अपने साथियों को साथ ले परदेशी की खोज में चल पड़ा।

सुभट सहस दस सामटा, आवे कुंवरनी पासे रे।
अभिमानी उद्धत पणें, कडुआ कथन प्रकाशे रे ॥ध० ६॥
उठ आव्युं तुज आडखुं, धवलधिंग तुज रुठो रे!
बलि करशे तुजने हणी, म कर मान मन झूठो रे ॥ध० ७॥
बलि नवि थाए सिंहनुं, मूरख है ये विमासे रे।
धवल पशुनुं बलि थशे, वचने कांई विरासो रे ॥ध० ८॥
वचन सुणी तम बांकड़ा, सेठने सुभट सुणावे रे।
सेठ विनवो रायने, बहोलु कटक अणावे रे ॥ध० ९॥

श्रीपाल कुंवर बाजार से घूम फिर कर बड़े आनन्द से वापस अपने निवासस्थान पर लौट रहे थे। सामने से एक सैनिक ने आकर कुंवर से गर्जकर कहा, ठहरो! कहां भागे चले जा रहे हो? बातकी बातमें उन्हें चारों ओर से हजारों सिपाहियों ने आ-घेरा, डांट डपट, गंदे शब्दों की झड़ी लग गई। अब तुम चेत जाओ, तुम्हारे जीवन का किनारा आ-लगा है। हमारे सेठ तुम्हारा बलिदान किये बिना न रहेंगे।

श्रीपाल कुंवर ने मुस्करा कर कहा, वाह रे वाह! सरदारजी! कहीं तुम्हारे सेठ की बुद्धि चरने तो नहीं गई? जरा अपने हृदय और बड़े बूढ़ों से पूछो! कहीं सिंह का बलिदान होते अपने कानों से सुना? या आंखों से कभी देखा है? कदापि नहीं।

याद रखो! अपने स्वार्थवश किसी प्राणी का वध कर देवी-देवताओं से अनुग्रह की आशा करना एक मात्र जंगलीपन, बुद्धि का अजीर्ण है। संभव है बलिदान होगा तो धवल सेठ का ही होगा। उनमें पशुता अभी शेष है।

एक भोले भाले सहृदय परदेसी नवयुवक का विशाल वक्षस्थल, घुटने तक लम्बी भुजाएं, कमल-नयन, चमकता ललाट, निडरता, धैर्य और अनुपम साहस देख सारे सैनिक गण स्तब्ध हो गये। श्रीपाल कुंवर के खरे टंकसाली शब्दों से उनके हृदय पर अहिंसा की छाप लग गई। वे युवक का दिव्य तेज सहन न कर सके। सभी इधर उधर बगलें झांकने लगे।

अपने सरदार की आँख देखते ही एक गुप्तचर भागता हुआ धवल सेठ के पास पहुँचा और बडी चतुराई से कुछ कानाफूंसी कर वह शीघ्र ही वापस लौट गया। सेठ अपने अनुचर का संदेश सुन बडी दुविधा में पड़ गये। ओह! एक जग से कल के छोकरे में इतना बल, ऐसा दिव्य तेज कि जिसे देख मेरे शूरवीर योद्धाओं को अपनी विजय में कुछ संदेह है। हाय! मैंने व्यर्थ ही सोया सिंह जगाया। किन्तु अब तो मान-प्रतिष्ठा का सवाल है। साथ ही उधर सारे जहाज रुके पडे हैं। करना भी तो क्या? कुछ बुद्धि काम नहीं करती है।

धवल सेठ उल्टे पैर भाग कर सीधे भरूच नरेश की शरण पहुँचे और उनसे सहयोग प्राप्त कर, श्रीपालकुंवर से युद्ध करने के लिये शूरवीर योद्धाओं की एक विशाल सेना भेजी।

एक लड़ो दोय सैन्य शुं, जब अतुली बल जूझे रे।
चहुरा वच्चे धूंखल मच्यो, कायर हीयणा ध्रजे रे ॥ध० १०॥
कुंत तीर तलवारना, जे जे घाले घाय रे।
कुंवर अंगे लागे नहीं, औषधी ने महिमाय रे ॥ध० ११॥
कुंवर ताकी जेहने, मारे लाठी लोदे रे।
लह वहता लांबा थई, ते पुहवी ए पोढ़े रे ॥ध० १२॥
भेंसा परे रण खेतमां, चिहुँ दिशि धिगड़ थाय रे।
जूझ्या जोध वेला जिस्या, शिंगे विलगा जाय रे ॥ध० १३॥
मस्तक फूट्या केईना, पड्या केईना दांत रे।
कोई मुखे लोही वमे, पडी सुभटोनी पांत रे ॥ध० १४॥

केई पेठा हाटमां, केई पोलमां पेठा रे।
केई दांते तरणा देइ, नाठिगया भई ने बैठा रे॥ ध० १५॥
केई कहे कायर अमे, केई कहे अमे रांकरे।
केई कहे मारो रखे, नथी अमारो वांक रे॥ ध० १६॥
केई कहे पेटार थी, अशरण अमे अनाथ रे।
मुखे दिये दश आंगली, दे वली आडा हाथ रे॥ ध० १७॥

भरूच नगर में सहसा एक महान् भयंकर उत्पात मच गया। गुप्तचर का संकेत पाते ही भूखे सियार के समान सैनिक लोग श्रीपाल कुंवर पर टूट पड़े। चारों ओर मस्त भैंसों की मुठ-भेड़ के समान भगदौड़ मच गई। नुकीले भाले चमकीली तलवारें ढालों से टपकती देख जनता भयभीत हो गई। श्रीपालकुंवर भी बड़ी श्रद्धा से श्री सिद्धचक्र का स्मरण कर बराबर सैनिकों का सामना करते हुए, आगे बढ़ते चले जा रहे थे। नागरिक लोग अपने विशाल भवनों की अटारियों पर चढ़ चढ़ कर घमासान युद्ध देख चकित हो गए। अपने दांतों तले अंगुली देख कहने लगे, ओह! अपार सैनिकों के बीच अकेले एक नवयुवक के ऐसे फुर्तीले हाथ, अतुल बल, अनोखा साहस तो शायद ही किसी मानव में हो! देखो! इस बहादुर नवयुवक ने भवान्तर में कैसे महान शुभ कर्मों का उपार्जन किया है, धन्य है। इसका एक भी प्रहार खाली नहीं जाता है।

प्रत्येक निशाना अनेक सिपाहियों को धराशायी कर यमपुर की हवा खिला कर रहता है। जिस ओर भी वीर युवक के पैर बढ़े उस ओर सैनिक दल का सफाया। रक्त की नदी बह निकली। जिधर देखो उधर नर-मुण्ड ही नर-मुण्ड दिखाई देते थे। कोई घायल हुआ तो, किसी का हाथ टूटा, पैर कटा, दांत टूटे, कई कायर सिपाही दुम दबा कर नागरिकों की दुकान, मकान और पोल में जा छिपे। बात की बात में सैनिकदल तितर बितर हो गया। धवल सेठ के वीर सैनिक और भरूच के मूछ मरोड़ शूरवीर योद्धाओं के छक्के छूट गए। उन्हें छठी का दूध याद आ गया। जैसे पशु वन-लताओं में उलझ कर किंकर्तव्यविमूढ हो जाते हैं, वैसे ही वे भी लाख प्रयत्न करने पर सफल न हो सके।

श्रीपाल कुंवर को अपनी भुज पर बंधी हुई शस्त्र हरणी औषधि के प्रभाव से एक भी घाव न लगा। शत्रु के प्रति उनका हृदय वज्र से भी अधिक कठोर और शरणागत के लिये फूल सा कोमल था। श्रीपालकुंवर के सामने कई सैनिक अपने मुंह में घास का तिनका ले गरीब गाय

बनकर चलते बने, तो कई अपने दांतों तले दसों अंगुलियां दबाकर प्राणों की भीख मांगते दिखाई देते थे। कई अपना पेट बता, जान लेकर भाग निकले।

धवल सेठ ते देखता, आवी लाग्यो पाय रे।
देव सरूपी दीसो तुमे, करो अपने सुपसाय रे ॥ ध० १८॥
महिमा निधि महोटा तुमे, तुम बल शक्ति अगाध रे।
अविनय कीध अजाणते, ते खमजो अपराध रे ॥ ध० १९॥
अवधारो अम विनती, करो एक उपगार रे।
थम्भा प्रवहण तारवो, उतारो दुःख पार रे ॥ ध० २०॥

अपने सैनिकों की हार देख धवल सेठ के हाथ पैर ठण्डे पड़ गये। अन्त में वे अपना सा मुँह ले श्रीपाल कुंवर के पास पहुँचे। चरणस्पर्श कर गिडगिडाते हुए कहा, दयालु! क्षमा करें। मेरे नेत्र आप महापुरुष को पहिचान न सके। आप के अपार बल, गम्भीर हृदय का कौन पार पा सकता है! मैं अपनी धृष्टता, उद्दण्डता, के लिये आपसे बार बार क्षमा चाहता हूं। मेरी आप श्रीमान् से एक नम्र प्रार्थना है कि मेरे पांच सौ जहाज समुद्र में रुके हुए पडे हैं। कृपया उन्हें तिरा कर इस पामरका उद्धार करें।

कुंवर कहे ए कामनुं, शुं देशो मुज भाडुं रे।
सेठ कहे लख सौनैया, खुतुं काढो गाडुं रे ॥ ध० २१॥
सिद्धचक्र चित्तमां धरी, नवपद जाप न चूके रे।
वड वाहण उपर चडी, सिंह नाद ते मुके रे ॥ ध० २२॥
जे देवी दुश्मन हती, दुष्ट गई ते दूर रे।
वाहण तर्या कारज सर्या, वाजे मंगल तूर रे ॥ ध० २३॥
बीजे खण्डे ढाल ए, त्रीजी चितमां धरजो रे।
विनय कहे वहाण परे, भवियण भवजल तरजो रे ॥ ध० २४॥

श्रीपालकुंवर बड़े निस्पृह, दयालु और परोपकारी थे। वे चन्द गिनती की स्वर्ण मुद्राओं में अपने जीवन की अनमोल घडियाँ बदलना महान् अपराध समझते थे किन्तु जैसी देवी वैसी पूजा

का होना स्वाभाविक था। श्रीपालकुंवर ने कहा, सेठजी! इस कार्य का आप मुझे क्या श्रम देंगे? बस, श्रमका नाम सुनते ही सेठ को बुखार आ गया। वे चुस्त हो बोले अच्छा! मैं आपको एक लाख स्वर्ण मुद्राएं भेंट करूंगा। अब विलम्ब न करें। इस गाडी को पार लगा दें, तो गंगा नहाएं।

श्रीपाल कुंवर आत्मविश्वास और बडी श्रद्धा से श्री सिद्धचक्र का स्मरण कर जुंग नामक बडे जहाज पर चढ़े। चढ़ते ही वहां पर उन्हों ने बडे जोर से सिंहनाद किया, अर्थात् श्री सिद्धचक्र भगवान की जय हो! जय हो!' जयघोष से सारा आकाश गूंज उठा। श्री सिद्धचक्र का नाम सुनते ही जहाजों को स्तंभित करनेवाली दुष्ट व्यन्तरी उसी समय वहाँ से नौ दो ग्यारह हुई। सारे जहाज एकसाथ डिग-मिगाने लगे। जहाजों को बन्धनमुक्त देख धवल सेठ की जान में जान आई। जहाज चालक, दिशा दर्शक, प्रवासी व्यापारी आदि के हृदय में एक प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। चारों ओर मंगल गीत, ढोल नगारे बाजे बजने लगे। जनता श्रीपाल कुंवर का अभिनन्दन कर उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगी। धन्य है, धन्य है सत्पुरुष! सर्वत्र स्थान स्थान पर यही एक ध्वनि सुनाई देती थी।

ग्रन्थलेखक श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास द्वितीयखण्ड की तीसरी ढाल सम्पूर्ण हुई। जिस प्रकार श्री सिद्धचक्र के प्रभाव से धवलसेठ के पांचसौ जहाज तिरे उसी प्रकार इस श्रीपाल-रासके पाठक और श्रोतागण श्री सिद्धचक्र की आराधना कर भवसागर तिरें।

## दोहा

ते देखी चिन्ते धवल, चढ्यो चिंतामणि हाथ।
बडो बखत जो मुज हुए, तो ए आवे साथ ॥१॥
एक लाख दीनार तस, देइ लाग्यो पाय।
कर जोडी ने विनवे, वात सुणो एक भाय ॥२॥
वर्ष प्रत्ये एकेक ने, साहस देऊं दीनार।
सेवा सारे सहस दश, जोध भला झुंझार ॥३॥
तुमने मुँह मांग्या दिऊं, आओ अमारी साथ।
ए अवधारो विनती, अमने करो सनाथ ॥४॥

धवलसेठ श्रीपाल कुंवर का बल पुरुषार्थ देख चकित हो गये। मान गये कि यह निश्चित ही कोई एक सिद्धपुरुष है। इसे अपने साथ लेना मानों अपना भाग्य चमकाना है। धवलसेठ ने उसी समय एक लाख स्वर्णमुद्राएं श्रीपालकुंवर के चरणों में रख, हाथ जोड़कर प्रार्थना की।

कुंवरजी! आप एक अनजान परदेशी हैं। इधर उधर मारे मारे न भटक कर यदि अपने साथ रहें तो अच्छा है। धंधे पानी से लग जाओगे। यहां आपको अनेक सुविधाएं और वेतन मिलेगा। आपको मालूम है? मेरे यहां दस हजार आदमी पलते हैं, उनमें कई वीर योद्धा हैं। प्रत्येक को मैं वार्षिक एक हजार स्वर्ण मुद्राएं वेतन देता हूँ। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप इस स्वर्णावसर को अपने हाथ से न गवाएं।

कुंवर कहे हूं एकलो, लेऊं सर्वनो मोल।
ए सर्वनुं एकलो कारज करूं अडोल ॥५॥
ते धननुं लेखु करी, सेठ कहे कर जोड।
अमे वणिक जन एकने, किम देवाय क्रोड ॥६॥
लेवर कहे सेवक थई, दाम न झालूं हाथ।
पण देशांतर देखवा, हुं आवुं तुम साथ ॥७॥
भाडुं लइ वहाण मां, दा मुज बेसण ठाम।
मास प्रते दीनार शत, भाडु परदयुं ताम ॥८॥

धवल सेठ के घमण्डी शब्द सुन श्रीपाल कुंवर ने कहा, सेठजी धन्यवाद। आप मुझे मुंह मांगा श्रम देंगे। यह आपकी बड़ी उदारता है। मेरे अकेले का वेतन उतना ही होगा जितना कि आपके दसहजार अनुचरों का। सेठ ने अपनी अंगुलियों पर कुछ गिनती कर कहा, अरे! आप यह क्या कह रहे हैं? एक करोड रुपये बाप रे बाप! श्रीपाल कुंवर ने कहा, याद रखियेगा! मैं आपका इतना द्रव्य लूंगा, तो समय आने पर उतनी ही सेवा भी दूंगा। अन्यथा चन्द गिनती के सिक्कों में मैं अपने आपको बेचना नहीं चाहता। "पराधीन सपने सुख नाहिं" जीवन के विकास में परतन्त्रता सदा बाधक है। मेरा उद्देश्य है, देश-विदेश का प्रवास कर विशेष ज्ञान और अनुभव प्राप्त करना। आप अपने जहाज में मुझे कुछ स्थान देंगे? प्रतिमाह क्या किराया लेंगे? बस, किराये का नाम सुनते ही धवल सेठ के मुंह से लार टपक पडी। वे मन ही मन कहने लगे, वाह रे वाह! क्या कहना (अपनी मूंछे मरोडकर) अब तो मेरी पांचों अंगुलियां घी में हैं।

कुंवरजी ! स्थान के लिये तो मेरी ना नहीं, किन्तु मासिक किराया सौ स्वर्ण मुद्रा से कम न होगा। श्रीपाल कुंवर ने अपनी स्वीकृति प्रदान कर कहा, आप स्थान का प्रबंध कर दें।

## द्वितीय खण्ड–ढाल चौथी

राग-मल्हार (जी हो जाण्यु अवधि प्रयुंजने)

जी हो कुंवर बेठो गोखड़े, जी हो महोटा वहाण मांहि।
जी हो चिहुं दिशि जलधि तरंगना,
जी हो जोवे कौतुक त्यांहि, सुगुण नर पेखो पुण्य प्रभाव।
जी हो पुण्ये मन वांछित मले, जी० दूर टले दुःखदांव ॥ सु० १ ॥
जी हो सढ हंकार्या सामटा, जी हो पूर्या घण पवणेण।
जी हो वड़ वेगे वहाण वहे, जी हो जोयण जाणे खणेण ॥ सु० २ ॥
जी हो जल हस्ति पर्वत जिस्या, जी हो जलमां करे कल्लोल।
जी हो मांहो मांहे झूझता, जी उछाले कल्लोल ॥ सु० ३ ॥
जी हो मगर मत्स मोटा फिरे, जी हो सु सुमार केई कोड़ी।
जी हो नक्र चक्र दीसे घणा, जी हो करता दोड़ा दोड़ी ॥ सु० ४ ॥
जी हो जाता कहे पंजरी, जी हो आज पवन अनुकूल।
जी हो जल इंधण जो जोईये जी हो आव्यु बब्बर कूल ॥ सु० ५ ॥

— प्रिय पाठको ! मानव एक ओर महीनों दरदर भटककर अपने समय और रक्त का भोग देता है, तब कहीं उसे बड़ी कठिनाई से सौ दो सौ रुपये पल्ले पड़ते हैं। वह भी जल में दिखाई देनेवाले चन्द्र के समान अस्थाई, तो दूसरी ओर श्रीपाल कुंवरको केवल जहाज पर चढ़कर सिंहनाद अर्थात् श्रीसिद्धचक्र भगवान की जय बोलते ही सहज एक लाख स्वर्ण मुद्राएं और सुयश की प्राप्ति हुई। यह क्यों ? इसे आप क्या कहेंगे ? यह है प्रबल पुण्योदय और पूर्व भव में की हुई श्री सिद्धचक्र आराधना का मधुर फल।

आप जितना श्रम करते हैं, उसका चतुर्थांश भी आपको बदला नहीं मिलता है। सुख के बदले दुःख, लाभ की जगह हानि, बात बात में अपयश, कलह, प्रत्येक कार्य में विघ्न, निराशा का सामना। यह क्यों ? इसे आप क्या कहेंगे ? यह है आपके [illegible]

प्रमाद और श्री सिद्धचक्र की आराधना से विमुखता का कटु-फल।

## क्या आप फले फूले रहना चाहते हैं ?

जीवन में अवश्य एक बार सविधि सिद्धचक्र-आराधन (नवपद ओली) करें। अपने परिवार, प्रिय मित्रों को आराधना करने की सत्प्रेरणा करें।

जैसे चांद के बिना रात, सुगन्ध के बिना फूल, नमक के बिना भोजन, संतान के बिना स्त्री की गोद, प्राण के बिना देह और परिवार के बिना भव्य भवन सूना लगता है वैसे ही श्री सिद्धचक्र की आराधना किये बिना आपका मानव जीवन सूना है। देखो ! श्रीपालकुंवर का भाग्य आगे आगे कैसा साथ देता है।

धवल सेठ का संकेत पाकर जहाज चालकों ने शीघ्र ही अपने जहाजों के लंगर उठाये और पालें तान कर भरूच से आगे की ओर प्रयाण किया, उस समय हवा इतने वेग से चली कि पांच सौ जहाज घण्टों की राह मिनटों में पार करने लगे। श्रीपालकुंवर चारों ओर से लहराते सागर में भीमकाय जल–हस्तियों की उखाड़ पछाड़, रंगबिरंगी मछलियां, भर्ती के समय बड़े बड़े मगरमच्छ और सुसुमार जाति के करोड़ों मस्त मच्छों की भगदौड़ से उड़ते जल के कणों का सुहावना दृश्य देख आनन्दविभोर हो गए।

जहाजों की द्रुत गति, तेज चाल देख हजारों प्रवासी, सैकड़ों व्यापारी आनन्द से फूले न समाते थे। वे मन ही मन अपने व्यवसाय की अनेक रूपरेखाएं बना बंदरगाह की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी समय जहाज चालकों ने वस्त्र से संकेत कर सूचना दी कि अब बब्बरकूल निकट आ रहा है। वहां पर हम लोग लंगर डालेंगे। जनता अपने आवश्यक पदार्थ लकड़ी, कोयला, मीठा जल, भोजन आदि की व्यवस्था कर लें।

जी हो तस बंदर मांहि उतरी, जी हो इंधण लिये लोक।
जी हो धवल सेठ कांठे रह्या, जी हो साथे सुभटना थोक ॥ सु० ६ ॥
जी हो कोलाहल ते सांभली, जी हो आव्या अति सपराण।
जी हो दाणी बब्बर रायना, जी हो मांगे बब्बर दाण ॥ सु० ७ ॥
जी हो सेठ सुभट ने गारवे, जी हो दाण न दिये अबूझ।
जी हो तव तिहां लाग्युं तेहने, जी हो मांहो मांहे झूक ॥ सु० ॥
जी हो सेठ तणे सुभटे हण्या, जी हो दाणी नाठा रे जाय।

जी हो सैन्य सबल तव सज करी, जो हो आव्यो बब्बर राय ।।सु० ९।।
जी हो राज तेज न शक्या सही, जी हो दीधी सुभटे रे पूठ।
जी हो मार पडी तव नासतां, जी हो बाण भरी भरी मूठ ।।सु० १०।।
जी हो बांध्यु झाली जीवतो, जी हो रूख सरीसो सेठ।
जी हो बांह बेहु ऊँची करी, जी हो मस्तक कीधुं हेठ ।।सु० ११।।
जी हो रखवाला मुकी तिहां, जी हो वलियो बब्बर राय।
जी हो तव बोलावे सेठने, जी हो कुंवर करिय पसाय ।।सु० १२ ।।

जहाजों के लंगर डालते ही बब्बरकूल के बंदरगाह पर सौदागरों की भीड़ लग गई। किसी ने जल भरा, लकडी कंडे खरीदे, किसी ने आटादाल, घी शक्कर आदि आवश्यक सामान की व्यवस्था की। चारों ओर मंडी लग गई। हजारों मनुष्यों का कोलाहल सुनकर बन्दरगाह के राज्य कर्मचारी भी वहां आ पहुँचे, उन्होंने सभी जहाजों का निरीक्षण कर धवलसेठ से कर की मांग की। सेठ ने उनकी बात को सुनी-अनसुनी कर दी। राज्य कर्मचारियों ने सेठ से कहा, श्रीमान्जी आप राज्य आज्ञा का भंग न करें। अन्यथा ऐसा न हो कि हमें आपको बन्दी बनाकर आपकी सारी संपत्ति राज्याधीन करना पड़े।

धवल सेठ ने आंखे बदलकर कहा, अरे! जमादार, क्या देखते हो? सेठ के मुह से आवाज निकलते ही उधर विचारे गिनती के राज्य कर्मचारियों पर डण्डों की वर्षा होने लगी। वे लोग अपने प्राण लेकर भागते हुए बब्बरनरेश महाकाल की शरण पहुँचे।

महाकाल अपने अनुचरों का अपमान सहन न कर सका। उसने उसी समय अपनी विशाल सेना के साथ धवलसेठ पर चढ़ाई कर दी। बात की बात में चारों ओर मारकाट मच गई। रंग में भंग हो गया, सौदागरों के प्राण सूख गये। जनता देखती रह गई। महाकाल राजा के सामने, धवलसेठ के योद्धाओं के पैर टिक न सके। वे अल्प समय में ही रणभूमि से दुम दबाकर भाग गए। सेठ को उल्टे मुंह की खाना पड़ी। वे अपनी करारी हार देख बे-भान हो गए। उनका सिर चकरा गया। राजा ने शीघ्र ही उन्हें बंदी बनाकर उनकी सारी संपत्ति अपने हस्तगत कर ली और अपनी राजधानी में वापिस लौटते समय सेवकों को आदेश दिया कि इस कैदी को शीघ्र ही बांधकर उल्टे मुंह किसी झाड़ से लटका दिया जाय।

जी हो सुभट सवे तुम किहां गया, जी हो बांध्या बांह मरोड़ ।
जी हो एवडुं दुःख न देखता, जी हो जो देता मुज कोड ॥ सु० १३॥
जी हो सेठ कहे तुमे का दियो, जी हो दाधा उपर लूण ।
जी हो पच्या पछी पाड़ू किसी, जी हो हणे मुवाने कूण ॥ सु० १४॥
जी हो कहे कुंवर वेरी गह्युं, जी हो जो वालुं ए वित्त ।
जी हो तो मुजने देशो किश्यु, जी हो भाखो थिर करी चित्त ॥ सु० १५॥
जी हो सेठ कहे सुण साहिबा, जी हो ए मुज कारज साध ।
जी हो वहेंचो वहाण पांचशे, जी हो लेजो आधो आध ॥ सु० १६॥
जी हो बोल बंध साखी लखो, जी हो कुंवर पाड़ी तंत ।
जी हो धनुष तीर तरकस ग्रही, जी हो चाल्यो तेज अनंत ॥ सु० १७॥

बन्दरगाह पर चारों ओर सन्नाटा छा गया। लोग कहने लगे, देखो सेठ ने कैसी मूर्खता की! जान बूझकर अपने पैर पर कुठाराघात किया। चोरी और सीनाजोरी के फलस्वरूप आज इस सेठ को प्रत्यक्ष मरे चूहे के समान उल्टा लटकना पड़ा। सेठ की दुर्दशा सुन श्रीपालकुंवर भी वहां आ पहुंचे। सेठ कुंवर को देख झेंप गए। श्रीपालकुंवर ने कहा, सेठजी! नमस्ते। यदि आप मेरी बात मानते तो, आज आपकी यह दशा नहीं होती। उस दिन मुझे एक करोड़ स्वर्ण-मुद्राएं देना आपको बड़ा अखरता था, किन्तु अब तो आपको प्रत्यक्ष अनुभव हो गया होगा कि आपके अनुचर कितने खरे और शूरवीर हैं?

धवल सेठ ने सिसकते हुए धीरे से कहा, कुंवरजी! जले पर नमक डाल, मरे को क्या मारना? ठोकर खाकर गिरे हुए व्यक्ति को ऊपर से और धक्का मारना उचित नहीं। श्रीपालकुंवर ने कहा, सेठजी! मैं आपके हित के लिये कहता हूँ। कहीं ऐसा न हो कि आप व्यर्थ ही अपने कीमती मनुष्यभव से हाथ धो बैठें। अब भी समय है, यदि आप कहें तो मैं आपको बन्धन से मुक्त कर गई हुई सारी संपत्ति राजा से वापिस ला दूं? संपत्ति मिलने पर आप मुझे क्या श्रम देंगे? संपत्ति का नाम सुनते ही सेठ की आंखों में रोशनी आ गई। वे बोले, कुंवरजी! फिर तो क्या कहना! यदि वास्तव में मेरा गया हुआ माल वापस आया तो, मैं उसमें से अपना आधा हिस्सा, अर्थात् माल से भरे हुए ढाई सौ जहाज आप श्रीमान् को भेट कर दूंगा। कुंवर ने

दुबारा फिर कहा, आपने ठीक तरह से समझ तो लिया न? सेठ की स्वीकृति मिलते ही, कुंवर ने दो भले आदमी की साक्षी से लिखापढ़ी की और वे उसी समय ढाल तलवार, धनुष बाण आदि उठाकर महाकाल राजा के पीछे दौड़ पड़े।

जी हो जई बब्बर बोलावियो, जी हो वल पाछो वडवीर।
जी हो शत्रु सेन भुजबल तणो, जी हो नाद उतारूं नीर॥ सु० १८॥
जी हो तुज सरीखो जे प्राहुणो, जी हो पहोंतो अम घर आय।
जी हो सुखड़ली मुज हाथनी, जी हो चाख्या विण जाय॥ सु० १९॥
जी हो महाकाल जूए फरी, जी हो दीठो एक जुवान।
जी हो झाझानी परे झूझतो, जी हो लक्षण रूप निधान॥ सु० २०॥
जी हो तू सुन्दर सोहामणो, जी हो दीसे यौवन वेश।
जी हो विण खूटे मरना भणी, जी हो कांई करे इद्देश॥ सु० २१॥
जी हो कुंवर कहे संग्राम मां, जी हो वचन किश्यो व्यापार।
जी हो जौधे जौध मल्या जिहां, जी हो तिहां शस्त्रे व्यवहार॥ सु० २२॥

श्रीपालकुंवर ने दूर से पुकार कर कहा, ठहरो! ठहरो!! श्रीमान्‌जी आप चुपचाप कहां भागे जा रहे हो? एक शूरवीर अतिथि को जय-पराजय का अन्त किये बिना लौटना उचित नहीं। आप इस समय वापस लौटकर जरा मेरे भी तो दो-चार हाथ का मजा चख लें।

महाकाल श्रीपालकुंवर की सिंहगर्जना सुन चकित हो गया। युवक! तुम अभी एक नादान बालक हो, चन्द स्वर्ण के सिक्कों के बदले आवेश में आ अपने कीमती प्राणों से हाथ न धोओ!

मुझे तुम्हारा रूप, सौन्दर्य, स्फूर्ति, निर्भयता और अनोखा साहस देख जरा दया आती है। अब भी समय है, जाओ तुम वापस लौट जाओ।

श्रीपालकुंवर ने मुस्करा कर कहा, राजेन्द्र! रण-भूमि में दया और बातों का जमाखर्च उचित नहीं। समर-भूमि में तो शब्दों का उत्तर शस्त्र से देना ही क्षत्रियों का भूषण और सच्ची वीरता है।

जी हो महाकाल कोप्यो तिसे, जी हो हलकारे निज सेन।
जी हो मुके शस्त्र झड़ी झड़े, जो हो राता रोष रसेन ॥ सु० २३ ॥
जी हो चूठा तीखा तीरना, जी हो गोला ना केइ लाख।
जी हो पण अंगे कुंवर तणे, जी हो लागे नहीं सशख ॥ सु० २४ ॥
जी हो आकर्षी जे जे दिशे, जी हो कुंवर मुके बाण।
जी हो सम काले दस वीस ना, जी हो तिहां छंडावे प्राण ॥ सु० २५ ॥
जी हो सैन्य सकल महाकाल नु, जी हो भागी गयो दह वट्ट।
जी हो नृप एकाकी कुंवरे, जी हो बाध्यो बंध विघट्ट ॥ सु० २६ ॥
जी हो बांधी ने निज साथ मां, जी हो पासे आण्यो जाम।
जी हो बंधन छोड्या सेठ ना, जी हो रक्षक नाठा ताम ॥ सु० २७ ॥

श्रीपालकुंवर के करारे शब्द सुन मारे रोष के महाकाल राजा की आंखे लाल हो गईं। उसने उसी समय अपने प्रधान मंत्री को रणभेरी फूंकने का आदेश दिया और स्वयं भी समरभूमि में कूद पड़ा। चारों ओर बाणों की वर्षा, तोप बन्दूकों की गोले और गोलियों की बौछार होने लगी।

श्रीपालकुंवर आत्मविश्वास और अनन्य श्रद्धा से श्री सिद्धचक्र का स्मरण कर निर्भय हो आगे बढ़ते चले गये, उनका किंचित् मात्र भी बाल बांका न हुआ। किन्तु उनके प्रत्येक वार से दस बीस वीर योद्धा धराशायी हो यमपुर पहुँचने लगे। थोड़े ही समय में कई सैनिक वीर गति को प्राप्त हुए, तो कई बेचारे अपने प्राण ले उल्टे पैर भाग निकले। महाकाल राजा अकेला मुंह ताकता रह गया।

श्रीपालकुंवर ने उसे बंदी बना, शीघ्र ही धवल सेठ के सामने ला खड़ा किया। महाकाल की यह दुर्दशा देख पहरेदार सिपाही तो दूर से ही छू मना गए। कुंवर ने सेठ के बन्धन काट कर उन्हें अपने पास आसन पर बैठाया।

जी हो खड्ग लई महाकाल ने, जी हो मारण धायो रे सेठ।
जी हो कहे कुंवर बेसी रहो, जी हो बल दीठो तुम ठेठ ॥ सु० २८ ॥

जी हो बंधन बब्बर रायना, जी हो छोड़ावे तेणी वार।
जी हो भूषण वस्त्र पहेरामणी, जी हो करे घणो सत्कार ॥सु० २९॥
जी हो सुभट जिके नाठा हता, जी हो ते आव्या सहु कोय।
जो हो भांजे तस आजीविका, सेठ कोप करी सोय ॥सु० ३०॥
जी हो कुंवर ते सवि राखिया, जी हो दीधी तेहन वृत्ति।
जी हो वहाण अढी से माहरां, जी हो सांचवजो एक चित्त ॥सु० ३१॥
जी हो जे पण बब्बर रायनो, जी हो नाठो हतो परिवार।
जी हो तेह ने पण तेड़ी करी, जी हो आदर दिये अपार ॥सु० ३२॥
जी हो चोथी ढाल एणी परे, जी हो बीजे खण्डे होय।
जी हो विनय कहे फल पुण्यना, जी हो पुण्य करो सहु कोय ॥सु० ३३॥

धवल सेठ ने दांत पीसते हुए तलवार खींच कर महाकाल से कहा, बोल! अब तू कहां जायगा? बेचारा राजा कांप उठा किन्तु उसी समय श्रीपालकुंवर ने पीछे से सेठ का हाथ पकड़ कर कहा, बस महानुभाव! अब आप रहने दें, अधिक कष्ट न करें। आप का बल-पुरुषार्थ जनता से छिपा नहीं! एक बन्दी पर प्रहार करना महान् अपराध, कायरता का सूचक है।

श्रीपालकुंवर ने बब्बर नरेश महाकाल को बन्धन से मुक्त कर बड़े आदर से उन्हें अपने पास बैठाया और उनका बहुमूल्य वस्त्र-आभूषणों से सत्कार कर, कहा, श्रीमान्‌जी! समर भूमि से प्राण लेकर भागे हुए, बेचारे गरीब आपके अनुचारों का ध्यान रखना! कहीं वे नौकरी से अलग न कर दिये जाय। कुंवर के कहने से सभी सैनिक सन्मान के साथ रख लिये गये।

धवल सेठ के अनुचर भी आशा लेकर सेठ की सेवा में उपस्थित हुए थे, किन्तु सेठ ने उन्हें बुरी तरह से फटकार कर अपने यहां से अलग कर दिया। वे निराश हो, मुंह ताकते रह गये। अन्त में उन्हें गिड़गिड़ाते देख श्रीपालकुंवर ने उनको अपने ढाई सौ जहाज की सुरक्षा के लिये नौकर रख लिया।

श्रीपालरास, मूल के लेखक श्रीमान् विनय विजयजी महाराज कहते हैं कि इस रास के दूसरे खण्ड की यह चौथी ढाल सम्पूर्ण हुई। श्रीपालकुंवर की सफलता का रहस्य, प्रबल

पुण्योदय, कर्म क्षय और पुण्योदय की जननी है, श्री सिद्धचक्र-आराधना। प्रिय पाठक और श्रोताओं को चाहिए कि वे जीवन में एक बार अवश्य ही श्री सिद्धचक्र की आराधना कर अपना जीवन सफल बनाएं।

## दोहा

महाकाल श्रीपालनुं, देखी भुजबल तेज।
चित चमक्यो इम विनवे, हियडे आणी हेज ॥ १ ॥
मुज मंदिर पावन करो, महेर करी महाराज।
प्रगट्यां पूरव भव कर्यां, पुण्य अमारां आज ॥ २ ॥
तुम सरीखा सुपुरुष तणां, अम दर्शन दुर्लभ।
जिम मरुधरना लोक ने, सुर-तरु कुसुम सुरभ ॥ ३ ॥

महाकाल नृप श्रीपालकुंवर का रूप सौंदर्य, सहृदयता, बल-पुरुषार्थ और अनोखा साहस देख मुग्ध हो गये। उन्होंने कुंवर से कहा, श्रीमान्‌जी! आप कृपया बब्बरकूल में पधार कर राजमहल को पावन करें। सत्पुरुषों के दुर्लभ दर्शन का लाभ तो कभी भाग्य से ही मिलता है—जैसे कि राजस्थान-मारवाड़ की प्रजा को कल्पवृक्ष के फूलों की सुगन्ध का योग किसी पूर्वभव के शुभ कर्मों के उदय से ही मिलता है। आज हमारा सद्‌भाग्य है कि आपका और हमारा समागम हुआ है।

बोलावा विण एकलो, चाली न शके दीन।
धवलसेठ तव विनवे, इणी परे थई आधीन ॥ ४ ॥
प्रभु तुमने वंछे सहु, देखी पुण्य पडूर।
पण विलंब थाए घणुं, रत्न द्वीप छे दूर ॥ ५॥
कुंवर कहे नर रायनुं, दाखिण केम छंडाय।
तिणे नयरी जोवा भणी, कुंवर कियो पसाय ॥ ६ ॥
हाट सज्यां हीरा गले, घर घर तोरण माल।
चहुटे चहुटे चोकमां, नाटक गीत रसाल ॥ ७ ॥

फूल बिछाया फूटरा, पंथ करी छटकाव।
गज तुरंग शणगारिया, सोवन रूपे साव ॥ ८ ॥

भयत्रस्त मानव को किसी साथी के लिए बिना एक पैर भी आगे बढ़ना बड़ी कठिन समस्या है, तो भला धवलसेठ को तो बड़ा लम्बा चौड़ा सागर प्रवास करना था। वे श्रीपाल कुंवर का साथ छोड़ना नहीं चाहते थे। उन्होंने बड़ी नम्रता से कहा, कुंवरजी! अब अपने को यहां से रत्न-द्वीप पहुँचना है। प्रवास बहुत लंबा है, कृपया आप विलंब न करें। भाग्यवान सिद्ध पुरुष को कौन नहीं चाहेगा? आप श्रीमान् तो जहां भी पधारेंगे जनता आपका हृदय से स्वागत करेगी।

श्रीपालकुंवर ने कहा, सेठजी! बब्बर नरेश का विशेष आग्रह है, अतः चलते समय किसी का दिल तोड़ना ठीक नहीं। कुंवर ने नगरप्रवेश की स्वीकृति प्रदान कर दी।

महाकाल फूले न समाए। उन्होंने शीघ्र ही आगे जाकर, अपने अनुचरों को श्रीपाल कुंवर के स्वागत की सूचना दी। नगरके चौराहों पर सुन्दर कलापूर्ण द्वार बनवाए, स्थान स्थानपर रंग-बिरंगी ध्वजाएं बांधीं, घर दुकान हाट हवेलियां हीरे, पन्ने, माणिक, मोती, पुखराज, मूंगे आदि रत्नजड़ित तोरणों से सजाई गई। चारों ओर सुगन्धित जल छिड़का, फूलों के हार रेशमी झूलें, बढ़िया जीन, सोने चांदी के आभूषणों से मतवाले हाथी, काबुल घोड़ों को अलंकृत कर स्वागत की तैयारी की गई।

## दूसरा खण्ड–पांचवीं ढाल

( राग सिन्धूडो–चित्रोडा राजारे )

विनती अवधारे रे, पुरमांहे पधारे रे, महोत वधावे बब्बर रायनुं रे।
कुंवर बड़भागी रे, देखो सोभागी रे जोवा रढ़ लागी, पगपग लोकने रे ॥१॥
घर तेड़ी आव्या रे, साजन मन भाव्या रे, सोवन मंडाव्या आसन बेसणां रे।
मिठाई मेवा रे पकवान कलेवा रे, भगति करे सेवा, बब्बर बहु परे रे ॥२॥
भोजन घृत गोल रे, उपर तंबोल रे, केसर रंग रोल करेवली छांटणा रे।
सवि साजन साखे रे, मुखे मधुरुं भाखे रे, अंतर नवि राखे कांई प्रेममां रे ॥३॥
दिये कन्यादान रे, देइ बहुमान रे, परणी अम मान वधारो वंशनो रे।

**तव कुंवर भाखे रे, कुल जाण्यां पाखे रे, किम त्रिजनी साखे दीजे दीकरी रे ॥४॥**
**कहे नृप अवतंस रे, छानो नहीं हंस रे, जाण्यो तुम उत्तम वंश गुणेकरी रे।**
**जाणे सहु कोई रे, जे नजरे जोई रे, हीरो नवि होइ विण वेरागरे रे ॥५॥**

सूर्योदय होते ही महाकाल राजा अपने प्रधान मंत्री, अमीर, उमराव, हाथी, घोड़े, पायदल डंके निशान, ढोल नगारों के साथ बड़ी सजधज से श्रीपालकुंवर को लेने उद्यान की ओर चल पड़े।

श्रीपालकुंवर के शुभागमन के समाचार बात की बात में शीघ्र ही चारों ओर फैल गए। चौराहों पर पैर रखने की तिल मात्र जगह नहीं, अपार भीड़। हजारों स्त्री-पुरुष अपने मकानों की छतों और झरोखों पर चढ़ कर अतिथि के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे।

उद्यान से कुछ दूरी पर सामने से घोड़ा कुदाते हुए श्रीपालकुंवर को आते देख, राजाने कहा, पधारिये! पधारिये!! श्रीमानूजी! आपने आज बड़ी कृपा की। दोनों बड़े स्नेह से एक दूसरे के गले लगे, महाकाल ने उन्हें सादर हाथी के हौदे चढ़ा बड़े ठाठ से नगर की ओर प्रयाण किया। मार्ग में प्रतिष्ठित नागरिकों ने स्थान-स्थान पर, अक्षत, और बहुमूल्य मोतियों के स्वास्तिक, तथा महिलाओं और कन्याओं ने अपनी छतों और झरोखों से सुगन्धित पुष्पों की वृष्टि कर कुंवर का हृदय से स्वागत किया। श्रीपालकुंवर की जय हो! जय हो!! जय रव से सारा आकाश गूंज उठा। जनता, कुंवर के रूप, सौंदर्य, विनम्र स्वभाव, प्रसन्न मुख, मधुर भाषण और दिव्य तेज देख मुग्ध हो गई! अहो! धन्य है इन महापुरुष को।

महाकाल, कुंवर को अपने राजमहल में ले गये, वहां हलवा, पूड़ी, दाल-भात, लड्डु जलेबी, घेवर, फीणी, सेव, दाल, भजिये, कचोरी, दहीबड़े, आदि अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन और पान, सुपारी, इलायची, केशर, सुगन्धित गुलाबजल से उनका सत्कार किया।

एक दिन श्रीपालकुंवर रत्नजड़ित स्वर्ण-सिंहासन पर बैठ कर बब्बर कूल के गणमान्य सज्जनों से आमोद-प्रमोद की बातें कर रहे थे। महाकाल ने खड़े होकर बड़ी नम्रता से कहा—श्रीमानूजी! धन्यवाद। हम आपके हृदय से बड़े आभारी हैं। आपने यहां पधार कर हमारी इस कुटिया की शोभा बढ़ाई। अब आप मेरी प्रिय पुत्री मदनसेना को स्वीकार कर हमें अनुगृहित करें।

कुंवर ने मुस्करा कर कहा—राजेन्द्र! आपको शत-शत धन्यवाद हैं। आप एक बड़े गंभीरहृदय, उदारचेता व्यक्ति हैं। ऐसे बहुत कम मनुष्य हैं, जो कि बुराई

का बदला भलाई से दें। खेद है कि मैंने आपको बड़ा कष्ट दिया। फिर भी आप मुझे अपनी कन्या देना चाहते हैं।

## "पानी पीजे छानकर, सगा कीजे जान कर"

कन्यादान में उतावलापन उचित नहीं। मानव जल छान कर पीते हैं, उसी प्रकार उन्हें अपनी कन्या का सम्बन्ध भी सोच समझ कर किसी अच्छे लडके के साथ करना चाहिये। कन्या मिट्टी का खिलौना नहीं, जो कि भलते के हाथ सौंप दी जाय।

कुलं च शीलं च सनाथता च, विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च।
वरे गुणा सप्त विलोकनीयास्ततः परं भाग्य वशा हि कन्या॥

## कन्या कहां दें ?

(१) कुलः—जहां अच्छे सदाचारी, धर्म-ध्यानमें तत्पर, देश, समाज और अपने परिवारकी भलाई में तन मन धन और अपने प्राण अर्पण करने वाले स्त्री-पुरुष हों उसी उत्तम घराने और कन्या के समान जाति के लडके को ही अपनी कन्या दें।

(२) शील—स्वभाव एक ऐसी वस्तु है कि वह जीवन में सहज ही फूल और कांटे पैदा कर देता है। हंसमुख सूरत, सहृदयता और निष्कपट सत्य व्यवहार मानव को फूल सा आकर्षक, यशस्वी बनाता है, तो चिडचिडापन धूर्त सनकी कटु स्वभाव, मानव को महान् दुःखी कर देता है। अतः वर को प्रकटया गुप्त रूप से पूर्णतया परीक्षा करके ही किसी अच्छे सुशील लड़के को ही अपनी कन्या दें।

(३) सनाथता—मन बडा ही चंचल है, यह अवकाश पाते ही इधर-उधर भटकने लगता है। यदि इस पर बड़े-बुढ़ों का अंकुश (नियंत्रण) न हो तो संभव है, यह मानव को पतन के गहरे गर्त में ढकेल दे। अतः जहां अच्छे संस्कारवान, प्रेमी सासु, ससुर, देवर, जेठ, ननंद-भोजाई आदि परिवार हो वहां अपनी कन्या दें।

(४) विद्या—किताबी कीड़े, रट्टु या अपने नाम के पीछे किसी विद्यापीठ, महा विद्यालय, युनिवरसिटी की उपाधि की पूंछ लगाने वाले श्रद्धाहीन लडकों से सदा सावधान रहें। भले लडका निर्धन, साधारण पढ़ा-लिखा हो, किन्तु उस में सत् कार्य, सद्ज्ञान और सन्मार्ग की अभिलाषा, "मैं जिस कार्य में हाथ डालूंगा उसे मरते समय

तक पूर्ण करके रहूँगा" ऐसी दृढ प्रतिज्ञा, सतत प्रयत्न, आत्म-संयम, मन पर विजय, ब्रह्मचर्य और सर्वज्ञ देव दर्शित मार्ग का आचरण करने की भावना हो उस लडके को ही अपनी कन्या दें।

(५) वित्तः—चांदी, सोने के सिक्के, बाह्य आडंबर में फंस कर कन्यारत्न को अपने हाथों से न गवाएं। पैसा आज है, कल नहीं। किसी अच्छे गुणानुरागी, स्वस्थ, कलाकार, कमाउ, संतोषी लडके को ही अपनी कन्या दें।

(६) वपुः—कुरूपता वह बला है, जो जीवन के आनंद को नष्ट कर देती है। कमलनयन, लम्बी नाक, विशाल वक्षस्थल, लम्बी भुजाएं, स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट शरीर मानव के मन को प्रफुल्लित कर वंश-परम्परा को चमका देता है। पैसे का लोभ और चापलुस स्वार्थी परिवार का मोह छोड कर अच्छे सुन्दर स्वस्थ गौरवर्ण, गठीले बदन वाले लडके को ही अपनी कन्या दें।

(७) वय-अवस्थाः—कुष्ठरोग उतना घातक नहीं जितना कि एक अनमेल विवाह। कुष्ठरोग किसी एक ही व्यक्ति को चंद दिन सता, उस के प्राण लेकर रह जाता है। किन्तु बाल और वृद्ध विवाह कन्या तथा उस के संरक्षकों को जन्म भर बडी बुरी तरह कुचलता रहता है। संभव है, पैसे का लोभ, श्रीमंत सगे का मोह भविष्य में बड़े बुढ़ों के नाम को धब्बा भी लगा दे। अतः स्वस्थ और समान वय के लडके को ही अपनी कन्या दें।

राजेन्द्र! मैं एक चलता मुसाफिर हूँ। अनजान व्यक्ति को कन्या देना उचित नहीं। राजा ने कहा—कुंवरजी! "पूत के पैर पालने में देख पडते हैं" हंस और बुगले का अन्तर कहीं छिप सकता है? कदापि नहीं। हीरे की खान से प्रायः हीरा ही निकलना संभव है, सज्जन व्यक्ति सदा आत्मश्लाघा से दूर रहते हैं। आपका बल पुरुषार्थ, गुणानुराग, विनम्र स्वभाव और मधुर भाषण प्रत्यक्ष कुलीनता के प्रदर्शक हैं।

महोत्सव मंडावे रे, साजन सहु आवे रे, धवल गवरावे मंगल नरवरु रे
रूपे जिसी मेना रे, गुण पार न जेना रे, मदनसेना परणावी इणी परे रे ॥६॥
मणि माणक कोड़ी रे, मुक्ता फल जोड़ी रे, नरपति कर जोड़ी दिये दायजो रे।
परे परे पहिरावे रे, मणि भूषण भावे रे, पार न आवे जस गुण बोलतां रे ॥७॥

नाटक नव दीधां रे, तिहां पात्र प्रसिद्धां रे, जाणे ए लीधां मोले सरग थी रे।
बहु दासी दास रे, सेवक सुविलास रे, दीधा उल्लासे सेवा कारणे रे॥८॥

महाकाल राजा ने एक निमंत्रण पत्रिका भेज, दूर दूर से अनेक राजा-महाराजा जाति-बन्धु और अपने सगे सम्बन्धियों को आमंत्रित कर गीत-गान, उत्सव-महोत्सवादि बड़े ठाठ से अपनी प्रिय पुत्री रंभा सी अति सुन्दर मदनसेना को श्रीपालकुंवर के साथ ब्याह दी।

कन्यादान के समय राजा ने बहुमूल्य हीरे, पन्ने, माणिक, मोती, आदि अनेक प्रकार के रत्नजड़ित आभूषण, सुन्दर रेशमी-जरी के वस्त्र, दास-दासियां और अच्छे प्रतिष्ठित कलाकारों की नव नाटक मंडलियां कुंवर को सादर भेंट कीं।

रस भर दिन केता रे, तिहां रहे सुख वेता रे, दान याचक ने देता बहु परे रे।
अमने वोलावो रे, हवे वार न लावो रे, कहे कुंवर जावो अम-देशांतरे रे॥९॥
नृप मन दुःख आणे रे, केम राखुं पराणे रे, घर इम जाणे न वसे प्राहुणे रे।
पुत्री जे जाइ रे, ते नेट पराई रे, करे सजाई हवे वोलाववा रे॥१०॥
एक जुंग अलंभ रे, जे देखी अचंभ रे, चोसठ कुवा थंभे सुन्दर सोहतुं रे।
कारीगरे घड़िया रे, मणि माणिक जड़या रे, थंभ ते अड़िया जइ गयणांगणे रे॥११॥
सोवन चित्राम रे, चित्रित अभिराम रे, देखिये ठाम ठाम तिहां गोखड़ा रे।
धज मोटा झलके रे मणि तोरण चलके रे, ढ़लके चामर चिहुँ दिशें रे॥१२॥
भूइ सातमीए रे, तिहां चढ़ी ओसमीए रे, वेसिने रमिये सोवन सोगठे रे।
बहु छंदे छाजे रे, वाजा घणां वाजे रे, वहाण गाजे ज्युं समुद्र मां रे॥१३॥
पूरे ते रतने रे, राजा बहु जतने रे, सासर वासो मन मोटे करे रे।
वोलावी बेटी रे, हियड़ा भरी भरी भेटी रे, शीख गुण पेटी दीधी बहु परे रे॥१४॥

श्रीपालकुंवर बड़े आनंद से मदनसेना के साथ अपने ससुराल में ठहरे थे। नाटक मंडली प्रतिदिन अनेक प्रकार के खेल, आकर्षक संगीत कला से उनका मनोरंजन करती थी। कुंवर बड़े गुणानुरागी, हंसमुख और दानी थे, उनके द्वार से कोई भी व्यक्ति खाली हाथ, बना अतिथि-सत्कार के नहीं जाता था।

एक दिन श्रीपालकुंवर ने अपने ससुर से कहा- श्रीमान्‌जी ! हमें बड़ी दूर जाना है। अतः अब आप विलंब न कर, हमें जाने की अनुमति प्रदान करें। विदा का नाम सुनते ही राजा का हृदय भर आया। उसने वस्त्र से अपने आंसू पोंछते हुए कहा, कुंवर साब ! आप अभी यहीं विराजें, जल्दी न करें। जमाई का विशेष आग्रह देख, महाकाल ने सोचा, कहीं महमानों से भी घर बसा है ? कदपि नहीं। पुत्री की शोभा और हित हैं, अपने अपने ससुराल में। अब इनको अधिक रोकना उचित नहीं।

राजा ने अपनी बेटी-जमाई को विदा देने के लिये अच्छे सुन्दर रेशमी जरी के बहुमूल्य वस्त्र, रत्नजड़ित आभूषण और एक बढ़िया गगनचुम्बी, सात खण्ड का जुंग नामक जलयान बनवाया। उसमें कलापूर्ण चौंसठ स्तंभ, झरोखे, मीठे जल का अच्छा साधन था। स्थान स्थान पर सुनहरे रंगीन चित्र, आकर्षक पुतलियां; मनोहर सोने-बैठने के साधन, क्रीडांगन की सुन्दर व्यवस्था थी, जहाज को ध्वजापताकाएं, मणि-मोतियों के तोरणों से सजा, शुभ मुहूर्त में महाकाल अपने प्रधान मंत्री मण्डल, नागरिकों और परिवार के साथ प्रिय पुत्री मदनसेना को पहुंचाने सागरतट पर आया। जमाईराज के स्वागत सूचक शहनाई, ढोल, नगारे, विदा के मंगल गीतों से सारा बन्दरगाह गूंज उठा।

## ❀ मा की, बेटी को सीख ❀

रानी—मदनसेना ! दाम्पत्य जीवन की दिव्यता-शोभा तभी है, जब कि पति-पत्नी सत्ता का मोह छोड़कर परस्पर सेवाभाव, त्यागवृत्ति को अपनाए। अब तुम पराये घर जा रही हो। ससुराल में देव, गुरु, धर्म, स्वधर्मी बन्धु, देवर जेठ, नणद-भोजाई, सास-ससुर, दीन-दुःखी, रोगी और अपने अड़ोस-पड़ोसी की सेवा का सारा भार तुम्हारे पर है। इसे ठीक तरह से निभाना।

मदनसेना ! हृदय नहीं चाहता कि तू हमारी आंखों से ओझल हो, किन्तु कन्या की शोभा अपने ससुराल में ही है, अतः तुझे आज विवश हो विदा देना है।

विवाह एक ऐसी विचित्र बात है, कि जिस घर को कभी देखा नहीं वही घर अपना हो जाता है। माता-पिता के जिस घर में जन्म हुआ है, जहां बचपन बीता और जहां के रक्त-मांस से शरीर बना, जहां की स्मृतियों में मन बसा है, वह पराया हो जाता है। एक दिन जो पराये और अनजान थे, वे अपने हो जाते हैं। जो सदा के परिचित थे वे छूटकर दूर पड़ जाते हैं।

जब लड़कियां सर्व प्रथम ससुराल में विदा होती हैं, तब वे भय से भरी आशंका से सहमी चित्तवृत्ति में डांवाडोल अनिश्चित भविष्य की झिलमिल अभिलाषाओं में झूलती हुई रोती हैं। बेटी ! अनादिकाल से यही होता आया है। मैं भी एक दिन बहू बनकर इस घर में आई थी।

आज वही पराया अनजान घर मुझे अपना ज्ञात होता है। इस में घबड़ाने की कोई बात नहीं है। तू धीरज, स्नेह, प्रयत्न, परिश्रम और सेवा से एक अपरिचित घर को भी स्वर्ग बना सकती है।

मदनसेना! आज मैं तुम्हें अपने जीवन की कुछ अनुभूत बातें बतलाती हूं। इसे तू बड़े ध्यान से सुन, उस पर बार बार मनन कर। यदि मेरी सीख को तुम अपने हृदय में अंकित कर उसका यथार्थ भली प्रकार पालन करोगी, तो तुम जहां भी जाओगी वहां सुख से रहोगी। स्त्री-पुरुष तुम्हारा मान-सन्मान कर तुम्हें प्यार करेंगे। परिवार के लोग तुम्हें देख फूले न समाएंगे। जीवन में कभी तुम्हें आंसू बहाने का अवसर न आयगा।

## सदा हंसमुख रह कर मधुर बोलो:—

जीवन में सुखी होने का महत्त्वपूर्ण एक सरल उपाय है, सदा हंसमुख रहकर मधुर भाषण करना। मुस्कराहट एक जादू मोहनी मंत्र है। सुन्दर वस्त्राभूषण की अपेक्षा हंसमुख सूरत विशेष आकर्षक है। हंसमुखी प्रसन्न महिला दूसरों का नहीं, स्वयं अपना ही भला करती है। इस से सदा मन हलका रहता है और स्वास्थ्य पर बुरा असर नहीं पड़ता। तुम सदा हंसमुख—प्रसन्न रहने की आदत डालो। जिस से बोलो, हंसकर मिठास से बोलो। ताजे फूल की तरह खिला मुंह रखने की कला जो लड़की जानती है, वह सदा लोकप्रिय बन सुखी रहती है। सारा परिवार उस के वश में रहता है।

**कागा का को लेत है, कोयल कोको देत।**
**मीठे वचन सुनाय के, मन सब को हर लेत॥**

कर्कशा स्त्री जीवन का सबसे बड़ा दण्ड है। मृदु, कोमल, सहनशील और हंसमुखी नारी जीवन का सब से बड़ा वरदान है। तेज जबान की स्त्री को कोई पति, कोई मनुष्य नहीं चाहता।

मदनसेना! मैं कितनी ही स्त्रियों को जानती हूँ। उनका त्याग, तप, परिश्रम और सेवा उच्च कोटि की हैं; पर न वे सुखी हैं, न उनके पति या ससुराल के अन्य लोग सुखी हैं। कटु भाषिणी झगड़ालु कर्कशा नारी से सब जान बचा कर दूर भागते हैं। उससे घृणा करते है।

## परिवार की दृष्टि से न गिरो—

कई बेसमझ अज्ञान महिलाएं अपने भर्तार और घर की आय-व्यय का विचार न कर, वे विशेष वस्त्रालंकार शृंगार की वस्तुओं के लिये मरती हैं, कलह कर बैठती हैं। इसी मनमुटाव के कारण वे शनैः शनैः अपने परिवार और समाज की दृष्टि से गिर जाती हैं।

महिलाओं के लिये पति से बढ़कर कोई दूसरा गहना नहीं। बेटी! याद रखो, सुख भड़कीले सुन्दर वस्त्रालंकारों में नहीं, सुख है चटक-मटक शान शौकत से बचकर अपने पति की आय के अनुसार जो समय पर मिले, उसे पाकर, संयम से रहने में।

## अशिक्षित महिला सदा पति के हृदय में खटकती है:--

मदनसेना ! पुरुष का हृदय किसी बात से उतना अप्रसन्न, दुःखी नहीं होता, जितना कि अशिक्षित स्त्री के व्यवहार से । वह चाहता है, कि स्त्री कपड़े-वस्त्र-अलंकार ठीक तरह से पहने । समय समय पर हंसना, बोलना जाने । घर की प्रत्येक वस्तु साफ-स्वच्छ सजा कर रखे । आवश्यक वस्तुओं को यथास्थान व्यवस्थित ढंग से रखे, ता कि समय पर इधर-उधर दौड़धूप न करना पड़े । झगड़ालू न हो । गुणानुरागिणी, मिलनसार हो । जो लड़की इसे नहीं जानती, इस प्रकार आचरण नहीं करती, वह अपने परिवार के लोगों से सदा अपमानित हो, अपने पति के हृदय में खटकती है ।

## प्रत्यक्ष उदाहरण:--

देखो ! अपने यहां एक कामदार है, वे अपनी पत्नी का नाम सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ता है । पत्नी को अधिक समय पीहर में ही बिताना पड़ता है । जब कभी भी उसकी स्त्री घर पर आती है, तो परिवार में उसकी गिनती नहीं । कामदार उसका फूहड़पन देख, उससे आंख बचा, इधर-उधर खिसक जाता है । वास्तव में वह स्वस्थ और परिश्रमी न हो, ऐसी कोई बात नहीं । वह अच्छी कुलीन, भली और पतिव्रता है, किन्तु कामदार को घृणा है, उसके फूहड़पन से ।

कामदार कहता है कि पत्नी के रहते घर कबाड़खाना मालूम होता है । शयनगृह में जूठे लोटे तासलियां रखीं हैं, तो भोजनालय में लहंगा लटक रहा है । कहीं पुस्तकें बिखरी पड़ी हैं, तो कहीं मैले कुचेले वस्त्रों पर मक्खियां भिन-भिना रहीं हैं । अच्छे सुन्दर वस्त्रों की पेटियां भरी पड़ी हैं, फिर भी फटे पुराने गन्दे वस्त्र पहिन, वह इधर-उधर डोलती-फिरती है । चूले पर दाल चढ़ा, हल्दी, हींग मसाले के लिये नौकर को दौड़ाया । शौच जाने के कपड़ों से ही साग छमकाने जा बैठी । सिर में तैल नहीं । बालों की लटें इधर-उधर लटक रहीं हैं, रोटी साग में देखो तो बाल ही बाल । ललाट में सौभाग्य-बिन्दी नहीं । कभी बच्चों को डांटा तो कभी नौकर-चाकरों से तू तू-मैं मैं । किसी को पहने ओढ़े पढ़ा-लिखा देखा तो मुंह बांका-टेढ़ा करना, पांव पर पांव रखकर बैठना, नाखून से मिट्टी खोदना, दांतों से नाखून काटना, मुंह में अंगुली डालना, आंखे मटकाना, जरा जरा सी बातों में घर सिर पर उठाते देर नहीं ।

मदनसेना ! आज समाज में कामदार की बहू के समान अनेक फूहड़ अशिक्षित स्त्रियां हैं । वे नहीं जानतीं कि शिष्टाचार किसे कहते हैं । चलना-फिरना, वार्तालाप करना, सीना पिरोना, भोजन बनाना, गृह प्रबंध की कला है । इस कला से अनजान लड़की या स्त्री कभी अपने जीवन में सफलता नहीं प्राप्त कर सकती है । "सुखी जीवन का महत्त्वपूर्ण उपाय है, सद्ग्रंथों का अध्ययन, मनन और चिंतन करना" ।

## इन शब्दों को न भूलो:--

(१) मृदु स्वभाव, सदा हंस कर बोलो ।

(२) माता-पिता, भाई-बहन, सास-ससुर, ननद-जेठानी आदि परिवार से प्रेम रखो ।

(३) परिश्रमी स्वभाव, कभी बेकार न रहना ।

(४) बड़ों की सेवा, उनका आदर, छोटों के प्रति स्नेह रखना।

(५) प्रत्येक काम को समय पर और अच्छे ढंग से करना।

(६) घर और वस्त्रों को साफ-सुथरे और व्यवस्थित रखना।

(७) अपने स्वास्थ्य और सौन्दर्य का ध्यान रखना।

(८) भोजन बनाने, और गृह-प्रबंध की कला का ज्ञान रखना।

(९) सहनशीलता और संयम रखना।

(१०) अपने आप को देखो। दूसरों की निंदा न करो।

(११) पति-देव पर पूर्ण विश्वास रख, सदा उनकी आज्ञाओं का पालन करो।

(१२) भर्तार बाहर से आवे, तो उनका उठकर मुस्कराते हुए स्वागत करो।

(१३) पति यदि अधिक खर्च करते हों, या उनकी भूल हो, तो वह किसी दूसरे के सामने प्रकट न कर, उन्हें एकांत में बड़ी शांति और नम्रता से समझाओ।

(१४) पति के सोने के बाद सोओ और उन से पहले जागो। सोते समय उनकी पग-चंपी, सेवा शुश्रूषा करो।

(१५) यंत्र-मंत्र वशीकरणादि के चक्कर में न पड़ो। इससे पति व परिवार का वश होना तो दूर रहा, किन्तु भेद खुलने पर विश्वास उठ जाता है।

(१६) अपनी सास या परिवार के वृद्ध जनों के विना पूछे, या उनके मना करने पर कोई काम न करो। रोज सास-जेठानी या परिवार की वृद्ध महिला की पगचंपी करो।

(१७) पति विदेश में हों, उस समय भूमि-शयन करना, सामान्य आभूषण पहनना, यथाशक्ति तप करना। बाजार से कोई वस्तु मंगवाना हो, या अपने पति से कोई सामान मंगवाना हो तो वह चुपचाप सीधा अपने पास न मंगवा कर; उसे अपनी सास या वड़ीलों से मंगवा कर उपयोग में लेना।

मदनसेना! उपरोक्त शब्दों को अच्छे बड़े अक्षरों में लिख, अपने भवन में लटका देना, उन का बार बार मनन-चिंतन कर उसी प्रकार आचरण करोगी तो तुम सुखी रहोगी।

## ऋतु (मासिक) धर्म का पालन—

मदनसेना! ऋतुस्राव-रजोदर्शन को मासिक-धर्म कहते हैं। स्वास्थ्य के लिये इस का मास के अंत में होना आवश्यक है। यदि मासिक-धर्म ठीक समय और विना कष्ट के उचित मात्रा में न हो तो शीघ्र ही उसकी चिकित्सा करना चाहिये। इसमें संकोच और विलंब करना बड़ा घातक है।

रजस्राव का ज्ञान होते ही स्त्रियों को बड़े शान्त भाव से किसी एकान्त स्थान में बैठ मन ही मन भगवान का स्मरण, आत्म-चिंतन करना चाहिये। किसी भी पदार्थ का स्पर्श न करें। अपने पतिदेव, बीमार स्त्री-पुरुष, और पवित्र वस्तुओं पर अपनी परछांई (छाया) न पड़ने दें। किसी से भाषण न करें, भूमिशयन करें। मासिक-धर्म के दिनों में धस-पस, गड़बड़ करने से परिवार और जीवन पर उसका बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है। आचार-मुरब्बे सड़ जाते हैं, पापड़ अपना रंग बदल देते हैं। ऋतुधर्म वाली स्त्री की गड़-बड़ी से कई छोटे छोटे बच्चों की आंखें चली जाती हैं।

कई लड़कियां और महिलाएं ऋतुधर्म के समय रोजाना स्नान कर पुस्तकें पढ़ती हैं, भोजन, बनाती हैं। कपड़े सीना, कशीदा निकालना, गेहूं, चने आदि धान्य साफ करना, बैलों को घास डालना, दूध-दुहना, बर्तन साफ करना आदि कार्य करने लगती हैं, यह धर्म और स्वास्थ्य के विरुद्ध है।

मासिकधर्म की असावधानी के कारण आज अनेक लड़कियाँ, महिलाएं प्रत्यक्ष प्रदर, हिस्टीरिया, पागलपन, वंध्यत्व (बांझ) डाकण चूड़ैल आदि रोगों का शिकार बन वर्षों से दुःख पा रही हैं।

तपागच्छीय शिवराज के पुत्र खीमचंद ने घोल गांव में वि. सं. १८६५ कातिक वद अमावस्या को, ऋतुवंती स्त्री की सज्झाय में स्पष्ट कहा है :—

***वेदपुराण कुरानमां रे, श्री सिद्धान्तमां भाख्युं।**
**ऋतुवंती दोष घणो कह्यो रे, पंचांगे पण दाख्युं ॥**

मदनसेना! वास्त में ऋतुधर्म के समय प्रमाद करने से वर्षों तक इसका कटु-फल भोगना पड़ता है, अतः बड़ी सावधानी से रहना चाहिए। साथ ही चौथे दिन स्नान कर सर्व प्रथम अपने भर्तार के ही दर्शन करें। यदि पतिदेवको अनुपस्थिति हो, तो अपने इष्टदेव "दर्पण" या सत्पुरुषों के चित्र का दर्शन करना विशेष हितकर है। ऐसा विद्वानों का अभिप्राय है।

**भोजनालयः**—मदनसेना! भोजन बनाने की एक कला है। जो लड़की इस कला को नहीं जानती है, वह स्वयं अपने और परिवार के स्वास्थ्य तथा मान-प्रतिष्ठा से हाथ धो बैठती है।

भोजन स्वयं अपने हाथों से स्वास्थ्यप्रद और स्वादिष्ट बनाना चाहिये। कई घरों में नौकर और नौकरानी से भोजन बनाने की प्रथा बढ़ती जा रही है। यह उचित नहीं। नौकर के हृदय में विवेक और प्रेम नहीं। उस तो एक मात्र अपने उदर-पोषण के लिये विवश हो, जाना काम कर, बेगार टालना है।

स्त्री के हृदय में सदा अपने पति-देव, बालबच्चे और परिवार के स्वास्थ्य और कल्याण की कामना है। अतः उस के लिये हाथ का बना हुआ विशुद्ध साधारण भोजन भी स्वादिष्ट और स्वास्थ्यप्रद होता है।

---

* यह सज्झाय ७० गाथा की है इसे अवश्य पढ़ें।

भोजन बनाते समय शुद्ध छना ताजा जल, छना हुआ आटा, साफ किये हुए दाल-चांवल मिर्च-मसाले काम में लेना चाहिए। स्वास्थ्य के लिये आटा, मिर्च प्रायः राजाना कूट पीस कर ताजा ही उपयोग में लेना विशेष हितकर है। यदि कहीं ऐसी सुविधा न हो तोः—

**आटाः**—श्रावण और भाद्रपद मास में ५ दिन; आश्विन मास में ४ दिन; कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष मास में ३ दिन; महा और फाल्गुन मास में ५ दिन; चैत्र और वैसाख मास में ४ दिन; ज्येष्ठ और आषाढ़ मास में ३ दिन के बाद काम में नहीं लेना चाहिये।

**मिठाईः**—स्वास्थ्य और सिद्धान्त की अपेक्षा बाजार की मिठाइयां प्रायः घातक हैं। अधिकतर हलवाई लोग नकली मावा, घी, सत्त्व-हीन दही और चटपटे मसालों के बाह्य आडंबर से भोली जनता को शीघ्र ही आकर्षित कर लेते हैं। किन्तु ग्राहकों को बाजार की वस्तु से हेज़ा, अतिसार और असंतोष के सिवाय कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता है। अतः मिठाइयों का मोह छोड़ कर सदा सात्त्विक भोजन करें। यदि कोई विशेष प्रसंग हो तो अपने परिवार की रुचि के अनुसार अपने घर पर शुद्ध मिठाई बना कर उसका बहुत ही कम मात्रा में उपयोग करें। घर पर बनी मिठाइयां सस्ती और स्वास्थ्य-वर्धक होती हैं।

मिठाइयां, चूले से उतारने के बाद ग्रिष्म ऋतु में बीस दिन, शीत ऋतु में एक माह और वर्षा ऋतु में पंद्रह दिन तक उपयोग में ले सकते हैं। यदि मिठाइयां बराबर ठीक ढंग से न बनी हों, तो उनके-रूप-रंग और स्वाद में अन्तर आने में उपरोक्त अवधि से पहले भी अभक्ष हो जाती हैं। अतः उन्हें काम में नहीं लेना चाहिये।

भोजनालय अच्छे प्रकाश और शुद्ध हवा में रखना आवश्यक है। भोजनालय में साफ-सफाई, पाट-पाटले चंदरवे और गलनों का पूर्ण लक्ष्य रखें।

**दस चंदरवेः**—(१) चूला (२) चक्की-घट्टी, (३) पानी (४) बिलोना (५) अंखली (६) भोजन का स्थान (७) शयन स्थान (८) सामायिक स्थान (९) देवस्थान (१०) अतिथि-गृह। इन दस स्थानों पर चंदरवा (छत) बांधने से जीव दया और घर की शोभा बढ़ती है।

**सात गलनेः**—दही, दूध, घी, तैल, जल, आटा और शर्बत—इन सात पदार्थों को स्वच्छ धूले हुए वस्त्र और छननी में छान कर उपयोग में लेने से जीवदया और स्वास्थ्य की रक्षा होती है।

सात गांव बाले संताप, वरस दिवस माछीनुं पाप ।
अण-गल पाणी एक दिन पिये, एटलुं पातिक अंगे लिये ॥

## क्षणिक स्वाद से हानिः-

रानी-मदनसेना ! आलू, मूला, गाजर, कांदा (प्याज) लहसन, शकरकंद, रतालु, मांस, मदिरा, मद (शहद) मक्खन आदि अभक्ष-अनंतकाय ये तामसिक पदार्थ हैं । महा पुरुष ज्ञानी गीतार्थों का अभिप्राय है कि इन उत्तेजक पदार्थों के सेवन से मानव को क्षणिक स्वाद के बदले भवान्तर में अनंती बार छेदन-भेदन दरिद्रता आदि घोर यातनाएं सहना पडती हैं, अतः अभक्ष-अनंतकाय को भी अपने निकट न आने दो । द्वि-दल-कच्चे दूध-दही के साथ तुवर, चने, चवले, मटर आदि की दाल मिला कर न खाना चाहिये ।

## रात्रि-भोजन से हानि-

रानी-मदनसेना ! स्वास्थ्य और सिद्धांत की अपेक्षा रात्रि को भोजन बड़ा घातक है । भोजन में कीड़ी, जूं, इयल, लट, कुत्तों की वर्गे, बाल, कांटा, बिच्छु के अवयव आदि खाने में आने से बुद्धि का नाश, पागलपन, जलोदर, कुष्ठरोग, स्वरभंग, गले में जलन होने लगती है । रात्रि में भोजन कर खाट या बिस्तर पर पड़ जाने से अजीर्णादि रोग होने की सम्भावना रहती है । भोजन करने के बाद देरी से या फिर सुबह बासी बर्तन साफ करने से अनेक जीवों की हिंसा होती है । रात्रि का भोजन त्याग न होने से प्राणान्त कष्ट भोगना पड़ता है ।

## प्रत्यक्ष उदाहरण

रानी-मदनसेना । अभी कुछ दिन पहले एक जमींदार के बेटे की शादी थी । कई लोग उसकी बराते में गये थे । उसमें एक जैन नवयुवक था । उसे रात्रि-भोजन का कड़क नियम था । लग्न का समय रात को दो बजे का था । अतः सभी बराती खा-पीकर नींद के खर्राटे ले रहे थे । बड़ी कड़ाके की ठण्ड पड़ रही थी । कुछ वरराजा के प्रमुख साथी ताश-पत्ते खेलने में मस्त थे । एक ने आलस मोड़ते हुए कहा, अब तो सुस्ती आती है । उसी समय वरराजा ने अपने नौकर को पुकारा और कड़क-चाय का आदेश दिया ।

नौकर ने आंखें मलते हुए खटिया से उठ कर एक केतली में पानी डाल कर शीघ्र ही उसे ढंक कर धधकते हुए अंगारों पर रख दी । दूसरे सज्जन उठे और उन्होंने अपने हाथों से केतली में चाय, शक्कर केशर डाल कर शीघ्र ही उसे छान कर प्याले भरे, फिर तो आपस में एक दूसरे की मनवार होने लगी । साथ ही चाय पीते समय वे लोग जैन धर्म और जैन युवक की हंसी-दिल्लगी भी करने लगे । जैन युवक से न रहा गया । उसने बड़े शांत भाव से अपने मित्रों से कहा ।

महानुभाव ! आप समझते हैं कि जैन सिद्धांत ही रात्रि-भोजन को घातक मानता है ऐसी बात नहीं। पुराण रचयिता मार्कण्डेय ऋषि ने भी भारपूर्वक स्पष्ट शब्दों में कहा है कि—

**अस्तं-गते दिवानाथे, आपो रुधिर मुच्यते।**
**अन्न मांस सम प्रोक्तं, मार्कण्डेय महर्षिणां॥**

रे मानव ! तुझे दुनिया में चार दिन जीना है? तो तू स्वप्न में भी रात्रि-भोजन न कर। सूर्यास्त के बाद अन्न और जल ग्रहण करना रक्त और मांस के समान है। रात्रि-भोजन के मोह से कई स्त्री-पुरुषों को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा है।

वास्तव में वही हुआ। कुछ समय बाद वर-राजा और उनके प्रिय मित्रों का सिर चकराया और वे लोट-पोट हो गये। रंग में भंग हो गया। शीघ्र ही चारों ओर कोलाहल मच गया, जनता का हृदय कांप उठा। पुलिस आई। वैद्य आये। किन्तु टूटी की बूटी नहीं। खोज करने से पत्ता चला कि केतली की नली में एक छिपकली का छोटा सा बच्चा था, वह चाय के साथ उबल जानेसे वर-राजा और उसके मित्रों की मृत्यु हो गई।

मदनसेना—माताजी ! आपका कहना ठीक है। एक बार मेरी साथिन भी मरते-मरते बची। उसके जल-पान में कोई ऐसा कीट आ गया कि उस के हाथ-पैर-मुंह-आंख-कान सारे शरीर पर सूजन आ गई थी। अब मैं आज से आजन्म रात्रि-भोजन न करूंगी। बेटी !—इसी में कल्याण है।

रानी—मदनसेना ! अब समय अधिक हो गया है। अब तक मैंने तुम्हें गृहस्थाश्रम की कुछ बातें बतलाईं हैं। अब तुम्हें एक संक्षिप्त अति महत्वपूर्ण बात और बतला दूं।

**बेटी ! जो तुम्हारा है, वह कभी तुमसे अलग नहीं हो सकता। जो वस्तु तुमसे अलग हो जाती है या हो सकती है, वह तुम्हारी नहीं है। पर-पदार्थों के साथ आत्मीयता का भाव स्थापित करना महान भ्रम है। इसी भ्रम का नाम है मिथ्यात्व। आज इसी मिथ्यात्व अज्ञान दशा के कारण संसार अनेक कष्टों से पीड़ित है। अगर मैं और मेरी मिथ्या धारणा मिट जाय तो जीवन में सहज ही एक प्रकार का दिव्य प्रकाश, अपूर्व आनन्द, निस्पृहता और अद्भुत शांति प्राप्त हो सकती है।**

इस जीवात्मा ने भव-भ्रमण करते हुए अनेक बार पुत्र-कलत्र (स्त्री) राज-पाट, धन-दौलत, हाथी घोड़े पाये, अगर अनेक जन्म में किसी वस्तु की कमी रही है, तो एक मात्र शुद्ध-सम्यक्त्व की, सम्यक्त्व के अभाव में दान-शील, जप, तप अध्ययन आदि प्रत्येक कार्य संसारवर्धक हैं। कर्मों से मुक्त होने की सर्व प्रथम सोपान (सीढ़ी) है सम्यक्त्व।

## आत्मा का स्वाभाविक धर्म, सम्यक्त्वः—

सम्यक्त्व का अर्थ है, निर्मल दृष्टि, सच्ची श्रद्धा और सच्ची लगन। सम्यक्त्व ही मुक्ति-मार्ग की प्रथम सीढी हैं। जब तक सम्यक्त्व नहीं हैं, तब तक समस्त ज्ञान और चारित्र मिथ्या है। जैसे अंक के बिना बिन्दुओं की कतार लगा देने पर भी, उसका कोई अर्थ नहीं होता, उससे कोई संख्या तैयार नहीं होती, उसी प्रकार समकित के बिना ज्ञान और चारित्र का कोई उपयोग नहीं, वे शून्यवत् निष्फल हैं। अगर सम्यक्त्व रूपी अंक हो, और उसके बाद ज्ञान और क्रिया (चारित्र) हो तो जैसे एक के अंक पर प्रत्येक शून्य से दस गुनी कीमत हो जाती है, वैसे ही वे ज्ञान और चारित्र-दान, शील, तप जप आदि मोक्ष के साधक होते हैं। मुक्ति के लिये सम्यग्दर्शन की सर्वप्रथम अपेक्षा रहती है। सम्यग्दर्शन से ही ज्ञान और चारित्र में सम्यक्त्व आता है। इसी लिये दर्शन, ज्ञान और चारित्र तीनों ही भाव सम्यक्त्व होते हुए भी सम्यक्त्व शब्द सम्यग्दर्शन के अर्थ में ही रूढ़ हो गया है। यह सम्यग्दर्शन की प्रधानता सूचित करता है।

सम्यक्त्व आत्मा का स्वाभाविक धर्म है, परन्तु अनादि काल से दर्शन मोहिनी कर्म के कारण आत्मा का यह गुण ढक गया है। जैसे ही दर्शन-मोहिनीय कर्म दूर हुआ कि सम्यक्त्व गुण इस प्रकार प्रकट हो जाता है, जैसे बादलों के दूर होने पर सूर्य। इस प्रकार दर्शन-मोहनीय के दूर होने को और सम्यक्त्व गुण प्रकट होने को समकित की प्राप्ति होना कहा जाता है। समकित की प्राप्ति दो तरह से होती है: निसर्ग से और अधिगम से। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है—"तन्निसर्गादधिगमाद्वा"। जो सम्यक्त्व बिना गुरु आदि के उपदेश से होता है वह निसर्गज और जो शास्त्र वाचन आदि से हो वह अधिगमज कहलाता है।

## सम्यक्त्व प्राप्ति का क्रमः—

जैसे बड़े वेग से बहने वाली नदी में एक पत्थर का टुकड़ा दूसरे पत्थरों और बड़ी बड़ी चट्टानों से टकरा टकरा कर गोल-मोल हो जाता है, उसी प्रकार यह जीव नाना-योनियों में जन्म-मरण कर और शारीरिक-मानसिक कष्टों को सहन करता हुआ कर्मों की निर्जरा करता है। उस के प्रभाव से उसे पांच प्रकार की लब्धियां प्राप्त होती हैं।

## (१) क्षयोपशमलब्धिः—

अनादिकाल से परिभ्रमण करते हुए संयोगवश ज्ञानावरणादि आठ कर्मों की अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग (रस) को प्रति समय अनन्त गुणा कम करना क्षयोपशम-लब्धि है।

## [२] विशुद्धिलब्धिः-

इस प्रकार अशुभ प्रकृतियों के अनुभाग के मन्द होने से शुभ परिणाम उत्पन्न होते हैं। यह विशुद्धलब्धि है।

## (३) देशना लब्धिः–

विशुद्धि लब्धि के प्रभाव से तत्त्वों के प्रति रुचि उत्पन्न होती है, और उन्हें जानने की इच्छा होती है—यह देशना लब्धि है।

## (४) प्रयोग लब्धि–

देशनालब्धि प्राप्त करने के बाद जीव अपने परिणामों को शुद्ध करता है। आयुष्य कर्म को छोड़कर शेष सात कर्मों को कुछ कम एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम की स्थिति वाले कर लेता है और कर्मों के तीव्र अनुभाग को मन्द करता है– यह प्रयोग लब्धि है।

## (५) करण लब्धि–

आत्मा के परिणाम को करण कहते हैं। करण तीन हैं। यथा प्रवृत्ति करण, अपूर्व करण और अनिवृत्ति करण।

(१) यथा प्रवृत्ति करण–प्रयोग लब्धि से सात कर्मों की स्थिति को कुछ कम एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम की कर देने वाले आत्मा के परिणामों में विशेष शुद्धि होना यथा प्रवृत्ति करण कहलाता है। यह करण अभव्यजीवों को भी होता है।

(२) अपूर्व करण–यथा प्रवृत्ति करण के बाद परिणामों में और विशेष शुद्धि होती है। जिस कारण अनादि कालीन राग-द्वेष की बड़ी मजबूत ग्रंथि को भेदने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। और ग्रंथि भेद कर भी डालता है। ऐसा पहले कभी नहीं किया अतः इसे अपूर्व करण कहते हैं।

(३) अनिवृत्ति करण–अपूर्व करण के बाद और विशेष शुद्धि होना अनिवृत्ति करण कहलाता है। इस करण के करने से सम्यक्त्व प्राप्त होता है। सम्यक्त्व तीन हैं।

## [१] औपशमिक सम्यक्त्व–

यथा प्रवृत्ति करण से कर्मों की कुछ कम एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम की स्थिति करने पर अपूर्व करण में ग्रंथि-भेद करने पर और मिथ्यात्व का उदय न होने पर अनिवृत्ति करण द्वारा प्रथम जो सम्यक्त्व होता है, वह औपशमिक समकित है। जैसेः–

उसरदेसं दड्ढेल्लय विज्झइ वणदवो पप्प।
इयमिच्छत्ताणुदए उवसम-सम्मं लहइ जीवो॥

जिस प्रकार ऊसर और दग्ध भूमि को प्राप्त होकर दावाग्नि स्वयमेव-अपने आप बुझ जाती है, उसी तरह मिथ्यात्व के उदय में न आने पर जीव उपशम सम्यक्त्व पाता है।

अथवा अनंतानुबन्धी क्रोध-मान-माया और लोभ तथा समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व की तीन प्रकृतियां ऐसे सात प्रकृतियों के उपशम से होने वाला समकित औपशमिक कहलाता है।

## क्षयोपशमिक सम्यक्त्वः-

उदय-प्राप्त मिथ्यात्व मोहनीय का क्षय और उदय में नहीं आये हुए मिथ्यात्व का उपशम और सम्यक्त्व मोहनीय के उदय से होने वाला सम्यक्त्व क्षायोपशमिक कहलाता है।

## क्षायिक सम्यक्त्वः-

पूर्वोक्त सात प्रकृतियों के क्षय से होने वाला क्षायिक है। क्षायिक समकित अप्रतिपाती है, अर्थात् एक बार आ जाने पर फिर नहीं जा सकता है। शेष दो आने पर पुनः जा भी सकते हैं। जिसने समकित का स्पर्श कर किया वह संसार को परिमित कर देता है। और अर्द्ध पुद्गल-परावर्त्तन काल में अवश्य मोक्ष जाता है।

सम्यक्त्व की बात सुन कर राजकुमारी मदनसेना के रोम २ खड़े हो गये। उसने कहा, माताजी! वास्तव में प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन आदि अठारह पाप-स्थानक में यदि कोई महान् पाप है तो एक मात्र मिथ्यात्व ही है। इस मिथ्यात्व को निर्मूल कर सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति में पुरुषार्थ करने वाला आत्मा ही धन्य है, कृत-पुण्य है।

मैं भी आज से देव अरिहंत, गुरु निग्रंथ, और सर्वज्ञ-देवप्रणित धर्म का श्रद्धान कर निश्चित हो सम्यक्त्वप्राप्ति में पुरुषार्थ करूंगी।

राजमाता अपनी प्यारी बेटी मदनसेना और श्रीपालकुंवर के भाल पर कुंकुम का तिलक कर वह उन्हें पहुँचाने बंदरगाह की ओर चल दीं।

साजन सोहाव्या रे, मिलणा बहु लाव्या रे कांठे सवि आव्या आंसू पाड़ता रे।
वर बहु बालाव्या रे, मावित्तर दुःख पाव्या रे, तूर बजड़ाव्या हवे प्रयाण नां रे ।ठे५।

नांगर उपड़ाव्या रे, सढ़ दोर चढाव्या रे, वहाण चलाव्या वेगे खलासिये रे।
नित नाटक थावे रे, गुणिजन गुण गावे रे, वर वहू सोहावे बहू गोखड़े रे।।१६।।

बंदरगाह पर अपार भीड़ थी। महाकाल राजा के परिवार, मंत्री-मंडल और नागरिकों ने वर-वधू को हृदय से आशीर्वाद दे उनका बहुमूल्य वस्त्रों से सत्कार किया। जहाजों के प्रस्थान की ध्वनि (सीटी) मंगल बाजों का शब्द सुन जनता का हृदय भर आया। जहाज के झरोखे में दोनों पति-पत्नि बड़े भले मालूम होते थे, उन्हें देख माता-पिता की आंखों से टप-टप आंसू टपकने लगे।

जहाजों के लंगर उठे और वे बड़े वेग से जनता की दृष्टि से ओझल हो गये। सभी लोग श्रीपालकुंवर के गुणगान करते हुए वापस अपने स्थान पर लौट गये।

मार्ग में महाकाल राजा के नर्तक नट-नटियाँ अपनी अनूठी कला—चातुर्य से दोनों पति-पत्नी का मनोरंजन करती चली जा रही थी, किन्तु श्रीपालकुंवर का एक ही लक्ष्य था, श्री सिद्धचक्र का स्मरण। आत्म-रमणता।

मन चिंते सेठ रे, में कीधी वेठ रे, सायर ठेठ फल्यो जुओ एहने रे।
जे खाली हाथे रे, आव्यो मुझ साथे रे, आज ते आथे संपूरण थयो रे।।१७।।
जल इंधण माटे रे, आव्य इणे वाटे रे, परण्यो रण साटे जुओ सुंदरी रे।
लखमी मुझ आधी रे, इणे मुहियां लाधी रे, दोलत वधी देखो पलकमां रे।।१८।।
कीम मांगु भाड़ं रे, खत पत्र देखाड़ु रे, देशे के आड़ुं अवलुं बोलशे रे।
कुंवर ते जाणी रे, मुख मीठी वाणी रे, भाडुं तस आणी आपे दश गणुं रे।।१९।।
पाम्या अनुक्रमे रे, नर भ जिन धरमे रे, वहाण रयणदिवे खेमे सहु रे।
नागर जल मेल्या रे, सढ़दोर संकेल्या रे, हलवे हलवे लोक सहु त्यां उतर्यां रे।।२०।।
बीजे इम खण्डे रे, जुओ पुण्य अखंडे रे, एकण पिंडे उपार्जन करी रे।
कुंवर श्रीपाल रे, लह्या भोग रसाल रे, पांचवीं ढाल इसी विनये कही रे।।२१।।

## धवलसेठ के तन में आग लग गई :—

आग से जला मानव आज नहीं कल स्वस्थ हो पनप सकता है, किन्तु मान, बड़ाई, ईर्षा से दग्ध स्त्री-पुरुषों की वैद्य धन्वन्तरी और ब्रह्मा के पास भी दवा नहीं। ईर्षा महा-भयंकर एक ठण्डी आग है। इस आग ने एक नहीं हजारों मानवों की दिव्य मानसिक शक्ति को अन्दर ही अन्दर जला कर राख कर दिया। ईर्षा करना मानो अपने दीपक से ही अपने घर में आग लगाना है।

धवलसेठ भी इस आगसे बच न सके। मदनसेना के नूपुर की झंकार, श्रीपाल की विपुल संपत्ति देख, सेठ मन ही मन कुढ़ने लगे। हाय ! हाय !! इस भले आदमी ने मुझे कंगाल बना, बात की बात में मेरे अढ़ाई सो भरे-पूरे जहाज हथिया लिये। कल मेरे साथ खाली हाथ आया था, आज बेटा मेरे बराबरी का बन बैठा। सचमुच समुद्र यात्रा इसी को फली है। मैंनें तो बब्बरकूल पर उतर कर केवल भाड़ झोंकी है। मुझे तो "लेने से देना भारी पड़ गया" इन्धन (लकड़ी) और जल के बदले उलटे मुंह लटकना पड़ा। अब इस कुंवर से भाड़े की रकम पटाना है। क्या पता दे या अंगूठा बता दे ? नवयुवक ठहरा।

श्रीपालकुंवर बड़े उदार, दयालु थे, वे धवलसेठ को जरा ऊंचा नीचा होते देख, उसी समय उनके मन की बात ताड़ गये। उन्होंने बिना कहे, सेठ को अपने पास बुला कर बड़े प्रेम से उनका जितना किराया था उससे दसगुनी अधिक रकम सेठ के हाथों पर रख दी। सेठ भी देखते रह गये।

जहाजों की मंद गति देख लोगों को ज्ञात हुआ कि रत्नद्वीप आ रहा है। सभी लोग अपने इष्टदेव का स्मरण कर कहने लगे, कि सागर में बड़ा तूफान था, भाग्य से ही आज अपन सकुशल रत्नद्वीप आ पहुँचे हैं, जैसे कि जैनधर्म के प्रभाव से नर भव का प्राप्त होना। जहाज-चालकों ने लंगर डाल अपनी पालें उतारी। व्यापारी लोग जहाज से उतर कर बंदरगाह की और चढ़ने लगे।

श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहते हैं, की श्रीपालरास के दूसरे खण्ड की यह पांचमी ढाल सम्पूर्ण हुई। जैसे कि श्रीपालकुंवर ने अपने भुजबल और प्रबल पुण्योदय से सहज ही विपुल संपत्ति और सुयश प्राप्त किया है, उसी प्रकार इस रास के श्रोता और पाठकगण भी श्री सिद्धचक्र की आराधना कर अतुल सुख समृद्धि और सम्यक्त्व-रत्न प्राप्त करें।

## दोहा

दाण बलावी वस्तुनां, भरी अनेक वखार।
व्यापारी व्यापारनां, उद्यम करे अपार ॥ १ ॥
लाल किनायत जरकसी, चंदवा चोसाल।
ऊँचा तंबु ताणिया, पंचरंग पटशाल ॥ २ ॥
सोवन पट मंडप तले, रयण हिंडोला खाट।
तिहां बेठा कुंवर जुए, रस भर नव रस नाट ॥ ३ ॥
धवलसेठ आवी कहे, वस्तु मूल्य बहू आज।
ते वेचावो कां नहीं, भर्या अढीसो जहाज ॥ ४ ॥
कुंवर पभणे सेठ ने, घड़ो वस्तुना दाम।
अवर वस्तु विणजो वली, करो अमारू काम ॥ ५ ॥
काम भलाव्युं अम भले, हरख्यो दुष्ट किराड।
आरत ध्याने जिम पड्यो, पामी दूध बिलाड ॥ ६ ॥

### श्रीपालकुंवर और धूर्त धवलसेठ :—

श्रीपालकुंवर जहाज से उतर कर वे अपने अनुचरों के साथ सीधे डेरे पर पहुँचे। उनके ठहरने के तम्बू बड़े सुन्दर ढंग से सजाये गये थे। स्थान-स्थान पर रंग-बिरंगी छतें, सुनहरी पड़दे, सिंहासन और रत्नजड़ित झूलों आदि की शोभा देख बंदरगाह के स्त्री-पुरुष चकित हो गये। सभी मुक्त कण्ठ से श्रीपालकुंवर की प्रशंसा कर, कहने लगे, धन्य है! यह पुण्यवान बड़ा सुखी है।

"सुखी वही है, जिसका जीवन नियमित और सदा निरोगी है" कुंवर सदा अपने भजन पूजन व्यायाम आदि दैनिक कार्यक्रम से निवृत्त हो, कभी नाटक देखते, कभी सत्संग करते, कभी झूला झूलते थे।

धवलसेठ को यह बात बड़ी अखरी। वे कुढ़ कर मन ही मन बड़बड़ाने लगे। अरे! आज इतना अच्छा बाजार चल रहा है, फिर भी यह छोकरा चुप-चाप बैठ

रंगरेलियां कर रहा है? सच है, बिना परिश्रम का माल पाकर यह क्यों चिंता करने लगा? बड़ा आलसी है। हम लोग अपने माल का राज्य-कर चुका कर इतना बड़ा परिश्रम करते हैं, फिर भी शांति नहीं।

जिस प्रकार दूध का भरा कटोरा देख बिल्ला ललचा जाता है, उसी प्रकार सेठ को भी यही धुन सवार हुई, कि उदार सहृदय श्रीपालकुंवर के माल से मन-माना लाभ प्राप्त करना। धवलसेठ सीधे कुंवर के पास पहुँचे, और अपनी लच्छेदार बातों से उनसे उनके अढ़ाई सौ जहाज के माल तथा अन्य वस्तुओं के क्रय विक्रय की स्वीकृति प्राप्त कर वे अनेक संकल्प-विकल्प करने लगे। उस समय उनके हर्ष का पार नहीं।

इण अवसर आव्यो तिहां, अवल एक असवार।
सुगुण सुरूप सुवेष जस, आप समो परिवार ॥ ७ ॥
कुंवर तेडी आदरे, बेसार्यो निज पास।
अद्भुत नाटक देखतां, ते पाम्यो उल्लास ॥ ८ ॥
हवे नाटक पूरो थये, पूछे कुंवर तास।
कुण कारण कुण ठाम थी, पाउ धार्या अम पास ॥ ९ ॥

एक दिन एक नाट्याचार्य अपनी मंडली को साथ ले वे बड़े उत्साह से ताल-लय के साथ श्रीपालकुंवर को अपनी कला का परिचय दे रहे थे। उनका संगीत इतना मधुर और आकर्षक था, कि उसे श्रवण कर कुंवर आनंद-विभोर हो गये। तम्बू के बाहिर कई स्त्री-पुरुष स्तम्भित हो गये। वे अनिवार्य काम होने पर भी वहां से एक पैर भी आगे न बढ़ सके।

युवक जिनदास तो भीड़ को चीर कर सीधा तम्बू के अन्दर जा पहुँचा। कुंवर की उस पर दृष्टि पड़ते ही उन्होंने बड़े प्रेम से हाथ पकड़ अपने पास बिठा लिया। वह रूप सौन्दर्य और वेषभूषा से बड़ा भद्र मालूम होता था।

जिनदास भी श्रीपालकुंवर का विनम्र स्वभाव और नाट्याचार्य की विचित्र कला देख बड़ा मुग्ध हो गया। वह मन ही मन कहने लगा, धन्य है। यह वास्तव में मानव नहीं देव है। यदि इनके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति होता तो मेरा अपमान किये बिना न रहता।

खेल समाप्त हुआ। कुंवर ने मुस्कराते हुए जिनदास से कहा, श्रीमान्‌जी! धन्यवाद। आज आपने बड़ी कृपा की। कहियेगा मेरे योग्य कोई सेवा? श्रीमान् कहां से पधार रहे हैं?

## दूसरा खण्ड-ढाल छट्ठी

(राग-झांझरिया मुनिवर धन धन तुम अवतार

तेह पुरुष हवे वीनवेजी, रत्नद्वीप ए सुरंग।
रतनसानु पर्वत इहां जी, वलयाकार उत्तंग॥
प्रभु! चित्त धरीने, अवधारो मुज वात॥१॥
रतनसंचया तिहां वसे जी, नयरी पर्वत मांह।
कनककेतु राजा तिहां जी, विद्याधर नरनाह॥प्रभु०॥२॥
रतन जिसी रलियामणिजी, रतनमाला तस नार।
सुरसुन्दर सोहामणाजी, नंदन छे तस चार॥प्रभु०॥३॥
ते उपर एक इच्छतां जी, पुत्री हुई गुणधाम।
रूपकला रति आगली जी, मदनमंजूषा नाम॥प्रभु०॥४॥
पर्वत शिर सोहामणाजी तिहां एक जिन प्रासाद।
राय पिताए करावियोजी, मेरुसुं मंडे वाद॥प्रभु०॥५॥
सोवनमय सोहामणा जी, तिहां रिसहेसर देव।
कनककेतु राजा तिहांजी, अहनिश सारे सेव॥प्रभु०॥६॥
भक्ते भली पूजा करे जी, राजकुंवरी त्रण काल।
अगर उखेवे गुण स्तवेजी, गावे गीत रसाल॥प्रभु०॥७॥

जिनदास ने श्रीपालकुंवर से कहा श्रीमान्‌जी! धन्यवाद। आज आप के विनम्र स्वभाव और दर्शन से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ। मेरी आप से एक प्रार्थना है, कि इस रत्नद्वीप के निकट लम्बगोल रत्नसानु पर्वत पर एक अति सुन्दर धन-धान्य से परिपूर्ण रत्नसंचया नगरी है। वहां सम्राट विद्याधर कनककेतु राज्य करते हैं। उनकी पटरानी का नाम रत्नमाला है। वास्तव में वह एक रत्न ही है।

उनके चार पुत्र थे किन्तु एक पुत्री के बिना राजमाता का सारा संसार सूना था। प्रायः महिलाओं को अपनी बेटी-जमाई के लाड़-प्यार का विशेष मोह रहता है। पश्चात् कई दिनों के बाद महारानी की मनोकामना सफल हुई। उनके यहां एक अति सुन्दर गौरांगी मृगनयनी कन्या का जन्म हुआ। उसका बड़े महोत्सव के साथ मदनमंजूषा नाम रखा गया। मदनमंजूषा अब युवावस्था में है।

उसके दादा बड़े धर्मात्मा और दानवीर थे। उन्होंने इसी पर्वत के शिखर पर एक विशाल बड़ा सुन्दर कलापूर्ण मंदिर बनवाया था। उसमें प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव प्रभु की स्वर्णमयी एक दिव्य प्रतिमा विराजमान है।

हमारे सम्राट कनककेतु और राजकुमारी मदनमंजूषा को श्री जिनेन्द्रदेव पर पूर्ण श्रद्धा है! वे दोनों सदा त्रिकाल प्रभुभक्ति और भजन में लीन रहते हैं!

**एक दिनजिन आंगी रचीजी, कुंवरीए अति चंग।**
**कनकपत्र करी कोरणीजी, विच विच रतन सुरंग ॥ प्रभु० ॥ ८ ॥**
**आव्यो राय जुहारवाजी, देखी सुता विज्ञान।**
**मन चिंते धन मुज धुआजी, शणसठ कला निधान ॥ प्रभु० ॥ ९ ॥**
**ए सरीखो जोवर मिलेजी, तो मुज मन सुख थाय।**
**साचो सोवन मुद्रड़ीजी, काच तिहां न जड़ाय ॥ प्रभ० ॥ १० ॥**

सम्राट कनककेतु को नियम था कि प्रतिदिन भगवान के दर्शन करके ही अन्न-जल ग्रहण करना। एक दिन वे मंदिर में दर्शन करने गये, उस समय वहां राजकुमारी मदनमंजूषा बहुमूल्य हीरे, पन्नें, माणिक, मोती और स्वर्णपत्र के बेल बूटों से भगवान की सुन्दर आंगी बना रही थी।

कनककेतु अपनी लाडिली बेटी की अनुपम श्रद्धा भक्ति कलाचातुर्य देख मुग्ध हो गये। वे अपने मन ही मन कहने लगे, रे विधाता! मदनमंजूषा केवल चौसठ कला-निधान ही नहीं किन्तु यह एक धर्मनिष्ठ भी है। मेरी मनोकामना है, कि आपने इसको जितनी सुन्दर और कलापूर्ण बनाई है, उसी प्रकार इसको सुन्दर सुयोग्य आर्हत् धर्मोपासक धर्मनिष्ठ कोई वर मिले तब तो तुम्हारी विशेषता है। वस्तव में स्वर्ण की अंगूठी में बहुमूल्य रत्न ही शोभा देता है, न कि एक बनावटी कांच का टुकड़ा।

एम उभो सूने मनेजी चिंतातुर नृप होय।
इण अवसर अन्तरिज थयोजी, ते सुणजो सहुकोय॥ प्रभु०॥ ११॥

औसरती पाछी पगेजी, जिन मुख जोती सार।
आवी गंभारा बाहिरे जी, जब ते राजकुमारी॥ प्रभु०॥ १२॥

ताम गंभारा तेहनाजी, देवाणा दोय बार।
हलाव्या हाले नहींजी, सरके नहीं लगार॥ प्रभु०॥ १३॥

राजकुंवरी इम चिंतवेजी, मन आणि विषवाद।
मैं कीधो आशातनाजी, कोईक धरी प्रमाद॥ प्रभु०॥ १४॥

धिक मुज जिन जोवा तणोजी, उपनो एह अन्तराय।
दोष सयल मुज सांमहोजी, स्वामी करी सुपसाय॥ प्रभु०॥ १५॥

दादा दरिसण दीजियेजी, ए दुःख मे न खमाय।
छोरु होय कछोरुओजी, छेह न दाखे माय॥ प्रभु०॥ १६॥

## एक अद्‌भुत घटनाका परिचय

जोर से धड़ाके की आवाज सुन सैकड़ों स्त्री-पुरुष मंदिर की ओर दौड़ पड़े। कनककेतु ने चौंक कर कहा। हाय! मैं अपने मन में कुछ और ही सोच रहा था किन्तु यहां तो लेने से देना भारी हो गया। मंदिरजी के प्रमुख द्वार (गंभारे) से राजकुमारी के बाहिर आते ही सहसा पट मंगल का होना साधारण सी बात नहीं।

राजा का संकेत पाते ही लोगोंने द्वार खोलने के उनेक प्रयत्न किये फिर भी किसी को सफलता न मिली। यह दृश्य देख मदनमंजूषा का हृदय भर आया। उसकी आंखों से टप-टप आंसू बहने लगे। हाय! हाय!! मंदरजी के द्वार बंध होने का निमित्त कारण एक मात्र मैं हुं। संभव है, भगवान की आंगी करते समय मुझ से कोई महान् आशातना हुई हो।

नाथ! अब आप मेरी अधिक कसौटी न कर क्षमा करियेगा। पूत कपूत होने पर भी माता-पिता अपना स्वभाव नहीं छोड़ते हैं। अन्त में वात्सल्यभाव से उनका हृदय द्रवित हुए

बिना नहीं रहता है। आप क्षमानिधि हैं। मैं आपसे विनम्र भाव से बार बार क्षमा चाहती हूँ। अनेक स्त्री-पुरुष आपके दर्शन से वंचित हैं। अतः शीघ्र ही दर्शन दे हमें अनुग्रहित करियेगा।

राय कहे वत्स सांभलो जी, दोष नहीं तुझ एह।
दोष इहां छे माहरो जी, आणी तुझ पर नेह ॥ प्रभु० ॥ १७ ॥
वरनी चिंता चिंतवो जी, जिणहर मांही जेण।
ते लागी आशातना जी, बार देवाणा तेण ॥ प्रभु० ॥ १८ ॥
जिनवर तो रुषे नहीं जी, वीतराग सुप्रसिद्ध।
पण एक कोईक अधिष्ठायके जी, ए मुज शिक्षा दीध ॥ प्रभु० ॥१९॥
ए कवाड़ त्रिण उघड़े जी, जाऊँ नहीं आवास।
सपरिवार नृपने तिहांजी, त्रण हूआ उपवास ॥ प्रभु० ॥ २० ॥
त्रीजे दिन निशि पाछली जो, वाणी हुई आकाश।
दोष नथी इहां कोई नो जी, कांइ करे विषाद ॥ प्रभु० ॥ २१ ॥
जेहनी नजरे देखतां जी, उघड़शे ए बार।
ददनमंजूषा तणो थशे जी, तेहज नर भरतार ॥ प्रभु० ॥ २२ ॥
ऋषभदेवनी किंकरी जी, हूं चक्केसरी देवी।
एक मास मांहे हवे जी, आवुं वरने लेवी ॥ प्रभु० ॥ २३ ॥
सुणी तेह हरख्या सहुजी, राय ने अति आणंद।
प्रेमे कीधा पारणा जी, दूर गया दुःख दंद ॥ प्रभु० ॥ २४ ॥

सम्राट कनककेतु ने कहा—बेटी! तू सर्वथा निरपराध है। तू जरा भी चिंता न कर। जिनेन्द्र देव वीतराग हैं। वे किसी का मंगल अमंगल नहीं करते। सदैव मंगल और अमंगल मानव के स्वभाव और विचारधारा के आधीन है।

"कृतः कर्म क्षयो नास्ति" प्राणीमात्र को अपनी भूल का फल भोगना ही पड़ता है। जिन मन्दिरों में प्रभु स्तवन, आत्मचिंतन के सिवाय आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान करना सर्वथा

निषेध है। फिर भी मैंने यहां मोहवश तेरे लिये एक सुयोग्य वर के लिये संकल्प-विकल्प किया, उसीका यह कटु फल है। खेद है कि आज हम दैविक प्रकोप से भगवान के दर्शन से वंचित हैं।

कनककेतु—मदनमंजूषा! अब मैं यहां से बिना भगवान के दर्शन किये कदापि वापस न लौटूंगा। सम्राट की यह अटल प्रतिज्ञा सुन, उनका मंत्री मण्डल कांप उठा। सच है, राज-हठ, बाल-हठ और स्त्री-हठ का अन्त होना बड़ा कठिन है। प्रधानमंत्री ने राजा को बहुत कुछ समझाया फिर भी अपनी प्रतिज्ञा से जरा भी टस से मस न हुए। कनककेतु अन-जल का त्याग कर चुपचाप भगवत् भजन में लीन हो गये। उनके परिवार ने भी वैसा किया। "यथा राजा तथा प्रजा"। चारों ओर सन्नाटा-सा छा गया। सभी निराहार अपने भजन में मग्न थे।

भगवत् भजन में अतुल बल, अबोध शक्ति और एक अनूठा चमत्कार है। विशुद्ध हृदय के भजन से इन्द्रासन भी डोलने लगता है। वास्तव में हुआ भी वही, अनशन के तीसरे दिन रात्रि के समय ब्राह्म मुहूर्त में सहसा एक आकाशवाणी हुई। श्री ऋषभदेव की उपासिका चक्रेश्वरीदेवी ने अप्रकट रूप से कहा।

## ❋ आकाश वाणी ❋

"राजन! आप लोग चिंता न करें। आप सभी निरापराध हैं। जिन मन्दिर के पट-मंगल होने का प्रमुख कारण है राजकुमारी मदनमंजूषा का भाग्योदय। यह द्वार जिस पुरुष-रत्न की दृष्टि और कर स्पर्श से खुल जाय आप उसे सचमुच निःसंदेह अपनी लाड़ली बेटी ब्याह दें। मैं इसी माह में यहां एकनर-रत्न को शीघ्र ही ला कर उपस्थित करूंगी।"

भविष्यवाणी सुन सभी आनंदविभोर हो उठे। सम्राट कनककेतु ने अपने महल में लौटकर सानंद स-परिवार पारणा (भोजन) किया।

**दिन गणतां ते मास मां जी, ओछो छे दिन एक।**
**तिणे जुए सहु वाटड़ो जी, करे विकल्प अनेक॥ प्रभु०॥ २५॥**
**पुत्र सेठ जिनदेव नो जी, हुं श्रावक जिनदास।**
**प्रवहण आव्या सांभली जी, आव्यो इहां उल्लास॥ प्रभु०॥ २६॥**

सुणी नाद नाटक तणोजी, देखण आव्यो जाम।
मनमोहन प्रभु तुम तणोजी, दरिसण दीठुं ताम॥प्रभु०॥२७॥

जाणु देवी चक्केसरी जी, तुम आण्यो अम पास।
जिणहर बार उघाडतांजी, फलशे सहुनी आश॥प्रभु०॥२८॥

पूज्य पधारो देहरे जी, जुहारो श्री जगदीश।
उघडशे ते बारणां जी, जाणु विसवा वीश॥प्रभु०॥२९॥

बीजे खण्डे इणी परेजी, सुणतां छट्ठी ढाल।
विनय कहे श्रोता घरे जी, हो जो मंगल माल॥प्रभु०॥३०॥

श्रीमान्‌जी ! नगर में घर-घर चारों ओर भविष्यवाणी की चर्चा होने लगी। जैसे-जैसे दिन बीतने लगे, वैसे ही जनता में अधिक कौतुक बढ़ने लगा। प्रत्येक नागरिक जानना चाहता था कि राजकुमारी का भावी वर कौन होगा?

अभी तक कोई ऐसा नर-रत्न हमें दिखाई नहीं दिया जो कि हमारे सम्राट की मनो-कामना सफल कर सके। आज सुबह मुझे ज्ञात हुआ कि रत्नद्वीप बंदरगाह पर सैकड़ों जहाज आये हैं। अतः कौतुकवश मैं भी घूमता फिरता इधर आपकी सेवा में यहां आ पहुँचा। आपका विनम्र स्वभाव और संगीत का कार्यक्रम देख मुझे बड़ी खुशी हुई। संभव है जगदम्बा देवी चक्रेश्वरी ही आपको खींच कर यहां लाई हैं।

मेरा आप श्रीमान् से सादर अनुरोध है कि आप शीघ्र ही इसी समय रत्नसंचय नगरी में पधारकर श्री ऋषभदेव स्वामी की यात्रा का अवश्य लाभ लें। अब भविष्यवाणी में शेष केवल एक ही दिन रहा है। अतः मेरी अन्तरात्मा बार-बार पुकार कर कह रही है, कि जिन मंदिर के द्वार उद्‌घाटन का सु-यश शत प्रतिशत आपको ही मिलेगा।

श्रीपालकुंवर जिनदेव सेठ के सुपुत्र जिनदास से अद्‌भुत घटना का परिचय पाकर बड़े चकित हो गये। श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपालरास के दूसरे खण्ड की छट्ठी ढाल संपूर्ण हुई। इस रास के पाठक और श्रोताओं के घर सदा ही आनंद मंगल होवे।

## दोहा

तब हरखे कुंवर भणे, धवलसेठ ने तेडी।
जईये देव जुहारवा, आवो दुर्मति फेडी ।। १ ।।
सेठ कहे जिनवर नमो, नवरा तमे निचिंत।
विण उपराजे जेहनी, पहोंचे मननी खंत ।। २ ।।
अमने जमवानो नहीं, घडी एक परवार।
सीरामण बालु जीमण, करिये एकज वार ।। ३ ।।
हवे कुंवर जावा तिहां, जव थाए असवार।
हरख्यो हेषारव करे, तेजी ताम तुखार ।। ४ ।।

श्रीपालकुंवर ने जिनदास के साथ प्रस्थान करते समय धवलसेठ से कहा, महानुभाव ! मैं यहां निकट ही रत्नसंचया जा रहा हूँ। आप साथ चलेंगे ? वहां श्री ऋषभदेव स्वामी का एक भव्य विशाल मंदिर है। दर्शन करके अभी वापस लौट आएंगे।

दर्शन का नाम सुन, सेठ का सिर ठनकने लगा, उन्होंने कहा, अजी दर्शन करें या अपना धंधा ? यहां तो हमें सुबह से शाम तक भोजन करने तक का अवकाश नहीं। बड़ी कठिनाई से दिन में एक बार दो टुकड़े पेटमें पड़ते हैं। इसे आप कलेवा समझें या भोजन। देव-दर्शन तीर्थयात्रा तो वह करे जिसे कि लक्ष्मी घर बैठे तिलक करने आए। आप पधारें, खुशी से ठंडे ठंडे कौन मना करता है। कुंवर बड़े शान्त और गम्भीर थे उन्होंने सेठ की मूर्खता पर ध्यान न दें। वे तो चुपचाप घोड़े पर सवार हो चलने लगे। मार्ग में अश्व बार बार हिन-हिना कर उन्हें विजयश्री की सूचना देता हुआ बड़े वेग से आगे बढ़ता चला जा रहा था।

साथे लई जिनदास ने, अवल अवर परिवार।
अनुक्रमे आव्या कुंवर, ऋषभदेव दरबार ।। ५ ।।
एकेको आवो जई, सहु गंभारा पास।
कुंवर पछी पधारशो, इम बोले जिनदास ।। ६ ।।

जिम निर्णय करी जाणिये, बार उधारण हार।
गंभारे आव्या जई, सहु को करे जुहार ॥ ७ ॥

हवे कुंवर करी धोतिया, मुख बांधी मुखकोश।
जिणहर मांहे संचरे, मन आणी संतोष ॥ ८ ॥

आज सुबह से नगर में चारों ओर बड़ी चहल-पहल मच रही थी। जैन मंदिर के द्वार पर अपार भीड़ थी। राजकुमारी मदनमंजूषा के रूप-सौन्दर्य और वरमाला ने जनता के हृदयमें गुदगुदी पैदा कर दी थी। दूर-दूर से हजारों नवयुवक बड़ी सजधज के साथ झुण्ड के झुण्ड चले आ रहे थे। इधर जिनदास भी श्रीपालकुंवर को साथ ले समय पर मंदिर में आ पहुँचे। सभी अपना अपना भाग्य परखना चाहते थे। क्रमशः एक के बाद एक मनुष्य जिन मंदिर के द्वार को छू छू कर अपनासा मुंह ले वापस लौटने लगे, किन्तु उनमें किसी व्यक्ति को भी सफलता न मिली। मदनमंजूषा ने ठंडी आह भर कर कहा—भगवान ! अब भी मेरी परीक्षा शेष है ? उसका दिल बैठने लगा।

श्रीपालकुंवर बड़े संतोषी थे, वे किसी की सफलता में कंटक न बन चुपचाप सब रंग देखते रहे। अन्त में जिनदास और नागरिकों का विशेष आग्रह देख वे स्नान कर शुद्ध वस्त्र पहन पूजन का थाल ले, श्री ऋषभदेव स्वामी के द्वार के निकट पहुँचे।

## दूसरा खंड-ढाल सातवीं

राग-मल्हार

कुंवर गंभारो नजरे देखतांजी, बेहु उघडिया बार रे।
देव कुसुम वरषे तिहांजी, हुवो जय जयकार रे ॥ कुं० ॥ १ ॥

राय ने गई तुरंत वधामणीजी, आज सफल सुविहाण रे।
देवी दियो वर इहां आवियोजी, तेजे झलामण भाण रे ॥ कुं० ॥२॥

सोवन भूषण लाख वधामणीजी, देई पंचाग पसाय रे।
सकल सज्जन जन परवर्योजी, देहरे आवे नर राय रे ॥ कुं० ॥३॥

दीठो कुंवर जिन पूजतोजी, केशर कुसुम घनसार रे।
चैत्यवंदन चित्त उल्लसेजी, स्तवन कहे इम सार रे ॥ कुं० ॥४॥

दीठो नंदन नाभिनरिंदनो रे, देव नो देव दयाल रे।
आज महोदय में लह्योजी, पाप गया पायाल रे ॥ कुं० ॥५॥

देव पूजी ने कुंवर आवियाजी, रंग मंडप मांहि जाम रे।
राय सज्जन ने परवर्याजी, बैठा करिय प्रणाम रे ॥ कुं० ॥६॥

## 卐 दृढ़ संकल्प का चमत्कार 卐

आत्मा में अपार शक्ति और अतुल बल है। इसका विकास और उपयोग करना भी एक कला है। इसका साधन है इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्प।

यदि आप विश्वविख्यात मानव, लोकप्रिय नेता, प्रकाण्ड विद्वान और श्रीमंत बनना चाहते हैं, तो अपनी इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्प को ठोस बनाएं। वर्ष में आठ हजार, छः सौ चालीस घण्टे होते हैं। यदि आप प्रतिदिन केवल पंद्रह मिनिट भी अपनी इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्प का प्रयोग आरम्भ कर दें तो निःसंदेह अति अल्प समय में ही आपको अपूर्व आनन्द और अनूठी सफलता प्राप्त होगी।

इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्प के बल से आप जितना काम और पापका क्षय एक दिन और एक श्वास में कर सकते हैं, दूसरे व्यक्ति उसे अनेक भव, वर्ष, मास और सप्ताह में भी नहीं कर सकते हैं। हलवे का स्वाद जीभ से ही होता है, तर्क और बातों से नहीं।

जनता की प्रत्यक्ष करारी हार देख, श्रीपालकुंवर को जरा भी भय-संकोच नहीं हुआ। ओह! जब कि इतने मानव मन्दिर का द्वार न खोल सके तो भला मुझसे क्या होगा? मैं अकेला कर ही क्या सकूंगा? मुझे भी उल्टे मुंह की खाकर वापस लौटना पड़ेगा।

हृदय में मुर्दे विचारों को स्थान देना भयंकर अपराध और कायरता है। कायर रोती सूरत स्त्री पुरुष इस भूतल पर भारभूत हैं।

श्रीपालकुंवर कायर, डरपोक व्यक्ति नहीं वे पुरुषार्थी थे। उन्होंने इष्ट, श्री सिद्धचक्र का स्मरण कर तीव्र इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्प से भगवान से प्रार्थना की।

शेरः— दयामय अब दया करके, इस द्वार को खोलो।
आया मैं द्वार पे तेरे, अब प्रेम से बोलो ।।

आपके पास जो मानव, श्रद्धा लेकर के आते हैं।
सुना है आप भी उसको, अपनी छाती से लगाते हैं ।।

मंदिर का द्वार खुलते ही "बोल केशरियालाल की जय! जय हो!!" जय-घोषसे मंदिर गूंज उठा। देवों ने आकाश से फूलों की वृष्टि कर श्रीपालकुंवर का स्वागत किया।

नगर में चारों ओर कुंवर की चर्चा होने लगी। कोई कहता, लड़का क्या है? चमकता सूर्य है, तो दूसरे ने कहा अजी रहने दो, सूर्य तो एक आग का गोला और राहु से दूषित है, भला कहां राजा भोज और कहां गांगली तेलन। आपने भी ठीक कहा, यह कुंवर तो भगवती चक्रेश्वरीदत्त निर्दोष, निरभिमानी, निस्पृह, श्रेष्ठ नररत्न है।

सम्राट कनककेतु श्री जिनेन्द्र दर्शन की बधाई सुन आनंदविभोर हो गये। बधाई देनेवाले भाट चारणों का उन्होंने बड़ी उदारता से सत्कार किया। वे उसी समय शीघ्र ही स-परिवार मन्दिर गये, वहां श्रीपालकुंवर का दिव्य रूप-सौन्दर्य और उनकी सविधि जिनेन्द्रभक्ति देखकर वे फूले न समाये। वाह रे वाह! वास्तव में प्रभो! अंतराय कर्म का क्षय हुए बिना ऐसा सुयोग मिलना बड़ा दुर्लभ है। पश्चात् कनककेतु सपरिवार चैत्यवंदनविधि कर अपने अतिथि के साथ बाहिर सभामण्डप में आ गए।

जिनवर बार उघाडतां जी, अचरिज कीधी तुमे वात रे।
देव स्वरूपी दीसो आपणांजी, वंश प्रकाशो कुल जात रे ।। कुं० ।।७।।
न कहे उत्तम नामते आपणुं जी, नविकरे आपरे आप वखाण रे।
उत्तर न दीधो तेणे राय ने जी, कुंवर समय गुण जाण रे ।। कुं० ।।८।।
देखो अचंभो इणे अवसरे जी, हुओ गयणे उद्योत रे।
ऊँचे वदने जोवे तब सहु जी, ए कुण प्रकटी ज्योत रे ।। कुं० ।।९।।
विद्याचारण मुनि आवियाजी, देव घणां तस साथ रे।
जइ गंभारे जिन वांदिया जी, थुण्या श्री जगन्नाथ रे ।। कुं० ।।१०।।

देव रचित वर आसने जी, बेठा तिहां मुनिराय रे।
दिये मधुर ध्वनि देशना जी, भविक श्रवण सुखदाय रे ।। कुं० ।। ११ ।।

सम्राट कनककेतु ने सधन्यवाद श्रीपालकुंवर का आभार प्रदर्शन कर उनसे कुल जाति का परिचय पूछा। तब वे मुस्कराकर रह गये। राजा ने पुनः अपने प्रश्न को दुहराते हुए कहा। श्रीमान्‌जी! मैं मानता हूं कि वास्तव में आप अपने आचार विचार वेषभूषा से कोई उत्तम सिद्ध पुरुष ज्ञात होते हैं। सच है, सज्जन पुरुष सदा आत्म-श्लाघा से दूर रहते हैं, किन्तु मानव हृदय में जिज्ञासा का होना भी तो स्वाभाविक है।

उसी समय सहसा आकाश में एक दिव्य ज्योति प्रकटी। चारों ओर प्रकाश से चकाचौंध छा गई। जनता ने आंख उठाकर देखा तो आकाशमार्ग से एक बड़े तेजस्वी विद्याचारण मुनि आते हुए दिखाई दिये। उनके साथ अनेक देव भी थे, सभी ने आदिनाथ भगवान की जय हो! जय हो!! जयघोष के साथ मंदिर में प्रवेश कर चैत्यवंदन विधि की। पश्चात् मुनि बाहिर सभा मण्डप में देवरचित सुन्दर आसन पर बैठकर धर्म-देशना देने लगे।

नवपद महिमा तिहाँ वरणवेजी, सेवो भविक सिद्धचक्र रे।
इह भव पर भव लहिये एहथी जी, लीला लहेर अथक रे ।। कुं० ।।१२।।
दुःख दोहग सवि उपशमे जी, पग पग पामे ऋद्धि रसाल रे।
ए नवपद आराधतांजी, जिम जग कुंवर श्रीपाल रे ।। कुं० ।। १३ ।।
प्रेमे सयल पूछे परषदाजी, ते कुण कुंवर श्रीपाल रे।
मुनिवर तव दूर थी कहे जी, तेहनुं चरित्र रसाल रे ।। कुं० ।। १४ ।।
तुम पुण्ये इहां आवियोजी, उघड्या चैत्य दुवार रे।
तेह सुणीने नृप हरखियोजी, हरख्यो सवि परिवार रे ।। कुं० ।। १५ ।।
एम कही ने मुनिवर उत्पत्याजी, गयण मारग ते जाय रे।
उभा थई ऊँचे मुखेजी, वंदे सहु तस पाय रे ।। कुं० ।। १६ ।।
ढाल सुणी इम सातमीजी, खंड बीजानी एह रे।
विनय कहे सिद्धचक्र नीजी, भक्ति करो गुण गेह रे ।। कुं० ।। १७ ।।

# 卐 विद्याचारण मुनि का प्रवचन 卐

## " जाविन्दिया न हायंति, ताव धम्मं समायर "

क्या आपकी आंखे, नाक, कान, मुंह सुन्दर और स्वस्थ हैं? हां! तो आज से इसी समय इनका सदुपयोग करना आरम्भ कर दें। अन्यथा इनका बल क्षीण होने पर आप हाथ मलते रह जाएंगे।

यह मनुष्य भव आपकी अनेक भवों की तपश्चर्या का एक सुन्दर मधुर फल है। इसे पाने के लिये देव-देवेन्द्र भी सदा लालायित रहते हैं। मानव भव का मूल्य केवल रोटी, कपड़ा और विषय-भोग ही नहीं, इसका मूल्य है अपने आपको पहचानकर, आगे बढ़, आत्मोन्नति करना।

आप सुबह दांत साफ करते समय अपना मुंह दर्पण में देखते हैं। दुपहर को घर से बाहर जाते समय बन ठन कर कांच में अपनी शकल-सूरत देखकर मुस्कराते हैं। संध्या समय वापस घर लौटते ही आपको बिना कांच देखे चैन नहीं। यह क्यों? आपको चिन्ता है, कहीं मेरे मुंह और वस्त्रों पर दाग तो नहीं लगा है।

क्या आपने कभी यह भी सोचा, कि इस कांच में मेरे समान जो आकृति दिखाई देती है, वह मैं नहीं हूँ, यह तो एक यहां चन्द दिनों का अतिथि मिट्टी का खिलौना है। इस खिलौने को देखने की जिसमें शक्ति है, उसको कहते हैं, आत्मा। आत्मा सदा शाश्वत और अनंत शक्तिमान है। मैं व्यर्थ ही अब तक इस हाड़मांस के पुतले को अपनी आत्मा मानकर भान भूला हूँ।

याद रखियेगा! आप इस मिट्टी के खिलौने को कितना ही लाड़ प्यार करें, इसे हलवा, पूड़ी, बादाम, पिश्ते, कंद-मूल, आलू, मूला, गाजर, लहसन आदि अभक्ष-अपेय पदार्थ खिला पिला कर मस्त सांड बना दें, किन्तु फिर भी टूटी की बूंटी नहीं। एक दिन आपको असमय में यमराज अपनी पाश में जकड़ कर ले ही उड़ेगा। उस समय धन, धरा, धनवंतरी वैद्य और परिवार का कोई भी व्यक्ति आपको काल के गाल से बचा न सकेगा।

दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती विरिया जीव की, कोई न राखण हार ॥

आप एक अस्थाई क्षणभंगुर इस अपनी देह के भरण पोषण की उधेड़ बुन में सारा दिन बिता देते हैं। बात की बात में आपके वर्षों निकल गये, किन्तु कभी आपने अपनी शाश्वत आत्मा का हित सोचा? उसे उपर उठाने का कभी प्रयत्न किया? क्यों करने लगे? स्पष्ट कहियेगा कि हमने दर्पण तो अनेक बार देखा है, किन्तु आंखे मुंद कर देखा, अपने आपको नहीं पहचाना। भेद विज्ञान के गूढ़ रहस्य को हमने नहीं पहचाना, अर्थात् आत्मा नित्य है, तो यह शरीर क्षणभंगुर है। इस मनुष्य पर्याय को ही आत्मा मान बैठे हैं। आत्मा की अनंत शक्ति को नहीं समझे।

नहीं समझे उसीका यह कुपरिणाम है, कि आप इन्द्रियों के सदुपयोग को भूल, विषयभोग, ईर्षा, क्रोध, कपट, घृणा और घमण्ड के शिकार बन रहे हैं।

क्या आपको अपने वस्त्र और मुंह पर लगे दाग खटकते हैं? हां। तो फिर आप के हृदय–पट पर ईर्षा, क्रोध, घमण्ड, चोरी, विश्वास-घात, असंयम और राग-द्वेष के कितने कलुषित गंदे दाग लगे हैं? उस पर आपने तनिक भी विचार किया? अपनी काली करतूतों से आपको कभी घृणा हुई? क्या कभी आपकी आंखों से आंसू टपके? कि हाय! मैं वैभवसम्पन्न होकर भी आज तक किसी के काम न आया। गरीबों की सार संभाल न की। अपने स्वधर्मी बन्धु, अनाथ, असहाय, विधवा बहिनों को रोती बिलखती देख मेरा हृदय जरा भी द्रवित न हुआ। हाय!! हाय! मैं अब तक केवल भोग का कीट बन त्याग-तप से वंचित ही रहा।

क्या कभी आपको दुर्व्यसनों से विमुख होने की स्फूर्ति हुई? कभी आपने किसी संत–महात्मा–सद्गुरु की शरण में बैठ उनसे अन्तरंग हृदय से प्रार्थना की?—कि हे प्रभो! परम कृपालु! मैं अब छल कपट शोषणवृत्ति इन अपनी काली करतूतों से ऊब गया हूँ। मेरे अक्षम्य अपराधों की क्षमा कर मुझे सन्मार्ग दर्शन दें। मेरा निस्तार करें।

याद रखो! मुंह और वस्त्रों के दाग तो संभव है, किसी उग्र क्षार, साबुन से भी साफ हो सकते हैं। किन्तु हृदय के दाग अर्थात् आपकी आत्मा के साथ संलग्न क्लिष्ट कर्मों के गंदे धब्बे तो अनेक बार दुर्गति में सड़ने, तड़फने, छटपटाने पर भी साफ होना कठिन है।

आप अपने भाग्य और भविष्य का अन्धकार दूर करना चाहते हैं? तो इन्द्रियनिग्रह और समय का सदुपयोग करना सीखें। अपने चंचल मन को केन्द्रित कर आदर्श त्याग,

निःस्वार्थ सेवा और सत् शास्त्रों का स्वाध्याय कर बड़ी तेजी से आगे बढ़े हैं। आपके पास धन है? बुद्धि है? बल और स्वास्थ्य–आरोग्यता है? तो आज से अपनी व्यर्थ की कृपणता, मुर्दादिली, आलस्य और प्रमाद को मार भगाएं। हृदय से निकाल दें।

**धन से** — अपने असहाय पिछड़े हुए भाई-बहिनों को उचित सहाय व उन्हें धार्मिक शिक्षण देकर आगे बढाएं। जिनालयों के जिर्णोद्धार और सद्ग्रन्थों के प्रकाशन में पुष्कल धन दे उदार भावों से हाथ बटाएं।

## दृढ़ संकल्प करियेगाः—

आज से मैं धरा, धन और पराई धरोहर का अधिपति नहीं किन्तु एक व्यवस्थापक हूँ। अब मैं निश्चित ही मोह ममता से बचकर अपना निस्पृह जीवन बिताऊंगा।

**बुद्धि सेः**—भेद विज्ञान का अनुशीलन करें। अर्थात् वास्तविक आनन्द सुख-शांति का सूर्योदय तब होगा, जब कि आप हृदय से यह निर्णय कर लेंगे कि यह आत्मा और शरीर दोनों एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। अब मैं इन भौतिक जड़ पदार्थों की क्षणिक चकाचौंध में न लड़खड़ा कर अपना अधिक से अधिक अनमोल समय आत्मचिंतन में ही यापन करूँगा। सुख-दुःख यह तो एक शुभ-अशुभ कर्मों का विकार मात्र है। मैं तो सच्चिदानन्द आनन्दी हूँ।

भेद विज्ञान होने पर आपके जीवन में दुःख नाम की कोई वस्तु शेष न रह जायगी। इस संसार की कोई भी शक्ति आपके मन को लुभा न सकेगी। आप जगत् के कृत्रिम प्रकाश से ऊपर उठकर एक दिव्य ज्योति का दर्शन और अनूठे आनन्द का अनुभव करेंगे।

आनन्द का अर्थ विषय-भोग, कुंभकर्णीय निद्रा के खर्राटे और पराया भोजन नहीं। आनन्द का अर्थ है, इच्छाओं का निरोध, राग-द्वेष की मन्दता, ईर्षा का अभाव, सदैव, स्वाध्याय और आत्मचिंतन में लीन रहना।

**बल सेः**——किसी भी व्यक्ति से बदला लेने की भावना न रखें। "क्षमा वीरस्य भूषणम्" आज प्रतिवर्ष हजारों स्त्री-पुरुष परस्पर-आपस में क्षमा प्रार्थना करते हैं, किन्तु हृदय से नहीं। मुंह से खमत-खामणा कर, हृदय में शल्य, (छल) कपट और दुर्भाव रखना अनेष आपको ठगना है। दूसरे के अपराध को क्षमा करने की अपेक्षा उसे सर्वथा हृदय से भूल जाना ही सच्ची वीरता है।

बदला लेने की भावना आग से भी अधिक उग्र और भयानक है। इस आग ने हजारों स्त्री-पुरुषों की नींद, रक्त और भूख-प्यास को नष्ट कर उन्हें निर्धन, कंगाल बना डाला। आज वे बेचारे अपना मुंह लपेट कर चुपचाप बैठे हैं।

आप शक्ति संपन्न, श्रीमंत हैं, तो शोषणवृत्ति और हिंसा को अपने पास न फटकने दें। मातापिता अपने परिवार के वृद्धजनों की सेवा सुश्रूषा, जनसेवा, साहित्यसेवा, स्वाध्याय ध्यान और आत्मचिंतन को स्थान दें। अपने जीवन को पवित्र महान् मंगलमय बनाएं।

**स्वास्थ्य से :—** सवास्थ्य की चटक मटक में आप मतवाले बन विषयभोग के कीट न बनें। "देहस्य सारं व्रत धारणं च" नर भव में रूप-सौंदर्य और आरोग्यता का सार है परोपकार, जप-तप कर अपना आत्मकल्याण करना। विषयभोग में आसक्ति का होना पतन है, तो त्याग मानव के अभ्युदय का एक राजमार्ग है।" त्याग तप के साधन हैं। उनमें विशिष्ट और अति सरल साधन है श्रीसिद्धचक्र आराधन।

यह तप साढ़े चार वर्ष तक केवल वर्ष में दो बार आश्विन शुक्ला और चैत्र शुक्ला सप्तमी से पूर्णिमा पर्यंत नौ नौ दिन तक होता है। अशुभ कर्मों का क्षय और जीवन को प्रगतिशील बनाने का यह व्रत रामबाण उपाय है। इस व्रत की साधना से ही श्रीपाल-कुंवर ने प्रत्यक्ष स्वास्थ्य विपुल वैभव और स्थान-स्थान पर सुयश प्राप्त कर जनता को चकित-कर दिया है।

विद्याचारण मुनि का हृदयस्पर्शी प्रवचन सुन व्याख्यानसभा मुग्ध हो गई। कई लोगों ने महाराजश्री से पूछा, गुरुदेव! श्रीपालकुंवर इस समय कहां विराजते हैं?

## विद्याचारण मुनि के मुखारविंद से श्रीपालकुंवर का संक्षिप्त परिचय

मुनि ने कहा, महानुभावो! "जो जाके हृदये बसे सो ताहि के पास" आपके नयन जिस व्यक्ति के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे हैं, वह भाग्यवान दूर नहीं (अंगुली से श्रोपाकुंलवर की ओर संकेत कर) देखियेगा! आप ही चंपानगरी के सम्राट सिंहरथ के सुपुत्र श्रीपालवर हैं।

(१) इस कुंवर ने उज्जैन नरेश प्रजापाल की पुत्री मयणासुंदरी के साथ विवाह कर, श्रीसिद्धचक्र व्रत के प्रभाव से ही असाध्य कुष्टरोग से छुटकारा पाया।

(२) विद्यासाधक योगी को प्रोत्साहन दे, उनके वर्षों के कार्य को मिनटों में कर दिखाया।

(३) धवलसेठ के स्तंभित पांचसौ जहाजों को तिराया।

(४) बब्बरकूल में महाकाल राजा को जीत कर उनकी कन्या मदनसेना के साथ पाणिग्रहण किया।

(५) अपने इष्ट स्मरण और दृढ संकल्प से आज प्रत्यक्ष ऋषभ चैत्य के द्वार-उद्‌घाटन का चिर स्मरणीय सुयश प्राप्त किया है।

श्री सिद्धचक्र भगवान की जय। (धन्यवाद और तालियों की ध्वनि से सभा-भवन मुखरित हो उठा।) मुनि कुंवर का परिचय दे, आकाश मार्ग से प्रस्थान कर गये। उपस्थित श्रोताओं ने बड़ी श्रद्धा से नत-मस्तक होकर मुनि को वंदन कर अपना स्थान ग्रहण किया।

सम्राट कनककेतु मदनमंजूषा के भाग्य की सराहना करते हुए फूले न समाये। श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के दूसरे खण्ड की सातवीं ढाल संपूर्ण हुई। प्रिय पाठक और श्रोतागण भी श्री सिद्धचक्र व्रत की सुन्दर आराधना कर, श्रीपालकुंवर के समान सुखसमृद्धि प्राप्त करें।

## दोहा

बेठा जिणहर बारणे, मुख मंडप सहु कोय।
कुंवर निरखी रायनुं, हैडुं हरखित होय ॥ १ ॥

धन रिसहेसर कल्पतरु, धन चक्केसरी देवी।
जास पसाये मुज फल्यां, मनोवांछित तत खेवी ॥ २ ॥

तिलक वधावी कुंवर ने, देई श्रीफल पान।
सज्जन साथे प्रेम करी, दीधुं कन्या दान ॥ ३ ॥
श्रीफल फोफल सयल ने, देई घणां तंबोल।
तिलक करीने छांटणा, कीधा केशर घोल ॥ ४ ॥
निज डेरे कुंवर गया, मंदिर पहोंता राय।
बेहु ठामे विवाहनां, घणां महोत्सव थाय ॥ ५ ॥

सम्राट कनककेतु ने उपस्थित जनता का आदर सत्कार कर उन्हें पान, सुपारी, इलायची दे संतुष्ट किया। पश्चात् राजा ने कहा – महानुभावो ! श्री ऋषभदेव स्वामी और देवी चक्रेश्वरी को मैं कोटि-कोटि वन्दन कर, धन्यवाद देता हूँ, कि जिन के सहयोग से मैं सहज ही कामदेव समान रूप-सौंदर्यवान श्रीपालकुंवर को पा सका हूं। आज मेरी मनोकामना सफल हुई। अब मैं प्रसन्न हृदय से कुंवर को तिलक कर राजकुमारी मदनमंजूषा प्रदान करता हूं। (तालियां और धन्यवाद की ध्वनि के साथ सभा विसर्जन हुई।) कुंवर जिनदास के साथ चल दिये। दोनों ओर बड़े समारोह के साथ विवाह की तैयारियां होने लगीं।

वड़ी वडारण दे वड़ी, पापड़ घणा वणाय।
केलवियें पकवान बहु, मंगल धवल गवाय ॥ ६ ॥
वाघा सीवे नव नवा, दरजी बेठा बार।
जड़िया मणि माणक जड़े, घाट घड़े सोनार ॥ ७ ॥
राये मंडाव्यो मांडवो, सोवन मणिमय थंभ।
थंभ थंभ मणि पूतली, करती नाटारंभ ॥ ८ ॥
तोरण चिहुं दिशि बारणे, नील रयण मय पान।
झूमे मोती झूमका, जाणे स्वर्ग विमान ॥ ९ ॥
पंच वरण ने चंदवे, दीपे मोती दाम।
भानु तारा मंडले, आवी कियो विशराम ॥ १० ॥

चौरी चिहुं पखें चीतरी, सोवन माणिक कुंभ।
फूल माल अति फूटरी, महके सबल सुरंभ ॥ ११ ॥

अब राजमहल ढोल, नगाडे, शहनाई, दुंदभी और मंगल गीतों की स्वर लहरी से, मुखरित हो उठा है। दर्जी लोग कपड़े सीने लगे, परिवार की स्त्रियां एवं बालिकाएं गीत गाते समय अपने ब्याई-सगों की चुटकियां ले ले पापड़-बड़ियां करने लगीं। भोजनालय में घेवर फीनी, लड्डु-जलेबी, मोतीचूर, सेव-दाल का ढेर लगने लगा। सुनार और जड़िये लोग एक से एक बढ़कर बहुमूल्य आभूषण बनाने लगे।

विशाल विवाह-मंडप को देख जनता मुग्ध हो गई। सुनहरी खंभों पर नृत्य करती रत्नजड़ित पुतलियें और रंग बिरंगी ध्वजा-पताकाएं, तोरण आदि साज-बाज बड़े आकर्षक थे, लोग झुण्ड के झुण्ड देखने आते थे। सुनहरी छतों पर लटकते मोती के झुमके तारे-से चमकते थे मानों उत्सव की संकीर्णता देख तारागण व सप्तर्षि ने नववधू को आशीर्वाद देने को छतों पर विश्राम लिया हो। सुन्दर चित्रित चवरी स्वर्ण कलश और सुगन्धित वरमाला वरराज की प्रतिक्षा कर रही थी।

## दूसरा खण्ड—ढाल आठवीं

( राग—खंभायती करजो तिहां कोटवाल )

हवे श्रीपालकुमार, विधि पूर्वक मज्जन करे जी।
पहरे सवि शृंगार, तिलक निलाड़े शोभा धरे जी ॥१॥
सिर सुणालो खूंप, मणि-माणेक मोती जड्यो जी।
हसे हीराने तेज, जाणे हूं नृप शिर चढ्यो जी ॥२॥
काने कुण्डल दोय, हार हैये सोहे नवलखो जी।
जड्या कंदोरे रतन, बांहे बाजुबंद बेरखां जी ॥३॥
सोवन वींटी वेढ, दश आंगुलीये सोहियेजी।
मुख तंबोल सुरंग, नर नारी मन मोहिये जी ॥४॥
कर धरी श्रीफल पान, वरघोडे जब संचर्या जी।

सांबेला श्रीकार, सहस गमे तब परवर्या जी ॥ ५ ॥
बाजे ढोल निशान, शरणाई भुंगल घणी जी ।
रथ बेसी सय बद्ध, गाये मंगल जानड़ी जी ॥ ६ ॥
साव सोनेरी साज, हयवर हींसे नाचतां जी ।
शिर सिंदूर सोहंत, दीसे मयगल माचतां जी ॥ ७ ॥
चहुँटे चहुँटे लोक, जुवे महोत्सव नवनवे जी ।
इम मोटे मंडाण, मोहन आव्या गांडवे जी ॥ ८ ॥

जिनदास ने कुंवर के विवाह की बड़े समारोह के साथ तैयारी की । लग्न के दिन श्रीपालकुंवर ने स्नान कर, सुन्दर वस्त्र पहने, भाल तिलक, गले में नवलखा हार, कानों में चमकीले हीरे के कुण्डल पहन कर सिर पर बहुमूल्य सिरपेच धारण किया, भुजबंद और हीरे की अंगूठी से वरराजा बड़े सुहावने लगते थे । कुंवर मोड़ बांध, पान खाकर घोड़ी पर चढ़े तब सुहागिन नारियों ने मंगलगीत गाते हुए वरराज को बड़े प्रेम से विदा दी । अश्व बार-बार हिन-हिनाकर शुभ शकुन दे रहे थे । जरी के झूले, स्वर्ण की अंबाड़ियां और सिन्दूर से चित्रित मतवाले हाथी, सोने–चांदी के आभूषणों से अलंकृत घोड़े और रत्नजड़ित रथ पालकियों में बैठे हुए नरनारियों के साथ बरात ने बड़े ठाठ से प्रयाण किया ।

चलते समय नवयुवतियों और बालिकाओं के शुभ गीत, ढोल नगाड़े, शहनाइयां और दुन्दभियों से सारा नगर गूंजने लगा । ढोल-नगाड़ों का शब्द सुन स्त्री-पुरुषों के झुण्ड के झुंड चौराहे पर आने लगे । सभी वरराज श्रीपालकुंवर के अनूठे रूप सौंदर्य को देख मुग्ध हो गये । स्थान स्थान पर, प्रतिष्ठित नागरिकों की ओर से वरराजा का स्वागत और दर्शकों की अपार भीड़ फूलवारी लुटाने का दृश्य बड़ा आकर्षक था । सभी लोग बड़े समारोह के साथ, सम्राट कनककेतु के महल के निकट जा पहुँचे ।

पौंखी आण्या मांहि, सासुए उलट घणे जी ।
आणी चवरी मांहि, हर्ष घणे कन्या तणे जी ॥ ९ ॥
कर मेलावो कीध, वेद बांभण भणे जी ।
सोहव गाये गीत, बीहुं पखें आप आपणे जी ॥ १० ॥

करी अग्नि नी साख, मंगल चारे वरतिया जी।
फेरा फरतां ताम, दान नरिंदे बहु दिया जी ॥ ११ ॥
केलवियो कंसार, सरस सुगंधे महमहे जी।
कवल ठवे मुख मांहि, मांहोमांहि मन गहगहे जी ॥ १२ ॥
मदनमंजूषा नारी, प्रेमे परणी इणपिरें जी।
बिहुँ नारी शुं भोगे, सुख बिलसे सुसरा घरे जी ॥ १३ ॥

## श्रीपालकुंवर का मदनमंजूषा के साथ विवाह

सम्राट कनककेतु बरात की बधाई सुन अपने मंत्री मंडल और प्रतिष्ठित नागरिकों को साथ ले वे बड़ी सजधज के साथ वरराज का स्वागत करने सामने गये। वर-वधू के दोनों पक्ष ने बड़े प्रेम से एक दूसरे से मिलनी की।

वरराजा के तोरण पर आते ही भाट-चारण लोग नवीन दोहे सवैये बना बना कर वर-वधू के गुणगान करने लगे। ब्रह्मचारी, ब्राह्मण आदि स्वस्तिकवाचन कर वेदमंत्रो से आशीर्वाद दे रहे थे। ढोल नगाड़े शहनाइयों की ध्वनि से, राजप्रासाद मुखरित हो उठा। रानी रत्नमाला अपनी सखियां और परिवार की सुहागिन नारियोंके साथ स्वर्ण के थाल में कुंकुम अक्षतादि ले, श्रीपाल कुंवर को पोखने लगी। उनके भाल पर मंगल गीतके साथ तिलक कर उन्हें श्रीफल भेट किया।

**श्रीफल का महत्व**

श्रीफल रखूं मैं हाथ में, इसमें है पानी भरा।
प्रिय जमाई आप रखना, मन को सदा गहरा भरा ॥
श्रीफल यदि टूटे भी तो, मधुरता जीती नहीं।
गिरी के स्वाद मे, कभी कटुता आती नहीं ॥

गृहस्थ जीवन भी एक समस्या है। दो बर्तन हो वहां आपस में टकराने की संभावना रहती है, उसी प्रकार वरवधू की सौम्य प्रकृति के अभाव में परस्पर अनबन हो सकती है, किन्तु मनमुटाव नहीं। स्त्री की अपेक्षा पुरुष प्रधान है। उसका दिल बड़ा गंभीर और कोमल होता है। अतः वह अपने जीवन में अनबन को स्थान ही नहीं देता। यदि किसी कारणवश पति-

आपस में टकरा भी जायं फिर भी उनके व्यवहार और अन्तरंग स्नेह में अन्तर नहीं आता। जैसे कि श्रीफल के टुकड़े-टुकड़े होने पर भी उसकी मधुरता और स्वाद में कभी कटुता नहीं आती, इसी बात को प्रकट करने के लिये बींद को तोरण पर आते समय श्रीफल भेट करते हैं।

फिर महारानी रत्नमाला तोरण से श्रीपाल को वधाकर अपनी सखियों के साथ मंगल गीत गाती हुई माया में स्थापना के पास ले गई और उन पर नमक उतारा।

**स्थापना**

वर वधू को ले गये, स्थापना के पास में।
अखंड रहे सौभाग्य इन का, प्रार्थना है आप से॥
मिलकर कुंवारी बालिकाएं, नमक उनपर उवारती।
रोग शोक दूरे रहे, यह भावना मन भावती॥

**चवरी**

वर वधू को साथ ले, चवरी में आई नारियां।
हो चिरायु यह युगल, आशिष दे वृद्ध नारियां॥

**हस्त मिलाप**

चंद्रसूर्य की अब साक्षी से, कर मिलन तुम्हारा हो रहा।
गृहस्थाश्रम में प्रवेश का, मंगलाचरण यह हो रहा॥
चवरी के नीचे बैठकर, वरराज ने यह प्रण किया।
सुख दुःख का मैं साथी हूं, यह वचन लो मेरी प्रिया॥

## बेटा बीबी का या बाप का

बुढ़े मातापिता अपनी पुत्रवधू को पाकर सुख से दो रोटी और विशेष त्याग तप की ओर अग्रसर होने का स्वप्न देखते हैं, किन्तु जहां नववधू के घर में चरण पड़े कि मातापिता को अपनी संचित संपत्ति और पुत्र की सेवा से वंचित होना पड़ता है। उनकी सारी आशाएं मिट्टी में मिल जाती हैं। बेटा स्त्री की अंगुली के इशारे पर नाचकर, मां-बाप से विमुख हो पत्नी का बन जाता है।

विवाहित आनन्द को स्वर्गीय सुख की उपमा दी जाती है, किन्तु आज प्रत्यक्ष पति-पत्नी का गृहारम्भ होते ही आपस में अन-बन, पारिवारिक कलह, ईर्षा, आलस्य और मोह के विराट् दृश्य से मरघट सा ज्ञात होता है, इस का प्रमुख कारण है, विवाहविधि के समय, पंच और पंडित की साक्षी से वर-वधू जो शपथ ग्रहण करते हैं, उसके रहस्य की अज्ञानता, और उचित कर्तव्य का अनादर।

लग्न के समय शपथ ग्रहण की जाती है, उसका स्वामी सत्यभक्तजी ने हिन्दी पद्य में बड़ा सुन्दर चित्र खींचा है। पाठक इन पद्यों का मनन-आचरण कर, श्रीपालकुंवर-मदनमंजूषा के समान अवश्य अपने जीवन को पवित्र बनाकर, फलें फूलें।

## * श्रीपालकुंवर और मदनमंजूषा के प्रण *

**श्रीपाल कुंवर**

मन से वचन से काय से, निज सहचरी संतोष में।
पालन करूंगा सर्वदा, लगने न दूंगा दोष मैं॥
माता सुता अथवा बहिन, होगी मुझे पर कामिनी।
बनकर रहोगी देवि तुम, मेरे हृदय की स्वामिनी॥

**मदन-मंजूषा**

मन से वचन से काय से, निशदिन स्वपति संतोष में।
पालन करूंगी सर्वदा, लगने न दूंगी दोष मैं॥
यह शील ही होगा मुझे, गुण रूप पुष्पों की लता।
बनकर रहोगे आर्य तुम, मेरे हृदय के देवता॥

**श्रीपाल कुंवर**

बिना तुम्हारी अनुमति पाये स्त्री-धन देवि तुम्हारा।
व्यय न करूंगा रक्षक हूंगा, यह मेरा प्रण प्यारा॥
तुम जीवन की ज्योति बनोगी, इस घर का उजियाला।
जो पाऊंगा दूंगा तुमको, पत्र पुष्प की माला॥

**मदन-मंजूषा**

आपके धन का दुरुपयोग, कण भर भी नहीं करूंगी।
धन की है क्या बात, प्राण भी देकर विपत हरूंगी॥
तुम मेरे सौभाग्य बनोगे, और नयन के तारे।
तुम मेरे सर्वस्व रहोगे जीवन के उजियारे॥

**श्रीपाल-कुंवर**

सत्य अहिंसा रूप और, समभाव बढ़ाने वाला।
हो जो धार्मिक कार्य, प्रेम का पाठ पढ़ाने वाला॥
उस में बाधा कभी न दूंगा, साधन सदा करूंगा।
यथा शक्ति मैं धर्म कार्य के, विघ्न समस्त हरूंगा॥

**मदन-मंजूषा**

सत्य अहिंसा का पुनीत पथ, कभी नहीं छोड़ूंगी।
अन्ध भक्ति से रूढ़ि राग से, प्रेम नहीं जोड़ूंगी॥
सर्व धर्म समभाव सदा जीवन में अपनाऊंगी।
सत्य धर्म का मर्म, मनो मन्दिर में लाऊंगी॥

**श्रीपाल कुंवर**

बिना तुम्हारी अनुमति पाये, कोई भी रहस्य की बात।
*नहीं कहूंगा कभी किसी से, नहीं करूंगा हृदय-आघात।*
बिम्ब और प्रतिबिम्ब बनेंगे, दोनो के मन एक समान।
दो तन एक प्राण बनकर, हम साधेंगे अद्वैत महान्॥

**मदन-मंजूषा**

अनुमति बिना न प्रकट करूंगी, कोई भी रहस्य की बात।
और न अपना भी रहस्य मैं, रखूंगी तुमसे अज्ञात॥
एक बनेंगे दोनों मिलकर, एक घाट पीवेंगे नीर।
दिखने को भी रह जावेंगे, केवल अपने भिन्न शरीर॥

**श्रीपाल-कुंवर**

होगी देवी! तुम्हारी जो जो, आवश्यकता जीवन की।
वह सब पूर्ण करूंगा, चिन्ता मुझे न है तन-धन की ॥
लक्ष्मी अगर रुष्ट भी होगी, तो न कभी घबड़ाऊँगा।
मुट्ठी भर अनाज पाऊंगा, पहिले तुम्हें खिलाऊंगा ॥

**मदन-मंजूषा**

घर की हालत देख, मितव्ययिता का ध्यान रखूंगी मैं।
कभी अपव्यय न करूंगी मैं, पूरी सेवा दूंगी मैं।
मुट्ठी भर भी अन्न मिलेगा, खुश होकर स्वीकार करूंगी।
जितनी लम्बी सौर रहेगी, उतने पैर पसारूंगी ॥

**श्रीपाल-कुंवर**

रोग आदि विपदा आने पर, दूंगा साथ तुम्हारा।
दास बनूंगा पार करूंगा, विपदाओं की धारा ॥
किसी तरह का और अगर, तुमपर संकट आवेगा।
मुझ को मारे बिना न तुम को, हाथ लगा कोई पावेगा।

**मदन-मंजूषा**

विपदाओ में साथ रहूंगी, बनी रहूंगी दासी।
छोड़ूंगी सर्वस्व रहूँगी, बस सेवा की प्यासी ॥
सेवा की पवित्र वेदी पर जीवन बलि कर दूंगी।
अपने प्राण निचोड़ तुम्हारी, सेवा में धर दूंगी ॥

**श्रीपाल-कुंवर**

होगा तुम्हारा कार्य जो, उसमे रहूँगा साथ मैं।
होगी सदा इच्छा यही, कुछ तो बटाऊं हाथ में ॥
कोशिश करूंगा सर्वदा, हममें सदा सहयोग हो।
मिल कर हमारा योग हो, मिलकर हमारा भोग हो ॥

**मदन-मंजूषा**

आलस्य को तजकर करूंगी, सब तरह सहकार मैं ।
अपने प्रयत्नों से तुम्हारा, कम करूंगी भार मैं ।।
घर को करूंगी स्वर्ग सा, आनंद का आगार मैं ।
होगी यही बस भावना, पाऊँ तुम्हारा प्यार मैं ।।

सम्राट कनककेतु ने राजकुमारी मदनमंजूषा को कन्यादान के समय हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, दास-दासी, सोने-चांदी के बहुमूल्य वस्त्रालंकार, गादी-तकिये, पलंग आदि प्रदान किये। पश्चात् वर-वधू लग्नविधि शपथ ग्रहण संपन्न कर चंवरी से बाहिर आये। वृद्ध स्त्री-पुरुषों ने उन्हें आशिष दी। ब्राह्मण, भाट चारणों का सत्कार कर, स्त्रियां मंगल गान कर कंसार का प्रबन्ध करने लगीं।

**रानी रत्नमाला**

थाल भर कंसार का, रानी बोली श्रीपाल से ।
मम प्रार्थना स्वीकार कर, करिये कलेवा प्रेम से ।।
कंसार सदृश स-रस जीवन, सदा रहे अतिक्षेम से ।
संघर्ष तज संतोष से, कर्तव्य निभाना प्रेम से ।।

**श्रीपाल कुंवर**

धन्यवाद दे बोले कुंवर, प्रण निभाऊँ प्रेम से ।
प्रिय पत्नी का सहयोग पा, खेल कर दिखाऊँ धैर्य से ।।
फिर कवल वे देने लगे, आपस में दोनों प्रेम से ।
आनन्दविभोर वे हो गये, सदृश मिलन के योग से ।।

बरात अपने स्थान पर लौट गई, पश्चात् सम्राट कनककेतु का विशेष आग्रह देख श्रीपालकुंवर बड़े आनंद से मदनसेना और मदनमंजूषा के साथ राजमहल में रहने लगे।

ऋषभदेव प्रासाद, उच्छव पूजा नित करेजी ।
गीत गान बहु दान, वित्त घणु वावरेजी ।।१४।।
चैत्र मासे सुख वास, आंबिल आदरे जी ।
सिद्धचक्रनी सार, लाखिणी पूजा करे जी ।।१५।।

वरतावी अमार, अट्ठाई महोत्सव घणो जी।
सफल करे अवतार, लाहो लिये लखमी तणो जी ।।१६।।

श्रीपालकुंवर सहृदय, गुणानुरागी दानी थे। उनके द्वार से कभी कोई व्यक्ति भूखा प्यासा खाली हाथ नहीं जाता था।

चैत्र मास आते ही शुक्ला सातम से उन्होंने बड़ी श्रद्धा से अपनी दोनों पत्नी के साथ श्री सिद्धचक्र व्रतारंभ किया। मदनसेना, मदनमंजूषा भांति भांति की कलापूर्ण भगवान ऋषभदेव की अंग-रचनाएं करतीं, कुंवर भजन कीर्तन करते। उन्होंने शिक्षा प्रचार, अभय-दान, औषधालय आदि परमार्थ में लाखों रुपये व्यय किये। अट्ठाई महोत्सव सानंद बड़े समारोह के साथ संपन्न हुआ।

एक दिन जिनहर मांहि, कुंवर बेठा मली जी।
नृत्य करावे सार, जिनवर आगल मनरली जी ।।१७।।
इण अवसर कोटवाल, आवी अरज करे इसी जी।
दाण चोरीये चोर, पकड्यो तस आज्ञा किसी जी ।।१८।।
वली भांगी तुम आण, बल बहुलुं इणे आदर्यु जी।
अमे देखाड्या हाथ, तम मोडुं झांखुं कर्युं जी ।।१९।।
राजा बोले ताम, दंड चोरनो दीजिये जी।
जिणहर मां ए वात, कहे कुंवर किम कीजिये जी ।।२०।।
मजरे करी हजुर, पहेलां कीजे पारिखुं जी।
पछे देहजे दंड, सहुये न होय सारिखुं जी ।।२१।।
आण्यो जिसे हजूर, धवलसेठ तव जाणियो जी।
कहे कुंवर महाराज, चोर भलो तुम आणियो जी ।।२२।।
ए मुज पिता समान, हुं ए साथे आवियो जी।
कोटि ध्वज सिरदार, वहाण इहां घणां लावियो जी ।।२३।।

छोड़ावो तस बंध, तेड़ी पासे बेसाडियो जी।
गुनहा करावी माफ, रायने पाय लगाडियो जी॥२४॥
राय कहे अपराध, एहनो परमेश्वर सह्यो जी।
अजरामर थयो एह, जेह तुमे बाँहे ग्रह्यो जी॥२५॥

## रंग में भंग :—

एक दिन श्री ऋषभदेव प्रासाद में संगीताचार्य नृत्य कर रहे थे। सम्राट कनककेतु और श्रीपालकुंवर पास ही बैठे थे। जनता कलाकार के हावभाव देख, भजन सुन, मंत्र-मुग्ध हो गई। उसी समय सहसा रक्षाधिकारी के मंदिर में प्रवेश करते ही रंग में भंग हो गया। चारों ओर आपस में कानाफूंसी होने लगीं।

अनुचर—महाराज! आज बंदरगाह पर एक चोर पकड़ा गया है, वह दिखने में तो बड़ा भला आदमी ज्ञात होता है, किंतु है महा धूर्त। 'चोरी और सीना जोरी'। बड़ा अकड़ने लगा, उसे दो हाथ बतलाना पड़े। फिर तो उसकी बोलती बंद हो गई। अपराधी को बंदी बना लिया गया है। चोर का नाम सुनते ही कनककेतु ने भ्रकुटी चढा आंखे बदलकर कहा, रक्षाधिकारी! 'दुष्टस्य दंडः'। ऐसे धूर्तों को तो शीघ्र ही इसी समय प्राणदण्ड दे निर्मूल कर दें।

श्रीपालकुंवर ने मुस्कराकर सम्राट से कहा—श्रीमान्‌जी! देव मन्दिर में संकल्प-विकल्प करना निषेध है। साथ ही एक पक्ष की बात सुनकर आदेश देना भी तो उचित नहीं है। सम्राट—कुंवरजी! 'उतावला सो बावला' सचमुच मैंने आवेश में आ बड़ी भूल की है। मंत्रीजी! अभियुक्त को राजसभा में उपस्थित किया जाय।

रक्षाधिकारी—महाराज की जय हो! बंदी उपस्थित है। कनककेतु—उसे अन्दर आने दें। कैदी की सूरत देखते ही कुंवरने अपनी हंसी को रोकते हुए राजा से कहा—श्रीमान्‌जी! आपको ग्राहक तो ठीक मिले। कुंवर ने आगे बढ़ धवलसेठ को प्रणाम किया। पिताजी! आपको बड़ा कष्ट हुआ। सेठ ने नीची दृष्टि कर ली। वे लज्जा से धरती खोदने लगे। बोल न सके। इधर महाराज 'पिताजी' शब्द सुन देखते रह गये। अरे! ब्याही सगे के हाथ में हथकड़ी? सेठ को बन्धन से मुक्त कर दिया गया। श्रीपालकुंवर ने सेठ का परिचय देते हुए कहा—आप एक कुशल व्यापारी

कोटिध्वज सेठ हैं। मैं आपके साथ ही तो यहां आया हूँ। राजा ने उन्हें अभयदान दे, क्षमा प्रदान कर दी।

एक दिन आवी सेठ, कुंवर ने इम वीनवे जी।
वेची वहाणनी वस्तु, पूर्या करियाणे नवे जी ॥ २६ ॥
तमे अमने इण ठाण, कुशल क्षेमे जिम आणिया जी।
तिम पहोंचाड़ो देश, तो सुख पामे प्राणिया जी ॥ २७ ॥
कुंवरे जणाव्यो भाव, निज देश जावा तणो जी।
तव नृपने चित्त मांहि, असंतोष उपज्यो घणो जी ॥ २८ ॥
मांग्या भूषण जेह, ते उपर ममता किसी जी।
परदेशी सुं प्रीत, दुःखदायी होवे इसी जी ॥ २९ ॥
सासु ससरा दोय, करजोडी आदर घणे जी।
आंसू पडते धार, कुंवर ने इणी परे भणे जी ॥ ३० ॥
मदनमंजूषा एह, अम उत्संगे उछरी जी।
जन्म थकी सुख मांहि, आज लगी लीला, करी जो ॥ ३१ ॥
वहाली जीवित प्राय, तुम हाथे थापण ठवि जी।
एहने म देखो छेह, जो पण परणो नव नवी जी ॥ ३२ ॥

धवलसेठ—कुंवरजी! धन्यवाद। मैं आपका बड़ा आभारी हूं। श्रीमान् का साथ करने से मुझे अपने व्यवसाय में अच्छी सफलता मिली। यहां से माल भर लिया है अतः भविष्य में भी बहुत कुछ लाभ होने की आशा है। अब यदि आप हमें सकुशल वापस अपने देश पहुंचा दें तो बड़ी कृपा होगी। सेठ की प्रार्थना स्वीकार कर श्रीपालकुंवर ने अपने ससुर कनककेतु से विदा मांगी। विदाई का नाम सुनते ही मदनमंजूषा के माता पिता का हृदय भर आया, आंखों से आंसू बहने लगे।

सम्राट—श्रीमान्‌जी! कृपया विराजियेगा। ऐसी जल्दी क्या है? श्रीपालकुंवर को मौन स्त कनककेतु समझ गये, कि वास्तव में पराई धरोहर और परदेशी की प्रीत दोनों समान ही हैं।

कुंवरजी! महापुरुषों को कौन नहीं चाहता है! संभव है, अनेक बालाएं वरमाला लिये आपकी प्रतीक्षा कर रहीं होंगी, किन्तु हमारी मदनमंजूषा बड़ी भोली-भाली सुकुमारिका है। इसे अब तक कभी धूप-छांह का कटु अनुभव नहीं हुआ है। आप इसे हृदय से भुला न देना।

पुत्री ने कहे वत्स, क्षमा घणी मन आणजो जी।
सदा लगी भरतार, देव करीने जाणजो जी ॥३३॥
सासु ससरा जेठ लज्जा विनय म चूकशो जी।
परिहरजो परमाद, कुल मरजाद म मूकशो जी ॥३४॥
कंत पहेली जाग, जागतां नहीं उंघिये जी।
शोक बहिन करी जाण, वचन न तास उल्लंघिये जी ॥३५॥
कंत सयल परिवार, जम्या पछी भोजन करे जी।
दास दासी जन ढोर, खबर सहुनी चित्त धरी जी ॥३६॥
जिन-पूजा गुरुभक्ति, पतिव्रता व्रत पालजो जी।
शी कहिये तुम सीख, इम श्रम कुल अजवालजो जी ॥३७॥

## मदनमंजूषा की विदाई:—

रत्नमाला—मदनमंजूषा! हृदय नहीं चाहता, कि तू एक क्षण भी हमारी आंखों से ओझल हो, किन्तु वास्तव में कन्याओं की शोभा तो ससुराल में ही है। बेटी! अपने ससुराल में जाकर वहां त्याग, तप और संतोष से लोकप्रिय बनना। तन, मन, धन से देव-गुरु की भक्ति और सर्वज्ञ दर्शित विशुद्ध धर्म की आराधना कर अपना जन्म सफल करना। सास-ससुर, देवर, जेठ, नणद भोजाई आदि की आज्ञानुसार आचरण और उनकी सेवा सुश्रूषा कर उनकी आशिष लेना।

सन्नारियों के लिये पति ही परमेश्वर है। पति की आज्ञा के विरुद्ध तू अपना एक पैर भी आगे न बढ़ाना, उनके सोने के बाद सोना, जागृत होने से पूर्व उठना। अपने दास-दासियों से अधिक संसर्ग और असद् व्यवहार न करना। पशुओं को यथासमय घास दाना पानी दे, उनकी सार संभाल रखना। परिवार के लोगों को सप्रेम भोजन कराके, भोजन करना। अपनी सौतों से अभिन्न बर्ताव करना। उन्हें अपनी बहिन मान, ईर्षा से सदा दूर रहना। मदनमंजूषा! अधिक क्या कहूँ, तू स्वयं बुद्धिमान है। ससुराल और अपने मातृकुल की शोभा तुम्हारे आदर्श जीवन पर ही निर्भर है।

मदनमंजूषा का–मां का शुभ संदेशः—

मदनमंजूषा ! बेटी, ससुराल और मातृकुल की शोभा तुम्हारे आदर्श-जीवन पर ही निर्भरहै। सन्नारियों के लिए पति ही परमेश्वर है तू अपने पति–देव की आज्ञा के विरुद्ध एक पैर भी आगे न बढ़ाना। अपनी सौतों से निष्कपट व्यवहार कर, अति लोकप्रिय बनना।

रयण ऋद्धि परिवार, देई नृपे वहाण भर्यां जी।
मयणमंजूषा धूअ, वोलावा सहु निसर्यां जी ॥३८॥
कांठे सयल कुटम्ब, हैडा भर भेटी मल्या जी।
तस मुख वारो वार, जोतां ने रोतां पाछा वल्या जी ॥३९॥
कुंवर वहाण मांहि, बेठा साथे दोय बहू जी।
काम अने रति प्रीति, मलिया एम जाणे सहु जी ॥४०॥
बीजे खण्डे एह, ढाल थुणी इम आठमी जी।
विनय कहे सिद्धचक्र नी, भक्ति करो सुर-तरु समी ॥४१॥

सम्राट् कनककेतु अपने मंत्री मंडल को साथ ले सपरिवार, बेटी-जमाई को बिदा देने बंदरगाह पर आये। श्रीपालकुंवर को उन्होंने एक सुन्दर कलापूर्ण विशाल जहाज, अनेक दास-दासियाँ, बहु-मूल्य वस्त्रालंकार आदि उपहार दिये। प्रस्थान के समय नागरिकों और मदनमंजूषा के माता-पिता की आंखों से ममता के मोतियों की झड़ी लग गई। श्रीपालकुंवर अपनी दोनों स्त्रियों के साथ कामदेव से मालूम होते थे। जनता के देखते देखते जहाज बड़ी दूर निकल गये।

श्रीमान् कविवर उपाध्याय श्री विनयविजयजी महाराज कहते हैं, कि श्रीपालरास के दूसरे खण्ड की यह आठवीं ढाल संपूर्ण हुई। पाठक और श्रोतागण कल्पवृक्ष सम, श्री सिद्धचक्र व्रत की सविधि आराधना कर अपना जन्म सफल करें।

चौपाई

खण्ड खण्ड मधुरो जिम खण्ड, श्री श्रीपाल-चरित्र अखण्ड।
कीर्तिविजय वाचक थी लह्यो, बीजो खण्ड इम विनये कह्यो ॥

श्रीपाल-रास का यह दूसरा खण्ड संपूर्ण हुआ। मूल ग्रंथ लेखक श्रीमान् कविवर विनयविजयजी कहते हैं, कि श्रीपालकुंवर की कथा बड़ी रसीली और मधुर है। मैंने यह कथा अपने गुरुवर कीर्तिविजयजी उपाध्याय के मुंह से जैसी सुनी थी, वैसी ही श्रोता और पाठकों के समक्ष इसे सरल गुजराती मिश्र भाषा की ढालों में प्रस्तुत की है। जैसे ईख के अगले खण्डों में विशेष मधुरता बढ़ती जाती है, उसी प्रकार आप इस रास के अगले खण्डों में विशेष मधुर-रस का अनुभव करेंगे।

ॐ अर्हन्नमः

ॐ ह्रीं श्रीं सिद्धचक्राय नमः

श्री अभिधान राजेन्द्र कोष रचयिता श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वर पादपद्मेभ्योनमः

# श्रीपाल-रास

## ( हिन्दी अनुवाद सहित )

अनुवादक—श्रीमद् विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के शिष्य मुनि श्री न्यायविजयजी

## तीसरा खंड

### मंगलाचरण ( ग्रंथकार की ओर से )

सिद्धचक्रना गुण घणा, केहतां नावे पार ।
वांछित पूरे दुःख हरे, वंदुं वारंवार ॥ १ ॥
सभा कहे श्रीपालने, समुद्र उतारो पार ।
अमने उत्कंठा घणी, सुणावा म करो वार ॥ २ ॥
कहे कवियण आगल कथा, मीठी अमीय समान ।
निद्रा विकथा परिहरी, सुणजो देई कान ॥ ३ ॥

अनेक संकटों से मुक्त हो हृदय की मनोकामनाओं को सफल करने का अचूक उपाय है, श्री सिद्धचक्र व्रत की आराधना । श्रीसिद्धचक्र के अपार गुण हैं । पहले और

दूसरे खण्ड में इसी व्रत ( नवपद-ओली ) के प्रभाव से श्रीपालकुंवर ने स्थान-स्थान पर सफलता प्राप्त की है। श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि मैं भी श्री सिद्धचक्र को कोटी कोटी प्रणाम कर जनता के विशेष आग्रह से सुधा-समान मधुर श्रीपालकुंवर की समुद्र-यात्रा का वर्णन लिखता हूँ। इसे पाठक और श्रोतागण निद्रा और गप-शप का त्याग कर ध्यान से मन लगा कर सुनें।

## मंगलाचरण

( हिन्दी अनुवादकर्ता की ओर से )

( १ )

सकल सिद्धि दायक सदा, यंत्र सकल सिरताज।
सिद्धचक्र महायंत्र है, साधक तरन जहाज ॥
आराधो इस यंत्र को, पाओ ऋद्धि अपार।
न्याय कहे इस यंत्र को, वंदन हो शतवार ॥

( २ )

सूरि-वर राजेन्द्र थे, सौधर्मगण सरदार।
पट-धर यतीन्द्र शिष्य, न्याय लहे भव पार ॥

( ३ )

हे शारदे ! वरदान दे, मुनि न्याय को इस काज में।
श्रीपाल, गुर्जर रास का अनुवाद लिखता आज मैं ॥
" विनय-यशो " कवीन्द्र ने यह ग्रंथ लिखा है पद्य से।
खण्ड तीन का अनुवाद हिन्दी, पाठक पढ़ें अति प्रेम से ॥

प्रिय महानुभावो ! श्रीपाल-रास के दो खण्ड पढ़कर आपने श्री सिद्धचक्र यंत्र आराधना ( नवपद-ओली ) करने का अवश्य प्रण कर ही लिया होगा। इस व्रत की आराधना आरंभ में कठिन अवश्य है, किन्तु सम्यग्दर्शन की विशुद्धि कर अनूठे आनन्द पाने का यह अचूक उपाय है। आप जीवन में अवश्य इस व्रत की उत्कृष्ट आराधना करें। कई स्त्री-पुरुष शारीरिक वेदना, पराधीनता, समयाभाव के कारण हार्दिक भावना होते हुए भी, श्री सिद्धचक्र यंत्र की आराधना से वंचित हैं, बेचारे मन मारकर चुप बैठ जाते हैं। निराश होना कायरता है, श्री वीतराग देव के शासन में प्रत्येक व्यक्ति आराधक बन सकता है। किन्तु चाहिये सच्ची श्रद्धा और मनो-योग।

## एक सरल अनुभूत योग :-

आप श्री सिद्धचक्र यंत्र की उत्कृष्ट आराधना करने में विवश हैं? हां तो चिन्ता नहीं। "गोयम समयं म पमाए" "गोतम समय बड़ा अनमोल है" पाठको! अपना एक क्षण भी व्यर्थ न गवांए।

**जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः कलौ युगे।**

इस कलियुग में प्रत्येक कार्य की सफलता में महामंत्र का नाम-स्मरण ही एक प्रमुख साधन है।

महा मंत्र :- "ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राय ह्रीं अर्हम् नमः।"

इस मंत्र के जप से अनेक स्त्री-पुरुषों ने चिन्ता अशान्ति, निराशा, दरिद्रता, शारीरिक रोगों से छुटकारा पाकर नवजीवन पाया है। आज वे आनन्द से सुख की बंसी बजा रहे हैं। महा मंत्र का जप सम्यक्त्व शुद्धि अनेक भवों की अन्तराय क्लिष्ट कर्मों को क्षय करने का एक रामबाण उपाय है।

## दृढ़ संकल्प करियेगा :—

ब्रह्मचर्य ही जीवन है। मैं अपनी रोती सूरत बदल कर सदा हंसमुख प्रसन्न चित्त ही रहूँगा। मैं सुखी हूँ। स्वस्थ हूँ। इन्द्रियां, विषय भोग मेरे दास हैं। मैं निश्चित ही नियमित रूप से महा-मंत्र का जप करूंगा। संसार की कोई भी शक्ति मेरा अनिष्ट करने में समर्थ नहीं। दिन प्रति-दिन मेरा आत्मबल बढ़ता जा रहा है। सम्यग्दर्शन ही कल्याण का मार्ग है।

**जप विधि:**—किसी पंचांग में दिनशुद्धि चंद्रबल, रवियोग हो उस दिन सूर्य स्वर में आप महा-मंत्र का बड़ी श्रद्धा और मनो-योग के साथ जप आरंभ कर दें। जप प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ही कर लेना श्रेष्ठ है। यदि सुबह समय न हो तो, अपनी सुविधानुसार नियमित रूप से जप करना चाहिए। जप कितने करना? यह आपके पुरुषार्थ पर निर्भर है। महा-मंत्र के जितने अधिक जप करेंगे, उतनी ही अधिक कर्म निर्जरा और सफलता मिलेगी। कम से कम प्रतिदिन दो माला तो गिन ही लेना चाहिए।

रवि-पुष्य, गुरु-पुष्य, दीपावली आदि प्रसंग में आरंभ कर सात, ग्यारह, इक्कीस या इकतालीस दिन में महा-मंत्र के सवालक्ष जप कर सिद्ध कर लेने से यह मंत्र अपना अद्भुत प्रभाव बताने लगता है।

**जप करने के १० नियम:**—(१) महा-मंत्र के जप किसी शांत पवित्र स्थानमें धूप दीप, शुद्ध वस्त्र पहिन कर करें (२) जप करते समय आपका मुंह पूर्व पश्चिम या उत्तर दिशामें रखें (३) माला सूत, प्रवाल, मोती या चंदन की शुद्ध रखें। (४) अपनी माला किसी और को न

आपने इस यंत्र की आराधना की है ? ←

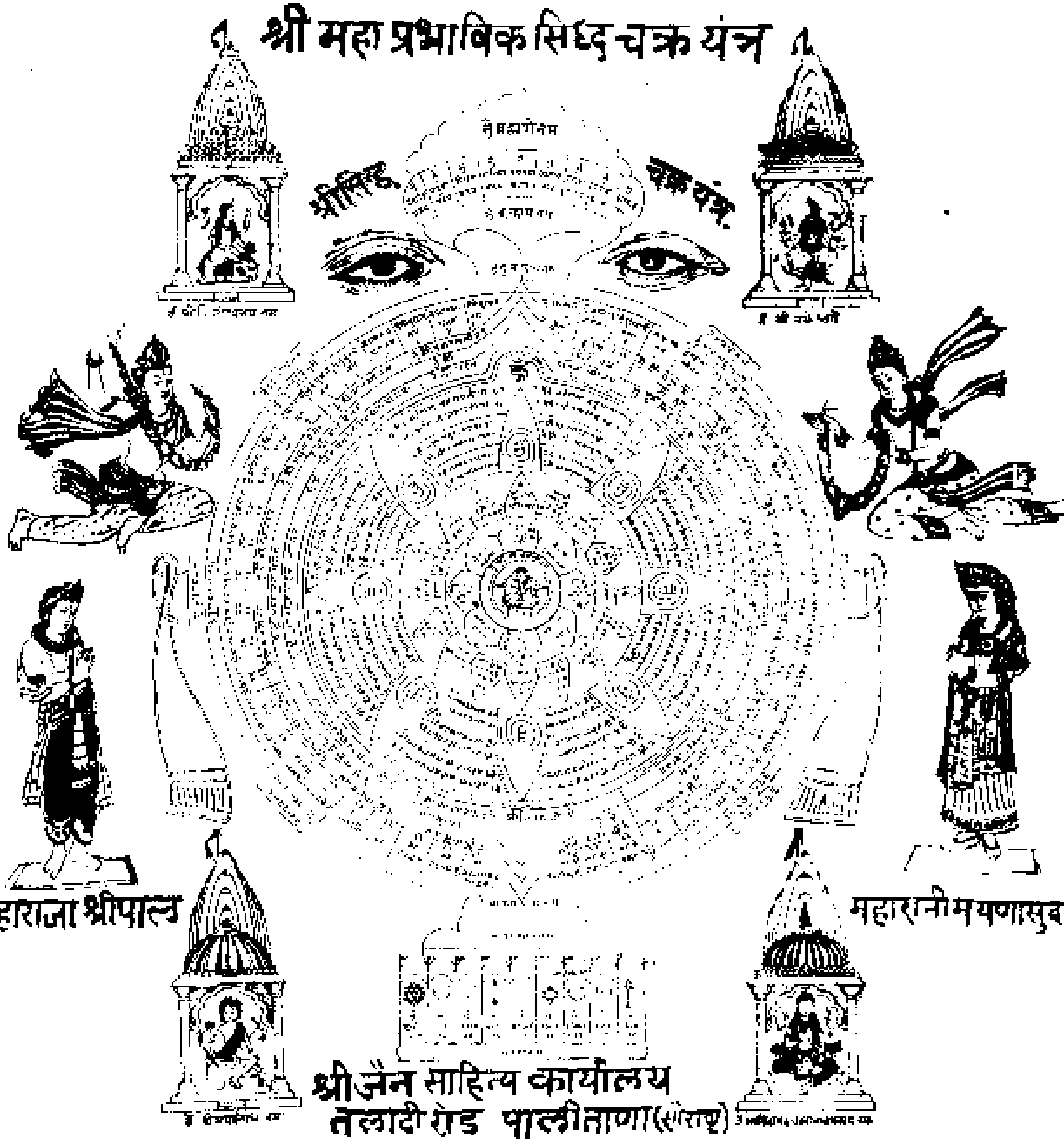


नहीं । आप तो अति शीघ्र दृढ संकल्प कर श्री सिद्धचक्र की आराधना में लग जाय । इस के भजन बल से एक मानव जितना काम और अपने--घोर पापों का क्षय एक दिन या एक श्वास में कर सकता है । दूसरे व्यक्ति उसे अनेक जन्म, हजारों वर्ष, मास और सप्ताह में भी नहीं कर सकते हैं । कर के देखो । हलवे का स्वाद मुँह में डालने से ही आता है । तर्क और बातों से नहीं ।

दें। सदा एक माला से जप करें। (५) जप किसी महा पुरुष, देव-गुरु की प्रतिमा या श्री सिद्ध स्वस्तिक यंत्र के सामने बैठ कर करें*। (७) जप करते समय माला के दानों को नख का स्पर्श न होने दें। (८) महा-मंत्र के जप मोक्ष, कर्म क्षय के लिये अंगूठे से, शांति के लिये अनामिका अंगुली और जय-विजय के लिये तर्जनी अंगुली से करें। (९) जप करते समय आदि और अंत में सात-सात बार ऊपर लिखे अनुसार दृढ़ संकल्प को पढ़ लेना चाहिए। (१०) सिद्धचक्र महा-मंत्र का अखंड जप करें। सदा मन में यह भावना रखें कि श्री सिद्धचक्र की उत्कृष्ट विधि से आराधना करने वाले धन्य हैं। मैं विवश हो इस समय केवल सिद्धचक्र महा-मंत्र का जप कर रहा हूँ। निकट भविष्य में मुझे भी उत्कृष्ट आराधना का अवसर प्राप्त हो।

धवल सेठ झूरे घणुं, देखी कुंवरनी ऋद्ध।
एकलड़ो आव्यो हतो, है है देव शुं कीध॥ ४॥
वहाण अढी से माहरां, लीधा सिर मां देई।
जोऊँ घर किम जाय छे, ऋद्धि एवडी लेई॥ ५॥
एक जीव छे एहने, नाखुं जलधि मझार।
पछी सयल ए माहरुं, रमणी ऋद्धि परिवार॥ ६॥
देखी न शके पार की, ऋद्धि हिये जस खार।
सायर थाए दुबलो, गाजंते जल धार॥ ७॥
वरषाले वनराइ जे, सतु नव पल्लव थाय।
जाय जवासानुं किस्युं, जे उजे उभे सुकाय॥ ८॥
जे किरतारे बड़ा किया, तेशुं केही रीस।
दांत पड्या गिरि पाड़ता, कुंजर पाड़े चीस॥ ९॥

## ईर्षा से कुढ़ कुढ़ कर अपना जीवन न बिगाड़ें:—

संसार में ईर्षा से कुढ़ कुढ़ कर असमय में मरने वालों की कमी नहीं। देहातों में ईर्षा का बोलबाला है। नगरों में, कल-कारखानें, औषधालय शिक्षा केन्द्रों, और सेठों की दुकानों में ईर्षा की तेज छुरियाँ चल रही हैं। मनुष्य मनुष्य को खा रहा है। किसी ने दो पैसे कमाए, बस अड़ौसी

* सिद्ध-स्वस्तिक यंत्र श्री जैन साहित्य कार्यालय इन्दौर [ म. प्र ] से प्राप्त करें।

पड़ौसी जलकर तवा बन गए। कोई बेचारे अपने भाग्य और श्रम से ऊपर उठा दान पुण्य कर प्रतिष्ठा प्राप्त की तो समाज और परिवार के लोग उस पर ईर्षा और द्वेष की लाठियां लेकर टूट पड़ते हैं, कि इसे जड़ा मूल से साफ कर दो।

मेघ गर्जते देख समुद्र रसातल की ओर मुंह मोड़ लेता है। वनराजि को फलिफूली देख जवासा सूखने लगता है। हाथी ऊंचे पर्वत से अथड़ा कर अपने सुन्दर दांतोंसे हाथ धो बैठता है।

ईर्षालु अपने ही दीपक से अपने घर में आग लगाता है। ईर्षा नागिन के चक्कर में फंसने वाले स्त्री-पुरुष रो रो कर हाथ मलते रह जाते हैं। आप दूसरे को फलते फूलते देख कभी मन में न जलें।

धवल सेठ बड़े धनवान थे। फिर भी उनके नयनों में नींद, हृदय में शांति नहीं। प्रतिवर्ष लाखों की आय होने पर भी वे कुछ भी परमार्थ न कर सके। पैसे के आधीन थे।

पैसे के आधीन होना, और पैसे को अपने आधीन रखना दूसरी बात है। दोनों में दिन रात का अन्तर है। पैसे के पूजारी, चिन्ता-ग्रस्त, निर्दयी, ठग, धोखेबाज, कंगाल बड़े मक्खीचूस होते हैं, समय आने पर वे बिना मौत के बुरी तरह मारे जाते हैं। पैसे को अपने आधीन रखने वाले स्त्री-पुरुष बड़े सहृदय हंसमुख विनम्र और दानी होते हैं। वे समझते हैं कि लोभ महा पाप है, शाप है, ताप है।

श्रीपालकुंवर का भी यही उद्देश्य था, कि पैसा मेरे आधीन है, मैं पसे का पूजारी नहीं। पैसे में शक्ति नहीं कि मानव को काल के गाल से बचा सके। पैसा मिलते ही उसका शीघ्र ही सदुपयोग कर लेना ही बुद्धिमानी है। पैसा आज है कल नहीं। तभी तो लक्ष्मी को चंचला कहा है। वे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, जिन मंदिर का निर्माण, जिर्णोद्धार और सद्ग्रन्थ प्रकाशन इन सात क्षेत्रों में खुले हाथ दान देते। यह देख धवलसेठ मन ही मन कुढ़ने लगता। अरे! तू कल का नंगा भूखा आज दानवीर की दूम बन बैठा। मेरे सहज ही अढ़ई सौ जहाज हथिया कर बड़ा लाट बन, रंगरेलियां कर रहा है। धवलसेठ श्रीपालकुंवर को दूर से घूर कर अपनी मूछों पर बट देते हुए मन ही मन बोला। बेटा! अब तू बच नहीं सकता। याद रख! अगर तुझे उठाकर समुद्र में न फैंक दूं तो मेरा नाम धवल नहीं। बस तू मरा कि फिर तो कनक-कामिनी दोनों मेरे की है।

## तीसरा खंड पहली ढाल

( राग - मल्हार, शीतल तरुवर छांय के )

**देखी कामिनी दोय के, कामे व्यापियो रे, के कामे व्यापियो रे।**
**वली घणो धन लोभ के, वाध्यो पापियो रे, के वाध्यो पापियो रे ॥**

लागा दोय पिशाच के पीडे अति घणुं रे, के पीड़े अति घणुं रे।
धवलसेठनुं चित्त के, वश नहीं आपणुं रे, के वश नहीं आपणुं रे ॥१॥
उदक न भावे अन्न के, नावे नींदड़ी रे, के नावे नींदड़ी रे।
उल्लस वालस थाय के, जक नहीं एक घड़ी रे, के जक नहीं एक घड़ी रे॥
मुख मूके निसास के, दिन दिन दूबलो रे, के दिन दिन दूबलो रे।
रात दिवस नवि जाय के, मन बहु आमलो रे, के मन बहु आमलो रे ॥२॥
चार मल्या तस मित्र के, पूछे प्रेम सूं रे, के पूछे प्रेम सूं रे।
कोण थयो तुम रोग के, झूरो एम शूं रे, के झूरो एम शूं रे ॥
के चिन्ता उत्पन्न के, कोईक आकरी रे, के कोईक आकरी रे।
भाई थाओ धीर के, मन काठुं करी रे, के मन काठुं करी रे ॥३॥
दुःख कहो अम तास के, उपाय विचारिये रे, के उपाय विचारिये रे।
चिंता सायर एह के, पार उतारिये रे, के पार उतारिये रे ॥
लज्जा मुकी सेठ के, कहे मन चिंतव्युं रे, के कहे मन चितव्युं रे।
तव चारे कहे मित्र के, धिक् ए शूं लव्युं रे, के धिक् ए शूं लव्युं रे ॥४॥

धवलसेठ की रोती सूरत देख लोगों को अनेक शंकाएं होने लगीं। आखिर उनके मित्रों से रहा न गया। एक मित्र, सेठसाहब ! आप दिन प्रति दिन घुलते जाते हैं। क्या बात है ? दूसरा मित्र, सच मुच सेठजी की आंखें अन्दर बैठ गईं ! गाल पिचकने लगे। धवलसेठ, अजी ! चलता है। तीसरा मित्र, सेठसाहब ! आप संकोच न करें। कल रामा कहता था, "सेठ का जरा भी खाने पीने में मन नहीं लगता। सारी रात पलंग पर करवटें बदला करते हैं। नयनों में नींद नहीं। भगवान इनका राजी रखे" चौथा मित्र, समय पर ही तो अपने साथियों से सुख दुःख की बातें होती हैं।

धवलसेठ–"क्या कहूँ कुछ कहा न जाय, कहे बिना रहा न जाय"। आप से क्या छिपा है ! मेरे रोग की जड़ है, श्रीपाल की संपत्ति और ललनाएं। सेठ की कुटिलता देख उनके साथियों का सिर ठनकने लगा। अरे यह सेठ है, या शठ ! इसका मुंह देखना भी पाप है।

परनारी ने पाप के, भवो भव बूड़ी ए रे, के भवो भव बूड़ी ए रे।
किम सुरतरुनो डाल के, कुहाड़े झूड़िये रे, के कुहाड़े झूड़िये रे ॥

पर उपगारी एह के, जिस्यो जग केवडो रे, के जिस्या जग केवड़ो रे।
दीठो प्रत्यक्ष जास के, महिमा एवडो रे, के महिमा एवडो रे ॥५॥
छोडाव्या दोय वार के, इणे तुम जीवतां रे, के इणे तुम जीवतां रे।
उगरिया धन माल जो, पासे ए हता रे, जो पासे ए हता रे ॥
तार्या थंभ्या वहाण, इणे आगले रे, इणे आगले रे।
एहवो पुरुष रतन्न के, जग बीजो नहीं रे, के जग बीजो नहीं रे ॥६॥
करी एह शुं द्रोह जो, विरुओ ताकशो रे, जो विरुओ ताकशो रे।
तो अण खूटे किहांइक के, अंते थाकशो रे, के अंते थाकशो रे ॥
भाग्य लाधी ऋद्धि, इणे जो एवड़ी रे, इणे जो एवड़ी रे।
पडी कांई दुर्बुद्धि, गले तुम जेवड़ी, गले तुम जेवडी रे ॥७॥

## मृत्यु को निमंत्रण न दें :—

मित्र—सेठ! विश्वासघात महापाप। आप श्रीपालकुंवर का अनिष्ट कर मृत्यु को निमंत्रण न दें। क्या कल्पवृक्ष पर कुठाराघात करना उचित है? कदापि नहीं। श्रीपाल अपने भजन बल और पुरुषार्थ से ही फला फूला है। ऐसा नर-रत्न आपको ढूंढने पर भी न मिलेगा। आज न मालूम क्यों आपकी मति भ्रष्ट हो गई है। याद रखियेगा! पराई कनक-कामिनी पर आंख उठाना मानो धधकते अंगारों पर मुष्टिप्रहार करना है।

क्या आप वे दिन भूल गये? जब कि आप को बब्बरकूल में औंधे मुंह लटकना पड़ा था? आप सम्राट कनककेतु के बंदी बने थे? आपको पांच सौ जहाज रुकने पर नाक नाक रगड़ते हुए इसी लहो-पुरुष की शरण लेना पड़ी थी? परोपकार को भूलना महापाप है। धन्य है! महापुरुष श्रीपालकुंवर को, जिन की कृपा से आप श्रीमान् की लाज रह गई। मित्रों की करारी बातें सुन धवलसेठ धरती खुरचने लगा।

त्रण मित्र हित सीख ते, एम देई गया रे, ते एम देई गया रे।
चोथा के सुण सेठ के, वैरी ए थया रे, के वैरी ए थया रे ॥
गणिये पाप न पुण्य के, लक्ष्मी जोडिये रे, के लक्ष्मी जोड़िये रे।
लक्ष्मी होय जो गांठ, तो पाप विछोड़िये रे, के पाप विछोडिये रे ॥८॥

उपराजि इणें ऋद्धि ते, काजे ताहरे रे, ते काजे ताहरे रे।
धणी थाये भाग्यवन्त, कमाई कोई मरे रे, कमाई कोई मरे रे॥
करशुं इश्यो उपाय के, ए दोलत घणी रे, के ए दोलत घणी रे।
अने सुन्दरी दोय के, थाशे तुम तणी रे, के थाशे तुम तणी रे॥९॥

जिम पामे विश्वास, भलो तिम एह शुं रे, भलो तिम एह शुं रे।
मुखे मीठी करो वात के, जाणे नेह शुं रे, के जाणे नेह शुं रे॥
मीठी लागी वात क, सेठ ने मन वसी रे, के सेठ ने मन वसी रे।
आव्यो फीटण काल के, मती तेहनी खसी रे, के मति तेहनी खसी रे॥१०॥

दूध ज देखे डांग, न देखे मांकड़ो रे, न देखे मांकड़ो रे।
मस्तक लागे चोट, थाए तव रांकड़ो रे, थाए तव मांकड़ो रे॥
रोगी करे कुपथ्य ते, लागे मीठडुं रे, ते लागे मीठडुं रे।
वेदना व्यापे जाम ते, थाए अनीठडुं रे, ते थाए अनीठ रे॥११॥

बोल मेरे शेर क्या करना ?

धवलसेठ को लज्जित देख भले तीनों मित्र तो अपने स्थान पर लौट गए, किन्तु एक धूर्त मित्र ने कहा—सेठजी ! सुना। "माल खाए माटी का और गीत गाए पराए" बड़े उसदेशक बने हैं। घर की बिल्ली घर में ही म्याऊं। इन्हें क्या शहद लगा कर चाटें। ऐसे स्वार्थी मित्रों से क्या लाभ ! कुछ भी नहीं। आप इन धर्म-ठगों की बातों में न लगें। पाप पुण्य के पचड़े में न फंस, बस एक ही सिद्धान्त रखियेगा। "धरजा, मरजा और बिसरजा" पैसे से पाप धोना बड़ी बात नहीं। आप मेरी बात मानेंगे क्यों नहीं, अवश्य। आप जरा भी चिन्ता न करें। श्रीपालकुंवर तो एक मजूर है ! मजूर। इसकी संपदा और कामिनी आप अपनी ही समझियेगा। इस की गुप्त चाबी तो मेरे पास है। सेठ के मुंह से लार टपक पड़ी। सेठ—वाहरे ! वाह, बोल मेरे शेर क्या करना।

बंदर दूध मलाई देखता है, डण्डा नहीं। भले रोगी लुक छिप कर चुप चाप अपथ्य-तेल खटाई खा ले, किन्तु उसका फल, सिवाय नानी-दादी को याद कर रोने के और क्या हो सकता है ?

सेठ भी श्रीपालकुंवर का वैभव-धन और उनकी स्त्रियों के रूप-सौन्दर्य, पायलों की झंकार सुन अपनी पवित्र बुद्धि से हाथ धो बैठे। मित्र—सेठजी कह दूं? क...ह....दूं! बड़ा सस्ता सौदा है। मित्रने धीरे से सेठ के कान में कहा। "अपने शत्रु से मधुर-भाषण करो और घुल-मिल कर उसे साफ कर दो।" सेठ मारे हर्ष के उछल पड़े।

बेसे कुंवर पास के, विनय घणो करे रे, के विनय घणो करे रे।
तूं प्रभु जीव आधार के, मुख इम उच्चरे रे, के मुख इम उच्चरे रे॥
पूरव पुण्य पसाय के, तुम सेवा मली रे, के तुम सेवा मली रे।
पग पग तुम पसाय के, अम आशा फली रे, के अम आशा फली रे॥१२॥

जोतां तुम मुख चंद के, सवि सुख लेखिये रे, क सवि सुख लेखिये रे।
रखे तुमारी वात के, विरुई देखिये रे, के विरुई देखिये रे॥
कुंवर सघली वात ते, साची सद्दहे रे, ते साची सद्दहे रे।
दुर्जननी गति भांति ते, सज्जन नवि लहे रे, ते सज्जन नवि लहे रे॥१३॥

जे वहाणनी कोर के, मान्चा बांधिया रे, के माचा बांधिया रे।
दोर तणे अवलम्ब ते, उपर सांधिया रे, ते उपर सांधिया रे॥
तिहां बेसी ने सेठ ते, कुंवर ने कहे रे, ते कुंवर ने कहे रे।
देखी अचरिज्जि एह के, मुज मन गह गहे रे, के मुज मन गह गहे रे॥१४॥

मगर एक मुख आठ के, दीसे जुजुआ रे, के दीसे जुजुआ रे।
एवा रूप सरूप न, होशे न हुआ रे, न होशे न हुआ रे॥
जोवा इच्छो साहेब के, तो आवो वही रे, के तो आवो वही रे।
पछी काढशो वांक जे, कांई कह्युं नहीं रे, जे कांई कह्युं नहीं रे॥१५॥

## चार पैर सोलह आंखें:—

सेठ ने अपने गले का हार, मित्र के हाथ में रख कर कहा, प्यारे, श्रीपाल को शहद लपेट बातें बना उल्लू बनाना तो मेरे बांए हाथ का खेल है। मैं इस कला में बड़ा निपुण हूँ। इसे यमपुर कैसे पहुंचाना? इसके जीते जी तो इन परियों की आशा नहीं। धूर्त मित्र ने,

ठहाका मार कर हंसते हुए कहा, यह कौन बड़ी बात है। इसे तो अपन मिनटों में साफ कर सकते हैं, किन्तु चाहिए आपका साथ। सेठ—अजी! आप चिंता न करें, यह जान-माल आप अपना ही समझें। दोनों ने बड़ी देर तक काना-फूंसी कर निश्चित किया कि "श्रीपाल को समुद्र में ही ढकेलना ठीक है।" "न रहेगा बांस और न बजेगी बाँसुरी"। जहाज के किनारे पर सड़े-गले रस्सों से एक छोटा सा मचान बन्धवा कर सेठ शिकार की ताक में श्रीपालकुंवर के स्थान की ओर चल पड़े।

सेठ को आते देख श्रीपालकुंवर ने आगे बढ़ उन्हें अपने पास बिठाया। कुटिल सेठ ने मुस्कराते हुए कहा—कुंवरजी! सच-मुच सफल जीवन तो आपका है। आपके मेरे पर चिर स्मरणीय अनेक उपकार हैं फिर भी कहना पड़ेगा कि आप अभिमान के भूत से बाल बाल बचे हुए हैं। यह मेरे लिये अति ही लज्जा की बात है कि आप मुझे अपने पास बिठाते हैं। यदि सच पूछें तो मुझे सातबार अपनी नाक रगड़ कर आपके तलवे चाटना चाहिए। फिर भी मैं ऋणमुक्त नहीं हो सकता हूं।

श्रीपालकुंवर सहृदय थे। उन्हें क्या पता कि यह शहद लपेटी छुरी है। "दगाबाज दूना नमे चीता, चोर, कमान" कुंवर ने सेठ का मुंह दबाते हुए, बस...ब...स आप ऐसी क्या बातें करते हैं। मैं कर ही क्या सकता हूं? करते हैं मानव के शुभा-शुभ कर्म।

धवलसेठ ने श्रीपाल की पीठ ठोक कर धन्य है! धन्य है!! बेटा वाह रे वाह! "बड़ा बड़ाई ना करे, बड़ा न बोले बोल। हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल।" हां! अब मुझे याद आया। खलासी कह रहे थे कि आज सुबह से समुद्र में एक आठ मुंह का बड़ा भारी मगरमच्छ घूम रहा है, उसे देखने को ही मैंने विशेष प्रबंध करवाया है। संभव है, अब मंच बंध गया होगा। अब आप देर करेंगे तो फिर मैं नहीं जानता। मन की मन में ही रह जायगी। फिर आप मुझे दोष मत देना कि चार पैर सोलह आंखें नहीं बताईं। कुंवर कौतुकवश चल पड़े। छ....म.. छ . म किंवाड़ की ओट में अन्दर से मदनसेना और मदनमंजूषा ने धीरे से कहा, प्राणनाथ! हमारी दाहिनी आंख और भुजा फड़क रहीं हैं। आप कृपया इस चापलूस सेठ के चक्कर में न पड़ें। "विनाश काले विपरीत बुद्धिः"। इस पर कुछ भी ध्यान न दे, सेठ कुंवर को खींच ही गये।

कुंवर मांचे ताम के, चढ्यो उतावलो रे, के चढ्यो उतावलो रे।
उतरियो तव शेठ के, धरी मन आमलो रे, के धरी मन आमलो रे॥
बिहुं मित्रे बिहुं पासे के, दोर ते कापिया रे, के दोर ते कापिया रे।
करतां एहवा कर्म न, बीहे पापिया रे, न बीहे पापिया रे॥ १६॥

देव सेवा फल देत है, जाके जैसे भाव । जैसे मुख कर आरसी, देखो सोई दिखाय ।



पड़तां सायर मांहि के, नवपद मन धरे रे, के नवपद मन धरे रे ।
सिद्धचक्र प्रत्यक्ष के, सवि संकट हरे रे, के सवि संकट हरे रे ॥
मगर मत्स्य नी पूंठ के, बेठो थिर थई रे, के बेठो थिर थइ रे ।
वहाण तणी परे तेह के, पोहोंतो तट जई रे, के पोहोंतो तट जई रे ॥१७॥
औषधी ने महिमांय के, जल भय निस्तरे रे, जल भय निस्तरे रे ।
सिद्धचक्र परभावे के, सुर सानिध करे रे, के सुर सानिध करे रे ॥
त्रिजे खण्डे ढाल ए, पहिली मन धरो रे, ए पहिली मन धरो रे ।
विनय कहे भवि लोक क, भव सायर तरो रे, के भव सायर तरो रे ॥१८॥

**पल में पेले पार :—**

एक अद्‌भुत जल-चर देखने की लालसा से श्रीपालकुंवर सेठ के साथ शीघ्र ही मंच पर चढ़ टक-टकी लगाकर चारों ओर देखने लगे, किन्तु उन्हें कहीं भी चार पर सोलह आंखे दिखाई न दीं। धवलसेठ ने अपना पेट पकड़ कर कहा - कुंवरजी ! मेरे पेट में कुछ गड़बड़ हो रही है, मैं अभी आता हूँ। सेठ को खिसकते देख निर्दय दुष्ट मित्र ने चट से मंच की रस्सियां काट दी। ध...म से कुंवर औंधे मुंह समुद्र में गिर पड़े। वे "ॐ सिद्ध...च...क्राय नमः" का स्मरण कर बेसुध हो गये। कुछ समय बाद सागर की शीतल तरंगों के थपेड़े लगने से उनकी आंख खुली। चारों ओर जल ही जल। जहाज और स्त्रियों का पता नहीं। उनका सिर चकराने लगा। उन्हें ज्ञात हुआ कि मुझे एक भीमकाय मगरमच्छ अपनी पीठ पर लाद कर बड़े वेग से आगे बढ़ता चला जा रहा है। अब बचने की आशा नहीं। मानव के हृदय में चंचलता का होना स्वाभाविक है। श्रीपालकुंवर हताश न हुए। उन्हें तो अपने इष्ट सिद्धचक्र और अपने आत्मबल पर पूर्ण श्रद्धा, दृढ़ विश्वास था। उनकी अन्तर-आत्मा बार-बार पुकार कर उन्हें कह रही थी—श्रीपाल ! इस परीक्षा के समय तू भान न भूलना। क्या होनहार भी कभी टल सकता है ? कदापि नहीं। किसी को दोष देना वृथा है। आघात-प्रत्याघात ही तो समता की खरी कसोटी है। वे संकल्प-विकल्प का त्याग कर सिद्धचक्र महामंत्र के स्मरण में लीन हो गये।

"संशयात्मा विनश्यति" भजन स्मरण में अदृश्य शक्ति, अतुल बल और अद्‌भुत चमत्कार है, किन्तु चाहिए अटूट श्रद्धा और मनोयोग। श्रीपालकुंवर जल तरणी औषधी और महामंत्र स्मरण के प्रभाव से सहज ही आनन्द से पल में पेले पार हो गए।

यह श्रीपाल-रास के तीसरे खण्ड की पहली ढाल संपूर्ण हुई। कविवर विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि श्री सिद्धचक्र महामंत्र के स्मरण से श्रीपालकुंवर पल में पेले पार हो गये। इसी प्रकार इस रास के पाठक और श्रोतागण भी सिद्धचक्र की अराधना कर भव सागर पार करें।

## दोहा

कोकण कांठे उतर्यो, पहोंतो एक वन मांहि।
थाक्यो निद्रा अनुसरे, चंपक तरुवर छांहि ॥ १ ॥

सदा लगे जे जागतो, धर्म मित्र समरत्थ।
कुवर नी रक्षा करे, दूर करे अनरत्थ ॥ २ ॥

दावानल जलधर हुए, सर्प हुए फूलमाल।
पुण्यवंत प्राणी लहे, पग पग ऋद्धि रसाल ॥ ३ ॥

के कष्ट मां पाड़वा, दुर्जन कोड़ी उपाय।
पुण्यवंत ने ते सवे, सुखनां कारण थाय ॥ ४ ॥

थलप्रकटे जलनिधि वचे, नयर रान मां थाय।
विष अमृत थई परिणमे, पूरव पुण्य पसाय ॥ ५ ॥

एक भयंकर मगर-मच्छ ने श्रीपालकुंवरको उलटने के लाख उपाय किये, फिर भी वह असफल रहा। सच है, प्रबल पुण्योदय से विष का अमृत, दावानल का सरोवर, सर्पों की फूलमाला, जल में थल, जंगल में मंगल होते देर नहीं लगती। दुर्जन अपना मुंह लपोड़ कर रह जाते हैं।

श्रीपालकुंवर जल तरणी औषधी और महामंत्र सिद्धचक्र के प्रभाव से शीघ्र ही गोता मार कर कोकण देश की थाणा नगरी के तट पर जा पहुंचे। वहां वर्षों से हिंसक जंतुओं के भय से समस्त यातायात बंध था; फिर भी कुंवर के पैर बड़े वेग से आगे बढ़ते चले जा रहे थे। अन्त में वे थक कर एक चंपे के वृक्ष की छाया में चुपचाप लेट गये। वहाँ वन का मद-मंद सुगंधित पवन लगते ही उनकी आँख लग गई। भयंकर अटवी में कुंवर का रक्षक था, एक भजनबल।

# तीसरा खण्ड-दूसरी ढाल

(राग-मधु मादन, जीरे अमिय रसाल, सुणतां मुझ आशा फली जीरे जी)

जीरे म्हारे जाग्यो कुंवर जाम, तव देखे दौलत मली जीरे जी।
" " सुभट भला सें बद्ध, करे विनंती मन रली " " ॥१॥
" " स्वामी अरज अम एक, अवधारो आदर करी " " ।
" " नयरी ठाणा नाम, वसे जिसी अलकापुरी " " ॥२॥
" " तिहां राजा वसुपाल, राज्य करे नर राजियो " " ।
" " कोंकण जेश नरिंद, जस महिमा जग गाजियो " " ॥३॥
" " एक दिन सभा मझार, निमित्तियो एक आवियो " " ।
" " प्रश्न पूछवा हेत, राय तणे मन भावियो " " ॥४॥
" " कहो जोशी अम धूअ, मंदनमंजरी गुणवती " " ।
" " तेह तणो भरतार, कोण थाशे भलो भूपति " " ॥५॥
" " केम मलशे अम एह, शे अहिनाणे जाणशुं " " ।
" , कोण दिवस कोण मास, घर तेडी ने आवशुं " ॥६॥
" " सकल कहो ए वात, जो तुम विद्या छे खरी " " ।
" " शास्त्र तणे परमाण, अम चिन्ता टालो परी " " ॥७॥

घोड़ों की हिन हिनाहट, सैनिकों का कोलाहल सुन कुंवर की आंख खुली। वे महामंत्र सिद्धचक्र का स्मरण कर देखते रह गये। अपने चारों ओर सैनिकों का घेरा देख सोचने लगे—अरे! क्या मैं स्वप्न देख रहा हूं? नहीं। प्रधान मंत्री—श्रीमान्‌जी! राजमहल में पधारियेगा। सम्राट आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। श्रीपालकुंवर—मेरी प्रतीक्षा? प्रधान मंत्री—जी हाँ! कुंवर—कुछ परिचय देंगे? प्रधान मंत्री-अवश्य। सुनियेः—

अलकापुरी (इन्द्र की नगरी) के समान थाणा नगर के यशस्वी सम्राट वसुपाल एक दिन राज-सभा में बैठे थे। सहसा कहीं से एक ज्योतिषी आ टपके। राजा ने पंडितजी का सादर सत्कार किया और पूछा—पंडितजी! राजकुमारी मदनमंजरी पढ़ी लिखी युवा

है। इस की बड़ी चिंता है। इस के संबंध का सु-योग कब तक है? कहां और किस देश में होने की संभावना है? वह स्वर्ण दिवस कब होगा कि मेरे राजमहल के प्रांगण में एक सुयोग्य जमाई के चरण होंगे? कृपया आप बराबर अपना पंचांग देख कर सप्रमाण तिथि वार कहियेगा।

जीरे म्हारे जोशी कहे निमित्त, शास्त्र तणे पूरण बले जीरे जी।
,, ,, पूरव गत आमनाय, ध्रुव तणी परे नवि चले ,, ,, ॥८॥
,, ,, सुदी दसम वैशाख, अढी पहोर दिन अतिक्रमे ,, ,, ।
,, ,, रयणायर उपकंठ, जई जोज्यो तेणे समे ,, ,, ॥९॥
,, ,, नवनंदन वन मांहि, शयन कीध चंपातले ,, ,, ।
,, ,, जो जो तस अहिनाण, तरुवर छांया नवि चले ,, ,, ॥१०॥
,, ,, राय न मानी वात, एम कहे एशुं केवली ,, ,, ।
,, ,, अमने मोकलिया आंहि, आज वात ते सवि मली ,, ,, ॥११॥
,, ,, प्रभु थाओ असवार, अश्व रतन आगल धर्यो ,, ,, ।
,, ,, कुंवर चाल्यो ताम, बहु असवारे परवर्यो ,, ,, ॥१२॥

## घर बैठे गंगा:–

पंडित मीन, मेष वृ....षभ कह अपनी अंगुलियां नचाते हुए, खिलखिला कर जोर से हंस पड़े–राजन्! हजारों वर्ष में ढूंढने पर भी ऐसा बलवान सुयोग नहीं आने का। वर की खोज में सम्राट वसुपाल ने हद कर दी थी, उन्हें विश्वास ही कैसे हो! कुछ लोगों ने व्यंग कस ही दिया। अजी! ज्योतिषी की बात कभी जूठी हुई है। आप तो केवली (सर्वज्ञ) ठहरे पांडेजी! अवसर मत चूको। जो भी समझ में आई हो, कह डालो।

पंडित–राजन्! 'आज जनता भले ही तर्क वितर्क कर मेरा उपहास करे' किन्तु ज्योतिषशास्त्र दीपक है। क्या उसके प्रकाश में भी सच झूठ छिप सकता है? कभी नहीं। मैं आपको सप्रमाण दावे के साथ कहता हूं, कि आप आगामी वैशाख शुक्ला दसमी को ढाई पहर दिन चढ़े अपने सेवकों को भेज कर समुद्र तट पर नवनन्दन वन में खोज करें। वहां आप को एक चंपे के पेड़ के नीचे एक सुन्दर

वीर नवयुवक नींद में सोया हुआ मिलेगा। हां! और भी स्पष्ट किये देता हूँ, कि उस दिव्य नर-रत्न पर सूर्य के ढलने पर भी छाया स्थिर रहेगी। वही राजकुमारी मदनमंजरी के भाग्य का चमकता चांद होगा।

प्रधानमंत्री ने श्रीपालकुंवर से कहा—श्रीमान्‌जी! सचमुच आज हम आपके दर्शन कर फूले नहीं समा रहे हैं। वह पंडित नहीं भगवान था। अब आप कृपया नगर में पधार कर हमें कृतार्थ करें। यह अश्व उपस्थित है। कुंवर ने श्री सिद्धचक्र का स्मरण कर उसी समय वहाँ से प्रस्थान कर दिया।

जीरे म्हारे आगल जई असवार, नृपने दिये वधामणी जीरे जी।
,, ,, सन्मुख आव्यो राय, लई दोलत घणी ,, ,, ॥१३॥
,, ,, शणगार्यो गजराज, अंबाड़ी अंबर अड़ी ,, ,, ।
,, ,, घण्टा घूंघर माल, पाखरमणि रयणे जड़ी ,, ,, ॥१४॥
,, ,, सोवन जड़ित पलाण, तेजाला तेजी घणां ,, ,, ।
,, ,, जोतरिया केकाण, रथ जाणे दिनकर तणां ,, ,, ॥१५॥
,, ,, बेहड़ा धरी शीश, सामी आवे बालिका ,, ,, ।
,, ,, मोती सोवन फूल, वधावे गुण मालिका ,, ,, ॥१६॥
,, ,, राज वाहन चक डोल, रयण सुखासन पालकी ,, ,, ।
,, ,, सांबेला में वृद्ध, केतु पताका नवलखी ,, ,, ॥१७॥
,, ,, वाजे बहु वाजित्र, नाचे पात्र ते पग पगे ,, ,, ।
,, ,, शणगार्या घर हाट, पाट सावट्ट जगमगे जी ,, ,, ॥१८॥
,, ,, एम महोटे मंडाण, पेसारो महोच्छव करे ,, ,, ।
,, ,, राय सकल गुण खाण, कुंवर पधराव्यो घरे ,, ,, ॥१९॥

सम्राट वसुपाल राजमहल की अटारी पर टहल रहे थे। घोड़े की हिन हिनाहट सुनते ही वे शीघ्र ही राज सिंहासन पर आकर बैठ गए। समाने से आता हुआ एक सवार, महाराजाधिराज की जय हो! जय हो!! हजूर! "वह पंडित नहीं भगवान है। उसे कोटी कोटी धन्यवाद हैं। सचमुच आज हमें एक चंपे के पेड़ के नीचे एक अति सुन्दर वीर नवयुवक मिला।" राजा ने प्रसन्न हो अनुचर का वस्त्रालंकार से सत्कार किया। थाणा नगर कलापूर्ण सुन्दर द्वार और रंग बिरंगी ध्वजा

पताकाओं से सजाया गया। रत्न जड़ित स्वर्ण के बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से हाथी, घोड़े, रथ पालकियाँ जनता को आकर्षित करने लगी। बालिकाएं अपने सिर पर स्वर्ण के मंगल कलश रख, मधुर स्वर से स्वागत गीत गाती हुई आगे बढ़ने लगी। सम्राट वसुपाल अपने मंत्री मंडल और नागरिकों के साथ बड़े ठाठसे नगर के विशाल उद्यान में जा पहुंचे। सामने से श्रीपालकुंवर के आते ही जयघोष, शहनाइया और ढोल नगारों की ध्वनि से सारा आकाश गूंज उठा। फूल के हारों से कुंवर का गला ढक गया। वसुपाल कुंवर को देख फूले न समाए। वे उन्हें बड़े समारोह के साथ हाथी के ओदे चढ़ा कर अपने राज महल में ले आए। जनता श्रीपालकुंवर का दिव्य तेज रूप रंग और ज्योतिषी की सचाई देख मंत्र मुग्ध हो गई।

जीरे म्हारे जोशी तेड़ाव्या जाण, लगन तेहिज दिन आवियुं जीरे जी।
जीरे माहरे देई बहुला दान, राय लगन वधावियुं जीरे जी ॥२०॥
,, ,, तेहिज रयणी मांहि, धूआ मदनमंजरी तणो ,, ,,।
,, ,, राये कर्यो विवाह, साजन मन उलट घणो ,, ,, ॥२१॥
,, ,, गज रथ घणां भंडार, दीधां कर मेलावडे ,, ,,।
,, ,, जइये महिमा देखी, सिद्धचक्रने भामणे ,, ,, ॥२२॥
,, ,, पडिया सायर मांहि, एकज दुःखनी यामिनी ,, ,,।
,, ,, बीजी रात्रे जोय, इणी परे परण्या कामिनी ,, ,, ॥२३॥
,, ,, नृपे दीधां आवास, त्यां सुख भर लीला करे ,, ,,।
,, ,, मदनमंजरी सुं नेह, दिन दिन अधिकेरो धरे ,, ,, ॥२४॥
,, ,, नृप दियेबहु अधिकार, कुंवर न वंछे ते हीये ,, ,,।
,, ,, थयो थगीधर आप, पान तणां बीड़ा दिये ,, ,, ॥२५॥
,, ,, जे कोई अति गुणवंत, मान दिये नृप जेहने ,, ,,।
,, ,, तेहने बीड़ा पान, देवरावे कुंवर कने ,, ,, ॥२६॥
,, ,, त्रीजे खण्डे एह, बीजी ढाल सोहामणी ,, ,,।
,, ,, सिद्धचक्र गुण श्रेणि, भवि सुणजो विनये भणी ,, ,, ॥२७॥

## महामंत्र स्मरण का प्रत्यक्ष फल :—

श्रीपालकुंवर को दुष्ट धवलशेठ ने मौत के घाट उतारना चाहा, किन्तु वे सिद्धचक्र महामंत्र के स्मरण-बल से बाल-बाल बच कर सूर्योदय होते ही सम्राट् वसुपाल के जमाई बन गए। थाणा नगर में घर घर उनकी चर्चा होने लगी। सचमुच सोये भाग्य को जगाने का अनुपम चमत्कारिक साधन है, श्री सिद्धचक्र ( नवपद ) आराधन। सम्राट् वसुपाल बड़े गुणानुरागी थे। उन्होंने भविष्यवक्ता पंडित को विपुल धन और अभिनन्दनपत्र दे उनका सत्कार किया। वसुपाल—पंडितजी! राजकुमारी के लग्न कब करना ? पंडित—राजन्! "काल करे सो आज कर"—जो काम कल करना है, सो आज ही कर लें, आज का कार्य इसी समय प्रारंभ कर दें अर्थात् आज का दिन ही सर्वश्रेष्ठ है।

सम्राट् वसुपाल ने बड़े ही समारोह के साथ राजकुमारी मंदनमंजरी का विवाह श्रीपालकुंवर के साथ कर, उसे कन्यादान में विपुल धन, भवन, हाथी, घोड़े, रथ, पालकियां और बहुमूल्य वस्त्रालंकार प्रदान किये। राजा ने कुंवर को भी अनेक राज्याधिकार देने का अनुरोध किया किन्तु उन्होंने एक भी स्वीकार नहीं किया। वे समझते थे कि संपत्ति का लोभ ही तो स्नेह का घातक है। अंत में अपने ससुर सम्राट् वसुपाल का मान रखने के लिये उन्हें थगीधर (स्वागत मंत्री) का पद ग्रहण करना पड़ा।

मदनमंजरी गृहस्थ-शास्त्र में बड़ी निपुण थी। उसने अपने मिलनसार विनम्र स्वभाव, ज्ञानचर्चा, सेवा शुश्रूषा, पतिभक्ति से सहज ही श्रीपालकुंवर के मन को अपने आधीन कर लिया। श्रीपालकुंवर भी एक चतुर सुशीला पत्नी को पाकर शारीरिक और मानसिक व्यथा को भूल, सानंद थाणा नगर के राजमहल में रहने लगे।

श्रीमान् कविवर उपाध्याय विनयविजयजी कहते हैं, कि यह श्रीपालरास के तीसरे खण्ड की दूसरी ढाल संपूर्ण हुई। पाठक एवं श्रोतागण त्रिकाल सिद्धचक्र का स्मरण कर अपना जीवन सफल बनाए।

### दोहा

वहाण मांही जे हुई, हवे सुणो ते वात।
धवल नाम कालो हिये, हरख्यो साते धात ॥ १ ॥
मन चिंते मुज भाग्य थी, महोटी थई समाधि।
पल मांही त्रिण औषधी, विरुई गई विराधि ॥ २ ॥

ए धन ने दोय सुन्दरी, एह सहेली साथ।
परमेसर मुज पाधरूं, दीधुं हाथो हाथ ॥ ३ ॥
कूड़ी माया केलवी, दोय रीझवुं नार।
हाथे लई मन एहनां, सफल करूं संसार ॥ ४ ॥
दुःखिया थईये तस दुःखे, वयण सुकोमल रीति।
अनुक्रमे वश कीजिये, न हीय पगणे प्रीति ॥ ५ ॥
धूर्त इम चित्तमां धरी, करे अनेक विलाप।
मुखे रुवे हयडे हसे, पाप निगोवे आप ॥ ६ ॥

## बिना दवा के पीड़ा मिटी :—

धवलसेठ—मित्र! वाह रे, वाह! अच्छा दाव मारा। बिना दवा के पीड़ा मिटी। अब तो यह कनक-कामिनी मेरी ही है। भाग्य से ही तो ऐसा अवसर हाथ लगता है। दोनों स्त्रियां पति बिना जावेंगी कहां? हमने श्रीपाल को ऐसी जगह ढकेला है, कि उसे समुद्र के मगर-मच्छ जलजन्तु मिनटों में चबा गये होंगे। किसी को पता तक न लगेगा कि कहाँ क्या हुआ? हां! अब इनको वश करना है। जरा सोच समझकर काम लेना पड़ेगा। दुष्ट मित्र—सेठजी! पर-स्त्री को प्रलोभन दे उसे फुसला कर अपने आधीन करना यह तो आपके बांए हाथ का खेल है। इस कला में आप बड़े कुशल हैं। सेठ का नाम जैसा धवल (निर्मल) था वैसा उनका जीवन नहीं। वे हृदय के मैले, महाकपटी ढोंगी थे। उन्होंने अपने कुकृत्य पर पर्दा डालने का उपाय सोच ही लिया।

अपना छाती-माथा कूट कूट कर बांग दे, रोने लगे, किन्तु हृदय में रंज का अंश मात्र भी नहीं था।

## तीसरा खण्ड–तीसरी ढाल

(राग :- रहो रहो रथ फेरवो रे)

जीव जीवन प्रभु किहां गया रे, दियो दरिसण एक वार रे।
सुगुण साहेब तुम बिना रे, अमने कोण अधार रे ॥ जीव० ॥१॥

सिर कूटे पीटे हियुं रे, मूके महोटी पोक रे। जीव.
हाल कल्लोल थयो घणो रे, भेला हुआं घणां लोक रे॥ जी.॥ २॥
कौतुक जोवाने चढ्यो रे, कांये अहागणी कौर रे।
है है देव! ए शुं थयुं रे, त्रूटा जूना दोर रे॥ जी.॥ ३॥
जब बेहु मयणा तणे रे, काने पड़ी ते वात रे।
ध्रसक पड्यो तव ध्रासको रे, जाणे वज्रनो घात रे॥ जी.॥ ४॥
थई अचेतन धरणी ढले रे, करती कोड़ विखास रे।
सही सहेली सवि मली रे, नाके जुए निसास रे॥ जी.॥ ५॥
छांट्या चंदन कम कमा रे, कर्यां विंझाणे वाय रे।
चते वल्यु तव आरड़े रे, हैये दुःख न माय रे॥ जी.॥ ६॥
कांई प्राण पाछा वल्या रे, जो रुठो किरतार रे।
पीयरिया आगल रह्या रे, मुकी गया भरतार रे॥ जी॥ ७॥
माय बापने परिहरी रे, कीधो जेहनो साथ रे।
फिट हियड़ा फूटे नही रे, विछड्यो ते प्राणनाथ रे॥ जी.॥ ८॥

## ढोंगी नर से सावधान :–

ढोंगी नक्कालों ने हजारों स्त्री पुरुषों के गले छुरियाँ फेर दी। दूध में पानी, घी में डालडा, सोने में तांबा, आटे में लकड़ी का भूसा, उन में सूत, केशर में घास, रंग में शक्कर। चारों ओर लूट पड़ी। "शुद्ध घी" "शुद्ध केसर" "शुद्ध उन" आदि भड़कीले शीर्षक, सुन्दर रंग बिरंगे आवरणों (पेकिंगों) में जहा देखो वहां धोखा ही धोखा।

धवलसेठ ने भी ऐसा नाटक रचा कि जनता उसे देख स्तब्ध हो गई। ढोंगी नर बाप को मार कर हाथ भी न धोए। सेठ को रोते पीटते देख, भय सूचक घंट बजने लगा। जहाज में चारों ओर सन्नाटा छा गया श्रीपालकुंवर के वियोग में हजारों स्त्री-पुरुष आंसू बहाने लगे। किन्तु सेठ को मन ही मन प्रसन्न हो उपर से लोगों को टूटा रस्सा बताकर सिसकने लगे। अरे...रे....रे! इन रस्सों ने तो मुझे फांसी ही लगा दी। हाय! मेरा परम उपकारी, जीवन साथी आज मेरे हाथ से निकल

गया। इस अथाह सागर में अब उसका क्या पता लगे।

श्रीपालकुंवर के घात की बात सुनते ही उनकी दोनों स्त्रियां मदनसेना और मदनमंजूषा के हृदय पर बड़ा आघात पहुंचा। वे मुर्झाई लता सी मूर्छित हो भूमि पर ढल पड़ी। यह दृश्य देख उनकी सखी सहेलियां चीख पड़ी। अरे! दौड़ो दौड़ो! उनका हृदय धड़कने लगा। चारों ओर दास-दासियों की भीड़ लग गई। किसी ने उनके मुंह पर जल छिड़का, किसी ने कपाल पर सुवासित चन्दन का लेप कर उनके सांस की परख की। कोई हाथ से पंखा झलने लगी। पवन लगते ही उन्हें कुछ सुध आई। आँखे खोली, किन्तु उनके मृग नयन श्रीपालकुंवर को न देख केवल टिम-टिमा कर ही रह गए। बेचारी वे करवटें बदल बदल कर बिलाप करने लगी। "हाय! मा बाप को छोड़ प्राण पति का साथ किया। भगवान! आज वे ही अनायास इस अथाह सागर में समा गए। अब हमें जीकर करना ही क्या है? वियोगिनी का जीवन व्यर्थ है।"

धवलसेठ तिहां आवियो रे, कूड़ा करे विलाप रे।
शूं कीजे ए दैवने रे, किश्या दीजे शराप रे॥९॥ जीव.
दुःख सह्यां माणस कह्यां रे, भूख सह्यां जिम ढोर रे।
धीरज आप न मूकिये रे, करिये हृदय कठोर रे॥१०॥ जीव.
मणि माणिक मोति परे रे, जेहनां गुण अभिराम रे।
जिहां जाशे तिहां तेहने रे, मुकुट हार शिव ठाम रे॥११॥ जीव.
व्यंग वचन एहवुं सुणी रे, मन चिंते ते दोय रे।
एह करम एणे कर्युं रे, अवर न वैरी कोय रे॥१२॥ जीव.
धन रमणी नी लालचे रे, कीधो स्वामी द्रोह रे।
मीठो थई आवी मटे रे, खांड गलेफियुं लोह रे॥१३॥ जीव.
शील हवे किम राखशुं रे, ए करशे उपघात रे।
करीये कंत तणी परे रे, सायर झंपापात रे॥१४॥ जीव.

शहद लपेटी छुरी :—

कामांध सेठ की वियोगिनी स्त्रियों के हृदय का क्या पता? पति वियोग एक ठण्डी आग है। इस आगने हजारों भरे पूरे घरों को श्मशान का रूप दे, उन्हें मटिया-मेट

कर दिया। सेठ, स्त्री-पुरुषों के बिखर जाने के बाद अपनी मूछों पर बल देते हुए श्रीपाल की सुन्दर स्त्रियों के डेरे की ओर चल पड़े। वे बेचारी बिना जल की मछली सी छटपटा रहीं थीं। स्त्री स्वयं अपने लिये नहीं, किन्तु वह अपने पति और परिवार की भलाई के लिये ही जीवित रहती हैं। चाहे पति निर्धन भिखारी या लूला लंगड़ा ही क्यों न हो, नारी के लिये तो पति ही देव और परमेश्वर है। सेठने द्वार में प्रवेश करते ही रंग बदला। (अपनी रोती सूरत बना) हाय! अब कुंवर के बिना मेरा कहीं भी मन ही नहीं लगता है। किन्तु कर्म को क्या कहूं! टूटी की बूटी नहीं। खैर होगा अब आप भी आराम से भरपेट डट के खाओ-पीओ और मौज करो। व्यर्थ ही दिन-रात कुंवर की चिंता कर अपने खून का पानी करने से क्या फायदा? चलो उठो! भोजन करो। भूखे मरने से क्या कुंवर मिल जायगा? मानव ही तो डट कर संकट का सामना करते हैं। भूखे मरना जंगलीपन है। कुंवर तो जहां भी जायंगे वहीं मान संमान पायंगे। वे दोनों स्त्रियां धवलसेठ की शहद लपेटी चिकनी चुपड़ी बातें सुन तुरंत ही भांप गई कि वास्तव में हमारे सुहाग पर अंगारे बरसाने वाला यही कनक-कामिनी लंपट धवल है। यह सेठ नहीं शठ हमारा शीयल-धन लूटना चाहता है, हम लुटने के पहले ही अपने प्राणनाथ के साथ ही क्यों न सागरमें समा जायं।

सम काले बेहु जणी रे, मन धारी ए वात रे।
इण अवसर तिहां उपनो रे, अति विसमो उत्पात रे॥ १५ ॥ जीव.
हाल कल्लोल सायर थयो रे, वाये उमड़ वाय रे।
घोर घना घन गाजियो रे, बिजली चिहुंदिशि थाय रे॥ १६ ॥ जीव.
कुवा थंभा कड़ कड़े रे, उड़ी जाय सढ डोर रे।
हाथे हाथ सूझे नहीं रे, थयुं अंधारु घोर रे।१७॥ जीव.
डम डम डमरू डमकते रे, मुख मुके हुंकार रे।
खेत्रपाल तिहां आविया रे, हाथे लई तलवार रे॥१८॥ जीव.
वीर बावन्ने परिवर्या रे, हस्थे विविध हथीयार रे।
छड़ीदार दोड़े घणां रे, चार चतुर पड़ी हार रे॥१९॥ जीव.
बेठी मृग पति वाहने रे, चक्र भमाड़े हाथ रे।
चक्केसरी पाउ धारिया रे, देव देवी बहु साथ रे॥२०॥ जीव.

## जहाजों में खलबली मच गई :—

कुटिल धवलसेठ का जादू सतियों पर न चला। उन्हें तो पूर्ण श्रद्धा और विश्वास था कि "निर्बल के बल भगवान"। वे तो चुपचाप महामंत्र सिद्धचक्र का स्मरण करने लगीं। सेठ झेंप गए। सहसा जोरों से आंधी चली, आकाश में काली घटाएं छा गई। हाथ को हाथ दिखाई नहीं देता था। जल संग्रह, जहाजों की पालें और खंभे नष्टभ्रष्ट हो गये। चारों ओर भयंकर उत्पात मच गया। गर्जते बादल और बिजलियां देख जहाजों में बड़ी खल-बली मच गई।

जनता ने देखा, सामने एक भीमकाय श्याम चतुर्भुज डम...डम....डमरू बजाते, गर्जते हुए अनेक देवदेवियों के साथ क्षेत्रपाल चला आ रहा है। उसके हाथों में डरावना त्रिशूल, नरमुण्ड और चमकीली तलवार थी। उनके पीछे थे चौसठ योगिनी और बावन वीर। चारों ओर कौतुक और प्रकाश फैल गया। उस प्रकाश में प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव की अधिष्ठायिका एक दिव्य शक्तिमान हाथ में चक्र लिये केसरी सिंह पर सवार हो आई। उसका नाम था देवी चक्रेश्वरी।

हण्यो कुबुद्धि मित्रने रे, जिणे वांको मति दीध रे।
क्षेत्रपाले तव ते ग्रही रे, खण्ड खण्ड तेनु कीध रे ॥२१॥ जीव.
ते देखी बीहतो घणूं रे, मयणा शरण पइट्ठ रे।
सेठ पशु परे ध्रुजतो रे, देवी चक्केसरी दीट्ठ रे ॥२२॥ जीव.
जा मुक्यो जीवतो रे, सती शरण सुपसाय रे।
अंते जईश जीवथी रे, जो मन धरीश अन्याय रे ॥२३॥ जीव.
मयणाने चक्केसरी रे, बोलावे धरी प्रेम रे।
वत्स कांई चिंता करो रे, तुम पियुने छे खेम रे ॥२४॥ जीव.
मास एक मांहीं सही रे, तमने मलशे तेह रे।
राज रमणी ऋद्धि भोगवे रे, नरपति ससरा गेह रे ॥२५॥ जीव.
बेहुने कंठे ठवी रे, फूल अमुलख माल रे।
कहे देवी महिमा सुणो रे, एहनो अति ही रसाल रे ॥२६॥ जीव.

शीयल यतन एहथी थशे रे, दिन प्रते सरस सुगंध रे ।
जेह कुमीटे जोयशे रे, ते नर थासे अंध रे ॥२७॥
एम कही चक्रकेसरी रे, उतपतिया आकाश रे ।
सयल देवशुं परिवर्यां रे, पहोतां निज आवाश रे ॥२८॥
तव उतपात सवि टल्या रे, वहाण चाल्या जाय रे ।
चिंता भागी सर्वेनी रे, वाया वाय सुवाय रे ॥२९॥ जीव.

विश्वासघात का कटु फल :—

क्षेत्रपाल की सूरत देखते ही धवलसेठ और उनके कुटिल मित्र के पैर ठरे गये। देव ने कुटिल मित्र को पकड़ कर ऐसा पछाड़ा कि उसकी हड्डी एक भी न बची, टूकड़-टूकड़े हो गये। यह देख सेठ गिड़-गिड़ा कर सतियों के चरणों में लौटने लगे। देवी ! बचाओ ! ! शरणागत की रक्षा करो !

देवि चक्रेश्वरी, सेठ ! आज मैं तुझे विश्वासघात, कृतघ्नता का कटु-फल चखाये बिना कदापि न लौटती, किन्तु तुम्हें सती-शरणागत देख विवश हो, अभयदान देती हूँ। "विश्वासघात महापाप" भविष्य में कभी कृतघ्न न बनना। अन्यथा कुशल नहीं। मदनसेना और मदनमंजूषा की ओर मुड़कर मदनसेना ! मदनमंजूषा ! धन्य है। आपके दृढ़ पतिव्रता को। वास्तव में आदर्श नारी को पतिव्रत-धर्म प्राणों से भी प्यारा है। आज आपको देख मेरा हृदय फूला नहीं समाता है। धन्य है। आपकी मैं क्या सेवा करूं ? श्रीपालकुंवर की दोनों स्त्रियों को मौन देख। चक्रेश्वरी देवी ने उनके गले में दो हार डाल कर कहा। आप हृदय में अपने पतिदेव की जरा भी चिंता न करें। वे इस समय अपने नूतन सुसराल में राजकुमारी मदनमंजरी के साथ सकुशल हैं। अधिक नहीं आपको इसी मास में निःसंदेह श्रीपालकुंवर के प्रत्यक्ष दर्शन होंगे। इस दैविक हार के प्रभाव से कोई भी आपका बाल बांका न कर सकेगा। यदि कामान्ध पर पुरुष आपको आंख उठाकर देखेंगे तो वे अन्धे बन लड़खड़ाते दिखाई देंगे।

भगवती चक्रेश्वरी उन्हें आश्वासन देकर आकाश मार्ग से सपरीवार अपने स्थान पर लौट गई उतपात शांत हुआ। जनता को नव जीवन मिला। जहाज बड़े वेग से आगे बढ़ने लगे।

मित्र त्रण कहे सेठने रे, दीठी प्रतक्ष वात रे ।
चोथो मित्र अधर्मथी रे, पाम्यो वेगे घात रे ॥३०॥ जीव.

ते माटे ए चित्त थीं रे, काढ़ी मुको साल रे।
पर लखमी पर नारने रे, हवे म पड़शो ख्याल रे ॥३१॥ जीव.
पण दुर्बुद्धि सेठनुं रे, चित्त न आव्युं ठाय रे।
जइवि कपूरे वासिये रे, लसण दुर्गंध न जाय रे ॥३२॥ जीव.
हैड़ा करने वधामणां रे, अंश न दुःख धरेश रे।
जो बच्यो छुं जीवतो रे, तो सवि काज करेश रे ॥३३॥ जीव.
जो मुज भाग्ये एवडुं रे, विघ्न थयुं विसराल रे।
तो मलशे ए सुंदरी रे, समशे विरहनी झाल रे ॥३४॥ जीव.

## लंपटता एक अभिशाप है :—

दैविक चमत्कार देख चारों ओर सनसनी फैल गई। खोटी सलाह दे किसी की घात करने वाले का कभी भला हुआ है ? नहीं। तीनों मित्र—सेठजी ! अब नवजीवन पाकर समय पर संभलना ही ठीक है। हमारा तो आपसे फिर भी यही अनुरोध है, कि आप इस लंपटता को ठुकरा कर अपने जीवन का ढांचा ही बदल दें। "सदाचार ही जीवन है।" लंपटता मानव का अभिशाप है। देखो ! कुटिल मित्र को प्रत्यक्ष अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा। सेठ लज्जित हो, धरती खुरचने लगे, किन्तु उनका मन नहीं बदला। सच है, लहसुन को मनों कपूर में रखने पर भी उसकी दुर्गंध नहीं जाती, उसी प्रकार दुर्जनों का भी यही स्वभाव है।

धवलसेठ को अपने साथी की मृत्यु का जरा भी दुःख न हुआ। वे तो मुस्करा कर अपनी मूंछों पर बल दे मिया मिट्ठु बन, कहने लगे—अरे! मैंने देवी को चमका दे मृत्यु पर विजय पा ली, तो भला ये तीनों मित्र हैं किस गिनती में ? कोई चिंता नहीं, अब तो मैं इन दोनों सुन्दरियों को पाऊँगा तभी मुझे शांति होगी।

एम चिंती दूती मुखे रे, कहावे हुं तुम दास रे।
नेक नजर करी निरखिये रे, मानो मुज अरदास रे ॥३५॥ जीव.
दूती ने काढी परी रे, देई गलहत्थो कंठ रे।
तो ही निर्लज्ज लाजो नहीं रे, वली थयो उल्लंठ रे ॥३६॥ जीव.

वेश करी नारी तणों रे, आव्यो मयणा पास रे।
दृष्टि गई थयो आंधलो रे, काढ्यो करी उपहास रे ॥३७॥ जीव०
उतरिये उत्तर तटे रे, वहाण चलावो वेग रे।
पण सन्मुख होय वायरो रे, सेठ करे उद्वेग रे ॥३८॥ जीव०
अवर देश जावा तणों रे, कीधो कोड़ी उपाय रे।
पण वहाण कोंकण तटे रे, आणी मुक्या वाय रे ॥३९॥ जीव०
त्रीजे खण्डे इम कही रे, विनये त्रीजी ढाल रे।
सिद्धचक्र गुण बोलतां रे, लहिये सुख विशाल रे ॥४०॥ जीव०

## सेठ की पोल खुल गई :—

सेठ ने एक दूती को सिखाकर सतियों के पास भेजी। दूती ने श्रीपाल की दोनों स्त्रियों से घुल-मिल कर उन्हें अनेक प्रलोभन दिये, किन्तु उनके हृदय में यह दृढ़ विश्वास था कि "संसार में स्त्रियों के लिये अपने पति से बढ़ कर कोई पदार्थ है नहीं" वे अपने व्रत से न डिगीं। दूति—बहनो! "देवी के चक्कर में पड़, यदि आप सेठ की प्रार्थना को ठुकराओगी, तो याद रखो! जन्म भर पछताना पड़ेगा।"

मदनमंजूषा की आंखें लाल हो गईं। उसने दूती को गलगची दे, धक्का मारकर बाहिर निकाल दिया। वह अपने प्राण ले वहाँ से भागती बनी। सेठ दासी की रोती सूरत देख, भांप गये कि आज तो अपना दांव खाली गया। "काम सुधारो अपना, तो अंगे पधारो आप" मैं अभी पहुंचता हूँ।

सेठ ने विचार किया दूसरों को छकाने में मैं बड़ा निपुण हूँ। वे उसी समय स्त्री वेष धारण कर चल पड़े। जनता उन्हें पहचान न सकी। दैविक हार के प्रभाव से वे अंधे बन लड़-खड़ाने लगे। उन्हें क्या पता कि कहाँ कौन खड़ा है। एक दासी का स्पर्श होते ही उनकी पोल खुल गई "प्यारी! अब इस दास को अधिक न तड़फाओ। यह धवल तुम्हारे चरणों की रज है! रज।" धवल नाम सुनते ही, दासी ने डंडे से सेठ की पूजा उतारना शुरू कर दी, तो सेठ वहाँ से भागते ही बने। यह देख कर तमाम दास-दासियाँ खिल-खिला कर हंस पड़े। सेठ की सारी मान-प्रतिष्ठा धूल में मिल गई। फिर तो सेठ मुंह बताने लायक भी न रह गये।

अब जहाजों में चारों ओर कानाफूंसी होने लगी। चक्रेश्वरी देवी के वचनों का स्मरण होते ही उन का हृदय जोरों से धड़कने लगा। उन्होंने उसी समय प्रमुख जहाज चालक को बुलाकर पूछा, जहाज किस ओर जा रहे हैं? जहाज चालक—सेठ! घात टली—अब शीघ्र ही कोकण आ रहा है। कोकण का नाम सुनते ही, सेठ के हाथ-पैर ठर गये। उन्हें काठ मार गया। वे हिम्मत कर, बोले—चालकजी! इसी समय जहाजों की दशा बदल दें, उन्हें शीघ्र ही उत्तर की ओर मोड़ लिया जाय। जी हजूर! कह कर जहाज चालकों ने दिशा बदलने के लाख उपाय किये, किन्तु उनकी एक न चली। पवन के वेग ने जहाजों को कोकण के तट पर ढकेल ही दिया। श्रीमान् कविवर विनयविजयजी कहते हैं, कि यह श्रीपाल-रास के तीसरे खण्ड की तीसरी ढाल सम्पूर्ण हुई। मनोवांछित सफल करने का एक ही उपाय है, श्री सिद्धचक्र व्रत की आराधना।

## दोहा

कोकण कांठे नागर्या, सवि वहाण तिण वार।
नृपने मलवा उतर्या, सेठ लई परिवार ॥ १ ॥
आव्यो नरपति पाउले, मिलणा करे रसाल।
बेठो पासे रायने, तव दीठो श्रीपाल ॥ २ ॥
देखी कुंवर दीपतो, हैये उपनी हूक।
लोचन मींचाई गया, रवि देखी जिम घूक ॥ ३ ॥
नृप हाथे श्रीपाल ने, देवरावे तंबोल।
सेठ भली परे ओलखी, चित्त थयुं डमडोल ॥ ४ ॥
है, है! अटारडो, एह किश्यो उतपात।
नाखी हतो खारे जले, प्रकट थई ते वात ॥ ५ ॥
सभा विसरजी राय जब, पहोतो महेल मझार।
तब सेठे पडिहार ने, पूछयो एह विचार ॥ ६ ॥
एह थगीधर कोण छे, नवलो दीसे कोय ॥
तेह कहे गति एहनी, सुणतां अचरिज होय ॥ ७ ॥

## आंखों में अंधेरा :-

धवलसेठ जहाजों के लंगर पड़ते ही, एक सोने का थाल, बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सजाकर सम्राट वसुपाल की राजसभा में, थाणा नगर पहुंचे। राजा ने संतुष्ट हो उन्हें अपने पास बैठाया। आपस में बातें होने लगी। स्वागत मंत्री (थगीधर) श्रीपालकुंवर पान-बीड़े का थाल ले राजसभामें आए। उन्हें देखते ही सेठ का सिर चकराने लगा। बाप....रे बा...प! अरे! यह कौन श्रीपाल? मैंने तो इसे गहरे समुद्र में ढकेल दिया था, फिर भी यह यहाँ कैसे आ पहुंचा? सेठ कुंवर का तेज सहन न कर सके। उनकी आँखों में अंधेरा छा गया। हृदय जोरों से धड़कने लगा। वे पान-बीडा लेना अस्वीकृत भी तो कैसे कर सकते थे। सेठ ने अपने दिल को जरा कड़ाकर (क्या पता श्रीपाल के समान ही कोई और हो) पान-बीडा ले मुंह में रखा। कुंवर शांत भाव से प्रसन्न मन अपने स्थान पर वापस लौट गए। उनके मन में धवलसेठ के प्रति जरा भी घृणा या विकार न था। वे समझते थे कि "कोई किसी को बना या बिगाड़ नहीं सकता। प्रत्येक घटनाएं अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार ही तो बनती हैं। क्रोध, क्षण में जीवन के आनन्द, श्रम और क्रोडों भवों के तप को नष्ट कर देता है।"

सम्राट वसुपाल घंट बजते ही सभा विसर्जन कर, अपने महल में लौट गये। धवलसेठ बडी दुविधा में पड गये। "हाय! यह थगीधर न मालूम कौन है। पहरेदार से पूछना चाहिए।" आखिर धवलसेठ से न रहा गया, पहरेदार से पूछने पर पता लगा, कि इसकी घटना बड़ी विचित्र है, यदि आप सुनेंगे तो आपको बड़ा आश्चर्य होगा।

वनमां सुतो जागवी, घर आण्यो भली भांत।
परणावी निज कुंवरी, पूछी न बात के जात॥ ८॥
शेठ सुणी रीझ्यो घणो, चित्त मां करे विचार।
एहने कष्टे पाड़वा, भलुं देखाड्युं बार॥ ९॥
देई कलंक कुजाति नुं, पाड़ुं एहनी लाज।
राजा हणशे एहने, सहजे सरशे काज॥ १०॥
जो पण जे जे में कर्या, एह ने दुःख ना हेत।
तेते सवि निष्फल थया, मुज अभिलाष समेत॥ ११॥

तो पण वाज न आविये, मन करिये अनुकूल।
उद्यमथी सुख संपजे, उद्यम सुखनुं मूल ॥ १२ ॥
वेरी ने वाध्यो घणो, ए मुज खणशे कंद।
प्रथमज हणवा एहने, करवो कोईक फंद ॥ १३ ॥
इम चिंतवतो ते गयो, उतारे आवास।
पलक एक तस जक नहीं, मुख मूके निसास ॥ १४ ॥

द्वारपाल—सेठजी ! इसकी बड़ी तेज पुण्याई है। यह एक दिन समुद्र-तट पर सो रहा था। इसे लाकर हमारे सम्राट ने अपनी बेटी ब्याह दी—न जात पूछी न पात। बड़े आदमी हैं, नहीं तो न मालूम क्या हो जाता। सेठ द्वारपाल को धन्यवाद दे मुस्कराते हुए चल पड़े। मार्ग में मन ही मन कहने लगे, हां ! अब तो इसकी चोटी मेरे हाथ में है। बच के जायगा कहां ? शत्रु को समाप्त कर देना ही ठीक है। इसे मैंने समुद्र में ढकेला फिर भी इसका बाल बांका न हुआ। (कुछ सोच कर) मेरे मन की मन में रह गई। निराश होने से क्या होगा ? कुछ भी हो, "सफलता की जड़ है उद्यम। अब की बार तो इसे छठी का दूध याद न आ जाए, तो मेरा नाम धवल नहीं।" डेरे पर पहुंच कर सेठ बिछोने पर करवटें बदलने लगे।

## तीसरा खण्ड-चौथी ढाल

(तर्ज—भिक्षा ने ममता थका हो लाल)

इण अवसर एक डूंबनुं रे, आव्युं टोलुं एक रे चतुरनर,
उभा ओलगड़ी करे हो लाल। तेड़ी महत्तर डूंबने रे,
शेठ कहे अविवेक रे चतुरनर, काज अमारुं एक करो हो लाल ॥ १ ॥
जेह जमाई रायनो रे, तेहने कहो तुमे डूंब रे चतुरनर, लाख सोनैया
तुमने आपशुं हो लाल। धाई ने वलगो गले रे, सघलुं मली
कुटुंब रे चतु नर, पाड़ घणों अमे मानशुं हो लाल ॥ २ ॥

डूंब कहे स्वामी सुणो रे, करश्यां ए तुम काम रे चतुरनर,
मुजरो माहरो मानजो हो लाल ! केलवशुं कूड़ी कला रे,
लेशुं परठ्या दाम रे चतुरनर, साबासी देजो पछे हो लाल ॥३॥

## न रहेगा बांस, न बजेगी बंसरी :—

प्राचीन काल में मनोरंजन के लिये, नटों की एक विशेष गणना थी । ये लोग दो बांसों के बीच एक लंबी रस्सी पर अपने प्राणों की बाजी लगा कर, जनता को मुग्ध कर देते थे ।

एक दिन एक नट-परिवार गाता—बजाता कहीं धवलसेठ के द्वार पर आ निकला । उन्हें देखते ही, सेठ ने अपनी सफलता का एक नया उपाय ढूंढ निकाला । " न रहेगा बांस, न बजेगी बंसरी । " सेठ—नटराज ! द्वार द्वार भटकने से कहीं दरिद्रता का अन्त होगा ? इस जन्म में तो आशा नहीं । तुम्हें मालो-माल बनना है ? नट – श्रीमान् के हाथ लंबे हैं । सेठ, हमारा एक काम करोगे ? नट, अवश्य तन-मन से ।

धवलसेठ—नटराज ! देखो ! डरना मत । निहाल हो जाओगे । " अच्छा, सुनो ! यहां थाणा नगर के सम्राट का एक धर्मीधर है । उसे शीघ्र ही राजा-प्रजा की दृष्टि से गिरा कर, पूर्णतया यह सिद्ध कर दो कि यह नवयुवक आपके ही परिवार में जाया उपना एक डूंब है । " नट को मौन देख, सेठने दूने उत्साह से कहा - अजी ! चुप क्यों हो ? श्रम पूरा मिलेगा । एक लाख स्वर्ण मुहरों से कम न दूंगा । आप मुझे क्या समझते हैं ? और फिर उपाय भी सरल है । " आप राजसभा के द्वार पर गा बजा कर अपनी उत्कृष्ट कला का प्रदर्शन करें । जब कि धर्मीधर पान बीड़ा ले, तुम्हारे निकट पहुंचे, आप सभी उसी समय उसके गले पड़ जाना । बस स्वर्ण मुहरें तैयार हैं । नटराज, सेठ ! काम कम नहीं, प्राणों से खेलना है । कृपया हमारे श्रम के साथ पारितोषिक भी देना पड़ेगा । धवलसेठ—नटराज । आप विश्वास रखें । सब ठीक होगा । नट परिवार चलता बना । सेठ ने तकिये का सहारा लेते हुए, अपनी मूंछों पर बल दे कहा—" सम्राट वसुपाल अद्भुत धर्मीधर को तोप के मुंह उड़ाये बिना न रहेगा । "

डूंब मली सवि ते गया रे, रायतणे दरबाररे, चतुर नर,
गाये उभा घूमता हो लाल । राग आलापे टेकशुं रे,
रीझ्यो राय अपार रे चतुर नर; मांगो कांई मुख इम कहे हो लाल ॥४॥

डूंब कहे अम दीजिये रे, मोहत वधारी दान रे चतुरनर,
मोहत अमे वांछुं घणुं हो लाल। तव नरपति कुंवर कने रे,
देवरावे तस पान रे चतुरनर, तेहनुं मोहन वधारत्ता हो लाल॥५॥
पान देवा जब आवियो रे, कुंवर तेहनी पास रे चतुरनर,
हसित वदन जोतो हंसी हो लाल। बड़ो डूंब विलगो गले रे,
आणी मन उल्लास रे चतुरनर, पुत्र आज भेट्यो भलो हो लाल॥६॥
एहवे आवी डूंबड़ी रे, रोई लागी कंठ रे, चतुरनर,
अंगो अंगे भेटती हो लाल। बहेन थई एक भली रे, आणी,
मन उत्कंठ रे चतुरनर, वीरा जाऊँ तुम भामणे हो लाल॥७॥
एक कहे मुज माउलो रे, एक कहे भाणेज रे चतुरनर,
एवड़ा दिन तुमे कहां रह्या हो लाल। एक काकी एक फई थई रे,
देखाड़े घणुं हेत रे चतुर नर, वाट जोतां हता ताहरी हो लाल॥८॥
डूंब कहे नर रायने रे, ए अम कुल आधार रे चतुरनर,
रीसाई चाल्यो हतो हो लाल। तुम पसाये भेलो थयो रे,
सवि माहरो परिवार रे चतुर नर, भाग्यां दुःख विछोहनां हो लाल॥९॥

## नटों का षड्यंत्र :-

संगीत एक मोहिनी मंत्र है। नटराज की ढोलक का शब्द सुनते ही, चारों ओर स्त्री-पुरुष, बच्चों की भीड़ लग गई। राजमहल के सामने, मैदान में बैठने की जगह नहीं। आज नट परिवार अपने दुगुने उत्साह से उत्कृष्ट कला का प्रदर्शन कर रहा था। उनके गले के माधुर्य ताल लय और हास्य रंग देख जनता मंत्रमुग्ध हो गई। तालियों की गड़गड़ाहट के साथ चांदी बरसने लगी। रुपये पैसों का ढेर लग गया।

श्रीपालकुंवर नटों का हृदय देख मन ही मन कहने लगे—अरे! बेचारे नट (उदर पूर्ति, मान प्रतिष्ठा) के पीछे प्राणों पर खेल रहे हैं, यदि इतना पुरुषार्थ उपादान (शुद्ध स्वरूप अन्तर आत्मा) की ओर मोड़ देते, तो ये सुखी हो जाते।

धनदत्तसेठ के पुत्र इलाकुंवर ने एक नटी के रूप रंग पर लुभा कर अपने कुल और मातापिता को ठुकरा दिया था किन्तु एक श्रीमंत की हवेली में एक मुनि को आहार लेते देख उन्हें अपने शुद्ध स्वरूप-उपादान का लक्ष्य आते ही, उनका बेड़ा पार हो गया।

आत्मा के शुद्ध स्वभाव का ही नाम "उपादान" है। पर पदार्थ के अनुकूल संयोग को ज्ञानी "निमित्त" कहते हैं। "आतम भावना भावतां रे, जीव लहे केवल ज्ञान रे।"

थाणा के सम्राट वसुपाल कला के बड़े पारखी थे। सम्राट ने कहा, नटराज! अब तो तुम्हारा बुढ़ापा है। क्या अब भी तुम्हारा मन न भरा? वास्तव में तुम्हारा कला पर अच्छा अधिकार है। कहो क्या इच्छा है? नट—सरकार! पैसा बटोरते बटोरते तो मेरी कमर झुक गई। अब तो "मान का पान भला।"

सम्राट का संकेत पाते ही श्रीपालकुंवर पान का थाल ले, आगे बढ़े। नटराज उन्हें घूर घूर कर, ऊंचा नीचा हो देखने लगा। कुंवर—बाबा! इधर आओ। बाबा का नाम सुनते ही, नट ने दबे स्वर में कहा—अरे! बेटा तू यहां कहां भूला पड़ा? नट ने चिल्ला कर कहा। ओ...री बबुआ की मां!! तोर बबुआ तो जे रया। बुढ़िया कुंवर के गले लग कर, रोने लगी। नट परिवार के स्त्री-बच्चों ने कुंवर को चारों ओर से घेर कर ऐसा नाटक रचा कि मानों वह सचमुच उनका पुत्र ही हो।

नटराज ने सम्राट से कहा—अन्नदाता! यह मोड़ा हमने रूठ, घर से चुपचाप कहीं चल दिया था। आज इसे आपकी सभा में पाकर हमारा हृदय बांसो उछल रहा है। नारायण! नारायण!! भगवान, आपका भला करे। हमें बेटा नहीं आंख मिली। सरकार! हम जन्म भर आप के गुण न भूलेंगे।

राजा मन चिंते इस्युं रे, सुणी तेहनी वात्र रे चतुरनर, वात घणी
विरुई थई हो लाल। एह कुटुंब सवि एहनुं रे, दीसे परतक्ख,
साचरे चतुरनर, धिक मुज वंश विटालियों हो लाल ॥१०॥
निमितियो तेड़ावियो रे, मे तुज वचन विशास रे चतुरनर,
पुत्री दीधी एहने हो लाल। किम मातग कयो नहीं रे,
दीधो गले पाशरे, चतुरनर, निमित्तियुं बलतुं कहे हो लाल ॥११॥

मुज निमित्त झूठूं नहीं रे, सुणजो सांची वात रे चतुरनर,
ए बहु मातंग नो धणी हो लाल। राय अरथ समझे नहीं रे,
कोप्यो चिते घात रे चतुरनर, कुंवर निमित्तिया उपरे ह लाल ॥१२॥
ते बेउ जणने मारवा रे, राये कीध विचार रे चतुरनर,
सुभट घणां तिहां सज्ज किया हो लाल। मदनमंजरी ते सुणी रे,
आवी तिहां ते वार रे चतुरनर, रायने इणी परे विनवे हो लाल ॥१३॥
काज विचारी कीजिये रे, जिम नवि होय उपहास रे चतुरनर,
जग मां जश लहिये घणुं हो लाल। आचारे कुल जाणिये रे,
जाईये हिये विमास रे चतुरनर, दुर्बल कन्ना न होइये हो लाल ॥१४॥

## कान के दुर्बल न बनें :–

वसुपाल, बुढ़िया को रोती बिलखती देख, चुस्त हो गये। हाय! "उतावला सो बावला" मैंने मदन को दुखा दी। अरे! युवक की जात पात पूछते क्या देर लगती थी? केवल मुंह ही तो हिलाना था। जात गंगा मुझे क्या कहेगी? राजा की आंखों से अंगारे बरसने लगे।

वसुपाल—प्रधानजी! बम्मन कहां है? उसे इसी समय बुलाओ। पंडित—राजन! जय हो, "तप तेज वृद्धिः"। वसुपाल—राजन! वृद्धि या नाश? बगल में पत्रा (पंचांग) दबा हमें भ्रष्ट कर दिया। याद रखो! अब तुम्हारी कुशल नहीं। पंडित ने अपनी जनोई की दुहाई देते हुए कहा—राजन! "निःसंदेह, यह युवक मातंग नहीं, मातंग-पति है।"

वसुपाल—पांडे! बस चुप रहो। अधिक न बोलो। प्रधानजी! सेनापति से कहो, "इसी समय शीघ्र ही, बम्मन और नवयुवक को घोड़ों की टाप से उड़ा दिया जाय।" चारों ओर सन्नाटा छा गया। वसुपाल के सामने कोई बोल न सका।

एक विद्वान पंडित की दुर्दशा होती देख मदनमंजरी ने दौड़ कर अपने पिता से कहा—कृपया आप किसी के कहने में न लगें। जनता व्यर्थ ही अपना उपहास करेगी। मुझे प्राणनाथ के आचार, विचार और सहवास से पूर्ण विश्वास है, कि आप क्षत्रिय वंश के ही हैं।

कुंवर ने नरपति कहे रे, प्रगट कहो तुम वंश रे चतुनर,
जिण सांसो दूर टले हो लाल। कहे कुंवर किम उच्चरे रे,
उत्तम निज परशंस रे चतुरनर, कामे कुल ओलखावशुं हो लाल ॥१५॥
सैन्य तमारुं सज्ज करो रे, मुज कर दो तलवार रे चतुरनर,
तव मुज कुल प्रकट थशे हो लाल, माथुं मुडाव्या पछी रे,
पूछे नक्षत्र वार रे चतुरनर, ए उखाणो सांचव्यो हो लाल ॥१६॥
अथवा प्रवहण मां अछे रे, दाय परणी मुज नार रे चतुरनर,
तेडी पूछो तेहने हो लाल। तेह कहेशे सवि माहरो रे,
मूल थकी अधिकार रे चतुरनर, इणी परे कीजे पारखुं हो लाल ॥१७॥

परिचय तलवार देगी :–

वसुपाल ने सोचा, "बिना विचारे जो करे सो पाछे पछताय।" राजकुमारी का कहना ठीक ही है। केवल नटों के कहने से ही मैं यह कैसे मान लूं कि धवलधर अछूत है। वसुपाल—धवलधर! आप अपना कुछ परिचय देंगे? श्रीपालकुंवर ने तलवार खींचकर कहा—श्रीमानजी! अब आपकी नींद खुली? आप इसी समय अपनी सेना ले मैदान में आइयेगा, मेरा परिचय मुंह नहीं यह तलवार देगी। मुंड मुंडाकर नक्षत्र वार क्या पूछना? वसुपाल को मौन देख, कुंवर ने फिर कहा—श्रीमानजी! संभव है, यदि आपको अकारण रक्त-पात से कुछ संकोच हो, तो एक और उपाय है। सेठ के जहाजों में आई हुई मेरी दो स्त्रियाँ हैं, आप उन से मेरा परिचय पूछियेगा। अपने मुंह अपनी प्रशंसा कर "मियाँ मिट्ठु" बनना उचित नहीं।

तेहने तेडवा मोकल्या रे, राये निज परधान रे चतुरनर, ते जइने
तिहां विनवे हो लाल। तव मयणा मन हरखिया रे, पामी
आदर मान रे चतुरनर; सही कंते तेडाविया हो लाल ॥१८॥
बेसी रयण सुखासने रे, आव्यां राय हजूर रे चतुरनर,
भूपति मन हरखित थयुं हो लाल; नयणे नाह निहालतां रे,
प्रकट्यो प्रेम अंकूर रे चतुरनर, साचे झूठ नसाडियो हो लाल ॥१९॥

विद्याधर पुत्री कहे रे, सघलो तस विरतंत रे चतुरनर,
विद्याधर मुनिवर कह्यो हो लाल। पापी सेठे नाखिया रे,
सायर मां अम कंत रे चतुरनर, वखते आज अमे लह्यो हो लाल ॥२०॥
ते सुणतां जब ओलख्यो रे, तब हरख्यो मन राय रे चतुरनर,
पुत्र सगी भगिनी तणा लाल। अविचार्युं कीधुं हतुं रे,
आव्यो सवि ठाय रे चतुरनर; भोजन मांही घी ढल्युं हो लाल ॥२१॥

### झूठ की दौड़ कहां तक ?:—

वसुपाल – प्रधानजी ! आप इसी समय, सेठ के जहाजों का निरीक्षण करियेगा। यदि सचमुच थगीश्वर की दोनों स्त्रियां आई हों, तो आप उन्हें सादर यहां ले आवें 'सच'- झूठ का पता लग जायगा। झूठ की दौड़ कहां तक ?

बंदरगाह पर जहाजों के चारों ओर कड़ा पहरा लगा दिया गया। खोज करने पर ज्ञात हुआ कि दो सुन्दरियां अपने पति के वियोग में बावली हो रही हैं। प्रधान के मुंह से, श्रीपालकुंवर का नाम सुनते ही उनकी आंखें डब-डबा आईं, उन्होंने लज्जा से अपने नेत्र नीचे कर लिये। प्रधान मंत्री उन्हें रत्नजड़ित स्वर्ण की पालखी में बिठा, राजसी ठाठ से राजमहल में ले आये। मदनसेना और मदनमंजूषा दोनों स्त्रियों के चन्द्र-मुख पर सतीत्व का दिव्य तेज था, वे दूर से ही अपने प्राणनाथ के दर्शन कर गद्गद हो गईं। प्रेम की झांकी देख, सम्राट की आंखे खुल गईं। हाय ! मैं दिन दहाड़े ठगा गया। कहने वालों ने ठीक ही कहा है कि:—

सचाई छुप नहीं सकती, बनावटी ऊसूलों से।
खुशबू आ नहीं सकती, कागज के फूलों से ॥

दोनों स्त्रियों के मुंह से विद्याधर मुनि कथित परिचय और धवलसेठ द्वारा श्रीपाल को समुद्र में डुबा देने की एक करुण कथा, ज्ञात होते ही वसुपाल को अपनी भूल पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। हाय ! मेरे नयन अपने सगे भाणेज को भी पहिचान न सके। उनकी आंखों से टप....ट...प मोती टपक पड़े। राजसभा में प्रसन्नता की एक लहर दौड़ गई, वाहरे वाह ! ! हंस भी कहीं छिपा है ? नहीं। "घी ढुला भी, तो खिचड़ी में ही।"

नरपति पूछे डुंबने रे, कहो ए किस्यो विचार रे चतुरनर,
तव ते बोले कंपनो हो लाल। सेठे अमने विगोइया रे,
लोभे थया खुवार रे चतुरनर, कूडुं कपट अमे केलव्युं हो लाल ॥२२॥
तव राजा रसे चढ्या रे, बांधी अणाव्यो सेठ रे चतुरनर,
डुंब सहित हणवा धर्या हा लाल। तव कुंवर आड़ो वल्या रे,
छोडाव्यो ते सेठ रे चतुरनर, उत्तम नर एम जाणीये हो लाल ॥२३॥
निमित्तियो तव बोलियो रे, सांचु मुज निमित्त रे चतुरनर,
ए बहु मातंग ना धणा हो लाल। मातंग कहिये हाथिया रे,
तेहनो प्रभु वड़ चित्त रे चतुरनर, ए राजेसर-राजिया हो लाल ॥२४॥
निमित्तिया ने नृप दिये रे, दान अने बहुमान रे चतुरनर,
विद्यानिधि जग मां बड़ा हो लाल। कुंवर निज घर आविया रे,
करतां नवपद ध्यान रे चतुरनर, मयणा त्रणे एकठा मली हा लाल ॥२५॥

## बड़ी दुकान, फीके पकवान :—

वसुपाल ने बिगड़ कर कहा—प्रधानजी! इसी समय इन नटों को कारावास में बंद कर दें। बुढ़ा नट कांपने लगा। उसने राजा के पैरों में लोट, गिड़-गिड़ाते हुए कहा, "हजूर! मेरे मालिक, मैं बाल-बच्चेदार हूँ। बिना मौत मर जाऊंगा। क्षमा करें; मैंने तो जहाजवाले बनिये के कहने से ही इस धर्मीधर को झूठा कलंक दिया है। राजा की आँखे चढ़ गईं, उन्होंने उसी समय सेठ और नट परिवार को प्राणदण्ड की आज्ञा दे दी। चाण्डाल उन्हें धक्का मारते हुए, शूली की ओर ले चले। राजसभा में चारों ओर कानाफूंसी होने लगी। वाह रे! वाह, बड़ी दुकान फीके पकवान।

श्रीपालकुंवर से यह दृश्य देखा न गया। उन्होंने वसुपाल से कहा, मेरा आपके यहाँ संबंध होने का सारा श्रेय इन धवलसेठ को है। श्रीमान्‌जी! ठोकर लगने से ही तो मानव की आँखें खुलती हैं। संभव है, ये लोग आज नहीं कल ठिकाने आ जांय। मेरा आप से यही अनुरोध है कि आप इन सभी स्त्री-पुरुषों को एक बार अपना मानव भव सफल करने का अवसर प्रदान कर अभयदान दें। वसुपाल कुंवर का गुणानुराग, दयालु स्वभाव देख चकित हो गये। उन्हें अपने जमाई की बात को मान देना पड़ा।

वसुपाल को प्रसन्न मन देख पंडित ने कहा–राजन! मैंने उसी दिन कहा था कि आप (श्रीपाल) मातंग (नट) नहीं, राज राजेश्वर हैं। देखा! पत्रे (ज्योतिष) का चमत्कार। वसुपाल ने पंडित को बहुत धन दे निहाल कर दिया। श्रीपालकुंवर मदनसेना, मदनमंजूषा, और मदनमंजरी तीनों स्त्रियों के साथ राजमहल में जाकर श्री सिद्धचक्र की विशेष भक्ति करने लगे।

कुंवर पूरवना परे रे, पाले मननी प्रीतरे चतुरनर,
पासे राखे सेठने हो लाल। ते मनथी छंडे नहीं रे,
दुर्जननी कुल रीत रे चतुरनर, जे जेहवा ते तेहवा हो लाल ॥२६॥
बेहु हाथ भूंइ पडया रे, काज न एको सिद्ध रे चतुरनर,
सेठ इस्युं मन चिंतवे हो लाल। पा न शक्यो ढोला शकुं रे,
एहवा निश्चय काथरे चतुरनर, एहने निज हाथे हणुं हो लाल ॥२७॥
कुंवर पोढ्यो छे जिहां रे, सातमी भूइए आप रे चतुरनर,
लेई कटारी तिहां चढ्यो हो लाल। पग लपट्यो हेठे पड्यो रे,
आवा पहोतुं पाप रे चतुरनर, मरी नरके गयो सातमी हो लाल ॥२८॥
लोक प्रभाते तिहां मिल्या रे, बोले धिक धिक वाण रे चतुरनर,
स्वामी द्रोही ए थयो हो लाल। जेह कुंवर ने चिंतव्युं रे,
आप लह्युं निरवाण रे चतुरनर, उग्र पाप तुरतज फले हो लाल ॥२९॥

## पाप का प्रत्यक्ष फल :—

थाणा नगर में चारों ओर घर घर चर्चा होने लगी। राजकुमारी मदनमंजरी का पति मनुष्य नहीं देव है। धन्य है, उसने दुष्ट धवलसेठ को, बुराई का बदला भलाई से दे, सदा के लिये अपना नाम अमर कर दिया। आज भी उसके साथ श्रीपालकुंवर का वही अभेद, विशुद्ध व्यवहार है।

धवलसेठ कुंवर को टेढ़ी आंख से देख रह रह कर कहते, हाय! मेरे दोनों दाव खाली गये। नवजीवन मिला। फिर भी उनकी दुर्भावना न मिटी। वे खाना-पीना भूल गए, नयनों में नींद नहीं। पलंग पर पड़े-पड़े करवटें बदला करते। अन्त में उन्होंने निश्चय कर ही लिया, कि "खाना नहीं, ढोल देना" मैं कुंवर के प्राण ले कर ही रहूँगा। अब दूसरे के भरोसे काम न चलेगा।

एक दिन सेठ अंधियारी रात में एक तेज कटार ले, वे राजमहल (कुंवर) के द्वार पर गए। कुंवर सोए थे और द्वार अन्दर से बन्द था। वे हाथ मलते रह गये। "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः" उन्हें चैन कहाँ? वे कोट पर चढ़, खिड़की की राह, अन्दर जाने लगे, किन्तु उनका शरीर मोटा ताजा था, भय से पैर लड़खड़ाते ही वे ध...म से धरती पर लोटने लगे। सेठ को पाप का प्रत्यक्ष फल मिलते देर न लगी। कटार ने उनके प्राण ले लिये। वे मर कर सातवीं नरक में गए। कुंवर का जरा भी बाल बांका न हुआ। सूर्योदय होते ही राजमहल में चारों ओर सनसनी फैल गई सेठ के शव को देख कर सब लोग थू थू करने लगे।

मृत कारज तेहनां करे रे, कुंवर मन धरे सोग रे चतुरनर,
गुण तेहना संभार तो हो लाल। सोवन घणुं तपावियै रे,
अग्नितणे संयोग रे चतुरनर, तोही रंग न पालटे हो लाल ॥३०॥
माल पांच से वहाण नो रे, सवि संभाली लीध रे चतुरनर,
लखमीनुं लेखो नहीं हो लाल। मित्र त्रण जे सेठना रे,
ते अधिकारी कीध रे चतुरनर, गुणनिधि उत्तम पद लहे हो लाल ॥३१॥
इन्द्रतणां सुख भोगवे रे, तिहाँ कुंवर श्रीपाल रे चतुरनर,
मयणा त्रणे परिवर्यो हो लाल। त्रीजे खंडे इम कही रे,
विनये चोथी ढाल रे चतुरनर, सिद्धचक्र महिमा फल्यो हो लाल ॥३२॥

## सेठ चल बसे :-

धवलसेठ की दुर्दशा देख श्रीपालकुंवर का हृदय भर आया। हाय! सेठ चल बसे। धन्य है। इनके साथ मैंने अनेक देश-विदेश देखे, देव-दर्शन किये, कनक-कामिनियां पाई। आज मैं अंतिम समय इनको प्रभु के दो नाम भी न सुना सका। कुंवर की आंख से अश्रुधारा बहने लगी। उन्होंने बड़े दुःख से सेठका अग्नि संस्कार किया।

कुंवर चाहते तो धवलसेठ के जहाज और उनका विपुल धन सहज ही में पचा जाते, किन्तु उन्होंने बड़ी सचाई के साथ सेठ की पाई पाई, उनके तीनों सज्जन मित्रों के अधिकार में सौंप दी। वसुपाल और उनके कर्मचारी कुंवर की निर्लोभ वृत्ति, गुणानुराग देख मुग्ध हो गये। सच है, अग्निपरीक्षा में विरले ही खरे उतरते हैं।

आक्रोश भरी अपनी निंदा, या पर गुण महिमा सुन रीझे। है ज्ञानी वह जो निज महिमा, या पर निंदा सुन कर रीझे॥



श्रीमान् विनयविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के तीसरे खण्ड की चौथी ढाल संपूर्ण हुई। श्रीसिद्धचक्र की महिमा अपार है। श्रीपालकुंवर इसी के बल से, सेठ के हाथों से बच कर, अब वे इन्द्र के समान आनन्द से तीनों स्त्रियों के साथ थाणा नगर में रहते हैं।

## दोहा

एक दिन रयवाड़ी चढ्यो, रमवाने श्रीपाल।
साथ बहु त्यां उतर्यो, दीठी ऋद्धि विशाल॥१॥
सार्थवाह लई भेटणुं, आव्यो कुंवर पाय।
तव तेहने पूछे इस्युं, कुंवर करी सुपसाय॥२॥
कवण देश थी आवीया, किहां जावा तुम भाव।
सार्थवाह तव वीनवे, कर जोड़ी सद्भाव॥३॥
आव्या कांति नयर थी, कंबु दीव उद्देश्य।
कुंवर कहे कोईक कहो, अचरिज दीठ विशेष॥४॥
तेह कहे अचिरज सुणो, नयर एक अभिराम।
कोश इहांथी चारसो, कुंडलपुर तस नाम॥५॥
मकरकेतु राजा तिहां, कपूरतिलका कंत।
दोय पुत्र उपर हुई, सुता तास गुणवंत॥६॥
नामे ते गुणसुंदरी, रूपे रंभ समान।
जगमां जस उपम नहीं, चोसठ कला निधान॥७॥

## एक व्यापारी :—

एक दिन कुंवर बड़े ठाठ से नगर के बाहिर उद्यान में घूमने गए। वहां एक व्यापारी (सार्थवाह) ठहरा था, वह सदा एक देश से दूसरे देश में घूम फिर कर अपना धंधा करता था। उसने कुंवर को आते देख, आगे बढ़कर उनका स्वागत किया और उन्हें दूर देश से लाई हुई कई बहुमूल्य अनोखी वस्तुएं भेंट कीं। कुंवर, स-धन्यवाद व्यापारी का उपहार स्वीकार कर, उसे अपने साथ डेरे पर ले गये।

कुंवर—आप कहां से पधार रहे हैं? यहां कुछ दिन ठहरेंगे? व्यापारी—मैं इस समय कांतिपुर से आ रहा हूँ। मुझे आगे कम्बोज (कंबु द्वीप) जाना है। कुंवर—अपने प्रवास के कोई विशेष समाचार हों तो कहिये? व्यापारी—यहां से लगभग आठ सौ मील दूरी पर कुंडलपुर में महाराज मकरकेतु राज्य करते हैं। उनकी पट्टरानी का नाम कपूरतिलका है। उनके दो पुत्र, एक पुत्री हैं। पुत्री चौसठ कलाओं में बड़ी प्रवीण, रूप में रंभा के समान सुन्दर है, उनका नाम है गुणसुन्दरी।

राग रागिनी रूप स्वर, ताल तंत्र वितान।
वीणा तस ब्रह्मा सुणे, थिर करी आठे कान ॥ ८ ॥
शास्त्र सुभाषित काव्य रस, वीणा नाद विनोद।
चतुर मले जो चतुर ने, तो उपजे परमोद ॥ ९ ॥
ढहेरो गायतणे गले, लटके जेम कुकट्ठ।
मूरख सरसी गोठड़ी, पग पग हीयड़े हट्ट ॥ १० ॥
जा रूठो गुणवंत ने, तो देजे दुःख पोठी।
दव न देजे एक तु, साथ गमारा गोठी ॥ ११ ॥
रसिया सूं वासो नहीं, ते रसिया एक ताल।
झूरी ने झाखर हुए, जिम विछड़ी तरु डाल ॥ १२ ॥
उगती युवती जाणे नहीं, सूझे नहीं जस सोज।
इत उत जोई जंगलो, जाणे आव्यो रोज ॥ १३ ॥
रोज तणुं मन रीझवी, न सके कोई सुजाण।
नदी मांही निश दिन वसे, पलड़े नाहीं पाषाण ॥ १४ ॥
मर्म न जाणे मांहिलो, चित्त नहीं इक ठोर।
जिहां तिहां माथुं घालतो, फरे हरायुँ ढोर ॥ १५ ॥
वली चतुर शुं बोलतां, बोली इक दो वार।
ते सहेली संसार मां, अवर एकज अवतार ॥ १६ ॥

रसियाने रसिया मिले, केलवतां गुण गोठ।
हिये न माये रीझ रस, कहेणी नावे होठ॥१७॥
परख्या पाखे परणतां, मुंच्छ मिले भरतार।
जाय जमारो झूरतां, किश्युँ करे किरतार॥१८॥
तिण कारण ते कुंवरी, करे प्रतिज्ञा सार।
वीणा वादे जीतशे, जे मुज ते भरतार॥१९॥

## गुणसुन्दरी की प्रतिज्ञा :-

व्यापारी—गुणसुन्दरी को बचपन से वीणा की विशेष अभिरुचि है। वह ताल लय स्वरों को साधकर राग, रागिनी बजाने बैठती है, तब ब्रह्मा भी एक नहीं अपने पूरे आठों कान से उसकी वीणा सुनते हैं। सच है, साहित्य, कविता और संगीत कला के रसिक जानकार को ही उस कला का वास्तविक आनन्द आता है। मूर्खों के सामने गाना, बजाना, कला का अपमान है। गाय के गले में लटकता लक्कड़ सदा खटकता रहता है। गुणसुन्दरी प्रार्थना करती है, कि हे विधाता! मैं अपने अशुभ कर्मवश अनेक असह्य दुःख सहर्ष सह लूंगी; किन्तु तू मुझे एक क्षण भी किसी मूर्ख के पल्ले मत पटकना।

एक हाथ से ताली नहीं बजती, उसी प्रकार अकेला कलाकार बिना साज-बाज, सत्संग के कर ही क्या सकता है। वह वृक्ष की टूटी डाल के समान चुपचाप सूख कर कांटा बन जायगा। साहित्य और संगीत, कला से अनभिज्ञ मानव जंगली रोझ के समान हैं। रोझ नर शृंगार, करुण, हास्य, रौद्र, वीर आदि नवरस और ताल-लय, तीव्र कोमल शुद्ध स्वरों के मर्म को क्या समझे? मगसेलिया पत्थर नदी में सदा कोरा ही रहता है। पंडित लाख समझावे, फिर भी मूर्ख एक से दो नहीं होता। मूर्खों को क्या पता कि कला किस चिड़ियां का नाम है! वे व्यर्थ ही जंगली छूटे ढोर के समान इधर-उधर अपनी डेढ़ अक्कल बगार कर, स्वयं मानसिक शांति से हाथ धो, दूसरों को कष्ट देते हैं।

एक दिन गुणसुन्दरी ने कहा—"सखी! कलाकार वही है, जिसका एक बार साथ करने पर फिर सदा उसके लिये अपना हृदय छटपटाने लगे। तब तो उसका पाना सार्थक है। कलाकार, कलाकार को पाकर फूला नहीं समाता, वे दोनों आनन्दविभोर हो उठते हैं। समान-मिलन के अनूठे आनन्द का वर्णन शब्दों से नहीं, अनुभव से ही होता है। सखी! यदि कन्या, किसी को आंखे मूंद कर

अपना अनमोल जीवन-धन समर्पित कर देती है, तो जन्म भर उसका अनेक असह्य संकट पीछा नहीं छोड़ते हैं। पराये पल्ले पड़ कर, भगवान्! भगवान!! करना व्यर्थ है।"

व्यापारी ने कुंवर से कहा – गुणसुंदरी निश्चित ही वीन कला विजेता के चरणों में अपना जीवन-धन समर्पण कर देगी। यह उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा है।

## तीसरा खण्ड-पांचवी ढाल

(तर्ज–थारा मारा मोहलां उपर मेह झरूखे बीजली)

तेह प्रतिज्ञा वात नयरमां घर घरे हो लाल, नयरमां० ।
पसरी लोक अनेक बनावे परें परें हो लाल, बनावे० ॥
राजकुमार असंख्य ते शीखण सज्ज थया हो लाल, शीखण० ।
लई वीणा साज ते गुरु पासे गया हो लाल, ते गुरु० ॥१॥

त्रण ग्राम सुर सात के एकवीस मूर्छना हो लाल, के एक० ।
तान ओगणपचास घणी विध घोलना हो लाल, घणी० ॥
विद्याचारज एक सधावे शीखवे हो लाल, सधावे० ।
करे अभ्यास जुवान ते उज्जम नवनवे हो लाल, उजम० ॥२॥

शास्त्र संगत विचक्षण देश विदेशनां हो लाल, देश० ।
करे सभा मांहे वाद ते नाद विदेषनां हो लाल, ते नाद० ॥
मास मास प्रति होय तिहां गुण पारिखां हो लाल, तिहां० ।
सुणतां कुंअरी वीण सवे पशु सारिखां हो लाल, सवे० ॥३॥

चहुटा मांहि वीण बजावे वाणिया हो लाल, बजावे० ।
न करे कोई व्यापार ते हॉसी प्राणिया हो लाल, ते हॉसी० ॥
इणी परे वर्ण अढार घरो घर आंगणे हो लाल, घरो घर० ।
सघले मेडी माले वीणा रण रण-झणे हो लाल, के वीणा० ॥४॥

गायो चारे गोवाल ते वीण वजाड़तां हो लाल, ते वीण० ।
राजकुंवरी विवाह मनोरथ भावतां हो लाल, मनोरथ० ॥
सूनां मूकी क्षेत्र मिले बहु करसणी हो लाल, मिले० ।
सीखे वीण बजावण होंस हिये घणी हो लाल, होंस० ॥५॥
तेह नयर मांही एहवुं कौतुक थई रह्युं हो लाल, कौतुक० ।
दीठे बणे ते वात न जाये पण कह्युं हो लाल, न जाये० ॥
सुणी कुंवर ते वात हिये रीझयो घणुं हो लाल, हियरे० ।
सारथवाहने सार दीए वधामणुं हो लाल, दीये० ॥६॥

## पागल बन गई :—

कुण्डलपुर में एक संगीताचार्य अच्छे चोटी के विद्वान हैं। वे अपनी ढलती अवस्था देख, मन ही मन घुला करते थे। उनके मुंह से एक ठण्डी आह निकल कर रह जाती थी। "हाय! मेरी वीन कला की यहीं इति श्री, हो...जा...य...गी, किन्तु गुणसुन्दरी की अभेद-घोषणा ने वीणा-वादन की मृत कला में, फिर से प्राण डाल दिये। आज इस कला का बड़े वेग से विकास हो रहा है। दूर दूर के सैकड़ों राजकुमार, अनेकों युवक सुबह से शाम तक आचार्यश्री का द्वार खट-खटाते रहते हैं। उन्हें प्रवेश मिलना भी एक समस्या है। अधिक क्या कहूँ, कुण्डलपुर की जनता राजकुमारी को पाने के लिये पागल बन गई है। श्रीमंत 'निर्धन' किसान, चरवाहे, व्यापारी, बच्चे बूढ़े सभी कला की साधना में रत हैं। ब्राह्मण, वैश्य, शूद्रों के घर आंगन हाट हवेलियां, वीणा के स्वर से झंकृत हैं।

मासिक परीक्षा के समय संगीत के आरोह-अवरोह, शुद्ध, विकृत, तीव्र, मूर्छनाएं आदि भेद-प्रभेद के प्रश्नों में कई विद्यार्थी लथड़ जाते हैं, किन्तु फिर भी वे हताश न हो, वासनावश अपने दूने उत्साह से अध्ययन कर रहे हैं। हमें प्रवास करते सफेदी आ गई, किन्तु ऐसी अद्भुत बात न देखी, न सुनी।

श्रीपालकुंवर व्यापारी की बात सुन चकित हो गये। उन्होंने प्रसन्न हो उस व्यापारी को अच्छा पुरस्कार दे विदा दी।

आव्यो निज आवास कुंवर मन चिंतवे हो लाल, कुंवर० ।
नय रह्युं ते दूर तो किम जास्यां हवे हो लाल, तो किम० ॥
देत विधाता पांखतो माणस रुअडां हो लाल, तो माणस० ।
फरी फरी कौतुक जोत जुवे जिम सूअड़ां हो लाल, जुवे जिम० ॥७॥
सिद्धचक्र मुज एह मनोरथ पूरशे हो लाल, मनोरथ० ।
एहिज मुज आधार विघन सवि चूरशे हो लाल, विघन० ॥
थिर करी मन वच काय रह्या इक ध्यानसुँ हो लाल, रह्यो० ।
तन्मय तत्पर चित्त थयुँ तस ज्ञान सुं हो लाल, थयुं० ॥८॥
ततखिण साहम वासी देव ते आवियो हो लाल, देव ते० ।
विमलेसर मणिहार, मनोहर लवियो हो लाल, मनोहर० ॥
थई घणो सुप्रसन्न कुंवर कंठे ठवे हो लाल, कुंवर० ।
तेह तणो कर जोड़ी महिमा वरणावे हो लाल, महिमा० ॥९॥
जेहवुं वंछे रूप ते थाए ततखीणें हो लाल, ते थाए० ।
ततखिण वांछित ठाम जाये गयणांगणे हो लाल, जाये० ॥
आवे विण अभ्यास कला जे चित्तधरे हो लाल, कला० ।
विषना विषम विकार ते सघला संहरे हो लाल, ते सघला० ॥१०॥
सिद्धचक्र नो सेवक हुँ छुं देवता हो लाल, हुँ छुं० ।
केई उद्धरिया धीर में एहने सेवतां हो लाल, एहने० ॥
सिद्धचक्रनी भक्ति घणी मन धारजो हो लाल, घणी० ।
मुजने कोईक काम पड़े संभारजो हो लाल, पड़े० ॥११॥

आप जाना चाहते हैं :—

श्रीपालकुंवर बाग से सीधे राजमहल में आए, किन्तु वहां उनका मन न लगा। वे मन ही मन कहने लगे—विधाता मेरे पंख होते तो मैं भी तोता-मैना के समान दूर दूर के

अनेक कौतुक देखता। गुणसुन्दरी की घोषणा का दृश्य उनकी आँखों के सामने घूम रहा था। हा! कुण्डलपुर आठसो माइल से कम नहीं। जाना भी तो कैसे?

पश्चात् उसी समय उनके विचारों में एक नई स्फूर्ति जाग उठी। अरे! मैं व्यर्थ ही क्यों संकल्प-विकल्प करने लगा? कोई चिन्ता नहीं। सिद्धचक्र-व्रत में अनन्त शक्ति, अतुल बल है। इसी व्रत की आराधना से मैंने प्रत्यक्ष काल के गाल (समुद्र) से बच, नवजीवन पाया। मुझे पूर्ण श्रद्धा, दृढ़ विश्वास है, कि निश्चित ही मेरी मनोकामना सफल होगी! "आश करो अरिहंत की दूजी आश निराश"। श्रीपालकुंवर आयंबिल व्रत कर चुपचाप ध्यान में लीन हो गए।

एक दिन विमलेश्वर देव अपने अवधिज्ञान से कुंवर का दृढ़ संकल्प, आत्म-विश्वास और श्रीसिद्धचक्र व्रत की अटल श्रद्धा देख चकित हो गये। इस युवक को धन्य है! धन्य है!! परम तारक श्री अरिहंतादि नवपद (सिद्धचक्र) की आराधना, पुनित श्रद्धान ही तो जीवन की सफलता है।

विमलेश्वर देव को बिना बुलाए खिचकर श्रीपालकुंवर की सेवा में आना पड़ा। कुंवर तो श्रीसिद्धचक्र के ध्यान में लीन थे। देव ने उनको बड़ी नम्रता से अभिवादन (प्रणाम) कर कहा—श्रीमान्‌जी! क्या आप कुण्डलपुर जाना चाहते हैं? कुंवर की आँख खुली, वे मुस्कार कर रह गये।

देव ने उनके गले में एक दिव्य हार डालकर कहा—आप इस हार के प्रभाव से मन चाहा रूप और विष दूर कर सकेंगे। सहज ही कलाविद् बन, आकाश मार्ग से दूर दूर का प्रवास कर सकेंगे। कुंवर की खुशी का पार नहीं। कुंवर ने, देव को धन्यवाद दे, उनसे उनका परिचय पूछा। देव—मैं सौधर्म देवलोक का श्रीसिद्धचक्र आराधक देव हूं। मेरा नाम है विमलेश्वर। आज आपके दर्शन कर मेरे हर्ष का पार नहीं, मैं कृतकृत्य हुआ। खेद है कि मैं व्रत प्रत्याख्यान से वंचित हूं। मनुष्य पर्याय में आयंबिलादि तप के अभिमुख होना सोने में सुगंध है। नवपद (सिद्धचक्र) की आराधना कर अनेक जीवों ने परमपद पाया है। आप सिद्धचक्र को हृदय से न भुलाएं। फिर कुछ समय ठहर कर—अच्छा, समय पर मुझे अवश्य याद करना।

एम कहीने देव ते निज थानक गयो हो लाल, ते निज० ।
कुंवर पढ्यों सेज निचिंतो मन थयो हो लाल, निचिंतो० ॥
जाग्यो जिसे प्रभात तिसे मन चिंतवे हो लाल, तिसे० ।
कुण्डलपुर नयर मझार जई बेसुं हवे हो लाल, जई० ॥१२॥

नयण लघाड़ी जाम विलोके आगलें हो लाल, विलोके० ।
देखे उभो आप नयरनी भागलें हो लाल, नयरना० ।।
दीठो तिहां दरवाण ते वीण बजावतां हो लाल, ते वीण० ।
राजकुंवरीना रूप कला गुण गावतां हो लाल, कला० ।।१३।।
चित्त मांही चिंती रूप करे तिहां कूबड़ुं हो लाल, करे० ।
उभड़ शीश निलाड़ वदन जिश्युं तूंबड़ुं हो लाल, वदन० ।।
चूए चूंची आंख दांत सवि खोखला हो लाल, दांत० ।
वांका लांबा होट रहे ते माकला हो लाल, रहे० ।।१४।।
चिहु दिशि बेठुं नाक कान जिम ठीकरा हो लाल, कान० ।
पूंठ ऊँची अति खूंध हिये बहु टेकरा हो लाल, हिये० ।।
कोट केड़ उर पेट मिली गयां टूकड़ा हो लाल, मिली० ।
टूंकी साथल जंघ हाथ पग टूंकड़ा हो लाल, हाथ० ।।१५।।
ठक ठक ठवतो पाय नयर मांहि नीकल्यो हो लाल, नयर० ।
तेह निहाली लोक खलक जोवा मिल्यो हो लाल, खलक० ।।
जिहां शीखे छे वीण कला तिहां आवियो हो लाल, कला० ।
आव्या राजकुमार भली बोलावियो हो लाल, भली० ।।१६।।

## क्या यह कुण्डलपुर है ? :-

विमलेश्वर देव हार के अद्भुत गुण प्रगट कर अदृश्य हो गये। फिर कुंवर आनन्द से पलंग पर लेट गए। सवेरा होते उनकी आँख खुली—उन्हें कुण्डलपुर जाना था। अतः वे शीघ्र ही शौचादि से निपट कर श्रीसिद्धचक्र के ध्यान में बैठ गए।

नगर कोट के एक बड़े द्वार पर एक चौकीदार खड़ा, बीन बजा रहा था। बीन की झंकार सुन कुंवर के कान खड़े हो गये। वे इधर उधर देख चकित हो गये। मैं कहाँ हूँ ? कुंवर - चौकीदार ! क्या यह कुण्डलपुर है ? चौकीदार—जी हाँ। हर्ष से कुंवर का हृदय गद्गद हो गया। जय हो ! सिद्धचक्र महा मंत्र की जय हो ! ! उनका मन-मयूर नाचने लगा।

नगर प्रवेश करते समय कुंवर, एक "कुबड़राम" बन गये। उनका बेडोल सिर डरावना मुंह, लंबे दांत, बैठी नाक, चौड़े कान, खोखला पेट, सूके पैर, वामन देह, टेढ़ी कुबड़, लूले हाथ देख छोटे बच्चे डरने लगे। लड़के-लड़कियों को कुबड़राम, लू लू! कुबड़लां! लू लू!! कह कर उसे चिढ़ाने में बड़ा आनंद आता था। वे उसे कंकर मार मार कर अपने घरों में छिप जाते। ताली पीट पीट कर हंसने लगते। बेचारा कुबड़राम इधर-उधर देख चुपचाप आगे बढ़ जाता। वह धीरे धीरे एक के बाद एक मुहल्ले पार कर शिक्षण शिविर के पास जा पहुंचा। वहाँ उसे देखते ही कई राजकुमार अपनी-अपनी वीन रख-रख कर, उस कुबड़राम (श्रीपाल) को खिझाने लगे।

आवो आवो जुहार पधारो वामणा हो लाल, पधारो० ।
दीसा सुंदर रूप घणुं साहामणा हो लाल, घणुं० ॥
किहांथी पधार्या राज कहा कुण कारणे लाल, कहो० ।
केहने देशा माहत जई घर बारणे हो लाल, जई० ॥१७॥

कुब्ज कहे अमे दूर थकी आव्या अहीं हो लाल, थकी० ।
हांसुं करतां वात तुम्हें सांची कही हो लाल, तुम्हें० ॥
वीणा गुरुनी पास अमे पण साधशुं हो लाल, अमे० ।
करशे जो जगदीश तो तुमथी वाधशुं हो लाल, तो० ॥१८॥

विद्याचारज पास जई इम वीनवे हो लाल, जई० ।
वीणानो अभ्यास करावो मुज हवे हो लाल, करावो० ॥
खड़्ग अमूलिक एक कर्युं तस भेटणुं लाल, कर्युं० ।
तव हरख्या गुरु महान दिये तस अति घणुं हो लाल, दिये० ॥१९॥

वीणा एक अनूपम दीधो तस करे हो लाल, दीधी० ।
देखाड़े स्वर नाद ठेकाणां आदरे हो लाल, ठेकाणां० ॥
त्रट त्रट तूटे तांत गमा जाए खसी हो लाल, गमा० ।
ते देखी विपरीत सभा सघली हंसी हो लाल, सभा० ॥२०॥

## जोरों से हंस पड़े :—

दूसरे राजकुमार अ आगे बढ़कर "कुबड़राम" (कुंवर) से कहा नमस्ते! आप कहाँ से आ रहे हैं? कुबड़राम—मैं, आपको पता नहीं, स्वयं मेरे पैर साक्षी दे रहे हैं। मैं बड़ी दूर से चला आ रहा हूं। राजकुमार—आप यहाँ किनके अतिथि हैं? कुबड़राम—मैं वीन कला सीखने आया हूँ "राजा का जमाई बनूंगा"। राजकुमार खिल खिलाकर जोरों हंस पड़े। हां! हां! राजकुमारी आपकी प्रतीक्षा कर रहीं हैं। कुबड़राम की आँखें लाल हो गईं। उसने कहा—याद रखो! "गुरुकृपा दुर्लभ कछु नाहि" मैं एक दिन आप से अधिक अंक लेकर रहूंगा। कुबड़राम आगे चल पड़ा। वह पूछता, पूछता संगीतशाला में आया। उसने सविनय संगीताचार्यजी को प्रणाम कर, उसने बीनकला सीखने की प्रार्थना की। आचार्यश्री ने चश्मा उतारा, वे "कुबड़राम" का रूप-रंग देख बड़े विचार में पड़ गये। गुरुजी को चुप देख "कुबड़राम" ने उसी समय एक बहुमूल्य तलवार गुरुजी को भेंट कर दी। फिर तो उन्हें प्रवेश मिलते जरा भी देर न लगी। गुरुजी ने उसी समय "शर्त विहाय" सुशीली वीणा कुबड़े को दे, वे उसे बड़े प्रेम से वीणा के स्वर (सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा) मूर्छना आदि बताने लगे। यह देख अन्य छात्र ईर्षा की आग से जल भुन कर तवा हो गये। वे कुबड़राम को टेढ़ी आँख से घूरने लगे। यदि आचार्यश्री शाला में न होते तो आज कुबड़राम की कुबड़ ठीकठाक होते देर न लगती।

कुबड़राम कहां सीधे थे, वे भी शाला के छात्रों से होड़ लेने के लिये, वीणा के अंधा धुंध कान-मसकने लगे। बात की बात में बेचारी सुन्दर वीणा का कल्याण हो गया। शाला के सभी छात्र एक साथ ठहाका मारकर जोरों से हंस पड़े। वह यही तो चाहता था।

हवे परीक्षा हेत सभा महोटी मली हो लाल, सभा०।
चतुर संगीत विचक्षण बेठा मन रली हो लाल, बेठा० ॥
आवी राजकुमारी कला गुण सरसती हो लाल, कला०।
वीणा पुस्तक हाथ जे परतख सरसती हो लाल, जे पर० ॥ २१ ॥
दरवानें दरबार कुबज जब रोकयो हो लाल, कुबज०।
दीधुं भूषण रत्न पछे नवी टोकीयो हो लाल, पछे० ॥
आव्या कुंवरी पास इच्छा रूपी बड़ो हो लाल, इच्छा०।
कुंवरी देखे सरूप बीजा सवि कूबड़ो हो लाल, बीजा० ॥ २२ ॥

साचिते मुज एह प्रतिज्ञा पूरशे हो लाल, प्रतिज्ञा० ।
सफल जनम तो मानशुं दुर्जन झूरशे हो लाल, दुर्जन० ॥
जो एह थी नवि भांजशे मननुं आंतरुं हो लाल, मननुं० ।
करी प्रतिज्ञा वयर वसाव्युं तो खरुं हो लाल, वसाव्युं० ॥ २३ ॥
दाखे गुरु आदेशे निज वीणा कला हो लाल, निज० ।
जाम कुमार कुमार समा मद आकला हो लाल, समा० ॥
जाम कुमारी देखावे निज गुण चातुरी हो लाल, निज० ।
लोके भाख्यु अंतर ग्राम ने सुरपुरी हो लाल, ग्राम० ॥२४॥
कुंवरी कला आगे हुई कुंवर तणी कला हो लाल, कुंवर० ।
चंद्र कला रवि आगे ते छाशने बाकला हो लाल, ते छाश० ॥
लोक प्रशंसा सांभली वामन आवियो हो लाल, वामन० ।
कहे कुंण्डलपुर वासी भलो जन भावियो हो लाल, भलो० ॥ २५ ॥

## जनता चकित हो गई:—

मकरकेतु ने एक विराट संगीत सम्मेलन का आयोजन किया। आज उसमें कलाकारों के वार्षिक श्रमका अंतिम निर्णय है। परीक्षा-भवन का घंट बजते ही राजकुमारी गुण-सुन्दरी बड़ी सज-धज के, भगवती वीणापाणी शारदा के समान अपने हाथों में पुस्तक, वीणा लिये सभा मंडप में आई। उसके अनूठे रूप सौंदर्य ने छात्रों में गुदगुदी पैदा कर दी।

विद्वान् अध्यक्ष महोदय के आदेश से एक के बाद छात्र अपनी बीन पर अंगुलियां नचाने लगे; किन्तु उन्हें सफलता न मिली। पश्चात् राजकुमारी ने अपनी बीन संभाली, उसकी सप्रमाण मधुर लहरी सुन जनता चकित हो गई। अध्यक्ष महोदय ने स्पष्ट शब्दों में कहा, कि सभा भवन में उपस्थित कलाकार राजकुमारों और राजकुमारी की श्रेष्ठ कला में आकाश-पाताल सा अंतर है। जैसे कि इन्द्र की नगरी अलकापुरी के सामने एक उजड़ गांव, सूर्य-चन्द्र के समाने तारे, मिष्टान्न भोजन के बदले छाछ और बाकुले। चारों तालियों की गड़गड़ाहट के साथ धन्यवाद की झड़ी लग गई, गुणसुंदरी की प्रशंसा होने लगी।

उसी समय कुबड़राम (श्रीपाल) भी वहां आ पहुंचे, किन्तु द्वारपालने उसे अन्दर जाने न दिया। वह समझ गया, उसने एक स्वर्ण कंकण द्वारपाल के हाथ में रखा। फिर तो द्वारपाल ने शीघ्र ही उसे अन्दर ले जाकर अध्यक्ष महोदय से कहा—"आप श्रीमान् आपसे बीन कला का परिचय लेना चाहते हैं" कलाकारों ने कुबड़राम का रंग-रूप देख हंसते हुए कहा—भले पधारे!! राजकुमारी के भाग्य जागे। वह चुपचाप सब कुछ सुनता रहा। सच है, "भरा सो झलके नहीं, झलके सो आधूरा; घोड़ा सो भूंके नहीं, भूंके गधेरा!!"

कुबड़राम (श्रीपाल) ने अपने इष्ट बल से ऐसा जादू किया कि राजकुमारी गुणसुन्दरी को वह साक्षात् श्रीपाल ही दिखाई दे रहा था। कुंवरी उसके कामदेव से अनूठे रुप सौंदर्य को देख मुग्ध हो गई। वह मन ही मन प्रार्थना करने लगी, कि हे प्रभो! इस नवीन कलाकार को आप मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का बल प्रदान कीजिये। यदि यह कलाकार बीन कला में पिछड़ गया, तो फिर मैं घर रहूँगी, न घाट की।

कुंवरी संकीतेण वीणा दिये तसु करे हो लाल, वीणा० ।
कहे कुमार अशुद्ध छे ए वीणा धुरें हो लाल, ए वीणा० ॥
वीण सगर्भ ने दाधो दण्ड गले ग्रह्युं हो लाल, दण्ड० ।
तुंबड तेणे अशुद्ध पणुं में तस कह्युं हो लाल, पणुं० ॥२६॥
दाखी दोष समारी वीण ते आलवे हो लाल, वीण० ।
होई ग्रामनी मूर्छना किंपि न को चवे हो लाल, किंपि० ॥
सूता लोकनां लेइ मुकुट मुद्रामणी हो लाल, मुकुट० ।
वस्त्राभरण लेइ करी राशि ते अति घणी हो लाल, राशि० ॥२७॥
जाग्या लोक अछेरु देखा एहवुं हो लाल, देखी० ।
पूर्ण प्रतिज्ञा कुमारी चित्त हरखित थयुं हो लाल, चित्त० ॥
त्रिभुवनसार कुमार गले वरमालिका हो लाल, गले० ।
हवे ठवे निज माने धन्य ते बालिका हो लाल, धन्य० ॥२८॥
कंठे ठवे वरमाल तेहने कुंवरी हो लाल, तेहने० ।
वीण नाद विनोद ते राजी खरी हो लाल, ते रीझी० ॥

वामन वरियो जाणी नृपादिक दुःख धरे हो लाल, नृपादिक० ।
ताम कुमार स्वभावनुं रूप ते आदरे हो लाल, रूप० ॥२९॥
शशि रजनी हर गौरी हरि कमला जिश्यो हो लाल, हरि० ।
योग्य मेलावो जाणी सवि चित्त उल्लस्यो हो लाल, सवि० ॥
निज बेटी परणावी राजा भली परे हो लाल, राजा० ।
दिये हय गय धण कंचण पूरे तस घरें हो लाल, पूरे० ॥३०॥
पुण्य विशाल भुजाल तिहां लीला करे हो लाल, तिहां० ।
गुणसुंदरीनो साथ श्रीपाल ते सुख वरे हो लाल, श्रीपाल० ॥
त्रीजे खंडे ढाल रसाल ते पांचमी हो लाल, रसाल० ।
पूरीए अनुकूल सुजन मन संक्रमी हो लाल, सुजन० ॥
सिद्धचक्रगुण गातां चित्त न कुण तणो हो लाल, चित्त० ।
हरखे वरसे अमिय ते विनय सुजश घणो हो लाल, विनय० ॥३१॥

## नाच न आवे तो आंगन टेढ़ा :—

अध्यक्षजी के आदेश से राजकुमारी गुणसुन्दरी ने अपनी बहुमूल्य वीणा कुबड़राम को सौंप दी। फिर तो वह ठुमक ठुमक पैर रख कूदने लगा। बौना तो ठहरा, उसके हर्ष का पार नहीं, किन्तु वीणा के स्वरों पर अंगुलियां नचाते ही उसका सिर ठनका। उसने अध्यक्षजी से कहा —श्रीमान्जी ! यह वीणा अशुद्ध है। कुबड़राम (श्रीपालकुंवर) के टंकसाली शब्द सुन अध्यक्षजी चौंक पड़े। संगीतसभा में कानाफूंसी होने लगी। राजकुमारी के बजाने की बहुमूल्य वीणा भी कहीं अशुद्ध हुई है ? कदापि नहीं। "नाच न आवे तो आंगन टेढ़ा।" कुबड़राम बड़ा निडर था, उसने अध्यक्षजी को चुप देख, उन्हें फिर ललकारा। श्रीमान्जी ! आप प्रत्यक्ष देख लें। वीणा के कल पुरजे खुलते ही कुबड़राम की जनता पर धाक जम गई। सचमुच बीन का तुंबा और दण्ड दोनों सदोष थे। अध्यक्षजी भी मान गये, "बहुरत्ना वसुन्धरा"। उन्होंने उसी समय एक नई वीणा मंगवाकर कुबड़राम को दी। फिर तो उसने संगीत-सभा पर ऐसी मोहिनी डाली कि उसकी राग-रागिनी सुन कलाकार मंत्रमुग्ध हो, नींद लेने लगे। कुबड़राम भी कहां कम थे ! उसने शीघ्र ही बेसुध कलाकारों के पगड़ी, टोपी आभूषणादि उतार उतार कर एक ढेर लगा दिया। पश्चात् वीणा

की स्वरलहरी बदलते ही कलाकारों की आँख खुली, वे एक दूसरे की सूरत देख धरती खुरचने लगे। राजकुमारी गुणसुन्दरी, कुबड़राम का कला-चातुर्य देख हर्ष से फूली न समाई। उसने उसी समय कुबड़राम के गले में वरमाला डाल तो दी किन्तु इस अनमेल संबंध को देख गुणसुंदरी की माता-पिता आदि सब बड़ी दुविधा में पड़ गए। प्रण के आगे सत्ता कर ही क्या सकती है?

मकरकेतु ने कहा—कलाकार! अब हमें न कल्पाओ। आप मानव नहीं देव हैं। कुबड़-राम को तो अपना काम सिद्ध करना था। वह उसी समय प्रत्यक्ष श्रीपाल बन गया। जनता कामदेव से एक सुन्दर सुशील हृष्ट-पुष्ट नवयुवक को देख चकित हो गई। चारों ओर राजकुमारी के भाग्य की सराहना होने लगी। वाह रे, वाह! प्रबल पुण्योदय से शिव-पार्वती, विष्णु और लक्ष्मी के समान वर-वधू की यह युगल-जोड़ी ठीक मिली।

राजपरिवार में आनंद की एक लहर दौड़ गई। फिर तो मकरकेतु बड़े ही समारोह के साथ गुणसुन्दरी का विवाह श्रीपालकुंवर के साथ कर, उसे कन्यादान में हजारों हाथी घोड़े, रथ पालकियाँ बहुमूल्य वस्त्रालंकार आदि वस्तुएं प्रदान की। पश्चात् श्रीपालकुंवर गुणसुन्दरी के साथ आनंद से वहीं कुण्डलपुर में रहने लगे।

यह श्रीपालरास के तीसरे खण्ड की पांचवी ढाल संपूर्ण हुई। पूज्य कविवर उपाध्याय विनयविजयजी महाराज इस ढाल की २० गाथाएं लिख कर, देवलोक हो गये थे। अतः उसके बाद इस रास २१वीं गाथा से आगे की रचना उपाध्याय यशोविजयजी महाराज ने की है। उपाध्याय यशोविजयजी महाराज कहते हैं, कि श्रीसिद्धचक्र आराधक पाठक और श्रोतागण विनय-सुयश और अतिहर्ष को प्राप्त करें।

## दोहा

पुण्यवंत जिहां पग धरे, तिहां आवे सवि ऋद्धि।
तिहाँ अयोध्या राम जिहां, जिहां साहस तिहां सिद्धि ॥१॥
पुण्यवंत ने लक्ष्मीनो, इच्छा तणो विलंब।
कोकिल चाहे कंठरव, दिये लुंब भर अंब ॥२॥
पुण्यवंत परिणति होय भली, पुण्ये सुगुण गरिष्ठ।
पुण्ये अलि विघन टले, पुण्ये मिले ते इष्ट ॥३॥

सन्मान प्राप्त होता है :—कोयल के बोलते ही आम का पेड़ मोर-फूलों से लद जाता है। राम जहां भी जाते वहीं अयोध्या बस जाती, इसी प्रकार श्रीसिद्ध-चक्र आराधक स्त्री-पुरुषों को अनेक ऋद्धि-सिद्धियां मनचाही धन-दौलत सदा समय समय पर उनका स्वागत करती रहती हैं। चाहिए भजनबल और पुरुषार्थ। भजनबल से सहज ही अनेक विघ्नों का अन्त, सद्विचार, सद्गुण और मान-सम्मान प्राप्त होता है। पाठक! अवश्य ही जीवन में एक बार सविधि श्रीसिद्धचक्र की आराधना करें।

## तीसरा खण्ड-छट्ठी ढाल

( सुण सुगुण सनेही रे साहिबा )

एक दिन एक परदेशियो, कहे कुंवर ने अद्भुत ठाम रे।
सुणा जोयण त्रणसे उपरे, छे नयर कंचनपुर नाम रे॥
जुओ जुओ अचिरज अति भलुं॥ १॥
तिहाँ वज्रसेन छे राजियो, अरिकाल सबल करवाल रे।
तस कंचनमाला छे कामिनी, मालती माला सुकमाल रे॥ जु०॥२॥
तेहने सुत चारनी उपरे, त्रैलोक्यसुंदरी नाम रे।
पुत्री छे वेदनी उपरे, उपनिषद यथा-अभिराम रे॥ जु०॥ ३॥
रंभादिक जे रमणी करी, ते तो एह घडवा कर लेख रे।
विधिने रचना बीजी तणी, एहनो जय जस उल्लेख रे॥ जु०॥ ४॥
रोमाग्र निरखे तेहने, ब्रह्मा द्वय अनुभव होय रे।
स्मरण अद्वय पूरण दर्शने, तेहने तुल्य नहीं कोय रे॥ जु०॥ ५॥
नृपे तरुवर सरिखो देखवा, मंडप स्वयंवर कीध रे।
मूल मंडप थंभे पूतली, मणि कंचन मय सुप्रसिद्ध रे॥ जु०॥ ६॥
चिहुं पास विमाणा वली समी, मंचाति मंचनी श्रेणी रे।
गोरव कारण कर्ण राशि जे, झांपी जे गिरिवर तेणी रे॥ जु०॥ ७॥

तिहाँ प्रथम पक्ष आषाढ़नी, बीजो छे वरण मुहूर्त रे।
शुभ बीज ते काल छे, पुण्यवन्तने हेतु आयत्त रे ॥जु०॥८॥

त्रैलोक्यसुन्दरी का परिचयः— एक दिन किसी परदेशी युवक ने आ कर श्रीपाल-कुंवर से कहा—श्रीमानजी ! मैं कन्चनपुर से आ रहा हूं। कंचनपुर यहां से लगभग तीन सौ योजन (२४०० माईल) दूर है। वहां एक बड़े शूरवीर महान् योद्धा महाराज वज्रसेन राज्य करते हैं। उनकी पट्टरानी का नाम है कंचनमाला। राजमाता का शरीर मालती के फूल सा सुकोमल, बड़ा सुन्दर है। उनके चार पुत्र और एक पुत्री हैं। उसका नाम है त्रैलोक्यसुन्दरी। जैसे वेद शास्त्रों पर उपनिषद की रचनाएं सोने में सुगन्ध हैं, तो वज्रसेन के चार पुत्रों पर त्रैलोक्यसुन्दरी का जन्म भी एक अति महत्त्वपूर्ण अद्भुत घटना है। सचमुच त्रैलोक्यसुन्दरी का जैसा नाम है, वैसा ही उसका अनोखा रूपसौंदर्य भी है।

विधाता ने रंभा, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका आदि अप्सराओं का निर्माण कर केवल अपनी कला को परिमार्जित ही किया है, किन्तु त्रैलोक्यसुन्दरी के नख-शिख अवयवों का सर्जन तो सृष्टि का एक अन्तिम उपहार है। जिस प्रकार योगी जन आत्मानुभूति के अनुपम आनन्द में लीन हो जाते हैं, उसी प्रकार मानव, त्रैलोक्यसुन्दरी के अद्भुत रूपसौंदर्य नख-शिख को निरख-निरख कर एक अनूठे आनन्द का अनुभव करते हैं। उनकी दृष्टि में संसार की सुन्दरियाँ नहीं के समान ज्ञात होती हैं।

वज्रसेन ने अपनी लाड़िली बेटी के स्वयंवर के लिये एक अति सुन्दर विशाल सभामंडप की तैयारी की है। उस मंडप में स्थान-स्थान पर स्वर्ण की चल गुड़ियाएं बड़ी ही आकर्षक हैं। वहाँ अतिथिसत्कार के लिये सुन्दर रत्नजड़ित सिंहासन, गादी गलीचे सजाए गये हैं। प्रतिभोज के लिये संचित अन्नराशि पहाड़ सी भली मालूम होती है। बिना भाग्य के ऐसी अद्भुत सुन्दरी हाथ नहीं लगती। देखो क्या होता ? उस चन्द्रमुखी, कमलनयनी, सुन्दरी के कल अषाढ़ वद दूज के लग्न हैं।

एम निसुणी सोवन सांकलुं, कुंवरे तस दीधुं ताव रे।
घरे जई ते कुबजाकृति धरी, तिहां पहोंतो हार प्रभाव रे ॥जु०॥९॥
मंडपे पइसंतो वारियो, पोलियाने भूषण देई रे।
तिहां पहोंतो मणिमय पूतली, पासे बेइठो सुख सेई रे ॥जु०॥१०॥

खरदंता नाक ते नानडुं, होठ लांबा ऊँचा पीठ रे।
आँख पीली केश ते कावरा, रह्यो उभो मांडवा हेठ रे ॥जु०॥११॥
नृप पूछे केई सोभागिया, वली वागिया जागिया तेज रे।
कहो कुण कारण तुमे आविया, कहे जिण कारण तुम हेज रे ।जु०॥१२॥
तव ते नरपति खड़ खड़ हशे, जुओ जुओ ए रूप निधान रे।
एहने जे वरशे सुन्दरी, तेहनां काज सर्यां वल्यो वान रे ॥जु०॥१३॥

**चक्कर काट रहे थेः**—परदेशी युवक की बात सुन श्रीपालकुंवर चकित हो गये। उनके हृदय में बड़ी गुद-गुदी पैदा हो गई, "मैं अभी कंचनपुर पहुंचता हूं"। कुंवर ने प्रसन्न हो उसको एक बहुमूल्य स्वर्णकंकण दे विदा दी।

पश्चात् श्रीपालकुंवर दिव्यहार के प्रभाव से शीघ्र ही अपना एक विचित्र कुबड़ा रूप बनाकर कंचनपुर पहुंचे। वहाँ स्वयंवर मंडप के द्वार पर कई राजा-महाराजा, एक से बढ़कर सुन्दर नवयुवक राजकुमार चक्कर काट रहे थे। वे इस कुबड़े को देख खिल-खिला कर हंस पड़े। कोई उसको चिढ़ाता था, तो कोई दया कर कहता—"भाईयो! मरे को न मारो, "कर्मन की गत न्यारी"। कुबड़े को क्या, वह तो चुपके से चौकीदार को घूंस दे अन्दर चल दिया। वहाँ भी वह बेचारा बच न सका।

एक नवयुवक ने उसे स्वर्ण की गुड़िया के पास बैठा देख टोक ही दिया—श्रीमानजी! आपका रूप सौंदर्य तो बड़ा बांका है। कैसे पधारे? कुबड़े ने हलकी मुस्कराहट के साथ कहा, अजी! मैं भी अपने भाग्य परखने आया हूं। क्या आप लोगों ने त्रैलोक्यसुन्दरी को वरने का ठेका ले रखा है? कुबड़े के टकसाली शब्द सुन, नवयुवक कुछ उत्तर न दे सका। किन्तु राजकुमारों ने तो कह ही दिया, ठीक है, राजकुमारी अवश्य आपको ही पसंद करेगी, उसे आपके समान सुन्दर वर ढूंढने पर भी न मिलेगा।

इण अवसरे नरपति कुंवरी, वर अंबर शिबिकारूढ़ रे।
जाणिये चमकती बीजली, गिरि उपर जलधर गूढ़ रे ।।जु०॥१४॥
मुत्ताहल सारे शोभती, वरमाला कर मांहे लेई रे।
मूल मंडप आवी कुंवरने, सहसा सूची रूप पलोई रे ॥जु०॥१५॥

जे सहस स्वरूप विभाव मां, देखे ते अनुभव योग रे।
इण व्यति करें ते हरखित हुइ, कहे हुओ मुज इष्ट संयोग रे॥ जु०॥१६॥
तस दृष्टि सराग विलोकतो, विचें विचें निज वामन रूप रे।
दाखे ते कुमरा सुवल्लही, परि परि परखे करी चूंप रे॥जु०॥१७॥
सा चिंते नट नागर तणी, बाजी बाजी प्लुतें जेम रे।
मन राजी काजी शुं करे, आजीवित एहशुं प्रेम रे॥जु०॥१८॥
हवे वरणवे जे जे नृप प्रते, प्रतिहारी करी गुण पोष रे।
ते ते हिले ऊवरी दाखवी, वय रूपने देश नां दोष रे॥जु०॥१९॥
वरणवां जस मुख उजलुं, हेलंतां तेहनुं श्याम रे।
प्रतिहारी थाकी कुंवरने, सा निरखे रति अभिराम रे॥जु०॥२०॥
छे मधुर यशोचित शेलडी, दधि मधुर साकरने द्राख रे।
पण तेहनुं मन जिहां वेधियुं, ते मधुर न बीजा लाख रे॥जु०॥२१॥

**मन चल विचल:** – महाराज वज्रसेन मंडप में सिंहासन पर बैठे थे। एक दासी ने प्रवेश कर कहा—महाराज की जय हो! राजकुमारी त्रैलोक्यसुन्दरी आ रही है। वह पालकी में बैठी थी। उसके सिर पर छत्र था, छत्र के नीचे वह, किसी ऊंचे पहाड़ पर घन-घोर घटाओं के बीच चमकती बिजली के समान सुहावनी लगती थी। उसके गले में एक बहु-मूल्य मोतियों का सुन्दर हार जगमगा रहा था और कमल से सुन्दर सुकोमल हाथों में एक वरमाला थी। उसके आते ही स्वयंवर मंडप चमक उठा। उसके अनूठे रूप सौंदर्य को देख, जनता चकित हो गई।

वहां पास ही कुबड़ा (श्रीपाल) बैठा था। उसे देखते ही राजकुमारी का मन चल-विचल होने लगा। उसकी दृष्टि में वह कुबड़ा, कुबड़ा नहीं वास्तविक श्रीपालकुंवर था। वह उसे घूर-घूर कर तिरछी नजरों से देख कर रह जाती।

दूध, दही, शहद, मिश्री ईख और द्राक्षादि पदार्थ एक से एक बढ़कर रसीले और मधुर होते हैं, किन्तु उन पर प्रत्येक व्यक्ति की समान रुचि नहीं होती है। इसी प्रकार स्वयंवर मंडप में भी अनेक नवयुवक उपस्थित थे। दासी प्रत्येक राजकुमार के यशोगान और उनके वंश का परिचय दे देकर थक गई, किन्तु राजकुमारी का हृदय

तो उस कुबड़े के लिए छटपटा रहा था। अतः वह राजकुमारों की आलोचना-प्रत्यालोचना कर आगे बढ़ जाती। यह देख बेचारे नवयुवकों के गुलाब के फूल से मुखड़े मुर्झाने लगे।

इधर कुबड़ा भी कम नहीं, वह राजकुमारी के हृदय को टटोलना चाहता था। सच है:–"पानी पीओ छान कर, दिल देओ जान कर"। किसी बेसमझ मूर्ख से स्नेह करना बड़ा घातक है। उसने अब राजकुमारी को धीरे-धीरे अपना बनावटी कुबड़ा रूप दिखलाना आरंभ कर दिया। राजकुमारी सहसा अपने प्रिय स्नेही का विकृत रूप देख भय से चौंक पड़ी। उसका हृदय धड़कने लगा। ओह! यह क्या, पल में इतना परिवर्तन!! वह बड़ी उलझन में पड़ गई। उसी समय उसे विचार आया: "नारी, जीवन में अपना हृदय केवल एक ही बार समर्पण करती है।"

चन्द्र टरे सूरज टरे, टरे नगाधिराज ।
सन्नारी प्रतिज्ञा ना टरे, मिले पति रंक-राज ॥

यह राजकुमार लाख मेरी कसौटी करे मैं कदापि अपने विचार न बदलूंगी। जादूगर के हाथों की सफाई, भागते हुए घोड़े के पेट की गुड़-गुड़ाहट और पुरुष के हृदय की थाह कौन पा सकता है? "नंद के फंद गोविंद जाने।" राजकुमारी त्रैलोक्यसुन्दरी भी योगी के समान श्रीपालकुंवर के विकृत कुबड़े रूप के दर्शन कर वह अपने हृदय में घृणा के बदले एक अनूठे आनन्द का अनुभव कर रही थी।

इण अवसरे थंभनी पूतली, मुखें अवतरी हारनो देव रे।
कहे गुण ग्राहक जा चतुर छे तो, वामन वर ततखेव रे ॥जु०॥२२॥
ते सुणी वरियो ते कुंवरीए, दाखे निज अति ही करूप रे।
ते देखी निभर्त्स कुब्ज ने, तव रूठा राणा भूप रे ॥जु०॥२३॥
गुण अवगुण मुग्धा नवि लहे, वरे कुब्ज तजी वर भूप रे।
पण कन्या रत्न न कुब्ज नुं, उकरडे शो वर धूप रे ॥जु०॥२४॥
तज माल मराल अमे कहूँ, तू काग छे अति विकराल रे।
जा न तजे तो ए ताहरूं, गल नाल लूणे करवाल रे ॥जु०॥२५॥

हल चल मच गई:–विमलेश्वर देव ने एक खंभे पर लगी सोने की एक पुतली में प्रवेश कर राजकुमारी के कान में धीरे से कहाः–राजकुमारी! मानवता को परखना

ही तो बुद्धिमानी है। तू अवसर न चूक। यह कुबड़ा, कुबड़ा नहीं किन्तु श्रीसिद्धचक्र आराधक श्रेष्ठ नररत्न श्रीपालकुंवर है। तू निःसंदेह इस के गले में वरमाला डाल दे। अब तो त्रैलोक्यसुन्दरी का दूना उत्साह बढ़ गया। उसने उसी समय उस कुबड़े के गले में वरमाला डाल दी। यह दृश्य देख स्वयंवर मंडप में भारी हल-चल मच गई। सभी राजकुमार चिढ़कर कुबड़े को भली बुरी सुनाने लगे। रे कुबड़े कौए! भाग जा, चल यहाँ से, चलता बन। राजकुमारी एक अनजान बालिका है। क्या हम वीर राजपूतों के रहते, यह रत्न तेरे हाथ लग सकता है? कूड़े करकट के ढेर के सामने क्या सुगंधित धूप होती है? नहीं। हीरे का हार तो हंस के गले में ही शोभा देता है। अब तू शीघ्र ही इस वरमाला को फेंक कर अपना रास्ता नाप। राजकुमारों ने म्यान से अपनी चमकीली तलवारें खींच कर कहा, चल अब रसना को, "नहीं तो अब धड़ से तेरा सिर अलग होते देर न लगेगी।"

तव हसिय भणे वामन इस्युं, तुमे जो नवि वरिया एण रे।
तो दुर्भग रूसो मुझ किस्युं, रूसो न विधि शुं केण रे ॥जु०॥२६॥
पर-स्त्री अभिलाषनां पातकी, हवे मुज असिधारा तिथ्थ रे।
पामी तुझे शुद्ध थाओ सवे, देखो मुज कहेवा हथ्थ रे ॥जु०॥२७॥
एम कही कुब्जे विक्रम तिस्युं, दाख्युं जेणे नरपति नट्ठ रे।
चि चमक्या गगने देवता, तेणे संतति कुसुमनी वुट्ठ रे ॥जु०॥२८॥
हुओ वज्रसेन राजा खुशी, कहे बल परे दाखवो रूप रे।
तेणे दाख्युं रूप स्वभावनुं, परणावे पुत्री भूप रे ॥जु०॥२९॥
दियो आवास उत्तंग ते तिहां, विलसे सुख श्रीपाल रे।
निज तिलकसुन्दरी नारी सुं, जिम कमला सुं गोपाल रे ॥जु०॥३०॥
त्रीजे खंडे पूरण थई, ए छट्ठ ढाल रसाल रे।
जस गातां श्री सिद्धचक्रनो, होय घर घर मंगल माल रे ॥जु०॥३१॥

**मैदान में कूद पड़ा** :—राजकुमारों की घमण्डी बातें सुन, कुबड़ा खिल-खिला कर हंस पड़ा। उसने उन्हें ललकार कर कहा "कमजोर गुस्सा भारी"—बस चुप रहो। आपकी राजपूती का पता लग गया। यह स्वयंवर मंडप है। राजकुमारी ने अपनी इच्छा

ही से तो मुझे वरमाला भेंट की है इसमें चिढ़ने की बात ही क्या ? आप लाल पीली आँखें बताकर राजकुमारी को हथियाना चाहते हैं ? याद रखो ! "पर नार ताकना महान अपराध है" तुम्हें अपनी भूल का प्रायश्चित करना ही होगा। मुंह पर मूंछ है तो देर न करो संभल जाओ। जरा इस कुबड़े के भी तो दो हाथ देख लो, मजा आ जायगा। कुबड़ा म्यान से तलवार खींच कर मैदान में कूद पड़ा।

उसके फुरतीले हाथ देख, राजकुमारों के छक्के छूट गये। उन्हें क्षण में ही छठी का दूध याद आ गया। बेचारे सभी राजकुमार एक के बाद ऐक नौ दो ग्यारह हो गये। कुबड़े की निर्भयता देख, जयघोष से सारा आकाश गूंज उठा। देव-देवांगनाओं ने सुगंधित फूलों की वृष्टि की। अब महाराज वज्रसेन से रहा न गया। उन्होंने बीच बचाव कर कुबड़े से कहा, कृपया अब हमें अधिक न परखियेगा। कुबड़े ने मुस्करा कर शीघ्र ही अपना रूप बदल दिया। फिर तो श्रीपालकुंवर का अनूठा दिव्य रूप-सौंदर्य देख, राजमहल में आनंद की एक लहर दौड़ गई। चारों ओर नगाड़े, शहनाइयां बजने लगीं। वज्रसेन ने बड़े ही समारोह के साथ त्रैलोक्यसुन्दरी का विवाह कर उसे कन्यादान में विपुल संपत्ति, अनेक दासदासियां और एक अति सुन्दर कलापूर्ण भव्य राजमहल दिया। उस में वे भगवान विष्णु और लक्ष्मी के समान दोनों पति-पत्नी बड़े आनन्द से रहने लगे।

श्रीमान् उपाध्याय यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपालरास के तीसरे खण्ड की छट्ठी ढाल संपूर्ण हुई। श्रीसिद्धचक्र की आराधना से घर-घर में आनंद मंगल होता है।

## दोहा

विलसे धवल अपार सुख, सोभागी सिरदार।
पुण्य बले सवि संपजे, वंछित सुख निरधार ॥१॥
सामग्री कारज तणी, प्रापक कारण पंच।
इष्ट हेतु पुण्यज बड़ुं, मेले अवर प्रपंच ॥२॥
तिलकसुन्दरी श्रीपालनो, पुण्ये हुओ संबंध।
हवे शृंगारसुन्दरी तणो, कहीशुं लाभ प्रबंध ॥३॥

मानव को सुख सौभाग्य और मन चाहे पदार्थों की प्राप्ति होना पुण्योदय के आधीन है। भाग्यवान स्त्री-पुरुष पुण्योदय से ही तो अखण्ड सुख-सौभाग्य प्राप्त कर बड़े आनन्द से अपना जीवन बिताते हैं। श्री समवायांग सूत्र में सुख-सौभाग्य और मनोवांछित

पदार्थों की प्राप्ति में काल, स्वभाव, नियति, शुभाशुभ कर्म और पुरुषार्थ को प्रधान कारण माना है। वास्तव में पुण्योदय के बिना सब सूना है।

प्रिय पाठक और श्रोतागण! अब मैं (उपाध्याय यशोविजय) आपके समक्ष त्रैलोक्य-सुन्दरी के विवाह के बाद श्रीपाल और शृंगारसुन्दरी का वर्णन प्रस्तुत करता हूँ।

## तीसरा खण्ड-सातवीं ढाल

( साहिबा मोतीड़ो हमारो )

एक दिन राजसभाए आव्यो, चर कहे अचरिज मुझ मन भाव्यो।
साहिबा रंगीला हमारा, मोहना रंगीला।

दलपत्तननो छे महाराजा, धरापाल जस पख बिहु ताजा॥सा० मो०॥१॥
रानी चोरासी तस गुण खाणी, गुणमाला छे प्रथम वखाणी।
पांच बेटा उपर गुण पेटी, शृंगारसुन्दरी छे तस बेटी, सा० मो०॥२॥
पल्लव अधर हसित सित फूल, अंग चंग कुचफल बहु भूल।
जंगम ते छे मोहन वेली, चालती चाल जिसी गज गेली, सा० मो०॥३॥

**शृंगारसुन्दरी का परिचयः**—एक दिन किसी गुप्तचर ने राजसभा में आकर श्रीपालकुँवर से कहा, श्रीमान्‌जी! मैं आप से बड़ी अद्भुत बात अर्ज करता हूँ, कृपया आप उसे ध्यान से सुनें। दलपतनगर में महाराज धरापाल राज करते हैं। उनके मातृपक्ष और पितृपक्ष का परिवार बहुत बड़ा है। उनकी चौरासी रानियाँ है। उसमें राजमाता पट्टराणी गुणमाला बड़ी दयालु सेवा-भावी है। उनके पाँच पुत्र थे, किन्तु उन्हें अपने घर में एक कन्या का अभाव बहुत ही खटकता था। पश्चात् वर्षों के बाद पुण्योदय से उनकी आश फली और उनके घर एक बालिका का जन्म हुआ। उसका नाम है, शृंगारसुन्दरी।

श्रीमान्‌जी! नवयुवती शृंगारसुन्दरी का जैसा नाम है। वैसी ही उसकी वेश-भूषा अनूठा रूप-सौंदर्य और चमकीली आँखे हैं। उसके मालती के फूल से उज्जवल दाँत वृक्ष के नवविकसित पत्तों से लाल होठ बड़े आकर्षक हैं। जैसे मंद-मंद पवन से, पुष्पलता हिलती है, वैसी ही शृंगारसुन्दरी की मस्त-हस्तिनी सी चाल पुरुषों के हृदय में बड़ी गुद-गुदी पैदा कर देती है।

पंडिता विचक्षणा प्रगुणा नामे, निपुणा दक्षा सम परिणामे ।
तेहनी पांच सखी छे प्यारी, सहुनी मति जिन धर्मे सारी॥ सा० मो० ॥४॥
ते आगल कहे कुंवरी साचुं, आपणनुं म होजो मन काचुं ।
सुख कारण जिन मतनी जाण, वर वरवो बीजो अप्रमाण। सा० मो० ॥५॥
जाण अजाण तणो जे जोग, केल कंथेरनो ते संयोग ।
व्याधि मृत्यु दारिद्र वनवास, अधिको कुमित्र तणो सहवास॥ सा० मो० ॥६॥
हेम मुद्राए अकीक न छाजे, श्यो जल धर जे फोकट गाजे ।
वर वरवो परखीने आप, जिम न होय कर्म कुजोड़ालाप॥ सा० मो० ॥७॥
कहे पंडिता परनुं चित्त, भाव लखीजे सुणीय कवित्त ।
सीधें पाक सुभट आकारे, जिम जाणी जे शुद्ध प्रकारे॥ सा० मो० ॥८॥
करिय समस्या पद तुमे दाखो, जे पूरे ते चित्त मांहि राखो ।
इम निसुणी कहे कुंवरी तेह, वरूं समस्या पूरे जेह॥ सा० मो० ।९॥
तेह प्रसिद्धि सुणीने मलिया, बहु पंडित नर बुद्धे बलिया ।
पण मतिवेग तिहां नवि चाले, वायुवेगे नवि डुंगर हाले॥ सा० मो० ॥१०॥
पंच सखी युत ते नृप बेटी, चित्त परखे करी समस्या मोटी ।
सुणिय कहे जन केम पूरीजे, पर मन द्रह किम थाह लहीजे। स० मो० ॥११॥

गुप्तचर—श्रीमान्‌जी ! श्रृंगारसुन्दरी की पांच सखियां हैं। उनके नाम हैं, पंडिता, विचक्षणा, प्रगुणा, निपुणा और दक्षा। राजकुमारी बड़े प्रेम से उनके साथ नित्य ही सत्संग शास्त्र स्वाध्याय करती है। वे षट् द्रव्य[1], नवतत्त्व[2] आध्यात्मिक ग्रंथ और भेद-विज्ञान[3] का मनन चिंतन करते समय आनन्दविभोर हो उठती हैं।

एक बार श्रृंगारसुन्दरी ने अपनी सखियों से कहा—प्रिय बहनों ! हमें भवोभव में श्री वीतराग धर्म और जैन की शरण हो अपन बचपन से साथ-साथ खेली कूदी, साथ-साथ

---

(१) धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल।
(२) जीव, अजीव, पाप, पुण्य, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष।
(३) शरीर और आत्मा एक दूसरे से भिन्न है।

ही शास्त्र स्वाध्याय किया। अब हमें निकट भविष्य में ही पराये घर जाना अनिवार्य है। अतः, अब हमें बहुत सोच समझ कर अपना पांव बढ़ाना चाहिये। किसी जनजान, अनुदार, अभिमानी, अशिक्षित, अस्वस्थ नवयुवक का साथ, कांटे और केले के वृक्ष के पड़ौस सा सदा खटकता रहता है। दरिद्रता वनवास, मृत्यु, प्राणान्त क्षयरोग आदि कष्ट तो चार दिन में ही थक कर यहीं रह जाते हैं, किन्तु श्री जैन दर्शन और वीतराग धर्म से विमुख असंयमी पुद्गलानन्दी भर्तार का साथ तो निश्चित ही दारूण दुःखदायक और अनंत संसारवर्धक है।

सोने की अंगूठी में रत्न ही शोभा देता है। वहाँ एक काच के टुकड़े का कोई मूल्य नहीं। दुर्लभ मानवभव त्याग, तप, विनय, शील, समभाव से सम्यग्दर्शन की आराधना के लिये है। स्व-पर का निश्चय और कषाय का मंद होना ही तो मानवभव की सफलता है वह जीवन, जीवन नहीं, जिसमें केवल भोग, उदर-पोषण और स्वार्थ-साधना की दुर्गंध हो। उस घनघोर घटा से लाभ ही क्या जो कि सिर्फ गर्ज-गर्ज कर ही अपना रास्ता नापे।

बहिनो! मेरा तो यही सिद्धान्त है कि अपना जीवन-धन उसी के हाथ सौंपना जो कि जैन दर्शन का विशेषज्ञ, विनम्र, विवेकी विनीत और विचक्षण हो। स्वस्थ, समभावी, सत्साहित्य सर्जक, संगीत विशारद सु-देव' गुरु, धर्म उपासक किसी सुशील उदारहृदय नवयुवक के चरणों में जीवन समर्पण करने से प्रायः भविष्य में कलह कषाय की संभावना नहीं रहती है।

पंडिते—बहिनजी! आज तो आपने सच-मुच ही हमारे मन की बात कह दी। हम भी तो यही चाहतीं थीं, कि भात के कण के समान ही मानव को परख कर उससे विवाह करें। राजकुमारी शृंगारसुन्दरी पंडिता के गाल पर चुटकी लेकर हंस पड़ी। पंडिता! तू तो बड़ी चंट है। विचक्षणा, प्रगुणा, निपुणा और दक्षा ने भी पंडिता को खूब छकाया। राजकुरी—हाँ पंडिते। कण का क्या अर्थ है? पंडिते—बाईजी! हम किसी कविता के एक पद में अपनी समस्या (विचार) रखें। जो भी व्यक्ति उस कविता की शेष तीन पंक्ति और बनाकर जब हमें पूरी कविता सुनावेगा, तब हम उसी समय चटसे भांप जावेंगे कि यह मानव हमारा स्वधर्मी वीतराग धर्मउपासक है, या अन्य मतावलम्बी है।

राजकुमारी शृंगारसुन्दरी ने पंडिता की पीठ ठोककर कहा—सखी! आपकी यह युक्ति मुझे बड़ी पसन्द है। पंडिते! अब मैं निश्चित उसको ही वरूंगी जो कि सही ढंग से मेरी समस्या की पादपूर्ति करेगा। आज से मेरी यह अटल प्रतिज्ञा है। उसी समय पांचों सखियों ने भी खड़े होकर एकस्वर से कहा—बाईजी! हम भी तो आपके साथ हैं! साथ हैं!!

गुप्तचर—कुंवरजी! राजकुमारी और उसकी पांचों सखियों की अटल प्रतिज्ञा के समाचार बड़े वेग से चारों ओर फैल गए। घर घर में यही एक चर्चा है। कोई उनकी

प्रशंसा करते हैं, तो कोई उन्हें "देखो! ये तो बड़ी नखराली है" उलाहना देकर रह जाते हैं। दलपत नगर में बड़ी हल-चल मच गई। राजकुमारी के अद्भुत रूप सौंदर्य से आकर्षित हो वहां दूर-दूर के हजारों नवयुवक-विद्वान कलाकार चक्कर काट रहे हैं, किन्तु अब तक एक भी कोई ऐसा नवयुवक न दिखा, जो कि राजकुमारी की समस्यापूर्ति का सुयश प्राप्त कर सके। सच है, पराए मन की थाह पाना बच्चों का खेल नहीं है।

सुणिय कुमार चमक्यो आवे, घर कहे हो मुझ हार प्रभावे।
दलपत नगर जिहां नृप कन्या, तिहां पहोंतो सखी युत जिहां धन्या॥सा॥मो॥१२
देखी कुंवर अमर सम तेह, चित चमकी कहे जो मुझ एही।
पूरे समस्या तो हूं धन्य, पूरी प्रतिज्ञा होय कय पुण्य ॥सा. मो. ॥१३॥
पूछे कुंवर समस्या कोण, कुंवरी संकेत राखी गौण।
शीषे कुंवर दिये कर पूरे, पुत्तल तेह रहे न अधूरे ॥ सा. मो. ॥१४॥

समस्या पूर्ति :-श्रीपालकुंवर शृंगारसुन्दरी का परिचय सुन चकित हो गये। वे गुप्तचर को विदा दे अपने दिव्य हार के प्रभाव से सीधे दलपतनगर पहुंचे। वहाँ नगर के बाहर एक विशाल मंडप में दूर दूर के धुरंधर शास्त्री पंडितों का बड़ा जमघट मच रहा था। मार्ग में लौटते हुए मनुष्यों की सूरतें स्पष्ट बोल रहीं थीं, कि ये बेचारे समस्या पूर्ति में सफल न हो सके हैं।

इधर श्रीपालकुंवर बड़े उत्साह से आगे बढ़ते चले जा रहे थे। कुंवर के मंडप में पैर रखते ही मंदिरों में शंखध्वनि और आरती के मंगल घंट बजने लगे। घोड़े बार-बार हिन-हिना कर कह रहे थे,, कि अब राजकुमारी और उसकी सखियों की मनो-कामना फलने में जरा भी विलंब नहीं है। कुंवर चुप-चाप समस्यापूरक लोगों की पंक्ति में खड़े थे। वहाँ उन्हें कौन जानता था कि आप चंपानगरी के राजकुमार हैं, किन्तु भाग्य भी तो कोई एक वस्तु है, वह "आग में बाग" लगा देती है। राजकुमारी शृंगारसुन्दरी तो इनको देखते ही मंत्र-मुग्ध हो गई। उसके अंग प्रत्यंग फड़कने लगे। वह मन ही मन अपने इष्टदेव से प्रार्थना करने लगी, कि हे प्रभो! दयामय! यदि मेरे पाप में किसी पुण्य का छींटा हो, तो आप हमारी समस्यापूर्ति का सुयश इसी (श्रीपाल) नवयुवक को प्रदान कर मुझे अनुगृहीत करें। भगवन्! मैं कहीं शब्दों के मोह में लुट न जाऊं। शब्द-ज्ञान और प्रबल पुण्याई का आकर्षण दोनों भिन्न वस्तु हैं।

श्रीपालकुंवर अपने आगे खड़े हुए पंडितों की बोलचाल समस्यापूर्ति का रंग ढंग देखकर उसी समय भांप गये कि अब यहाँ "सीधी अंगुली से घी नहीं निकलेगा" देखो! क्या होता है। पंडिता ने कुंवर का क्रम आते ही उनके सामने अपनी समस्या रखी। श्रीपालकुंवर समस्या सुनते ही खिल-खिलाकर हंस पड़े। यह दृश्य देख राजकुमारी श्रृंगार-सुन्दरी की सखी कुछ सिटपिटा गई। उसके हृदय में शंका का भूत सवार हो गया। कहीं समस्या का पद बोलने में तो कुछ गड़बड़ी नहीं हुई! अरे! अब तक तो हमारी समस्याएं सुन-सुन कर लोगों के पैरों तले धरती खिसकने लगती थी, यदि किसी ने कुछ समस्या पूर्ति करने का साहस भी किया तो वह रोती सूरत केवल शब्दों का जाल बिछाकर थक जाता था। कुंवर ने हलकी मुस्कान के साथ कहा—पंडिते! एक साधारणसी समस्याओं की पूर्ति के लिये आपको इतना कष्ट उठाना पड़ा? पंडिता—श्रीमान्‌जी! समस्या के एक छोटे से पद में दूसरे के मन के भावों का शब्द-चित्र खींच देना बच्चों का खेल नहीं है। श्रीपालकुंवर—पंडिते! आपके मनोभाव तो यहाँ आपके सभामंडप के स्तंभ में लगा लकड़ी का पुतला ही प्रकट कर सकता है। पंडिताकी जबान बंद हो गई। वह आगे कुछ बोल न सकी। पंडिते! यदि आपको विश्वास न हो तो प्रत्यक्ष चमत्कार देख लो।

पंडिता की समस्याः—"मन वांछित फल होई"

(पुतले ने कहा) अरिहंताइ सु-नवह पय, नियमन धरे जु कोई।
निच्छय तसु नर-सेहरह, मन वांछित फल होई ।।१।।

श्रीपालकुंवर ने अपने इष्टदेव श्री सिद्धचक्र का स्मरण कर एक लकड़ी के पुतले के सिर पर हाथ रखा, तो पुतला सच-मुच ही बोलने लगा। उसने स्पष्ट कहा, कि पंडिते! जो मानव अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप इन नवपदों का हृदय से ध्यान करते हैं, उनकी मनोकामनाएं निश्चित ही सफल होती हैं।

विचक्षणा की समस्याः—"अवर म झंखो आल"

(पुतले ने कहा) अरिहंत देव सु-साधु गुरु, धम्म ज दया विशाल।
जपहु मंत्र नवकार तुम, अवर म झंखो आल ।।२।।

रे मानव! तू व्यर्थ ही इधर उधर न भटक कर श्री महामंत्र नवकार की आराधना कर। नवकार मंत्र का आदि अक्षर "अ" के बोलने से सात सागरोपम; नवकार मंत्र का

बोलने से पचास सागरोपम और संपूर्ण नवकार मंत्र केवल" एक ही बार बोलने से पांच सौ सागरोपम के पाप नष्ट होते हैं। इस मंत्र को श्रद्धा से एक लाख जप करने से अरिहंतपद की प्राप्ति होती है। सु-देव, गुरु और अहिंसा परमो धर्म की साधना ही तो जीवन है।

प्रगुणा की समस्या :-" कर सफलो अप्पाण "

(पुतले ने कहा) आराहिज्ज जेव गुरु, दिहु सुपत्तहिं दाण।
तप संयम उवयार करि, कर सफलो अप्पाण ॥३॥

रे मानव! तू अनादि काल से संसार के सामने हाथ पसारता आ रहा है, फिर भी तेरा भिख-मंगापन दूर न हुआ। "पर की आशा सदा निराशा" दरिद्रता से छुटकारा पाने का एक ही अचूक उपाय है, सु-देव, गुरु धर्म की आराधना, सु-पात्र दान, विशुद्ध संयम पालन और परोपकार करना। यह आत्म-कल्याण का राजमार्ग है।

निपुणा की समस्या :-" जिसो लिह्यो निलाड़ "

(पुतले ने कहा) रे मन अप्पा खंचि करि, चिंता जाल म पाड़।
फल तित्तो हिज पामिये, जित्तो लिह्यो निलाड़ ॥४॥

रे मानव! चिंता एक ठंडी आग है। इस आग ने अनेक गुलाब के फूल सी सुन्दर सूरतों को सुखा कर अस्थि-पंजर बना डाला। इस आगने असमय में हजारों नवयुवकों के यौवन को नष्ट कर उन के गले दम, खांसी, क्षय, जीर्णज्वर, हृदयरोग मढ़ कर उन्हें यमलोक पहुंचा दिया, फिर भी इस आग की लपटें शांत न हुईं। तू अपने आप को इस आग में न झोंक, अपने मन के संकल्प-विकल्पों का त्याग कर आत्मचिंतन कर। क्यों कि जो तेरे भाग्य में लिखा है, उससे अधिक मिलना तो संभव नहीं। हाँ! तू पुरुषार्थ का त्याग न कर। भजन-बल से एक दिन तेरा भाग्योदय होते देर न लगेगी।

दक्षा की समस्या :-" तसु तिहुअण जण दास "

(पुतले ने कहा) अत्थि भवंतर संचिओ, पुण्ण समग्गल जास।
तसु बल तसु मइ, तसु सिरि तसु तिहुअण जण दास ॥५॥

आज सत्ता और संपत्ति के मोह में भाई बहिन का, पिता पुत्र का, पति पत्नी का, नौकर अपने मालिक का, राजा प्रजा का गला घोंटने में जरा भी संकोच नहीं करता है। सत्ता के मोह में लाखों निरपराध प्राणियों को मौत के घाट उतार दिया गया, फिर भी मानव से सत्ता और संपत्ति कोसों दूर है। लड़-झगड़ कर और शोषणवृत्ति से सत्ता और संपत्ति की प्राप्ति की आशा करना बालु रेती से तैल निकलना है। सत्ता और संपत्ति पुण्योदय के आधीन है।

वास्तव में मनुष्य ने अगले जन्म में जैसा दान-पुण्य, सेवा भक्ति और परमार्थ किया है, उनको वैसा ही बल, बुद्धि, सुख सौभाग्य, सत्ता और संपत्ति की प्राप्ति होती है। स्वर्ग मर्त्य और पाताल में जहां भी देखो वहाँ पुण्यवान को देखते ही जनता का सिर श्रद्धा से झुक जाता है।

राजकुमारी श्रृंगारसुन्दरी अपनी पांचों सखियों की समस्या-पूर्ति सुन चकित और मोहित हो गई।

श्रृंगारसुन्दरी की समस्या :–" रवि पहेला उतगं "

( पुतले ने कहा ) जीवंता जग जस नहीं, जस विन कई जीवंत।
से जस लई आथम्या, रवि पहेलां उगंत ॥६॥

रे मानव! जीना भी एक कला है। कूड़-कपट, जन-शोषण और उदरपोषण करके जीना जीवन-जीवन नहीं। ऐसे तो कौआ भी मनुष्य की आंख बचा, पूड़ी जलेबी उड़ाकर आनंद से खा-खाकर जीवन भर...क्रा...क्र...रा करता रहता है। क्या आपको ऐसा जीवन पसंद है?

**जीवन इसे कहते हैं** :–सम्राट् कुमारपाल ने असहाय श्रावक-श्राविकाओं के लिये प्रतिदिन एक हजार स्वर्ण मोहरें और श्रीसंघ की समुन्नति के लिये प्रति वर्ष एक क्रोड़ सोना मोहरें दान करते थे, ऐसे उन्होंने लगातार चौदह वर्ष में चौदह क्रोड़ स्वर्ण मोहरें दान कीं। राजा कुमारपाल ने लहियों से जैनागम की छे लाख, छत्तीस हजार प्रतियां लिखवाईं, उनमें प्रत्येक आगम की स्वर्णाक्षरों से सात-सात प्रति लिखवाईं थीं। सिद्ध-हेम व्याकरण की २१ प्रतियां लिखवाकर उन्हें नूतन २१ ज्ञान भंडार बनाकर जैनागमों के साथ स्थापित कीं।

कुमारपाल ने अपने जीवन में १४४४ नूतन जिन-मन्दि बनवाए, १६०० जिन मन्दिरों के जीर्णोद्धार करवाए और उसने अपने पिता की स्मृति में छन्नु क्रोड़ स्वर्ण मुहर की लागत का त्रिभुवन विहार नाम का एक विशाल मन्दिर बनाकर उसमें एक सौ पच्चीस अंगुल ऊँची अरिष्टरत्न से निर्मित श्री नेमिनाथ भगवान की सुन्दर प्रतिमा

१. यह घटनाएं मुनिसुव्रत स्वामी के बाद की हैं।

विराजमान की। उन्होंने श्री शत्रुंजय गिरनार आदि तीर्थों की सात बड़ी यात्राएं कीं। उसमें उनके साथ १८७४ रत्नजड़ित स्वर्ण के जिन-मन्दिर ७२ राणा, १८ हजार क्रोड़-पति साहूकार और अनेक श्रावक-श्राविकाएं थीं। धन्य है सम्राट् कुमारपाल को। इसे ही तो जीवन कहते हैं।

**वस्तुपाल, तेजपाल ने** :-(१) आबू तीर्थ (माउन्ट-आबू) पर अति सुन्दर अद्वितीय[1] मन्दिर बनवाए उसमें १२ क्रोड़ ५३ लाख रुपये लगाए। वस्तुपाल को शिल्प कला से इतना अनुराग था कि वे कला के विकास के लिये कलाकारों को पत्थर घड़ाई में जितना जितना भी बारीक से बारीक पत्थर का चूरा निकालते थे, उनको उतना ही बदले में स्वर्ण तोल कर परिश्रम देते थे। (२) एक बार वे सिद्धगिरिराज की यात्रा करने गये थे, तब वहां पर उन्होंने तीन लाख रुपये की बोली बोल कर तोरण बांधा। (४) एक लाख और पांच हजार नूतन जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा-अंजनशलाका करवाई। (५) नव सो चौरासी जैन उपाश्रय—पौषधशालाएं बनवाई। (६) खंभात आदि स्थानों पर ज्ञान भंडार बनवाए, उसमें ३९ लाख रुपये लगाए। (७) जैनागमों को स्वर्णाक्षर और काली श्याही से ताड़पत्र और कागजों पर लिखवाए। उसमें सात करोड़ सोना-मुहरें लगाई। (८) जनता के विश्राम के लिये स्थान-स्थान पर सात सौ विशाल धर्मशालाएं बनवाई। (९) उनकी दानशाला में प्रति-दिन एक हजार स्त्री-पुरुष भोजन करते थे। (१०) उनके हाथ से श्रीसिद्धगिरि में अठारह क्रोड़, छन्नु लाख और गिरनारजी में १८ क्रोड़ तिरयासी लाख रुपये श्री-शुभ खाते में लगे हैं। (११) उन्होंने पांच सौ बहुमूल्य भगवान के समवसरण और पूज्यवर साधु-साध्वी के विराजने के पांच सौ हाथीदांत के सुन्दर सिंहासन बनवाये हैं। इतना ही नहीं, तेजपाल-वस्तुपाल की धर्मपत्नियां अनुपमा और ललितादेवी ने अपने आवश्यक खर्च में से संपत्ति की बचत कर आबू-देलवाड़ा में भगवान नेमिनाथजी के मन्दिर के अठारह लाख की लागत के दो बड़े सुन्दर गोखड़े बनाए हैं; जो आज भी वे देराणी-जेठानी के गोखड़ों के नाम से, दर्शकों को अपना जीवन सफल बनाने का उद्बोधन दे रहे हैं। धन्य है धोलका के सम्राट् वीर धवल के मंत्रीश्वर वस्तुपाल और तेजपाल को। इसे ही तो जीवन कहते हैं।

रे मानव! तू अपनी अन्तर आत्मा से पूछ। तूने मनुष्य भव पाकर क्या किया? तिजोरी भरी! या परलोक सुधारा। धान्य का कीट न बन! जीते जी कुछ परमार्थ कर यश प्राप्त कर ले। "यश जीवन, अपयश मरण"। जो यश लेकर गये हैं; जनता सूर्योदय से पहले ही उनका गुण-गान करती है।

---

१. वृद्ध लोगों का कहना है कि उस समय मिस्त्री के ४ आने, सिलावट के दो आने, सुतार का १ आना और मजदूर के २ पैसे रोज इतनी सस्ती मजदूरी थी।

पूरे कुंवर समस्या सारी, आनन्दित हुई नृपति कुमारी ।
वरे कुमार ते त्रिभुवन सार, गुणनिधान जीवन आधार सा. मो. ।।१५।।
पूतल मुख समस्या पूरावी, राजा प्रमुख जन सवि हुओ भ्रान्ति ।
ए अचरिज तो कहिये न दीठुं, जिम जोइये तिम लागे मीठुं सा. मो. ।।१६।।
राजा निज पुत्री परणावे, पंचसखी संजुत मन भावे ।
पाणिग्रहण मह सबलो कीधो, दान अतुल मनवांछित दीधो सा. मो. ।।१७।।
सातमी ढाल ए त्रीजे खंडे, पूरण हुई शुभ राग अखंडे ।
सिद्धचक्रनां गुण गाइजे, विनय सुजस सुख तो पाइजे सा. मो. ।।१८।।

**श्रृंगारसुन्दरी का विवाह** :—आज दलपत्तन नगर में समस्या-पूर्ति का संपन्न होना, एक चर्चा का विषय हो गया है । आम जनता भी आश्चर्यचकित हो मान गई कि वास्तव में राजकुमारी के भाग खुल गए । महाराजा धरापाल स्वर्ग मर्त्य और पाताल में एक नहीं लाख चक्कर काटते फिर भी उन्हें ऐसा सुन्दर चमत्कारिक नवयुवक ढूंढने पर भी नहीं मिलता । यह मानव नहीं देव है । सम्राट् भी श्रीपालकुंवर को देखकर फूले न समाते थे । उन्होंने उसी समय शुभ मुहूर्त में श्रीपाल कुंवर के साथ बड़े ही समारोह, धाम-धूम से श्रृंगारसुन्दरी का विवाह कर उसे बहुमूल्य हाथी-घोड़े वस्त्रालंकारादि कन्यादान में दिये ।

राजकुमारी की पांचों सखियों ने भी अपना जीवनधन श्रीपालकुंवर के चरणों में समर्पण कर उनके गले में वरमाला डाल दी ।

पूज्य उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं, कि यह श्रीपाल रास के तीसरे खण्ड की सातवीं ढाल मधुर राग-रागिनी अलंकारिक शब्दों में संपूर्ण हुई । श्रीसिद्धचक्र के गुणगान करने से श्रोता और पाठकों को सुयश और विनय की प्राप्ति होती है ।

## दोहा

अंगभद्र इण अवसरे, देखी कुंवर चरित्र ।
कहे सुणो एक माहरूं, वचन विचार पवित्र ।।१।।
कोल्लागपुरनो राजियो, अछे पुरंदर नाम ।
विजयाराणी तेहनी, लवणिम लीला धाम ।।२।।

सात पुत्र उपर सुता, जयसुन्दरी छे तास।
रंभा लघु ऊंची गई, जोड़ी न आवे जास ॥३॥

**चमत्कार को नमस्कार** :—श्रीपालकुंवर का रूप-सौन्दर्य, सरल, विनीत स्वभाव और बोल-चाल की छटा देख, अंगभट्ट से रहा न गया। वह अपार भीड़ को चीरता हुआ बड़े वेग से आगे बढ़ा और उसने कुंवर की पीठ ठोककर कहा—धन्य है! धन्य है!! सिद्ध पुरुष! मुझे भिक्षावृत्ति करते सफेदी आ गई। मैंने इस भूतल पर हजारों कोस का प्रवास किया किन्तु ऐसा चमत्कार कहीं न देखा। "एक जड़ लकड़ी का पुतला जिसके कर-स्पर्श मात्र से सैद्धान्तिक जटिल समस्या की शत प्रतिशत सही पूर्ति कर, राजकुमारी और उसकी पाँचों सखियों के मन की बात प्रकट कर दें। इस से बढ़कर और संसार में क्या होगा!! वीर युवक, नर-रत्न तुम युग युग जीओ, चिरायु हो। मेरा आप से एक नम्र अनुरोध है, कि आप एक बार यहाँ से शीघ्र ही कोल्लागपुर पधारें।

श्रीपालकुंवर – विप्रदेव! धन्यवाद! आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है। कृपया कोल्लागपुर का कुछ परिचय देंगे?

अंगभट्ट – वीर युवक! मैं आपको परिचय ही नहीं, आशीर्वाद भी देता हूँ। वहाँ आपको निश्चित ही राधावेध का सु-यश मिलेगा।

**जयसुन्दरी का परिचय** :—कोल्लागपुरमें सम्राट् पुरंदर राज्य करते हैं। उनकी पट्टरानी का नाम है विजया। राजमाता के सात पुत्र थे, किन्तु राजमाता की इच्छा थी कि एक दिन कोई हमारे द्वारपर आकर तोरण बांधे, तो मैं दिल खोल के अपने जमाई के लाड़-प्यार करूं। किन्तु कन्या के बिना उसकी गोद सूनी थी। बेचारी मन ही मन भगवान से प्रार्थना कर के रह जातीं। भगवद्भक्ति और प्रार्थना में अतुल बल और एक अनूठी दिव्य शक्ति है। हृदय से की हुई प्रार्थना कदापि निष्फल नहीं होती है। वर्षों की तपश्चर्या के बाद राजमाता को एक लड़की हुई। उसके कोमल दिव्य शरीर की कांति से राजमहल चमक उठा। उसका नाम है "जयसुन्दरी"। अब तो उसके विकसित नवयौवन देख, अप्सराओं भी को अपना सा मा मुंह लेकर स्वर्गलोक में जाना पड़ा।

लवणिम रूप अलंकरी, ते देखी कहे भूप।
ए सरीखो वर कुण हशे, पाठक! कहो स्वरूप ॥४॥
सो कहे इण भणतां कला, राधावेध स्वरूप।
पूछंु ते में वरणव्युं, साधन ने अनुरूप ॥५॥

आठ चक्र थंभ उपरे, दक्षिण ने वाम।
अर विवरी परी पूतली, काठनी राधा नाम ॥६॥

तेल कढ़ा प्रति बिंब जोई, मुके अधो मुख बाण।
वेधे राधा वाम अच्छि, राधावेध सुजाण ॥७॥

धनुर्वेदनी ए कला, चार वेद थी उद्द।
उत्तम नर साधी सके, नवि जाणे कोइ मूढ़ ॥८॥

ते सुणी तुज पुत्री नृपति, करे प्रतिज्ञा एम।
वरशुं राधावेध करि, बीजो वरवा नेम ॥९॥

महोटा मंडप मांडिये, राधावेध नो संच।
करिये जिम वर पामिये, पाठक कहे प्रपंच ॥१०॥

सम्राट् पुरंदर :—पंडितजी! राजकुमारी जयसुन्दरी का अब युवावस्था में प्रवेश हो रहा है। अब इसके सम्बन्ध का योग कहां और कैसे होगा? पंडित — राजन्! वेद शास्त्रों में धनुर्वेद के अन्तर्गत राधावेध एक सर्वश्रेष्ठ कला है। इस कला में सफल होना बच्चों का खेल नहीं। कोई भाग्य से विरला ही मनुष्य इस कला में सफल हो सकता है। एक दिन राजकुमारी को अध्ययन कराते समय, मुझे ज्ञात हुआ कि वह उस व्यक्ति को ही वरेगी, जो राधावेध की कला में पारंगत होगा। यह जयसुन्दरी की अटल प्रतिज्ञा है।

राजन्! मेरा आपसे यही एक नम्र अनुरोध है, कि आप एक सुन्दर विशाल सभा मंडप बनाकर शीघ्र ही राधावेध की घोषणा कर दें। इस उपाय से आपको घर बैठे ही एक अच्छे सुयोग्य सुन्दर कलाकार वर का सुयोग प्राप्त हो सकेगा। सम्राट् पंडितजी! राधावेध किसे कहते हैं? राजन्! एक स्तंभ पर आठ चक्र लगा कर उस पर एक लड़की की पुतली खड़ी कर देते हैं। जो कि बड़े वेग से चारों ओर घूम-फिर सके। पश्चात् उस स्तंभ के नीचे एक कड़ाव तेल से भर कर ऐसे ढंग से रखें कि उसमें चलती फिरती पुतली का स्पष्ट प्रतिबिंब दिख पड़े। फिर साधक अपना धनुष बाण उठा कर तेल के प्रतिबिंब की ओर ताक कर ऐसा निशाना मारे की बाण लगते ही उपर लकड़ी की चलती फिरती, पुतली की बांई आंख फुटे बिना न रहे। इसी का नाम राधावेध है।

सम्राट्-पंडितजी ! पुतली के पैरों तले जो आठ-चक्र लगे हैं, क्या वे भी घूमते हैं ?—हाँ, हाँ ! वे आठों चक्र उत्तर दक्षिण बड़े वेग से घूमते रहते हैं। इसी के बीच ठीक निशाना लगाना ही तो कला है।—गुरुजी ! यह तो बड़ी टेढ़ी खीर है। अच्छा, धन्यवाद।

मंडप नृप मंडावियो, राधावेध विचार।
पण नवि को साधी सके, पण साधशो कुमार ॥११॥
इम निसुणी ते भट्टने, कुंडल देई कुमार।
रयणी निज वासे वसी, चाल्या प्रात उदार ॥१२॥
पहोंतो ते कोल्लागपुर, कंवर दृष्टि सब साखी।
साध्यो राधावेध तिहां, हार महिम गुण दाखी ॥१३॥
जयसुन्दरीये ते वर्यो, करे भूप विवाह।
तास दत्त आवास मां, रहे सुजश उच्छाह ॥१४॥

**जयसुन्दरी का विवाहः—** वीर युवक ! सम्राट् पुरंदर ने एक सुन्दर कलापूर्ण विशाल मंडप बनाकर राधावेध की चारों ओर घोषणा कर दी है। सुनहरा समय बीता जा रहा है। आप विलंब न करें। श्रीपालकुंवर ने स-धन्यवाद अंगभट्ट को अपने बहु-मूल्य कानों के दो कुण्डल भेंट दे, उन्हें विदा दी। पश्चात् वे अपनी प्रेयसी शृंगारसुन्दरी के साथ एक दिन सुहाग रात बिताकर दूसरे दिन वे सूर्योदय होते ही अपने दिव्य-हार के प्रभाव से कोल्लागपुर पहुंचे। वहां सभा मंडप में कई राजकुमार राधावेध करने को उत्सुक थे; किन्तु वे बेचारे राजकुमारी जयसुन्दरी का गुलाब सा रंग, चांद सा मुखड़ा, हरिणी सी आँखें और तोते सी नाक, लाल लाल होंठ देख भान भूल गए। निशाना चूकते ही, उन्हें अपना सा मुंह ले घर लौटना पड़ा। सभा-मंडप में चारों ओर कानाफूंसी होने लगी। "मजा बिगड़ गया, राधावेध होना संभव नहीं"। राजकुमारी का अंदर ही अंदर जी सूखा जा रहा था। हाय, क्या होगा !

इधर श्रीपालकुंवर की बारी आते ही एक वृद्ध उनसे पूछ बैठा—बेटा ! इस सभामें कहां कौन बैठा है ? कुंवर ने मुस्कराकर कहा—दादा ! राधापुतली की बांई आँख की कीकी के सिवाय मुझे कुछ भी पता नहीं कि यहाँ कौन है ? बूढ़ा चुप हो गया। कुंवर ने अपने इष्ट श्रीसिद्धचक्र का स्मरण कर, ऐसा ताक कर बाण मारा कि राधापुतली

की आंख पाताल में बैठ गई। राधावेध होते ही तालियों की गड़गड़ाहट से आकाश मुखरित हो उठा। धन्य है! धन्य है!! युवक, मनो-निग्रह ही तो सफलता का मूलमंत्र है।

उसी समय वहां शुभ मुहूर्तमें बड़े समारोह के साथ श्रीपालकुंवर और जयसुन्दरी की भांवर पड़ गई। अग्नि ने साक्षी दी। दोनों हृदय एक हो गये। सम्राट् पुरंदर ने अपनी प्यारी बेटी को कन्यादान में बहुत-सा धन, हीरे मोती, घोड़े रथ, दास-दासी और एक राजमहल दिया। वहां वे दोनों पति-पत्नी बड़े आनंद से रहने लगे।

## तीसरा खण्ड–आठवीं ढाल

(बन्यो रे कुंवरजी रो सेहरो)

हवे माउल नृप पेसिया, आव्या नर आणा काज रे। विनीत।
लीलावन्त कुंवर भलो।
कुंवरे पण निज सुन्दरी, तेड़ावी अधिके हेज रे॥ वि. ली. ॥१॥
सैन्य मल्युं तिहां सामटुं, हय गय रथ भड़ चतुरंग रे। वि.।
तिण संयुत कुंअर ते आवियो, ठाणाभिध-पुर अति चंग रे॥ वि. ली. ॥२॥
आणंदियो माउल नरपति, तस सिरिवर सुन्दर देखि रे। वि.।
थापे राज श्रीपाल ने, करे विवि अभिषेक विशेष॥ वि. ली. ॥३॥
सिंहासन बेठो सोहिये, वर हार किरीट विशाल रे। वि.।
वर चामर छत्र शिरे धर्यां, मुख कज अनुसरत मराल रे॥ वि. ली. ॥४॥
सोले सामंते प्रणमिये, हय गय मणि मोतिये भेट रे। वि.।
चतुरंगी सेनाए परवर्यो, चाले जननी नमवा नेट रे॥ वि. ली. ॥५॥
गाम ठामे आवंतड़ो, प्रणमितो भूपे सु पवित्त रे। वि.।
भेटि जंतो बहु भेटणें, सोपारय नगर हुंत रे॥ वि. ली. ॥६॥

**थाणा नगर का निमंत्रण**:—सम्राट् वसुपाल के मंत्री मंडल ने श्रीपालकुंवर को प्रणाम करके कहा—श्रीमानजी! सम्राट् गई दिनों से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमारा आपसे सादर

अनुरोध है, कि आप शीघ्र ही एक बार थाणा नगर पधार कर हमें अनुगृहीत करें। मंत्री-मंडल का विशेष आग्रह देख कुंवर ने उन्हें सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर दी। पश्चात् कुंवर ने अपनी सभी पत्नियों को संदेश भेज कर बाहर से उन्हें अपने पास कोल्लागपुर बुलवा लीं। सेवा में उपस्थित स्त्रियों के साथ आगत हाथी, घोड़े, रथ दास-दासियाँ और सैनिक दल को देख सम्राट पुरंदर दाँतो तले अंगुली दे, मन ही मन कहने लगे—ओह! धन्य है, इस पुण्यवान को। उन्हों ने भी बड़े समारोह धूम-धाम से अपनी लाड़िली बेटी जयसुन्दरी को श्रीपालकुंवर के साथ थाणा नगर विदा कर दी।

सम्राट् वसुपाल श्रीपालकुंवर का स-परिवार चतुरंगिणी सेना के साथ शुभागमन सुनकर फूले न समाए। सारा नगर कलापूर्ण सुन्दर द्वारों और ध्वजा-पताकाओं से सजाया गया। महिलाएं स्वर्ण कलश, हरी दूब सिर पर रख भाणेज-जमाई के स्वागत की कामना से आगे बढ़ती चली जा रही थीं। वसुपाल थाणा के प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ नगर-उद्यान के निकट, कुंवर की टकटकी लगाकर प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके आते ही ढोल नगाढ़े और शहनाइयों की ध्वनि से आकाश मुखरित हो उठा। कुंवरी कन्याओं ने स्थान-स्थान पर अक्षत और मोतियों से उन्हें बधा कर बड़े ही समारोह के साथ नगरप्रवेश करवाया।

एक दिन सम्राट् वसुपाल राज-माता से बात कर रहे थे सहसा बात ही बात में रानी का हृदय भर आया, उसने अपने आँसुओं को पीना चाहा, फिर भी बरबस दो मोती तो ढल ही पड़े। वसुपाल—देवि! देवि!! क्यों, क्या हुआ? स्वास्थ्य कैसा है? —नहीं प्राणनाथ! मैं स्वस्थ हू। – स्वस्थ हो?—आपकी कृपा है।—देवि! तुम संकोच न करो।—नहीं प्राणनाथ, मैं अपने मन को बहुत ही कड़ा करती हूं, फिर भी यह जी न मालूम कैसा होने लगता है। मुझे सूना राजमहल काटने दौड़ता है। विपुल संपत्ति, गीत-गान आमोद-प्रमोद के साधन शूल से लगते हैं।

"वह घर ही क्या जो बच्चों की हंसी के कहकहों से गूंजता न हो। जहाँ उनके आपस के लड़ाई-झगड़े, ठुमक—ठुमक कर चलना और तुतली मीठी बोली सुन न पड़ती हो। स्त्री का जीवन तो बच्चों के बिना सूना है ही; पर पुरुषों के लिये भी, जिनको संतान नहीं है उनको अन्त समय में दो घूंट पानी ही कौन दे? "आप मरे, जग डूबा"। ऐसी वस्तु तो है नहीं जो मोल ले ली जाय।

**सम्राट् वसुपाल :**—देवि! वास्तव में तुम्हारा कहना ठीक है। किन्तु जटिल अन्तराय कर्म के आगे किसी दाल नहीं गलती है। षट् खण्ड के स्वामी भरत चक्रवर्ती के पिता (भगवान आदिनाथ) लगातार ४०० दिन तक घर-घर भटके, फिर भी उन्हें शुद्ध आहार

न मिला। विपुल संपत्ति के अधिपति मम्मण सेठ के पल्ले क्या पड़ा? तेल और उड़द के दाने। कपिला दासी के गांठ का क्या लगता था? कुछ भी नहीं। फिर भी वह अभागी बहती गंगा में हाथ न धो सकी।

प्रिये! इस क्षणभंगुर जीवन का क्या ठिकाना? मानव तो नदी के किनारे का एक जर्जर वृक्ष है। आज है, कल नहीं। आँख मिचने के बाद कौन किसको याद करता है? दो आँखों की तो शरम है। बच्चे होते भी तो क्या निहाल करते? कपूत बेटे क्या नहीं करते हैं? बूढ़ी माताएं इसकी साक्षी हैं। देवि! तू व्यर्थ ही संकल्प-विकल्प न कर। क्या, हम सारी उमर वासना के दास ही बने रहेंगे? हम धान्य के कीट तो एक नहीं अनेक भवों में बनते चले आ रहे हैं। अब तो हमें भोग में योग की ही शरण लेना है। यह श्रीपालकुंवर भी तो अपना ही है। इससे बढ़कर फिर हमें भाग्यवान और हमारे सुख-दुःख का साथी और कौन मिलेगा? कोई नहीं। घर बैठे गंगा है। हम इसे ही क्यों न अपना बेटा मान लें? रानी – प्राणनाथ! अंधा आंख ही तो चाहता है, फिर तो भला यह सोने में सुगन्ध है।

**राज्याभिषेक** :–सम्राट् वसुपाल से सर्वानुमत से शुभ मुहूर्त में बड़े ही ठाट-पाट से श्रीपालकुंवर का राज्याभिषेक कर उन्हें अपने राज्य की सारी सत्ता सौंप दी। फिर वे दोनों राजा-रानी बड़े आनन्द से अपना आत्म-साधन करने लगे।

**राजा श्रीपालकुंवर** :–पूज्य माता-पिता, वीर-सामंत गण, और मान्यवर नागरिकों; मेरी इतनी योग्यता कहाँ कि मैं इस पद को निभा कर आप लोगों की कुछ सेवा कर सकूं। फिर भी आपने मेरे सिर पर कोंकण का राज्य मुकुट रख कर, मुझे सेवाका कए सु-अवसर प्रदान किया है, अतः मैं आप लोगों की इस उदारता का हृदय से आभारी हूँ। धन्यवाद। तालियों की गड़-गड़ाहटसे सभा मंडप गूंज उठा। राजा-रजवाड़े श्रीपालकुंवर को बहुमूल्य उपहार भेंट कर, अपने स्थान पर लौट गए।

कई दिनों से कुंवर अपनी पूज्य माता कमलप्रभा के दर्शन करने के लिये बड़े ही ही उत्सुक थे। आज वे अपने धर्मपिता वसुपाल से अनुमति ले सूर्योदय होते ही शुभ मुहूर्त में उज्जैन की ओर चल दिये। मार्ग में उनके साथ हाथी, घोड़े, रथ, पालकी और दास-दासियों का ठाट-पाट देख अनेक राजा-रजवाड़ों के सिर झुकने लगे। वे सिद्धचक्र का प्रत्यक्ष प्रभाव देख मुग्ध हो जाते थे। सिद्धचक्र भगवान की जय हो! जय हो!! कुंवर भी सप्रेम उनका उपहार स्वीकार कर आगे बढ़ते हुए, सोपारकपुर पहुंचे।

ते परिसर सैन्ये परिवर्यो, आवासे ते श्रीपाल रे। वि.।
कहे भगति शक्ति नवि दाखवे, शुं सोपारक नरपाल रे॥ वि. लि. ॥७॥
कहे परधान नवि एहनो, अपराध अछे गुणवंत रे। वि.।
नाम महसेन छे ए भलो, तारा राणी मन कंतरे॥ वि. ली. ॥८॥
पुत्री तस कुंखे ऊपनी, छे तिलकसुन्दरी नाम रे। वि.।
ते तो त्रिभुवन तिलक समी बनी, हरे तिलोत्तमानुं धाम रे॥ वि. ली. ॥९॥
ते तो सृष्टि छे चतुर मदन तणी, अंगे जीत्या सवि उपमान रे। वि.।
श्रुति जड़ जे ब्रह्मा तेहनी, रचना छे सकल समान रे॥ वि. ली. ॥१०॥
दिह पीठे दंसी सा सुता, कीधा बहुविध उपचार रे। वि.।
मणि मंत्र औषध, बहु आणिया, पण न थयो गुण ते लगार रे॥ वि. ली. ॥११॥
ते माटे दुःखे पीडियो, महसेन नृपति तस तात रे। वि.।
नवि आव्यो इहां ए कारणे, मत गणजो बीजो घात रे॥ वि. ली. ॥१२॥

**दाह क्रिया करना ही शेष है :**—राजा श्रीपाल – मंत्रीजी! मैंने अब तक इतना प्रवास किया, किन्तु सोपारकपुर सा नगर एक न देखा। जान पड़ता है, यहां का राजा लोक-व्यवहार से अभी कोसों दूर है। मंत्री – महाराज! यह तो असंभव है। हां! यहां के नरेश इस समय बेचारे बड़े संकट में हैं। कुंवर चौंक पड़े, संकट में हैं! क्यों क्या हुआ? महाराज, सोपारकपुर की महारानी तारा के एका-एक बेटी तिलकसुन्दरी है। वह राजकुमारी इतनी सुन्दर है कि, यदि उसे अन्धेरे घर में बिठा दें तो उजाला हो जाय। उसके सामने स्वर्ग की अप्सराएं रंभा, उर्वशी, तिलोत्तमा तो पानी भरती हैं। बूढ़े ब्रह्मा की कृति की तो हम एक-दूसरे से तुलना भी कर सकते हैं, किन्तु तिलकसुन्दरी तो सचमुच ही एक अनुपम बाला है। संभव है उसका निर्माण स्वयं कामदेव ने ही किया हो। केवल वह रूपवती ही नहीं किन्तु अनेक कलाओं में निपुण भी है। खेद है कि उस सुन्दरी को किसी विषैले सर्प ने डस लिया है। अतः उसके पिता ने मंत्र और तंत्रादि अनेक उपचार किये फिर भी वह बच न सकी। अभी तो उसकी दाहक्रिया करना ही शेष है। इसीलिये तो राजा महसेन आपकी सेवा में उपस्थित न हो सके हैं।

राजा कहे किहां छे दाखवो, तो कीजे तस उपगार रे। वि.।
एम कही तुरगारूढे तिणे, दीठा जाता बहु नर नार रे॥ वि. ली. ॥१३॥

समशाने लई जाती जाणी, तहां पहोंतो नरनाह रे। वि०।
कहे दाखो मुझ हुं सम करूं, मूर्छित ने म दियो दाह रे॥ वि. ली. ॥१४॥
महियत मूकी ते थानके, करी हार नमण अभिषेक रे। वि.।
सज करी सवि लोकना चित्त शुं, थई बेठी धरिय विवेक रे॥ वि. ली. ॥१५॥
महसेन मुदित कहे राजियो, वत्स तुजने ए शुं होत रे। वि.।
जो नावत ए बड़भागियो, न करत उपगार उद्योत रे॥ वि. ली. ॥१६॥
तुझ प्राण दिया छे एहने, तू प्राण अधिक छे मुझ रे। वि.।
एहने तु देवी मुझ घटे, ए जाणे हृदयनो गुंझ रे॥ वि. ली. ॥१७॥
स्निग्ध मुग्ध दृग देखतां, एम कहेतां ते श्रीपाल रे। वि.।
मन चिंते म्हारा प्रेमनी, गति एह शुं छे असराल रे॥ वि. ली. ॥१८॥
जो प्राण कहुं तो तेह थी, अधिको किम लखिये प्रेम रे। वि.।
कहुं भिन्न अनुभव किम मिले, अविरुद्ध उभय गति केमरे॥ वि. ली. ॥१९॥
इम स्नेहल सा निज अंगजा, श्रीपाल करे दिये भूप रे। वि.।
परणीसा आठे तस मली, दयिता अति अदुभूत रूपरे। वि. ली. ॥२०॥

**जंगल में मंगल** :—राजा श्रीपाल-मंत्रीजी ! आप सोपारक नरेश को शीघ्र ही सूचना कर दें कि वे भूल कर भी तिलकसुंदरी का अग्नि-संस्कार न करें। "उतावला सो बावला" सांप का खाया छे महिनें नहीं मरता है। कुंवर को चैन कहाँ! वे भी उसी समय शीघ्र ही श्यमसान की ओर दौड़ पड़े। मार्ग में हजारों स्त्री-पुरुष राजकुमारी की श्यमसान-यात्रा में आगे चले जा रहे थे। वे घुड़सवार को पीछे से आते देख वहीं ठहर गये। महसेन ने आगे बढ़कर कुंवर को प्रणाम करके कहा—श्रीमान्‌जी ! क्षमा करें। खेद है कि आज मैं आपकी कुछ भी सेवा न कर सका। बोलते बोलते राजा का हृदय भर गया, उनकी आंखो से अश्रुधारा बहने लगी। कुंवर ने कहा – राजेन्द्र ! होनहार अच्छे अच्छे को नाच नचा देती है। देखो, सत्यवादी हरिश्चन्द्र को डोम के हाथ बिकना पड़ा। सती सीता वन वन भटकतीं फिरीं और अंजना को वर्षों तक असह्य पतिवियोग सहना पड़ा। ये कर्म राजा के ही तो हतकंडे है। "कर्म को शर्म नहीं" आप जरा भी चिंता न करें, राजकुमारी के लक्षण स्पष्ट बोल रहे हैं कि यह मूर्छित हैं, मरी नहीं। भगवान का नाम-स्मरण कभी निष्फल नहीं जाता है। यह कुंवरी

अभी मिनटों में सुध में आ सकती हैं। कुंवर की बात सुन श्मशान में चारों ओर कानाफूंसी होने लगी। "दादा! मरा मुर्दा भी कहीं जिन्दा हुआ है? नहीं।"

राजा श्रीपाल—प्रिय महानुभावो! श्री सिद्धचक्र में एक अनूठी दिव्य शक्ति है। इसकी महिमा अपार है। इस रहस्य को वे ही जानते हैं, जिनके हृदय में विशुद्ध अनन्य प्रेम और परम श्रद्धा हो। जिसे सिद्धचक्र के अतुल बल और अपनी आत्मशक्ति का अनुभव हुआ है, वे वाणी से इस का अनुपम महत्त्व वर्णन करने में असमर्थ हैं। सिद्ध-चक्र के गुणों का वर्णन वैसा हो है, जैसा किसी धनकुबेर को लखपति कह कर उसकी महिमा प्रकट करना। पश्चात् कुंवर ने दृढ़ संकल्प के साथ अपने दिव्य हार का प्रक्षालन कर उस जल को राजकुमारी के अंग पर छींटा, जल के छींटें पड़ते ही उसी समय तिलकसुंदरी उठ बैठीं। उसे पता नहीं कि मैं इस समय कहां हूँ। श्यमशान का विचित्र रुप देख भय से कांप उठीं और आँखे मूंद कर गहरे विचार में पड़ गईं। क्या मैं स्वप्न तो नहीं देख रही हूँ? नहीं!! अभी तो चारों ओर धूप है। राजकुमारी को गुन-गुनाते देख उसकी माता रानी ने उसके सिर पर बड़े प्यार से हाथ रख कर कहा—उठो बेटा तिले! तिले!! कोल्लागपुर के नरेश ने तुम्हें नवजीवन दिया है। हमारे सोये भाग जागे। तिलकसुंदरी! इस सत् पुरुष के चरणस्पर्श कर इनका स-धन्यवाद आभार मानो। ये मानव नहीं देव हैं। राज-परिवार की बड़ी बूढ़ी महिलाएं एकसाथ बोल पड़ीं—राजेन्द्र युग-युग जीओ। बेटा! जग में तुम्हारी जस कीर्ति बढ़े। तिलकसुन्दरी अपने पिता महसेन के पैरों में लिपट गई।

महसेन—तिलकसुन्दरी! भय से जो अपनी रक्षा करे उसी का नाम भर्ता है। मेरा तो यही अभिप्राय है कि कोल्लागपुर नरेश ने ही तुझे काल के गाल से बचाया है, अब भविष्य में भी यही सत्पुरुष तेरा—आजीवन संरक्षण करे। तू इनके चरण-कमलों में अपना जीवन-धन समर्पण कर दे। अपने पिता का आशय देख तिलकसुन्दरी ने राजा श्रीपाल की ओर आंख उठा कर देखा तो, वह उनके अनन्य उपकार और रुप सौंदर्य को देख मंत्र-मुग्ध हो गई। लज्जा से उसका मुंह लाल हो गया। वह मन ही मन कहने लगी, प्राण और प्रेम यह भी एक समस्या है। यदि मैं इनको (श्रीपालको) अपने प्राण मानती हूँ तो प्रेम के बिना प्राण निरस ही हैं, उस जीवन का कोई मूल्य नहीं। जहां प्राण का अभाव है, फिर तो प्रेम का अनुभव होगा ही किसे? वास्तव में प्राण और प्रेम दोनों अभिन्न हैं। इन दोनों के संमिलन का नाम ही तो "विवाहित-आनंद है।" तिलकसुन्दरी की भोली-भाली सूरत उसके मृगनयनों ने श्रीपालकुंवर के हृदय में बड़ी गुदगुदी पैदा कर दी, वे अपने आपको संभाल न सके। अरे! मैंने एक नहीं

सात बार लग्न किये, फिर भी इतना आकर्षण, परवशता क्यों? संभव है, भवान्तर का इस सुन्दरी के साथ मेरा कोई संबंध हो।

राजा-रानी ने श्रीपालकुंवर और तिलकसुन्दरी के मनोभाव को समझ कर उसी समय शुभ मुहूर्त में वहां निकट ही सोपारकपुर के विशाल उद्यान में बड़े ही समारोह के साथ उन दोनों का विवाह कर दिया। ढोल नगाड़े, शहनाइयों की ध्वनि से क्षण में जंगल में मंगल हो गया। चारों ओर आनन्द की एक लहर दौड़ गई। श्रीपालकुंवर की तिलकसुन्दरी यह आठवीं रानी है।

अड़ दिट्ठी सहित पण विरती ने, जिम वंछे समकित वंत रे। वि.।
अड़ प्रवचनमात सहित मुनि, समता ने जिम गुणवंत रे॥ वि.ली. ॥२१॥
अड़ बुद्धि सहित पण सिद्धि ने, अड़ सिद्धि सहित पण मुक्ति रे। वि.।
प्रिया आठ सहित पण प्रथम ने, नित ध्यावे ते इण युक्ति रे॥ वि. ली. ॥२२॥
उत्कंठित नित तेहशुं, वली जननी ने नवमा हेज रे। वि.।
श्रीपाल प्रयाणे पूरियुं, देवरावे ढक्का तेज रे॥ वि. ली. ॥२३॥
हय गय रह भड मणि कंचणे, सत्य वत्थ बहु मूल रे। वि.।
पग पग भेंटी जे नृप वरे, तेहनुं चक्रवर्ती सम सूल रे॥ वि. ली. ॥२४॥
तस सैन्य भरे भारित मही, अहिपति फण मणि गण प्रोत रे। वि.।
तेणे गिरिपण जाणुं नवि गिरिया, शशि-सूरनयण विधि जोत रे॥ वि.ली. ॥२५॥
मरहट्ट सोरठ मेवाडना, वली लाट भोटना भूप रे। वि.।
ते आव्यो सघला साधतो, मालव देशे रवि रूप रे॥ वि. ली. ॥२६॥
आगमन सुणी पर चक्रनुं, चरमुख थी मालवराय रे। वि.।
भयभीत ते गढ़ने सज करे, तेहनुं नवि तेज खमाय रे॥ वि. ली. ॥२७॥
कणाड़ चुणाड़ तृण कण घणा, संग्रहे ते इंधण नीर रे। वि.।
संनद्ध होय ते सुभट वड़ा, कायर कंपे नहीं धीर रे॥ वि. ली. ॥२८॥
एम उज्जेणी हुई नगर ने, लोक संकीर्ण समीप रे। वि.।
वींटी श्रीपाल सुभटे तदा, जिम जलधि अंतर द्वीप रे। वि. ली. ॥२९॥

डेरा दीधां सवि सैन्य नां, पहेलो हुओ रजनी जाम रे। वि. ।
जननी घर पहोंतो प्रेम सुं, नृप हार प्रभावे ताम रे ॥ वि. ली. ॥३०॥
ढाल पूरी थई आठमी, पूरण हुओ त्रीजो खंड रे । वि. ।
हाय नवपद विधि आराधतां, जिन विनये सु-यश अखंड रे ।वि.ली. ॥३१॥

**उज्जयिनी की ओर प्रयाण :**—सम्यग्दृष्टि मानव योग की मित्रा[1], तारा बला, दीप्ता, स्थिरा, कान्ता, प्रभा और परा इन आठ दृष्टियों का मनन चिंतन कर वे त्याग और तप की ओर आगे बढ़ते हैं। पांच समिति, तीन गुप्ति इन आठ प्रवचन माताओं के साधक साधु-साध्वी का लक्ष समता की ओर ही रहता है। योगी बुद्धि के आठ गुण-शुश्रूषा, श्रवण, ग्रहण, धारण, उह, अपोह, अर्थ विज्ञान, तत्त्वज्ञान और आठ सिद्धियाँ अणिमा, महिमा, गिरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व प्राप्त होने पर भी वह शाश्वत मोक्ष को ही चाहता है। उसी प्रकार श्रीपालकुंवर के पास स्व-भुजोपार्जित दल, बल, वैभव और आठ स्त्रियाँ थीं। फिर भी उनका हृदय अपनी माता कमलप्रभा और मयणासुन्दरी से मिलने को बड़ा ही उत्सुक था। वे उसी समय अपने ससुर सोपारक-नरेश से शीघ्र ही विदा ले उज्जयिनी की ओर चल पड़े। कूच के नगाड़े गड़गड़ाने लगे। मार्ग में महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, मेवाड़, लाट और भोट आदि देशों के राजा-महाराजा, राजा श्रीपाल-कुंवर का किसी चक्रवर्ती सा पराक्रम, अनगिनत हाथी, घोड़े, पायदल और उनका विपुल वैभव देख वे आश्चर्यचकित हो अनायास ही श्रीपालकुंवर के आधीन हो गये।

भाग्यवान् श्रीपालकुंवर जहां भी पहुंचे वहां के राजा-महाराजा और नागरिकों की ओर से उन्हें उपहार में इतना दल-बल, वैभव प्राप्त हुआ कि उस भार को शेषनाग बड़ी ही कठिनाई से सहन कर सके। यहाँ पर कवि की कल्पना है कि सृष्टिसर्जक ब्रह्माजी की चन्द्र और सूर्य यह दो आंखें हैं। वह अपने इन नेत्रों से बराबर टक-टकी लगाए देख रहे हैं कि कहीं श्रीपालकुंवर की टिड्डी दल-सेना के भार से शेषनाग दब न जाए! नागराज के टस से मस होते ही, मेरे श्रम की इतिश्री होते देर न लगेगी।

**कमलप्रभा के द्वार पर :**—मालव सम्राट् प्रजापाल को एक गुप्तचर से ज्ञात हुआ कि कोई एक अज्ञात व्यक्ति बड़े ही वेग से उज्जयिनि की ओर चला आ रहा है। उसके सैनिकों ने पहले से ही गढ़ के चारों ओर घेरा डाल दिया है। महाराज राजमहल की ऊंची अटारी

---

१. इन आठ दृष्टि का वर्णन जैन दृष्टिए योग और योगदृष्टि समुच्चय में बड़ा ही सुन्दर है।

पर चढ़ कर दूर से टिड्डीदल अपार सेना को निकट आते देख उनके पांव-तले धरती खिसकने लगी। फिर भी "हारिये न हिम्मत" धड़ा-धड़ नगरकोट के द्वार बंद हो गये। अन्न-जल, वस्त्र, इंधन आदि का ढेरों से संग्रह, सैनिकों की भर्ती, और युद्ध की बड़े जोरों से तैयारियाँ होने लगीं। भय से उज्जयिनी के आसपास गांवों के नागरिक इतनी अधिक संख्या में राजधानी में आ पहुंचे, कि मार्ग में पैर रखने की जगह नहीं। गढ़ के बाहर चारों ओर अपार चलते फिरते सैनिक दल के बीच उज्जयिनी नगरी एक छोटे से द्वीप सी दिख पड़ती थी।

राजा श्रीपालकुंवर अपनी पूज्य माता के चरणस्पर्श की धुन में बड़े वेग से नगर की ओर बढ़ते चले जा रहे थे, किन्तु चर से मालूम हुआ कि कभी से नगर-कोट के द्वार बंद हैं, अतः उन्हें मार्ग में ही ठहरना पड़ा। रात को चतुरंगिणी सेना निद्रादेवी की गोद में अपनी थकावट का अंत कर रही थी, किन्तु श्रीपालकुंवर को जननी के दर्शन के बिना एक पल एक युग सा लगता था। वे अपने दिव्य हार के प्रभाव से न मालूम किस समय अपने घर कमलप्रभा के द्वार पर पहुंच गये किसी को पता तक न लगा।

श्रीमान् उपाध्याय पूज्य यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के तीसरे खण्ड की आठवीं ढाल सम्पूर्ण हुई। श्री सिद्धचक्र (नवपद) करने से पाठक और श्रोताओं को अखण्ड सुख-सौभाग, विनय और सु-यश की प्राप्ति होती है।

चौपाई

**खंड खंड मिठाई घणी, श्री श्रीपाल चरित्रे भणी।**
**ए वाणी सुरतरु बेलड़ी, किसी द्राखने शी शेलड़ी।।**

श्रीपाल रास के प्रत्येक खण्ड में कल्पलता समान श्री सिद्धचक्र महिमा दर्शक संगीत कथा में ऐसा रसमाधुर्य है कि उसके आगे ईख और अंगूर कोई चीज नहीं। इसे पाठक और श्रोतागण बार-बार हर आश्विन और चैत्र शुक्ला में पढ़ सुन कर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं।

ॐ अर्हं नमः

ॐ ह्रीं श्रीं सिद्धचक्राय नमः

श्री अभिधान राजेन्द्र कोष रचयिता श्रीमद् विजय राजेन्द्रसूरीश्वर सद्गुरुभ्योनमः

# श्रीपाल-रास

## ( हिन्दी अनुवाद सहित )

अनुवादक—श्रीमद् विजय यतीन्द्रसूरीश्वरजी महाराज के शिष्य मुनि श्री न्यायविजयजी

## चौथा—खण्ड

( अनुवादकर्ता की ओर से )

### मंगलाचरण

( १ )

प्रिय पाठको ! सिद्धचक्र का, प्रभाव देखा आपने ।
सिद्धचक्र की कर साधना, पाई विजय श्रीपाल ने ॥
जिसने न की प्रमाद वश, सिद्धचक्र की आराधना ।
फिर तो भला नर जन्म की यह, व्यर्थ है सब साधना ॥

( २ )

सुरतरु सम सिद्धचक्र की, करूं साधना भवपार है ।
वंदन करूं राजेन्द्र गुरुवर, यतीन्द्र का उपकार है ॥

लेखक हैं खण्ड चार के, यशोविजय वाचक प्रवर ।
मुनी न्याय कहे अनुवाद हिन्दी, आगे पढ़ें पाठक प्रवर ।।

## दोहा

त्रीजे खंडे अखंड रस, पूरण हुओ प्रमाण ।
चोथो खंड हवे वर्णवुं, श्रोता सुणो सुजाण ।।१।।
शीस धुणावे चमकियो, रोमांचित करे देह ।
विकसित नयन वदन मुदा, रस दिये श्रोता तेह ।।२।।
जाणज श्रोता आगले, वक्ता कला प्रमाण ।
ते आगे धन शुं करे, जे मगसेल पाषाण ।।३।।
दर्पण आंधा आगले, बहिरा आगल गीत ।
मूरख आगल रस कथा, त्रणे एकज रीत ।।४।।
ते माटे सज थई सुणो, श्रोता दीजे कान ।
बूझे तेहजे रीझवुं, लक्ष न भूले ज्ञान ।।५।।
आगे आगे रस घणों, कथा सुणंता थाय ।
हवे श्रीपाल चरित्र नां, आगे गुण कहेवाय ।।६।।

प्रिय पाठक और श्रोतागण ! अब आपके सामने पूज्य उपाध्याय यशोविजयजी श्रीपालरास का यह चौथा खण्ड प्रस्तुत कर रहे हैं। श्रोता और वक्ता ये दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। इनमें जरा भी अंतर हुआ कि सारा आनन्द किरा-किरा हो जाता है। कथा लेखक और वाचक एक जादूगर है। वह अपने आकर्षक शब्दों से क्षण में पाठक और श्रोतागण को हंसा-हंसा कर लोटपोट कर देता है, तो क्षण में लाना और क्षण में जनता की थैली से चांदी बरसाना तो उसके बांए हाथ का खेल है। मानव हृदय को चुटकियों में बदल देना ही जो वक्ता की विशेषता है ! यदि श्रोता और पाठकों में योग्यता का अभाव है, तो फिर सारा खेल चौपट ही समझियेगा।

सच है, सूरदास के आगे दर्पण, बहिरे के आगे सुरीला संगीत और भैंस (मूर्ख) के आगे भगवती बांचना ये तीनों नहीं के समान हैं। घनघोर श्याम घटाएं लाख उपाय करें फिर भी मगसेलिया तो सदा जल से दूर ही रहता है।

## चौथा खण्ड-पहली ढाल

(धन दिन वेला, धन घड़ी तेह)

रहियो रे आवास दुवार, वयणा सुणे श्रीपाल सुहामणो जी।
कमलप्रभा रे कहे एम, मयणां प्रति मुज चित्त ए दुःख घणों जी ॥१॥
विंटी छे ए परचक्र, नगरी सघलाइ लोक हिल्लोलिया जी।
शी गति होशे इण ठाम, सुतने सुख होजो बीजी घोलियो जी ॥२॥
घणां रे दिवस थया तास, वालिम तुज जे गयो देशांतरे जी।
हजीय न आवि कोई शुद्धि, जीवे रे माता दुखणी किम नवि मरे जी ॥३॥

**कौन क्या कहता है?** :– उज्जयिनी में चारों ओर भारी हलचल मच गई। घर-घर यही एक चर्चा थी, कि अब प्रजापाल की कुशल नहीं। देखो! दूर-दूर तक अपार सेना पड़ी है। न मालूम कब युद्ध छिड़ जाय। इधर कुंवर जब घर पहुंचे तो तो उस समय अंदर कोई बोल रहा था। वे चुपचाप कान लगाकर सुनते रहे। देखें कौन क्या कहता है?

मयणासुंदरी ने अपनी सास की पगचंपी करते हुए कहा – माताजी! आज आपका स्वास्थ्य कैसे है? कमलप्रभा ने धीरे से कहा – कुछ नहीं बेटी! पहाड़ सी चिन्ता सिर पर सवार है। नगर में जनता के प्राण मुट्ठी में आ रहे हैं। अब हमारा क्या होगा? मुन्ना घर पर है नहीं। आज तक उसका कुछ भी पता नहीं। भगवान उसको कुशल रखे। मेरा हृदय धक-धक कर रहा है। अब तो मेरे लाल (श्रीपाल) के बिना जीना बेकार है।

मयणा रे बोले म करो खेद, म धरो रे भय मन मां परचक्रनों जी।
नवपद ध्याने रे पाप पलाय, दुरित न चारो छे ग्रह वक्रनों जी ॥४॥
अरि करि सागर हरि ने व्याल, ज्वलन जलोदर बंधन भय सवे जा।
जाय रे जपतां नवपद जाप, लहे रे संपत्ति इह भवे परभवे जी ॥५॥

बीजा रे खोजे कोण प्रमाण, अनुभव जाग्यो मुझ ए वातनो जी ।
हुओ रे पूजानो अनुपम भाव, आज रे संध्याए जग तातनो जी ॥६॥
तद्गत चित समय विधान, भावना वृद्धिभव भय अति घणो जी ।
विस्मय पुलक प्रमोद प्रधान, लक्षण ए छे अमृत क्रिया तणो जी ॥७॥
अमृतनो लेश लह्यो इक बार, बीजुं रे औषध करवु नवि पड़े जी ।
अमृत क्रिया तिम लही इक वार, बीजा रे साधन विण शिव नवि अड़े जी॥ ॥
एहवो रे पूजा मां मुज भाव, आव्यो रे भाव्यो ध्यान सोहामणों जी ।
हजिय न माय मन आणंद, खिण खिण होये पुलक निकारणों जी ॥९॥
फरके रे वाम नयन उरोज, आज मिले छे वालिम माहरो जी ।
बीजुं रे अमृत क्रिया सिद्धि रूप, तुरत फले छे तिहां नवि आंतरो जी ॥१०॥
कमलप्रभा कहे वत्स साच, ताहरी रे जीभे अमृत वसे सदा जी ।
ताहरूं रे वचन होशे सुप्रमाण, त्रिविध प्रत्यय छे ते साध्यो मुदाजी ॥११॥

**अद्भुत आनंद का अनुभव:**—मयणासुन्दरी माताजी! भय मानव का भयंकर शत्रु है। इसे तो जड़ से निर्मूल कर देना ही ठीक है। श्रीसिद्धचक्र-आराधक मानव से ग्रहपीड़ा, सर्पभय, समुद्र की कठिनाइयाँ, शत्रुओं का भयंकर आतंक, हाथी, सिंह, अग्नि प्रकोप, दरिद्रता, बन्धन और अनेक शारीरिक रोग सदा कोसों दूर रहते हैं। अनेक संकटों से छुटकारा पाने का एक ही अमृत कण रामबाण उपाय है, सिद्धचक्र का नामस्मरण। फिर तो, चिंता का टोकरा सिरपर लादे लादे फिरना व्यर्थ है।

आज मुझे सायंकाल श्रीसिद्धचक्र की दीपक पूजन करते समय एक ऐसे अनुपम अद्भुत आनन्द का अनुभव हुआ, कि मैं आनन्दविभोर हो गई। संभव है, यह हमारी। मनोकामना की सफलता और मुक्ति का ही संकेत अमृत[1] क्रिया हो। अब तक मुझे। हर्ष से रोमांच हो रहा है।

माताजी! आज सुबह से मेरा बांया नेत्र और स्तन फड़क रहा है। इससे निश्चित ही मुझे आपके कुंवर के दर्शन होंगे। कमलप्रभा ने कहा—मयणा! धन्यवाद! बेटा तेरी

---

१ अमृत क्रिया के लक्षणः—अनायास मन की स्थिरता, प्रसन्न चित्त, अनुपम अपूर्व आनन्द, भव-भय से मुक्ति की प्रबल कामना, रोमांच और एक विशिष्ट विचारधारा की जागृति का होना ही अमृत क्रिया है॥

वाणी में अमृत है। श्रीसिद्धचक्र के भजन बल से तेरा वचन टल नहीं सकता है। आज मैं निःसंदेह अपने लाल का चाँद सा मुखड़ा देख फूली न समाऊंगी।

करवा रे वचन मियानुं साच, कहे रे श्रीपाल ते बार उघाडिये जी।
कमलप्रभा कहे ए सुतनी वाणी, मयणां कहे जिनमत न मुधा हुये जी॥१२॥
उघाडियां बार नमे श्रीपाल, जननी नां चरण सरोज सुहंकरु जी।
प्रणमी रे दयिता विनय विशेष, बोलावे तेहने प्रेम मनोहरु जी ॥१३॥
जननी रे आरोपी निज खंध, दयिता रे निज हाथ लेई रागसुं जी।
पहोंता रे हार प्रभावे राय, शिविर आवासे उलसित वेगसुं जी ॥१४॥
बेसाड़ी रे भद्रासनें नरनाथ, जननी प्रेमें इणी परे वीनवे जी।
माताजी देखो ए फल तास, जपियां में नवपद जे सुगुरु दीया जी ॥१५॥
बहुरो रे आठे लागी पाय, सासुने प्रथम प्रिया मयणा तणे जी।
तेहनी रे शीस चड़ावी आशीष, मयणा रे आगे वात सकल भणे जी॥१६॥
पूछे रे मयणा ने श्रीपाल, ताहरो रे तात अणावुं किण परे जी।
सा कहे कंठे धरीय कुहाड़, आवे तो कोई आशातना नवि करे जी ॥१७॥
कहेवराव्युं दूत मूखे तिण वार, श्रीपाले ते राजा ने वयणवुं जी।
कोप्यो रे मालव राय ताम, मंत्री रे कहे नवि कीजे एवडुं जी ॥१८॥
चोथे रे खंड पहिली ढाल, खण्ड साकर थी मीठी ए भणी जी।
गाये जे नवपद सु-जस विलास, कीरति वाधे जगमां तेह तणी जी ॥१९॥

**मां के चरणों में:**—आज श्रीपालकुंवर प्रत्यक्ष अपनी मां का प्यार और पत्नी का हार्दिक प्रेम देख मंत्र-मुग्ध हो गये। मयणासुन्दरी के वचन को सार्थक करने का अवसर वे क्यों चुकने लगे। "एक पंथ दो काज" उन्होंने द्वार खट-खटाया। मां! कमलप्रभा वर्षों के बाद अपने लाल की अमृत-वाणी सुन हर्ष से उछल पड़ी। उसने दौड़कर द्वार खोला। पुत्र भी मां के चरणस्पर्श कर कृतार्थ हो गया। मां के प्यार के आगे, स्वर्ग भी तुच्छ है। मयणासुन्दरी अपने प्राणेश्वर की चरण धूली मस्तक पर चढ़ाकर फूली न समाई पश्चात् कुंवर कुछ समय विश्राम कर अपने दिव्याहार

के प्रभाव से कमलप्रभा और मयणासुन्दरी को साथ ले वे शीघ्र ही चुपचाप अपने शिविर में लौट गये ।

सूर्योदय हुआ, शिव के चारों ओर शहनाइयाँ और नगाड़ों की ध्वनि से आकाश गूंज उठा ( कण्ठ-कोकिल गवैये भैरवी, प्रभातियाँ आलाप रहे थे ( कमलप्रभा सिंहासन पर बैठीं थीं, सहसा उसकी आँखों के सामने एक अतीत का धुंधला चित्र खिंच गया। अरे ! एक दिन चपटी चून ( आटे ) का भी ठीकाना न था, बेटे की दवा के लिये मुझे गांव गांव भटकना पड़ा । किन्तु मेरे घर मयणा का पैर पड़ते ही, लीला लहर हो गई । वह ( मन ही मन ) धन्य है ! धन्य है ! ! बेटी तू साक्षात् लक्ष्मी है, तेरे ही मार्गी दर्शन से तो मेरा मुन्ना ( श्रीपाल ) फला फूला है । वह अपने बेटे का प्रत्यक्ष अनूठा ठाट-पाट देख फूली न समाई ।

श्रीपालकुंवर—पूज्य माताजी ! प्रणाम । कुंवर की नवीन स्त्रियों ने सास के पैर छुए ।—बेटा, " दूध पूत से आंगन भरा रहे बृद्ध, सुहागन हो " कमलप्रभा ने अपनी नववधुओं को आशीर्वाद दिया । पश्चात् कुंवरने मां को बड़े प्रेम से अपने लंबे प्रवास का वर्णन सुनाकर कहा—माताजी ! मैं श्रीसद्गुरु की कृपा और महाप्रभाविक श्रीसिद्धचक्र के भजन से निहाल हो गया । अधिक क्या कहूँ ! मैं जहाँ भी गया वहाँ पौ बारह, पच्चीस ही था । कमलप्रभा–बेटा ! यह सारा सारा श्रेय मयणा को है ।

श्रीपाल–प्रिये कहो ! अब तुम्हारे पिताश्री से किस तरह भेंट की जाय ? एक दिन मैंने उज्जयिनी ( उज्जैन ) छोड़ी थी उस समय उपर धरती और नीचे आकाश था ! सम्राट् प्रजापाल तुमारे साथ करने में, जरा भी न चूके । फिर भीर भी वे रेख में मेख न मार सके ।

मयणासुन्दरी–प्राणनाथ ! सच है, समय निकाल जाता है, बात याद रह जाती है । मैं मानती हूं कि माता, पिता और बड़े भाई तीर्थ स्वरूप हैं, किन्तु इस समय पिताश्री शिक्षा के पात्र हैं । क्या अभिमान के टट्टु पर सवार हो, सिद्धान्त का अनादर करना कम है ? नहीं, एक महान् अपराध है । संभव है, किसी मानव से संयोगवश जिन आज्ञा के अनुशीलन का भंग भी हो जाय फिर भी वह अपेक्षाकृत क्षम्य है, किन्तु जानबूझ कर सिद्धान्तकी अवहेलना करना तो सचमुच ही अनंत संसार, भववृद्धि का कारण है

प्राणनाथ ! संतान का भी कर्तव्य है कि वह समय पर अपने पूज्य माता-पिता की सद्गति का लक्ष्य न भूले । मेरा आप से यही अनुरोध है कि आप कृपया मेरे पिताश्री को शीघ्र ही अपने कंधे पर एक कुल्हाड़ा रख कर आपके शिविर में उपस्थित होनेका संदेश भेज दें ।

हां नाथ ! आप कहीं इसका यह अर्थ न लगा लें कि आज मयणा के दिन-मान

फिरे हैं अतः यह अपने पिता से बदला लेना चाहती है। नहीं! स्वामिन्! मेरा उद्देश्य यह है कि किसी भी प्रकार पूज्य पिताजी की आत्मशुद्धि हो जाय, तो अच्छा है।

इस निमंत्रण से जनता भी सतर्क हो जायगी कि वास्तव में सिद्धान्त की अवहेलना करना बहुत ही बुरा है। आगे से भूल कर भी कोई जैन सिद्धान्त की आशातना करने का साहस न करेगा। साथ ही भविष्य में हमारी बहन-बेटियां भी स्वच्छंदता के गहरे गर्त (खड्डे) से बाल-बाल बच जायगी।

आज श्रीपालकुंवर अपनी पत्नी के टंकसाली खरे शब्द सुन आश्चर्यचकित हो मंत्र-मुग्ध हो गये। उनका हृदय पुलकित हो उठा। वाह रे, वाह!! रानी हो तो ऐसी हो। देवि! धन्य है! धन्य है!! तुम नारी नहीं, साक्षात् लक्ष्मी हो। तुझे पाकर मैं धन्य हो गया। पश्चात् दूत श्रीपालकुंवर का संदेश ले नगर की ओर प्रस्थान कर गया

प्रजापाल राज-सिंहासन पर बैठे थे। पास ही अमीर उमराव एक-दूसरे का मुंह ताक रहे थे। सच है, जलती आग में पैर बढ़ाना बड़ी टेढ़ी खीर है। उसी श्रीपालकुंवर के दूत का संदेश सुन प्रजापाल आग बबूला हो गये। उनकी आँखों से अंगारे बरसते देख, प्रधानमंत्री ने कहा—नाथ! इस समय आपे से बाहर होना उचित नहीं।

श्रीमान् उपाध्याय यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के चौथे खण्ड की पहली ढाल संपूर्ण हुई। इस कथा में शक्कर से भी बढ़कर रस माधुर्य है। रे मानव! संसार में आकर यदि तुझे कुछ करना है, तो तू निश्चित ही श्रीसिद्धचक्र आराधना कर। सुयश और सु-प्रसिद्ध प्राप्त करने का यह एक रामबाण उपाय है।

## दोहा

मंत्री कहे नवि कोपिये, प्रबल प्रतापी जेह।
नासीने शुं कीजिये, सूरज सामी खेह ॥१॥
उद्धत उपरे आथड्य, पसरंतु पण धाम।
उल्हाए जिम दीपनुं, लागे पवन उद्दाम ॥२॥
जे किरतारे बड़ा किया, तेहशुं न चाले रीश।
आप अंदाजे चालिये, नामी जे तस शीश ॥३॥
दूत कहे ते कीजिये, अनुचित करे बलाय।
जेहनी वेला तेहनी, रक्षा एहज न्याय ॥४॥

एहवा मंत्री वयण सुणी, धरी कुहाड़ो कंठ ।
मालव नरपति आवियो, शिविर तणे उपकंठ ।।५।।
ते श्रीपाल छोड़ावियो, पहिराव्यो अलंकार ।
सभा मध्ये तेड्यो नरपति, आप्यो आसन सार ।।६।।
तव मयण निज तातने, कहे बोल जे मुज्ज ।
कर्म वशे वर तुमे दियो, तेहनुँ जुओ ए गुज्ज ।।७।।
तव विस्मित मालव नरपति, जमाउल प्रणमंत ।
कहे न स्वामी तु ओलख्यो, गिरुओ बहु गुणवंत ।।८।।
कहे श्रीपाल न माहरो, एहवो एह बनाव ।
गुरु दर्शित नवपद तणो, ए छे प्रबल प्रभाव ।।९।।
ते अचरिज निसुणी मिल्यो, तिहाँ विवेक उदार ।
सौभाग्यसुन्दरी, रूपसुन्दरी प्रमुख सयल परिवार ।।१०।।
स्वजन वर्ग सघलो मल्यो, वर्त्यो आनन्द पूर ।
नाटक कारण आदि से, श्री श्रीपाल सनूर ।।११।।

**अब भी कुछ संशय है ?** प्रजापाल के प्रधान मंत्री ने कहा-नाथ ! विजय का प्रमुख द्वार है समयज्ञता। समय के साथ चलने वाले मानव की सदा जीत है। इस समय अपने द्वार पर आगत नरेश का प्रबल पुण्योदय है। सूर्य की प्रखर किरणों से खिन्न कर उस पर धूल फेंकना क्या बुद्धिमानी है? नहीं। अन्त में धूल तो फेंकने वाले के सिर पर गिरना निश्चित है। आंधी, तूफान के सामने दीपक कब तक टिक सकता है? मानव भाग्यसे बड़ा बनता है, कहने से नहीं ! "जैसा बाजे वायरा, वैसी लीजे ओढ़"। नाथ ! मेरा आप से विनम्र अनुरोध है कि आप इस समय क्रोध न कर प्रेम से दूत की बात मान लें।

राजा प्रजापाल-मंत्रीजी ! धन्यवाद। सच है, "कभी गाड़ी नाव में तो कभी नाव गाड़ी में।" वे समय को मान देकर, उसी समय अपने कंधे पर एक कुल्हाड़ा रख, श्रीपालकुंवर के शिविर की ओर चल दिये। कुंवर उनको दूर से आते देख, वे आगे बढ़े और उनके कंधे से कुल्हाड़ा फिकवा कर सादर प्रजापाल को अपने डेरे में ले गये। वहाँ उनका बहुमूल्य वस्त्रालंकारों से सत्कार किया।

एक रमणी ने झुककर प्रजापाल से कहा—पिताजी! प्रणाम। "पिता" शब्द सुनते ही राज के कान खड़े हो गये। वे बड़े असमंजस में पड़, मन ही मन कहने लगे—अरे! एक बड़े भारी सम्राट् के घर, मेरा क्या संबंध! उन्हें मौन देख रमणी ने जरा उच्च स्वर से कहा—पिताजी! अब भी कुछ संशय है। वह अपने पति की ओर हाथ से संकेत कर के बोली—आप इनको पहचानते हैं? प्रजापाल ने श्रीपालकुंवर की सूरत को जरा ध्यान से, गौर कर के देखी तो वे धरती खुरचने लगे। उन्हें अपनी गंभीर भूल और व्यर्थ के गर्व पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे चीख पड़े—सचमुच कर्म ही प्रधान है! प्रधान है!! जमाई-राज मुझे क्षमा करें! मेरी अपवित्र आँखें आप श्रीमान को पहिचान न सकी। मयणा!! तू अपने इस अभागे पिता को एक बार क्षमा कर दे। मैंने जैन सिद्धान्त की महान् आशातना की है। बाप-बेटी का शल्य दूर हो गया। प्रजापाल ने उसी समय अपनी सौभाग्यसुन्दरी, रूपसुन्दरी दोनों रानियों को शिविर में बुला लिया। राजा-रानी वर्षों के बाद अपने बेटी-जमाई को फले फुले देख आनन्द-विभोर हो गये। एक दिन प्रजापाल ने हंसी का फुहारा छोड़ते हुए श्रीपालकुंवर से कहा—जमाई-राज! हमारे यहाँ से तो आप रीते हाथ परदेश सिधाये थे। आपका इतना ठाट-पाट जुटाते बड़ा कड़ा परिश्रम पड़ा होगा?

श्रीपालकुंवर—श्रीमानजी! घानी के बैल बनने से भी कहीं भाग खुला है? नहीं। कुम्हार के गधे दिन-रात क्या कम परिश्रम करते हैं? नहीं, बहुत अधिक। फिर भी वे बेचारे सदा राख में लोटते रहते हैं। भाग्य चमकाने का एक ही अचूक उपाय है स-विधि श्रीसिद्धचक्र आराधना करो। इसका आज प्रत्यक्ष उदाहरण मैं स्वयं आपके सामने हूँ। मालवपति प्रजापाल भी मान गये कि वास्तव में श्रीसिद्धचक्र आराधन ही सार है। पश्चात् कुंवरने परिवार के मनोरंजन के लिये बब्बरकूल के प्रसिद्ध नाटक मंडल को अभिनय का आदेश दिया।

## चौथा खण्ड - पहली ढाल

(हो जी लुंबे झुंबे बरसेलो मेह, आज दिहाड़ो धरणी तीजरो हो लाल)

हो जी पहेलुं पेडं ताम, नाचवा उठे आपणी हो लाल।
हो जी मूल नटा पण एक, नवि उठे बहु परें भणी हो लाल॥१॥
हो जी उठाड़ी बहु कष्ट, पण उत्साह न सा धरे हो लाल।
हो जी हाँ हाँ करी सविषाद, दूहो एक मुखे उचरे हो लाल॥२॥

(दोहा) किहाँ मालव किहाँ शंखपुर, किहाँ बब्बर किहाँ नट्ट।
सुरसुन्दरी नचाविये, दैवे दल विमरट्ट ॥३॥

हो जी वचन सुणी तव तेह, जननी जनकादिक सवे हो लाल।
हो जी चिंते विस्मित चित्त, सुरसुंदरी किम संभवे हो लाल ॥४॥
हो जी जननी कंठ विलग्ग, पूछो जनके रोवतीं हो लाल।
हो जी सघलो कहे वृत्तांत, जे ऋद्धि तुमे दीधी हती हो लाल ॥५॥
हो जी हुँ ते ऋद्धि समेत, शंखपुरीने परिसरे हो लाल।
हो जी पहोंती मुहूरत हेत, नाथ सहित रही बाहिरे हो लाल ॥६॥
हो जी सुभट गया केई गेह, छो छे साथे निशा रही हो लाल।
हो जी जामाता तुज नट्ठ, धाड़ी पड़ी तिहाँ हुँ ग्रही हो लाल ॥७॥
हो जी वेची मूल्ये धाड़ी, सुभटे देश नेपाल मां हो लाल।
हो जी सारथ वाहे लीध, फले लख्युं जे भाल मां हो लाल ॥८॥
हो जी तेणे पण बब्बरकूल, महाकाल नगरे धरी हो लाल।
हो जी हाटे वेची वेश, लेई शिखावी नटी करी हो लाल ॥९॥
हो जी नाटक प्रिय महाकाल, नृप नट पेटक सुं ग्रही हो लाल।
हो जी विविध नचावी दीध, मयणसेना पतिने सही हो लाल ॥१०॥

**नेपाल में बिक गई:**—आज उज्जयिनी में बब्बर कूल के कुशल कलाकारों की चर्चा सुनकर हजारों स्त्री-पुरुष झुण्ड के झुण्ड बड़े वेगसे श्रीपालकुंवर के शिविर की ओर चले आ रहे थे। सूर्यास्त होते ही विशाल रंगभूमि में पैर धरने की जगह नहीं। सामने सिंहासन पर प्रजापाल और श्रीपालकुंवर बैठे थे।

घण्टी बजी। एक सूत्रधार ने आ कर आज के अभिनय का परिचय दिया। पश्चात् रुम-झुम-रुम-झुम करती अभिनेत्रियों ने साज-बाज के साथ प्रारंभिक मंगलाचरण करना चाहा किन्तु उस समय न मालूम क्यों एक प्रमुख नवयुवती मचल गई। उसे कई

अभिनेताओं ने प्रोत्साहन दिया, बहुत कुछ कहा-सुना फिर भी वह टस से मस न हुई। अन्त में जनता को असन्तुष्ट देख उसे विवश हो उठना पड़ा। उसके पैर लड़खड़ाए, अंतर आत्मा बोल उठी, "कर्म ही प्रधान है, मानव नहीं। भाग्य एक रूई लपेटी आग है। उसने दो तीन सांस जोर से लीं। बर-बस उसके हृदय के तार झन-झना उठे:—

कहां मालव, कहां शंखपुर, कहां बब्बर कहा नट्ट।
सुन्दर नाचे तव बारणे, देखो तात! प्रकट॥

अभिनेत्री के शब्द सुन प्रजापाल के कान खड़े हो गये, कुंवर भी मौन थे, उन्हें क्या पता कि स्वयं साली सात्र मेरे साथ हैं! सच है "मान किसी का रहा जग में, समझ समझ नादान"।

आज प्रत्यक्ष सुरसुन्दरी को रानी सौभाग्य सुन्दरी की गोद में छटपटाते देख प्रजापाल की कायापलट हो गई। वे मान गये कि राजकुमारी मयणासुन्दरी का ही सिद्धान्त अटल है। मानव की दौड़ कहां तक? कर्म को शर्म नहीं।

प्रजापालः—बेटी सुरसुन्दरी! मैं कई दिनों से तुम्हें शंखपुरी की पट्टरानी के रूप में देखने को बड़ा उत्सुक था, किन्तु आज प्रत्यक्ष तुम्हारी करुण दशा देख मेरा सिर चकरा रहा है।

सुरसुन्दरी – पिताजी! कुछ न पूछो, यही जी चाहता था कि कहीं जाके डूब मरूं। सचमुच आज मुझे कुल की मर्यादा भंग और मयणासुन्दरी के उपहास का प्रत्यक्ष कटु फल मिले बिना न रहा। मैंने जिनके चरणों में अपना जीवन समर्पण किया था, वे, ही प्राणनाथ नगर के बाहर लुटेरों से अपने प्राण बचा कर, मुझे विपत्ति के मुंह में ढकेल ही नौ दो ग्यारह हो गये। पश्चात् मैं नेपाल में एक सार्थवाह (व्यापारी) के यहां बिकी, वहां भी चैन कहां! उसने भी लोभवश मुझे घुमा फिरा कर बब्बरकुल में नगर के एक चौराहे पर एक, दो, तीन कर ही दी। वहां मैं एक वेश्या के पल्ले पड़ अभिनेत्री बनी, उसके बाद कर्मने मुझे रानी मदनसेना के दहेज में दे, घर-घर नाच नचाया।

हो जी नाटक करता तास, आगे दिन केता गया हो लाल।
हो जी देखो आप कुटुम्ब, उलस्युं दुःख तुम हुई दया हो लाल॥११॥
ह जी मयणां दुःख तव देखी, निज गुरु अत्तण मद कियो हो लाल।
हो जी ते मयणा पति दास, भावे अब मुझ सल कियो हो लाल॥१२॥

हो जी एकज विजय पताक, मयणा सयणां मां लहे हो लाल।
हो जी जेहनुं शील सलील, महिमा ये मृग मद मह महे हो लाल॥१३॥
हो जी मयणा ने जिनधर्म, फलियो बलियो सुरतरु हो लाल।
हो जी मुझ मने मिथ्याधर्म, फलियो विष फल विषतरु हो लाल॥१४॥
हो जी एकज जलधि उत्पन्न, अमिय विषे जे आंतरी हो लाल।
हो जी अम बिहुं बहेनी मांही, तेह छे मत कोई पांतरो हो लाल॥१५॥
हो जी मयणा निज कुल लाज, उद्योतक मणि दीपिका हो लाल।
हो जी हुं छु कुल मल हेतु, सघन निशानी झीपिका हो लाल॥१६॥
हो जी मयणा दीठे होय, समकित शुद्धि सोहामणि हो लाल।
हो जी मुज दीठे मिथ्यात, धीठाई होय अति घणी हो लाल॥१७॥

सुरसुन्दरी–पिताजी! अधिक क्या कहूं, अब मैं संसार में मुंह बताने लायक न रही। सती साध्वी मयणा और मैं हम दोनों आप ही की तो सन्तान हैं, फिर हम दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है। मयणा अमृत है, तो मैं हलाहल विष हूं। मयणा क्षत्रिय वंश का चमकता चांद है तो मैं एक सघन अंधियारी रात हूं। मयणा के दर्शन और चरण-स्पर्श, आत्म-विकासका एक साधन है, तो मेरी छाया में बैठना भी पाप है। मयणा, सुरतरु सम जैनधर्म और श्रीसिद्धचक्र की साधना से निहाल हो गई है, तो मैं मोह ममता और अंधश्रद्धा के हेय आकर्षण में डूब मरी।

सुरसुन्दरी का हृदय गद्-गद हो गया। उसने सम्राट् प्रजापाल को बड़ी नम्रता से कहा—पिताजी! मैं अपने समस्त परिवार और उपस्थित नागरिकों से अपनी धृष्टता के लिये बार बार क्षमा चाहती हूं। खेद है कि आज मैं अपने परिवार का मोह संवरण न कर सकी। मेरा जीना, न जीना समान है।

मेरी प्यारी बहिन मयणासुन्दरी! इस भूतल के इतिहास में तेरे कठोर त्याग, तप, विनय, सेवा आदर्श पति-भक्ति और आत्मसंयम के विजयध्वज की ख्याति सदा के लिये स्मरणीय रहेगी। धन्य है! धन्य है!! तुझे कोटि कोटि प्रणाम है। तालियों की गड़गड़ाहट और धन्यवाद की ध्वनी से आकाश गूंज उठा।

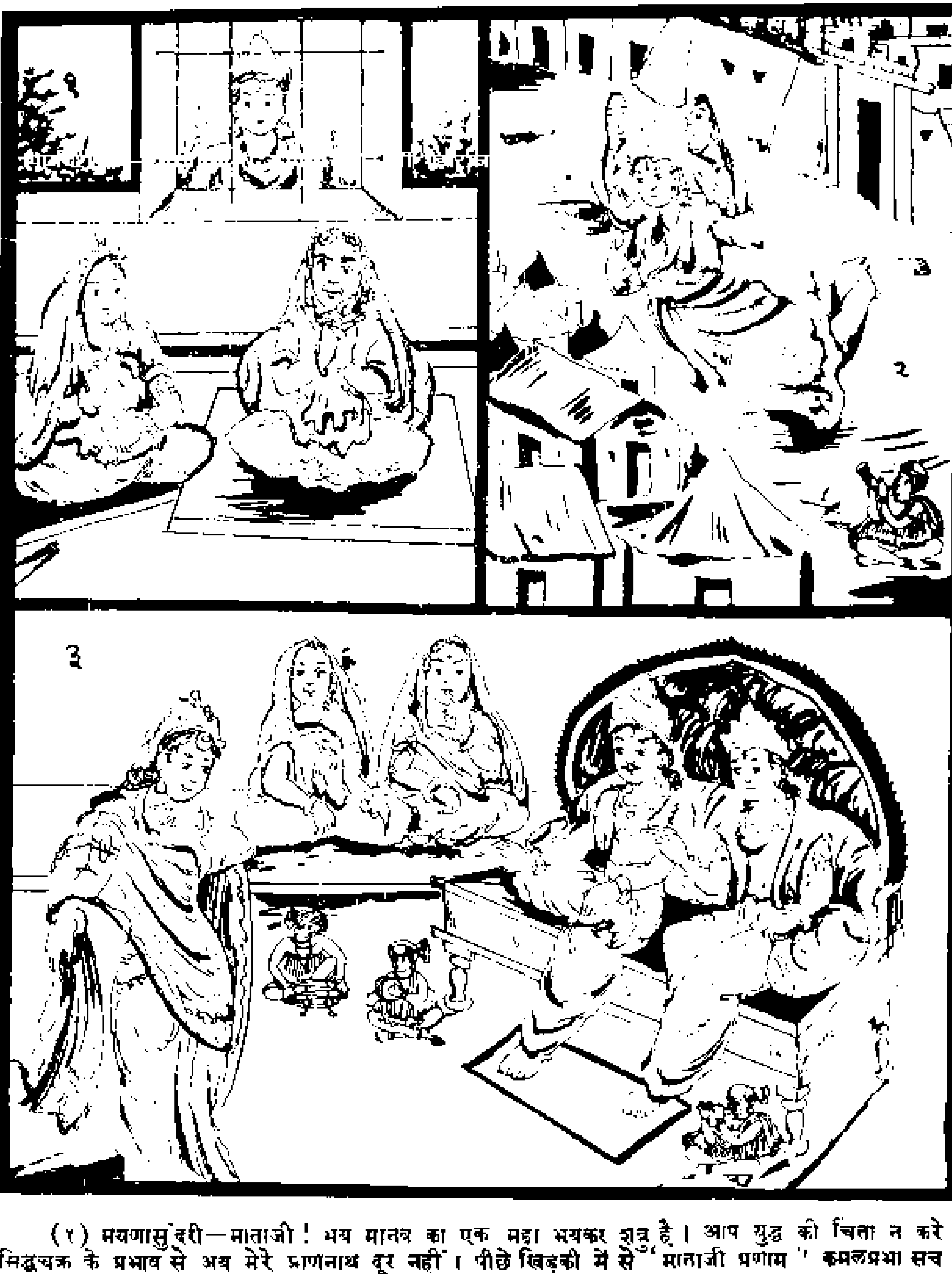


(१) मयणासुंदरी—माताजी ! भय मानव का एक महा भयंकर शत्रु है। आप युद्ध की चिंता न करें सिद्धचक्र के प्रभाव से अब मेरे प्राणनाथ दूर नहीं। पीछे खिड़की में से 'माताजी प्रणाम'' कमलप्रभा सच मुच अपने पुत्र को द्वार पर खड़ा देख आनंद विभोर हो फूली न समाई। (२) फिर श्रीपाल अपनी मां और मयणासुंदरी को साथ ले आकाश मार्ग से चुपचाप अपने डेरे पर आ गए। (४) राजसभा में एक नटी के मुंह से "कहां मालव कहां शंखपुर" की ध्वनि सुन सब के कान खड़े गए अरे यह कौन सुरसुंदरी है !!

हो जी एहवा बोली बोल, सुरसुन्दरीये उपाइयो हो लाल।
हो जी जे आनन्द न तेह, नाटक शत के पण कियो हो लाल ॥१८॥
हो जी श्रीपाले वड़वेग, हवे अरिदमन अणावियो हो लाल।
हो जी सुरसुन्दरी तसु दीध, बहु ऋद्ध बोलावियो हो लाल ॥१९॥
हो जी ते दंपती श्रीपाल, मयणा ने मु पमाउले हो लाल।
हो जी पामे समकित शुद्धि, अध्यवसाये अति भली हो लाल ॥२०॥
हो जी कुष्टी पुरुष शत सात, मयणा पणे लही दया हो लाल।
हो जी आराधी जिन धर्म, निरोगी सघला थया हो लाल ॥२१॥
हो जी ते पण नृप श्रीपाल, प्रणमें बहुले प्रेमसुं हो लाल।
हो जी राणिम दिये नृप तास, वदन कमल निन उलस्युं हो लाल ॥२२॥
हो जी आवी नमे नृप पाय, मतिसागर पण मंत्रवो हो लाल।
हो जी पूरव परे नर नाह, तेह अमात्य कियो कवि हो लाल ॥२३॥
हो जी ससरा साला भूप, माउल राजा पण घणां हो लाल।
हो जी तेहने दिये बहुमान, नृप आदरनी नहीं मणा हो लाल ॥२४॥
हो जी भाल मिलित कर पद्म, सवि सेवे श्रीपालने हो लाल।
हो जी इक दिन विनवे मंत्री, मतिसागर भूपालने हो लाल ॥२५॥
हो जी चौथे खण्डे ढाल, त्रीजी हुई सोहामणी हो लाल।
हो जी गुण गातां सिद्धचक्र, जस कीर्ति वाधे घणो हो लाल ॥२६॥

**विधि के लेख** :—नारी एक रत्न है। इस की वाणी और भ्रू-भंग में एक अनूठा आकर्षण, मोहिनीमंत्र है। सुरसुन्दरी के शब्द सुन उनके परिवार के तन में बिजली दौड़ गई। वे दांतों तले अंगुली दे एकसाथ बोल उठे—ओह ! ! यह.......सु र... सुं...द...री... है ? महाराज प्रजापाल को अपने मुंहकी खाना पड़ी। सचमुच मानव स्वयं अपना भाग्य निर्माता है। विधि के लेख मिटाये नहीं मिटते। आज का अद्भुत प्रत्यक्ष नाटक देख जनता की आँख खुल गई।

मयणासुन्दरी ने, सुरसुन्दरी को अभिनेत्री के बन्धन से मुक्त कर उसे सादर अपने गले लगा ली। पश्चात् उसे मालूम हुआ कि मेरे बहनोई राजकुमार अरिदमन भी वर्षों से हमारी सेना में दासता कर रहे हैं। अतः उसने अपने प्राणनाथ श्रीपालकुंवर से प्रार्थना कर उनको भी दासता के पाश से अलग कर दिया। बड़े ठसके के साथ हाथी के होदे तोरण मारने वाले अपने साढूसाब राजकुमार अरिदमन की करुणा दशा देख श्रीपालकुंवर का हृदय भर आया। सच है-कर्मराजा के यहाँ घूस खोरी नहीं चलती है। उसे तो समय पर मानव के शुभाशुभ का भुक्तान करना ही पड़ता है। कुंवर बड़े समयज्ञ, उदार-दयालु थे, उन्होंने उसी समय राजकुमार अरिदमन को सादर हाथी, घोड़े, रथ-पालकी, विपुल धन दे सुरसुन्दरी के साथ शंखपुर की ओर विदा कर दिया।

जनता भी मान गई कि वाह रे, वाह!! श्रीपालकुंवर वास्तव में मानव नहीं, देव है। बुराई का बदला भलाई से देने वाले विरले ही तो होते हैं। चलते समय दोनों पति-पत्नी का हृदय गद्गद हो गया आँखों में आँसू आ गये। उनकी अन्तर आत्मा बोल उठीं, हे प्रभो! हमें भव-भव में श्रीसिद्धचक्र की ही शरण हो!! जय सिद्धचक्र! श्रीपालकुंवर को धन्य है, वास्तव में साली और साढू हो तो ऐसे हो। गुरुदेव इनका भला करे।

संध्या समय कुंवर एक स्वर्ण सिंहासन पर बैठे हैं। एक द्वारपालने, मुजरा अर्ज कर कहा—महाराज! प्रधानमंत्री पधारे हैं। "उन्हें सादर अन्दर ले आओ"। वृद्ध मतिसागर ने कुंवर को प्रणाम कर के कहा—नाथ! धृष्टता के लिये क्षमा करें। खेद है कि आपके बचपन में संकट के समय मैं आपकी ज़रा भी सेवा न कर सका। श्रीपार-कुंवर—मंत्री महोदय! आपकी समयज्ञता से ही तो मुझे नवजीवन मिला, मैं फला-फूला, मुझे परम तारक प्रकट प्रभावी श्रीसिद्धचक्र महा-मंत्र की साधना का भी सुअवसर मिला। "माताजी मुझे प्यार करते समय कहा करतीं थीं कि मुन्ना! मैं महामंत्री मतिसागर की बुद्धि से निहाल हो गई, मानों तुम्हें नवजीवन मिला"। बापुजी! मैं आपका हृदय से बड़ा आभारी हूँ। आपको शत शत धन्यवाद है।

प्रधानमंत्री—कुंवरजी! आज संसार में अपने अनेक दुर्व्यसन, कुसंगत, कटु स्वभाव डंडे और वचनों से माता-पिता, परिवार के हृदय को संतप्त दुःखी करने वाले कुल-कंटक बेटे-बेटियों की कमी नहीं किन्तु आपने अपने भुजबल से मान-संमान, विपुल वैभव, उज्वल सुयश प्राप्त कर सम्राट् सिंहरथ का नाम अच्छा चमकाया। आपको मेरा कोटि-कोटि प्रणाम है। धन्य है! धन्य है!! राजकुमार! आज आपके दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया। कुलदीपक हो तो ऐसा हो। हाँ! कुंवरजी, एक ठाकुर अपने साथियों के साथ

आप से मिलने को बड़े उत्सुक हैं। कुंवरने कहा—द्वारपाल ! ठाकुर को अन्दर आने दो।

एक साथ सैकड़ों मनुष्य जय सिद्धचक्र ! जय सिद्धचक्र !! का नारा लगाते हुए, शिबिर में आए। आज वर्षों के बाद अपने साथी सात सौ कुष्टियों को देख श्रीपालकुंवर का हृदय पुलकित हो उठा। उन्होंने "जय सिद्धचक्र !" कह कर उनका स्वागत किया। श्रीपालकुंवर–ठाकुर ! आज आप लोगों से मिलकर मुझे अति प्रसन्नता हुई। अब आप लोगों का स्वास्थ्य कैसे है ? बूढ़े ठाकुरने अपने साथियों की अनुमति ले बड़ी नम्रता से कहा, राणाजी ! हम लोग राजमाता भगवती मयणासुन्दरी के हृदय से बड़े आभारी हैं, इनकी परम कृपा से हमें नवजीवन मिला। आपने हम पर श्रीसिद्धचक्र का प्रक्षालन जल छिटका है, तब से हम बड़े स्वस्थ और प्रसन्न हैं।

**आनंद की खोज**:–श्रीपालकुंवर ने हंस कर कहा—देवि ! सत्य है। इन लोगों के मुंह पर स्पष्ट लाली और प्रसन्नता झलक रही है। मयणासुन्दरी—नाथ ! स्वास्थ्य और प्रसन्नता साध्य नहीं साधन हैं। सम्यग्दृष्टि मानव के हृदय में, इनका कोई मूल्य नहीं।

ठाकुर—माताजी ! सम्यग्दृष्टि किसे कहते हैं ? मयणासुन्दरी-ठाकुर ! "आनन्द की खोज अपनी आत्मा में करो"। यह मानव जीवन के अभ्युदय का सत्य और सरल मार्ग है। इसी का नाम तो सम्यग्दृष्टि है। भौतिक सुख की लालसा में भटकने वाले व्यक्ति को मिथ्यादृष्टि कहते हैं। ठाकुरने मयणासुंदरी से कहा—माताजी ! धन्यवाद ! आज हमें एक यह नया पाठ मिला। सचमुच बाहर की चमक-दमक में सुख नहीं सुखाभास है।

श्रीपालकुंवर ने प्रधान मंत्री मतिसागर और अपने साथियों की तथा निकट के संबंधियों की सद्भावना, उन के आदर्श विचार देख, उन्हें सादर अपनी राजसभा में राणा, उमराव, प्रधानमंत्री, कामदार आदि उच्च पदों पर नियुक्त कर दिया। सभी लोग बड़ी श्रद्धा, भक्ति और सचाई के साथ श्रीपालकुंवर की सेवा करने लगे।

श्रीमान् उपाध्याय यशोविजयजी कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के चौथे खण्ड की दूसरी ढाल संपूर्ण हुई। श्रीसिद्धचक्र की सविधि-आराधना करने वाले पाठक और श्रोतागण को सहज ही मान-सम्मान और सुयश की प्राप्ति होती है।

## दोहा

मति सागर कहे पितृ पदे, ठवियो बालपण जेण।
उठावियो तो तुज अरि, ते सही दिल्ल अमेण ॥१॥

अरि कर गत जे नवि लिये, शक्ति छते पितृ रज्ज ।
लोक बल फोक तस, जिम शारद घन गज्ज ॥२॥
ए बल ए ऋद्धि ए सकल, सैन्य तणो विस्तार ।
शुं फलशे जो लेशो नहीं, ते निज राज उदार ॥३॥
नृप कहे साचुं ते कह्युं, पण छे चार उपाय ।
सामे होय तो दण्ड श्यो, साकरे पण पित्त जाय ॥४॥
अहो बुद्धि मंत्री भणे, दूत चतुरमुख नाम ।
भूप शिखावी मोकल्यो, पहोतो चंपा ठाम ॥५॥

**हस्त-गत कर लें:**—प्रधानमंत्री मतिसागर ने कहा—कुंवरजी! जीवन भी एक समस्या है। "सब दिन सरीखे न होय"। एक दिन चंपा नगर से राजमाता कमलप्रभा आपको अपनी छाती से लगा, भयंकर अटवी में भागी थी। वह घटना याद आते ही मेरे रोमांच खड़े हो जाते, आँखों के सामने अन्धेरा छा जाता था, किन्तु आज आपका धवल सलोना चांद-सा मुख, विनम्र शांत-स्वभाव, बल-पराक्रम, निर्मल तर्क बुद्धि और अतुल वैभव देख मेरे हृदय की कली-कली खिल गई, नयन तृप्त हो गये। अब मेरा आप से यही एक विनम्र सादर अनुरोध है कि आप शीघ्र ही अपनी बपौती चम्पानगरी को अपने हस्तगत कर लें। यदि आप साधनसंपन्न होकर भी एक विश्वास-घाती राजा अजितसेन को परास्त न करेंगे तो जनता आपको क्या कहेगी? श्रीपालकुंवर का भुजबल, पराक्रम, अतुल वैभव शरद ऋतु के मेघ के समान निष्फल, आडंबर मात्र है।

श्रीपालकुंवर—मंत्री महोदय! धन्यवाद। आपका सुझाव ठीक है। गत वस्तु को लौटाने के चार उपाय हैं, साम[1], दाम, दण्ड और भेद। पहले सप्रेम राजा अजित से अपने अधिकार की मांग की जाय। उन्हें बिना सूचना दिये रक्त-पात, जनसंहार करना उचित नहीं। "उतावला सो बावला"। प्रधानमंत्री—कुंवरजी! धन्यवाद। सच है, यदि शक्कर देने से ही पित्तशमन हो जाय तो, फिर भला कटु औषध को क्यों छुएं! उसी समय चतुरमुख दूत अपने स्वामी श्रीपालकुंवर के आदेश से चम्पानगर की ओर प्रस्थान कर गया।

---

१ साम—सप्रेम। दाम—भूमि का बटवारा आदि का प्रलोभन। दण्ड—डण्डे के बल लड़ झगड़ कर, भेद—अपने शत्रु के घरमें आपसी मत-भेद कलह पैदा कर अपना काम निकालना।

# चौथा खण्ड–तीसरी ढाल

(राग,- बंगला, किसके चेले किसके पूत)

अजितसेन छे तिहाँ भूपाल, ते आगल कहे दूत रसाल, साहिब सेविये।
कला शीखवा जाणी बाल, जेते मोकलीयो श्रीपाल, सा. ॥१॥
सकल कला तेणे शीखी सार, सेना लई चतुरंग उदार, सा.।
आव्यो छे तुज खंधनो भार, उतारे छे ए निरधार, सा. ॥२॥
जीरण थंभ तणो जे भार, नवि ठवीजे ते निरधार, सा.।
लोके पण जुगतुं छे एह, राज देई दाखो तुमे नेह, सा. ॥३॥
बीजुं पयपंकज तस भूप, सेवे बहु भक्ति अनुरुप, सा.।
तुमे नवि आव्या उपायो विरोध, नवि असमर्थ छे तेहसुं शोध, सा. ॥४॥

खट-मिठे, चटपटे :—राजा अजितसेन की राजसभा में नये-पुराने समाचारों की चर्चा चल रही थी। चतुरमुख दूतने आकर सम्राट् को प्रणाम करके कहा—महाराज! आपने सुना होगा कि राजकुमार श्रीपाल विदेश का प्रवास कर अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ सानन्द वापस उज्जयिनी में पधार गये हैं। उन्होंने अपनी छोटी सी अवस्था में साहित्य, संगीत, धर्मशास्त्र और राजनीति आदि अनेक कलाओं का गंभीर अध्ययन किया है। आपने उन्हें बचपन से ही एक इतना अच्छा सुन्दर अवसर दिया था कि आज वे स्वयं अपने पैरों पर खड़े हो गये हैं।

अब मेरा आप श्रीमान् से सादर विनम्र अनुरोध है कि आप वृद्ध हैं, अतः अपने कंधे से चंपानगर की सत्ता का भार अलग कर, सत्ता राजकुमार को सौंप दें। "अवसर बेर, बेर नहीं आवे"। इस स्वर्ण अवसर को हाथ से न जाने दें। वृद्धावस्था का आवरण दाढ़ी-मूछें भी तो हमें यही पाठ पढ़ाती हैं कि मानव! तू भी मेरे समान मन को उज्वल कर अपनी आत्मा का कल्याण कर ले, इसी में तेरा भला है। प्रभु-भजनका रंग उज्वल हृदय पर ही तो चढ़ता है। इस जीर्ण-शीर्ण तन का क्या भरोसा? न जाने कब दगा दे दे। इन शब्दों से अब तक अजितसेन के कानों की जूं तक न रेंगी।

राजदूत चतुरमुख ने फिर अपनी चाल बदली। महाराज! आप यह न समझें कि राजकुमार श्रीपालकुंवर अकेले हैं। आज प्रत्यक्ष दूर दूर से कई राजा-महाराजा,

अमीर-उमराव, राजकुमार की चरणसेवा करना, अपना सौभाग्य मानकर बड़े वेग से उज्जयिनी की ओर बढ़ते चले आ रहे हैं। वास्तव में आप श्रीमान् को भी स्वयं राजकुमार की सेवा में पहुंचना अनिवार्य था। फिर भी हमारे महाराज, बड़े समयज्ञ विनयी हैं। वे आपको पिता की दृष्टि से देखते हैं। अतः अब उन्होंने आपसे सादर अपनी धरोहर चंपानगर की मांग की है। पराई थाती को समय पर लौटा देने आपका विशेष महत्त्व है।

किहां सरसव किहां मेरु गिरिंद, किहां तारा किहां शारदचन्द। सा.।
किहां खद्योत, किहां दिनानाथ, किहां सायर किहां छल्लर पाथ। सा. ॥५॥
किहां पंचायण, किहां मृगबाल, किहां ठींकर किहां सोवनथाल। सा.।
किहां कोद्रव किहां कूर कपूर, किहां कूकश ने, किहां घृतपूर। सा. ॥६॥
किहां शुन्य वाड़ी, किहां आगम, किहां अन्यायी, किहां नृप राम। सा.।
किहां वाघ ने, किहां वलि छाग, किहां दया धरम किहां वलि राग। सा. ॥७॥
किहां झूठ ने, किहां वलि साच, किहां रतन, किहां खंडित काच। सा.।
चढ़ते ओठे छे श्रीपाल, पड़ते तुम सरिखा भूपाल। सा. ॥८॥
जो तू नवि निज जीवित रूप तो प्रणमी करे तेहज तुट्ठ। सा.।
जो गर्वित छे देखो रज्ज, तो रण करवा थाये सज्ज। सा. ॥९॥
तस सेना सागर मांहि जाण, तुज दल साथु पूर्ण प्रमाण। सा.।
मोटासुं नवि कीजे सूझ, सवि कहे एहवुं बूझ। सा. ॥१०॥

**रणभूमि का आमंत्रण** :—"चम्पा की सत्ता" का नाम सुनते ही राजा अजितसेन के कान खड़े हो गये। उन्होंने कुछ संभल कर, झिझकते हुए कहा—चतुरमुख! कल का दूधमुहा छोकरा श्रीपाल क्या खाक चम्पा का राज्य करेगा? अनुशासन करना बड़ी टेढ़ी खीर है। आप जानते हैं, कीड़ी के पंख क्यों आते हैं? पंख प्रत्यक्ष उसकी मृत्यु का आमंत्रण है।

राजदूत को अब विवश हो कुछ कठोर शब्दों का प्रयोग करना पड़ा। उसने कहा—राजेन्द्र! कहाँ मेरु पर्वत, कहाँ राई का दाना; कहाँ शरद-चन्द्र, कहाँ मन्द तारे; कहाँ चमकता सूर्य, कहाँ बेचारा जुगनू; कहाँ क्षीरसागर, कहाँ गंदा नाला; कहाँ केशरी सिंह, कहाँ हिरण का नन्हा बच्चा, कहाँ सोनेका थाल, कहाँ मिट्टी का फूटा

ठीकरा, कहां सुगंधित भात, कहाँ सड़ा धान्य, कहाँ मोतीचूर कहाँ सूखा टुकड़ा, कहाँ राम, कहाँ रावण, कहां सुंदर उद्यान, कहां उजड़ा वन, कहां सिंह, कहां बकरा, कहाँ अहिंसा, कहां हिंसा, कहां धर्म, कहां पाप, कहां सच, कहां झूठ, कहां दिन, कहां रात, यही बदला, राजकुमार श्रीपालकुंवर और आप श्रीमान् के भाग्य और पुरुषार्थ में है।" मेरा आप से अन्तिम यही अनुरोध है कि राजकुमार के सैनिक-दल के आगे आपका सैनिक-दल आटे में नमक जितना भी नहीं है। यदि आपको अपने प्राणों से कुछ मोह है तो आप अति शीघ्र नत मस्तक होकर चम्पा का राज्य महाराजाधिराज श्रीपालकुंवर को सौंप दें। नहीं तो अन्तिम परिणाम क्या होगा? रणभूमि का आमंत्रण।

बोली एम रह्य जब दूत, अजितसेन बोल्यो थई भूत राजा नहीं मले।
कहजे तू तुझ नृपने एम, दूत पणानो जो छे प्रेम, रा० चम्पानगरी त
राय, राजा नहीं भले ॥११॥
आदि मध्य अंते छे जाण, मधुर आम्ल कटु जेह प्रमाण, राजा नहीं भले।
भोजन वचने सम परिणाम तिणे चतुरमुख ताहरुं नाम। राजा नहीं भले ॥१२॥
निज नहीं तेह अणारो कोउ, शत्रु भाव वहिये छे दोउ। रा० जीवतो मुक्यो।
जाणी रे बाल, तेणे अमें निर्बल, सबल श्रीपाल। राजा नहीं मले ॥१३॥
निज जीवित ने हु नहीं रुठ, रुठ्यो तस जमराय अपूठ। राजा नहीं मले।
जेणे जगाड्यो सूतो सिंह, मुझ कोपे तस न रहे लीह। राजा नहीं मले।१४।
जस बल सायर साथु प्राय, जेहना बलते बीजा राय। राजा नहीं मले।
तेहमां हुं वड़वानल जाण सवि ते सोषुं न करूं काण, राजा नहीं भले॥१५॥
कहेजे दूत तू वेगो जाई, आवुँ छुं तुझ पूठे धाई, राजा नहीं मले।
बल परखीजे रण मैदान, खड़गनी पृथ्वी ने विद्यानुं दान; राजा नहीं मले॥१६॥
चौथे खंडे त्रीजी ढाल, पूरण हुई ए राग बगाल; राजा नहीं मले।
सिद्धचक्र गुण गावे जेह, विनय सुजस सुख पावे तेह; राजा नहीं मले ॥१७॥

**मैं अभी आता हूँ** :—राजदूत के शब्दों से सम्राट् अजितसेन के तन में आग लग गई। वे भड़क उठे, उन्होंने चिढ़कर कहा—चतुरमुख! आप बोलने में बड़े चतुर हैं।

आपके ये शब्द कदापि मेरे विचारों को बदल नहीं सकते हैं। आप इसी समय अति शीघ्र उज्जयिनी जा कर अपने स्वामी श्रीपाल से, डंके की चोट कह दें कि वे स्वप्न में भी चंपा की आश न रखें! आपको सिंह-केशरी अजितसेन जीतेजी कदापि सिर न झुकाएगा। श्रीपाल का और मेरा संबंध ही क्या है, मैंने उसे दया कर के जिंदा छोड़ दिया था, उसी का यह कटु फल है, कि आज वह मुझे आँख बता, गीदड़ भबकी दे कर मेरी चंपा की सत्ता हड़पना चाहता है। अजितसेन इतना डरपोक, (कायर) नहीं है, जो कि अन्य बुध्धु राजाओं के समान अपना आत्मसमर्पण कर, श्रीपाल से प्राणों की भीख मांगे। आपके स्वामी के सिर पर कालचक्र घूम रहा है, तभी तो उसने सोये सिंह (अजितसेन) को जगाकर असमय में मृत्यु को आमंत्रण दिया है। चतुरमुख! आप श्रीपाल को महासागर मानते हैं? तो आप अजितसेन को वड़वानल मानने में जरा भी शंका न करें। वीरों के भुजबल की परख रणभूमि में ही तो होती है। अरे! वड़वाग्नि तो बड़ी दगाबाज है, वह तो छुप-छुप कर जल का शोषण करती है, किन्तु अपने राम "अजित" तो अभी लपक कर प्रत्यक्ष श्रीपाल के सामने रणभूमि में आते हैं।

श्रीमान् उपाध्याय यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के चौथे खण्ड की तीसरी ढाल संपूर्ण हुई। श्रीसिद्धचक्र की आराधना करने से पाठक और श्रोतागण को सहज ही "सुयश" और "विनय" गुण की प्राप्ति होती है।

## दोहा

वचन कहे वयरी तणां, दूत जई अति वेग।
कडुओं काने ते सुणी, हुओ श्रीपाल सतेग ॥१॥
उच्च भूमि तटिनी तटे, सेना करी चतुरंगी।
चंपादिशी जई तिणे दिया, पट आवास उत्तंग ॥२॥
सामो आव्यो सबल नव, अजितसेन नरनाह।
मांहोमांही दल बिहुं, मल्या स-गरव उत्साह ॥३॥

**भुजाएं फड़क उठीं:**— श्रीपालकुंवर चतुरमुख की प्रतीक्षा में थे। संध्या समय दूतने आकर कहा — महाराजाधिराज की जय हो! श्रीपालकुंवर – चतुरमुख! कहो! क्या समाचार लाए? दूत–महाराज! मैंने राजा अजितसेन को कहा :—

भूला हुआ यदि सुबह का, आजाय शाम को ।
भूला नहीं कहा गया, उस बुद्धि निधान को ॥
कुछ सोच लो विचार लो, संदेश को अति प्रेम से ।
है महत्त्व इस में आपका, यदि दें धरोहर प्रेम से ॥

नाथ ! मैंने राजा अजितसेन को खट-मीठे चटपटे शब्दों से बहुत कुछ समझाया । फिर भी वे टस से मस न हुए । सच है, विनाश काल में मनुष्य की बुद्धि उसका साथ छोड़ देती है । अब वे समरभूमि में आ रहे हैं ।

दूत के समाचार सुन, श्रीपालकुंवर ने मुस्करा कर कहा—अच्छा, काका अजितसेन रण-फाग खेलना चाहते हैं । कोई बात नहीं । गगनभेदी रणभेरियों से आकाश गूंज उठा । हजारों सैनिक अपने दल-बल के साथ चंपानगर की ओर चल पड़े । बात की बात में चंपानगर के पास नदी के निकट एक ऊंचे टीले पर अपार शिविरों से पृथ्वी ढल गई । वीर योद्धाओं की भुजाएं फड़क उठीं ।

सम्राट् अजितसेन ने भी अपने वीर योद्धाओं को ललकार कर कहा—वीरो ! आगे बढ़ो, देखते क्या हो ! इसी समय श्रीपाल की मुट्ठी भर सेना पर टूट पड़ो । वे अति शीघ्र अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ चंपानगर की नदी के तट पर आ पहुंचे ।

## चौथा खण्ड – चौथी ढाल

( राग-कड़खा )

चंग रण रंग मंगल हुआ अति घणा, भूरि रण तूर अवि दूर बाजे ।
कौतुकी लाख देखण मल्या देवता, नाम दुंदुभी तणे गयण गाजे ॥चं. ॥१॥

उग्रता करण रणभूमि तिहां शोधिये, रोधिये अवधि करी शस्त्र पूजा ।
बोधिये सुभट कुल वंश शंसा करी, योधिये कवण तुज्ज दूजा ॥ चं. ॥२॥

चरचिये चारु चंदन रसे सुभट तनु, अरचिये चंपके मुकुट सीसे ।
सोहिये हत्थ वर वीर वलये तथा, कल्पतरु परि बन्या सुभट दीसे ॥ चं. ॥३॥

कोई जननी कहे जनक मत लाजवे, कोई कहे माहरुं बिरुद राखे।
जनक पति पुत्र तिहुं वीर जस उजला, सोहिथन जगत मां अणिय राखे॥चं.॥४॥
कोई रमणी कहे इसिय तु सहिश किम, समर करवाल शर कुंत धारा।
नयण बाणे हण्यो तुज्झ में वश कियो, तिहां न धीरज रह्यो कर विचारा॥चं.॥५॥
कोई कहे माहरो मोह तुं मत करे, मरण जीवन तुझ न पीठ छांडुं।
अधररस अमृतरस दीय तुझ सुलभ छे, जगत जय जय हेतु हो अचल खांडु॥चं.॥६॥
इम अधिक कौतुके वीर रस जागते, लागते वचन हुआ सुभट ताना।
सुरपण क्रूर हुई तिमिर दल खंडवा, पूर्व दिशि दाखवे किरण राना॥चं.॥७॥
रोपी रण थंभ संरंभ करि अति घणो, दोई दल सुभट तत्र सबल जूझे।
भूमिने भोगता जोई निज योग्यता, अमल आरोगता रण न मूझे॥चं.॥८॥

**अभिशाप है**:—सनसनाती हवा चम्पानगर के इस छोर से उस छोर तक चक्कर काट रही थी। देखो! उस एक ऊंचे टीले पर महाराजा श्रीपालकुंवर की सेना का पड़ाव है; इधर अजितसेन भी चतुरंगिणी सेना के साथ समरभूमि में पहुंच गये हैं। भगवान! भगवान!! नगर का न मालूम क्या हाल होगा। रक्त की नदी बहे बिना न रहेगी। भय से नगर में चूहेदानी में फंसे चूहों की तरह चारों ओर भग-दौड़ मच गई। जनता के प्राण मुट्ठी में आ रहे हैं।

एक ने कहा—"चोरी और सीना जोरी।" पराई धरोहर को हड़प कर समरभूमि में पैर रखना मानवता का अभिशाप है। सत की नाव तिरेगी।

**क्रोध से मुंह लाल हो गया**:—सदा भवानी दाहिनी के मंगल घोष से आकाश गूंज उठा। वीर योद्धा लोग कसुंबा (अफीम) छान छान कर अपने हथियारों का सिंदूर से पूजन करने लगे। वे अपनी लंबी मूछों पर बल देते हुए अपने अपने स्वामी की जय बोल रहे थे। चारों ओर से समरभूमि को समतल कर स्थान स्थान पर मोरचाबन्दी कर दी गई।

एक बुढिया ने एक वीर सैनिक के भाल पर तिलक कर उसकी आरती उतारी। फिर उसे आशीर्वाद दिया—बेटा! इस महासमर में तुम्हारी विजय हो, मेरे लाल! वीर प्रसूता के दूध को न लजाना।

क्षत्रिका बालक होकर जो, दुश्मन को पीठ दिखलाता है।
अपयश पाकर वह दुनियां में, जीते जी मुरदा कहाता है॥

सन्मुख आवे यदि काल कभी, फिर भी वह भय नहीं खाता है।
तीनों लोकों में वही वीर, अमरत्व परम पद पाता है॥

एक युवती ने वीर सैनिक से कहा—प्राणनाथ! स्वामीभक्ति की अग्नि-परीक्षा में विरले ही मानव खरे उतरते हैं। क्षत्रियों के लिये तो बर्छी, भाले और नंगी चमकती तलवारों के सामने अपना सीना लड़ाना एक खिलवाड़ है। आप निर्भय हो समरभूमि में कूद पड़ें। कहीं ऐसा न हो कि आप मेरे कटाक्षों का स्मरण कर इस दासी के मोह में शत्रुओं को पीठ बता दें।

वे वीर हैं जो वचन से, टल न सकें कभी।
वे वीर हैं जो शत्रु को, पीठ न दें कभी॥
प्रण वीर हैं जो प्राण की, चिंता नहीं करें।
प्रण पूर्ति में शरीर त्याग, शांति से मरें॥

प्राणेश! मैं आपको विजयी देख आपका अधर-रस से स्वागत करूंगी। यदि आप वीरगति को प्राप्त हुए तो यह दासी निश्चित ही अग्निस्नान कर, आपके साथ साथ स्वर्गलोकमें सुधा-पान का आस्वादन लेगी।

सुबह अन्धकार को चीरते हुए सूर्यदेव ने समरभूमि की ओर आँख उठाकर देखा तो क्रोध से उनका मुंह लाल हो गया। राजा अजितसेन की प्रत्यक्ष हठधर्मी, नरसंहार का उपक्रम देख उनकी अन्तर-आत्मा तिलमिला उठी—"धोखेबाजी महापाप है"। अब वे उपर से नीचे की ओर झांक झांक कर देख रहे हैं कि विजयश्री किसे वरती है।

वीरछन्द और कड़खा राग में एक अनूठी उत्तेजक शक्ति है। भाट-चारण लोग इस कला के गुरु हैं। वे समय समय पर अपनी स्वरलहरी के प्रयोग से मृतप्राय योद्धाओं के तन में प्राण फूंक देते हैं। दो दलों के बीच रण-स्तंभ (सीमा निर्धारण) लगते ही, रण-भेरी बज उठी। अजितसेन के वीर सैनिक कड़खा राग कान पर पड़ते ही बड़े वेग से श्रीपालकुंवर की सेना पर टूट पड़े।

नीर जिम तीर वरसे तदा योध घन, संचरे बग परे धवल नेजा।
गाज दलसाज ऋतु आई पाउस तणो, बीज जिम कुंत चमके सतेजा॥ चं.॥९॥
भंड ब्रह्मांड शत खंड जे करि शके, उच्छले तेहवा नाल गोला।
वरसता अग्नि रणमगन रोषे भर्या, मानुए यमतणा नयणगोला॥ चं.॥१०॥

केई छेदे शरे अरि तणां शिर सुभट, आवता केई अरिबाण झाले।
केई असि छिन्न करि कुंभ मुक्ता फले, ब्रह्मरथ विहग मुखग्रास घाले ॥ चं. ॥११॥
मद्य रस सद्य अनवद्य कवि पद्य भर, बंदि जन बिरुद थी अधिक रसिया।
खोज अरि फोजनी मोज धरीनवि करे, चमकभर धमकदइ मांही धसिया ॥चं.॥१२॥
वाल विकराल करवाल हत सुभट शिर, वेग उच्छलित रवि राहु माने।
धूलि धोरणी मिलित गगन गंगा कमल, कोटि अंतरित रथ रहत छाने ॥चं.॥१२॥
केई भट भार परि सीस वरिहार करी, रण रसिक अधिक जूझे कबंधे।
पूर्ण संकेत हित देत जय जय रवे नृत्य मनु करत संगीत बंधे ॥ चं. ॥१४॥
भूरि रणतूर पूरे गयण गड़गड़े, रथ सबल शर चकचूर भांजे।
वीर हकाय गय हय पुले चिहुं दिशे, जे हुवे शूरतम कोण गांजे ॥चं.॥१५॥
तेह खिण मां हुई, रणमही घोर तर, रुधिर कर्दम भरी अंत पूरी।
प्रीति हुई पूर्ण व्यन्तर तणा देवने, सुभटने होंश नवि रही अधूरी ॥ चं. ॥१६॥
देखी श्रीपाल भट भांजियुं सैन्य निज, उठवे तब अजित सेन राजा।
नाम मुझ राखवो जोर फरी दाखवो, सुभट विमल कुल तेज ताजा ॥ चं. ॥१६॥

होड़ ले रहे थे :—श्रीपालकुंवर को ज्ञात हुआ कि राजा अजितसेन की सेना ने हमारी सेना पर धावा बोल दिया है। फिर तो उन्हें आक्रमण करने वालों को ईंट का जवाब पत्थर से देना अनिवार्य था। प्रधान सेनापति को कुंवर का आदेश मिलते ही उनके वीर योद्धागण जय सिद्धचक्र ! जय सिद्धचक्र !! जयघोष के साथ उसी समय मैदान में कूद पड़े।

हाथी से हाथी, घोड़े से घोड़े, रथ से रथ, पैदल सेना के साथ पैदल सेना का प्रलयकारी महाभयंकर युद्ध छिड़ गया। चतुरंगिणी सेना के तुमुल युद्ध से उड़ती धूल, तीखे बाणों की बरसात से सहज ही आकाश में अन्धकार छा गया। मानों जैसे असमय में काले बादल ही उमड़ उमड़ घिर न आये हों! योद्धाओं की आपस में टकराती तलवारें और भाले कभी कभी सूर्य की किरणों के प्रकाश से सावन-भादों में चमकती बिजली से दीख पड़ते थे। तोपों से बरसते बम-गोले, प्रलयकार संदेश गर्जते बादलों से होड़ ले रहे थे। ऐसा मालूम होता था, मानों कहीं ब्रह्मांड फट न पड़े। विषैले अग्नि-बाण

परम कर्तव्य तो क्रोधित यमराज की लाल लाल आँखों का अनुकरण कर रहे थे। क्षण में समरभूमि नर मुंडों से ढक गई, चारों ओर रक्त की नदियां बहने लगीं। भाट चारणों की स्वरलहरी सुन मतवाले सैनिकों ने अंधाधुंध मारकाट मचा दी, कई पगले सनकी योद्धाओं ने तो अपने हाथ से ही अपना सिर काट कर, वे केवल धड़ से ही बड़े वेग से सिपाहियों का सफाया करते चले जा रहे थे। समरभूमि में चारों ओर लुढ़कते गुड़कते नरमुंडों को देख भूत-प्रेतों के मुंह से लारें टपकने लगीं। वे खिलखिला कर हंस रहे थे। तलवारों के झटकों से भुट्टे अनोखे उड़ते वीरों के मुंडों को आकाश में उछलते देख सूर्यदेव के प्राण मुट्ठी में आ गये। कहीं राहु मुझे आ कर ग्रस न ले। इसी भय से तो वे आकाशगंगा में कमलों की ओट लुक-छिप कर अपने प्राण बचा रहे हैं।

समरभूमि में चारों ओर गेंद के समान हाथी-घोडों के कटे सिर लुढ़कते-गुड़कते देख भूत-प्रेतों के मुंह से लारें टपकने लगीं। वे हंस हंस कर शव के रक्तपान का आस्वादन ले रहे थे। अनायास योद्धाओं की तलवारों पर लगे बहुमूल्य गजमुक्ता ब्रह्माजी के रथ में जुते राजहंसों के मन को ललचा रहे थे।

श्रीपालकुंवर के कुशल तीरंदाज सैनिक शत्रुओं के आगत बाणों को सहज ही छिन्नभिन्न कर देते थे, यह दृश्य देख अजितसेन के सैनिकों के पैर उखड़ने लगे। उन्हें भागते देख सैनिक ने कहा—अजी क्षत्रिय होकर रणभूमि से मुंह मोड़ते हो ?

क्षत्रि के बालक होकर, माता का दूध लजाते हैं।
धिक् धिक् ऐसे लोगों को, जो रण से जान चुराते हैं ॥

सेनापति के जादूई शब्द सुन श सेना के तन में आग लग गई। उनकी भुजाएं फड़क उठीं, क्रोध से उनका मुंह लाल हो गया। प्रत्येक सैनिक की आँखों में भैरु खेल रहे थे। उनके एक उच्चाधिकारी योद्धा के स्वर ने तो जलती आग में मानों घी होम दिया।

लौट चलो वीरों इन्हें हम धुंआंधार दिखा दें।
"छठी का दूध" अब तो इन्हें, खूब याद करा दें ॥
दिग्पाल चीख मारकर, थर्राये लोक पाल।
बीन बीन के इनको मार दो, भूखा है महा काल ॥

फिर तो चारों ओर बड़े वेग से बर्छी भाले और तलवारें चमकने लगीं, वीर सैनिक आँख मूंद कर एक दूसरे का सफाया करते हुए आगे बढ़ते चले जा रहे थे। घमासान युद्ध में यम

गोले और धनुष-बाण की टंकार सुन आकाश में व्यतंरादि देवी देवता दांतों तले अंगुली दें चकित हो गये। धन्य है! पुण्यवान की पुण्याई छिपी नहीं रहती है। कुंवर के बांके रणवीर योद्धाओं के सामने अजितसेन के मुट्ठी भर सैनिक टिक न सके, वे बात की बात में सभी तितर-बितर हो गए। एक सैनिक ने भागकर अजितसेन से कहा— महाराज की जय हो!

कीजिये कुछ फिकर, सब आप पर ही भीर है।
झट सोचिये तदबीर, वरना फूटती तकदीर है।

सैनिक की बात सुन के राजा अजितसेन के हाथ-पैर ठण्डे पड़ गये। उन्होंने शिविर में से बाहर निकल कर देखा तो चारों ओर घायल सैनिक भगवान! भगवान!! करते हुए अपनी अन्तिम घड़ियां गिन रहे हैं, तो कोई प्राण ले मुंह छिपाकर भाग गए। फिर भी वे हताश न हुए। उन्होंने उसी समय अपने प्रधान मंत्री को एक सभा बुलाने का आदेश दिया।

तेह इम बूझ तो सैन्य सजी जूझतो, वींटिया जत्ति सगसात राणे।
ते वदे नृपति अभिमान तजि अजित तू प्रणमी श्रीपाल हित एह जाणे ॥चं॥१७॥
मान धन जाम माने न ते हित वचन, तेह शुं जूझतो नविय थाके।
बांधियो पाड़ि करि तेह सत सय भटे, हुओ श्रीपाल यश प्रकट्यो के ॥चं॥१९॥
पाय श्रीपाल ने आणियो तेह नृप, तेणे छोड़ावियो उचित जाणी।
भूमि सुख भोगवो तात मन खेद करो, वदत श्रीपाल इम मधुर वाणी ॥चं॥२०॥
खंड चौथे हुई ढाल चौथी भली, पूर्ण कड़खा तणी एह देशी।
जेह गावे सुजश एम नवपद तणो, ते लहे ऋद्धि सवि शुद्ध लेशी ॥चं॥२१॥

**राजा अजितसेन का भाषणः**—सम्राट अजितसेन स्वर्ण-सिंहासन पर बैठे थे। आज उनके मुंह से यह स्पष्ट झलक रहा था कि इनके हृदय में मानसिक शांति नहीं, फिर भी वे राजसभा में अपने प्रधानमंत्री, अमीर-उमराव, शूरवीर योद्धाओं और राज्य कर्मचारियों के साथ बड़ी प्रसन्नता के साथ विचार विनिमय कर रहे थे। पश्चात् उन्होंने अपने एक भाषण में कहा:

वीरो! धन्य है, उन वीर योद्धाओं और देशभक्त क्षत्रियों को कि जिन्होंने स्वामी-भक्ति के लिये हंसते हंसते अपने प्राण-धनका समर्पित कर वीर-गति प्राप्त की है। हमारा भी

परम कर्तव्य है कि हम लोग भी अपने देश के लिए शीघ्र निर्भय हो मैदान में कूद पड़ें। आप लोग जरा भी न घबराएं। आगे बढ़ें। पीछे हटने का नाम न लें। राजा ने अपनी भुजा ठोक कर कहा।

भूमि पर तारे गिरें आकाश से यदि टूट कर।
चन्द्रमा से आग निकले चांदनी में फूट कर ।।
सूर्य से यदि शीत की किरणें, निकल आए तो क्या।
सिंहनी सुत भूल कर, यदि घास भी खाए तो क्या ।।
किन्तु फिर भी "अजित" रण से लौट सकता नहीं।
आपके सु-योग से ही, मेरी विजय होगी सही ।।

वीर योद्धाओं ने तालियों की गड़गड़ाहट के साथ कहा—जय हो! जय हो !! महाराजाधिराज सम्राट् अजितसेन की जय हो! हम लोग प्राणपण से आपके साथ हैं। गगनभेदी शहनाइयाँ, रणभेरी, ढोल नगाड़े वीर वाद्यों के स्वर से वीर योद्धाओं की भुजाएं फड़क उठीं। अजितसेन ने सैनिकों को धन्यवाद देते हुए कहा—

पर्वाह न मरने की, न जीने की हम करें।
कूद जाएं आग में, विजय श्रीपाल पर करें ।।

अजितसेन बड़े वेग से अपनी सेना ले श्रीपालकुंवर की सेना पर टूट पड़े। अब की बार तो कुंवर के छक्के छूट गये। फिर भी वे लोग जय सिद्धचक्र !! जय सिद्धचक्र !! जय घोष के साथ प्राण पण से लड़ते रहे। क्षण में रणभूमि मरघट बन गई।

इधर कुंवर के सैनिकों के पैर उखड़ते देख सातसौ राणा अपनी सेना लेकर उनकी सहायतार्थ वहाँ आ पहुंचे। उन्हें देखते ही राजा अजितसेन के थके मांदे योद्धाओं के देवता कूच कर गए। फिर तो वे लोग चुपके चुपके एक के बाद एक खिसकने लगे। अन्त में गिनती के सैनिकों के बल पर अकेले राजा अजितसेन कर ही क्या सकते थे? राणा की सेना ने उन्हें अतिशीघ्र चारों ओर से घेर लिया। एक राणा ने आगे बढ़ कर राजा अजितसेन से कहा:

**जय विजय का डंका** :—राजेन्द्र! क्या अन्याय की जड़ कभी पनप सकती है? कदापि नहीं। मेरा आपसे अनुरोध है कि आप शीघ्र ही अपनी हठधर्मी को तिलांजली दे, पराई धरोहर लौटा दें। आप इसमें जरा भी " मीन, मेष " न करें। अकारण व्यर्थ ही नर

संहार के पाप का बोझ सिर पर लादने से क्या लाभ? याद रखो! एक दिन इसका बदला चुकाते समय आपको "लेने से देना भारी होगा।"

राजा अजितसेन बड़ी दुविधा में पड़ गये। यदि वे रणभूमि से मुंह मोड़ते हैं तो क्षत्रित्व के सिर कलंक का टीका लगना निश्चित है। आगे बढ़े भी तो "निर्बल की दौड़ कहां तक"? उनका सिर चकराया। राणा की सीख पर पानी फिरते देर न लगी। वे आवेश में आ अपनी राजपूती पर उतर गये। अन्त में वे शीघ्र बन्दी बना लिये गये। ये समाचार क्षण में चारों ओर प्रसारित होते ही महाराजाधिराज श्रीपालकुंवर की जय-विजय डंका बजने लगा।

आज चंपानगर के निकट समरभूमि में महाराजाधिराज श्रीपालकुंवर की अध्यक्षता में जय-विजय महोत्सव बड़े समारोह के साथ मनाया गया। सम्राट् ने युद्ध-विजय की बधाई देने वाले भाट, चारण, राजदूतों को विपुल धन दे निहाल कर दिया। एक उच्चाधिकारी ने कुंवर को प्रणाम करके कहा—महाराज की जय हो! देव! सेनापति महोदय, बंदीको साथ ले, सेवा में उपस्थित हो रहे हैं। कुंवर सिंहासन से उठे और उन्होंने आगे बढ़कर राजा अजितसेन को बंधन से मुक्त कर दिया।

श्रीपालकुंवर – पूज्य काकासाहब!

मैं धृष्टता के लिये क्षमा चाहता हूँ। अब मेरा सादर अनुरोध है कि आप सहर्ष चंपा का राज्य करें। आपका यह बालक सत्ता का भूखा नहीं। संभव है, अब तो आपने मुझे ठीक तरह से परख ही लिया ना? अजितसेन लज्जा से धरती में गढ़े जा रहे थे। उनका उत्तर था आँसू के गरम गरम दो बिन्दु।

श्रीमान् उपाध्याय यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के चौथे खण्ड की चौथी ढाल कड़खा वीररुंद में संपूर्ण हुई। श्रीसिद्धचक्र की विशुद्ध मनोयोग से साधना करने वाले प्रिय पाठक और श्रोतागण को विपुल ऋद्धि सिद्धि सुख सौभाग्य की प्राप्ति होती है।

## दोहा

अजितसेन चिंते कर्युं, अविमास्यु में काज।
वचन न मान्युं दूतनुं, तो न रही निज लाज ॥१॥
आप शक्ति जाणे नहीं, करे सबल शुं जूझ।
सुहित वचन माने नहीं आपे पडे अबूझ ॥२॥

किहां वृद्ध पण हुं सदा, पर द्रोह करवा पाप।
किहां बाल पण ए सदा, पर उपकार स्वभाव ।।३।।
गोत्र दोह कीरति नहीं, राज द्रोह नवि नीति।
बाल द्रोह सद्गति नहीं, ए त्रणे मुझ भीति ।।४।।
को न करे ते में कर्युं, पातिक निठुर निजाण।
नहीं बीजुं बहु पापने, नरक विना मुझ ठाण ।।५।।
एवा पण सहु पापने, उद्धरवा दिये हत्थ।
प्रव्रज्या जिनराजनी, छे इक शुद्ध समत्थ ।।६।।
ते दुःख वल्ली वन दहन, ते शिव सुख तरु कन्द।
ते कुल घर गुण गण तणुं, ते टाले सवि दंद ।।७।।
ते आकर्षण सिद्धिनुं, भव निकर्षण तेह।
ते कषाय गिरिभेद पवि, नोकषाय दव मेह ।।८।।
प्रव्रज्या गुण इम ग्रहे, देखे भवजल दोष।
मोह महामद मिट गयो, हुओ भावनो पोष ।।९।।
भेदाणी बहु पापथिति, कर्मे विवरज दीध।
पूरब भव तस सांभर्यो, रंगे चारित्र लीध ।।१०।।

**आत्मशुद्धि का मार्गः**— अजितसेन को अपनी भूल पर बड़ा खेद हुआ। (स्वगत) हाय! मैंने व्यर्थ ही घोर पाप का टोकरा अपने सिर पर लादा। यदि राजदूत चतुरमुख के संदेश को मान लिया होता तो न नरसंहार, रक्तपात ही होता और न मेरी दुर्दशा। सच है, शुभ अभिप्राय को न माननेवाले व्यक्ति को ठोकर खाना ही पड़ती है।

अहो! कहाँ यह एक शांत मूर्ति हंसमुख सीधा सादा सहृदय राजकुमार श्रीपाल और कहां मैं महापातकी एक बूढ़ा खूसट अन्न का कीट। देखो इसकी बोली में कितनी मिठास और कैसी विनम्रता है! मेरी अपवित्र आंखें इस गुदड़ी के लाल को परख न सकीं। सचमुच यह एक अनमोल हीरा है।

राजद्रोह से वध-बंधन, बच्चों के साथ कूड़कपट करने से दुर्गति और गोत्रिय बन्धुओं से ईर्षा और छल-कपट करने से अपयश की प्राप्ति होती है। मैं स्वयं इन तीनों पापों की कालिख से अपना मुंह रंग चुका हूँ। अब तो सिवाय नरकावास के इस संसार में मैं कहीं भी मुंह बताने लायक न रहा। अतीत का सिंहावलोकन करते हुए राजा अजितसेन का हृदय गद्‌गद हो गया। उनकी आत्मा तिलमिला उठीं " विश्वास-घात महा पाप "। वे आत्मशुद्धि का मार्ग खोजने लगे।

संसार एक अनंत अविराम प्रवाह है तो क्या जीव उसमें पाषाण-खंडकी भांति बहता लुढ़कता गुढकता और टक्करें खाता ही रहेगा ? क्या मानव को इस संसार में चलना ही है ? उसकी गति का कहीं विराम नहीं है ? कोई आश्रय-स्थल नहीं; कोई मंजिल नहीं ? आत्म-दर्शन एवं सहज स्वरूप की उपलब्धि ही तो इस जीव की अन्तिम मंजिल है ॥ "

राजा अजितसेन का हृदय जिनेन्द्रदेव-दर्शित त्याग की ओर आकर्षित हुआ। चारित्र में वह शक्ति है, जो नर्क निगोदादि अनेक दुःखों का अन्त कर शिवसुख (मोक्ष) रूपी वृक्ष को हरा भरा कर देती है। मुनि सातवें आठवें गुणस्थानों[1] को स्पर्श कर अपनी अति पवित्र विचारधारा के बल से बंध, उदय[2], उदीरणा और सत्ता[3] की प्रकृतियों का क्षय कर नवमें गुणस्थान में क्षपक श्रेणी से घाती कर्मों का अन्त कर केवलज्ञान तथा संपूर्ण आयुष्य भोग कर वे मोक्ष में जाते हैं। कई जीव ऐसे भी हैं जो अन्तर मुहूर्त में ही अपनी आत्म-विशुद्धी करने की क्षमता रखते हैं। कषाय[4] महा-पर्वत को चूर चूर करने में संयम ( मुनिपद ) वज्र है, नोकषाय दावाग्नि[5] को प्रशांत करने में सम्यक् चारित्र सावन भाद्रपद की वर्षा के समान है।

**जीवन का मोड़ः**– चारित्र के गुणों का बार-बार मनन-चिंतन से राजा अजितसेन की मोह दशा का रंग छूमंतर हो गया। वे बड़े वेग से आत्म-विकास की ओर बढ़ते चले

---

१. गुणस्थान:-आध्यात्मिक विकास के चढ़ाव-उतार का क्रम। २. उदय:–कर्म का फल दान उदय कहलाता है। अगर कर्म अपना फल देकर क्षय हो तो वह फलोदय और फल दिये बिना ही नष्ट हो जाए तो वह प्रदेशोदय कहलाता है। उदीरणा:–महीना-बीस दिन में वृक्ष पर पकने वाले फल को लोग भट्टी बफारा आदि से एक-दो दिन में पका लेते हैं। इसी प्रकार बंध के समय नियत हुई अवधि में कमी करके कर्म को अति शीघ्र उदय में ले आना उदीरणा है। ३. सत्ता:–कर्म बंध होने और फलोदय होने के बीच कर्म आत्मा के साथ संलग्न रहते हैं; उस अवस्था को सत्ता कहते हैं।

४. कषाय:-क्रोध, मान, माया और लोभ–इनको कषाय कहते हैं। प्रत्येक की तीव्रता के तरतम भाव की दृष्टि से चार-चार भेद है। जो कर्म उक्त क्रोध आदि चार कषायों को इतना अधिक तीव्र

जा रहे थे। अल्प समय में ही उन्हें जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ, फिर तो वे ज्ञानबल से चलचित्र के समान अपने गत भव के घटनाचक्र को देख आश्चर्यचकित हो गए। सच है, अपने संचित शुभाशुभ कर्मों को तो भोगना ही पड़ता है। अतीत के चित्रने उनकी आंखे काया पलट दी। उनके जीवन का मोड़ बदला। एक दिन श्रीपालकुंवर पर उनकी आंखें चिनगारियां बरसा रही थीं। आज वही आँखें कुंवर पर सुधा-धारा बरसा कर कृत्य-कृत्य हो गई। वे श्रीपालकुंवर से सप्रेम क्षमायाचना कर मुनि बन गए। धन्य है, धन्य है! अजितसेन राजर्षि को।

## चौथा खण्ड - पांचवीं ढाल

(थारे माथे पचरंगी पाग)

हुओ चारित्र जुत्तो समिति ने गुत्तो, विश्वनो तारूजी।
श्रीपाल ते देखी सुखी सुगुण गवेषी, मोहियो वारूजी ॥
प्रण में परिवारे भक्ति उदारे, विश्वनो तारूजी।
कहे तुज गुण थुणिये पातक हणिये, आपनां वारूंजी ॥१॥

उपसम असिधारे क्रोधने मारे, विश्वनो तारूजी।
तू मद्दव वज्जे मदगिरि भज्जे, मोटका वारूंजा ॥

बना देता है कि जिसके कारण जीव को अनंत काल तक संसार में भ्रमण करना पड़े, वह कर्म अनुक्रम से अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ कहलाता है। जिन कर्मों के उदय से उत्पन्न कषाय सिर्फ इतने ही तीव्र हों, जो कि विरति का ही प्रतिबंध कर सकें, वे अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ कहलाते हैं। जिनका विपाक देशविरति का प्रतिबन्ध न करके सिर्फ सर्व विरति का ही प्रतिबंध करे वह प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया और लोभ कहलाते हैं। जिनके विपाक की तीव्रता सर्व विरति का प्रतिबन्ध तो न कर सके लेकिन उसमें स्खलन और मलिनता ही पैदा कर सकें वे संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ कहलाते हैं।

[५] नोकषाय:—हास्य, रति, अरति, भय, शोक जुगुप्सा (घृणा) स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेद, ये नव ही मुख्य कषाय के सहचारी एवं उद्दीपक होने से नोकषाय कहलाते हैं।

माया विषवेली मूल उखेड़ी, विश्वनो तारूजी ।
ते अज्जव कीले सहच सलीले सामटी वारूंजी ।।२।।

मूर्छा जल भरियो गहन गुहरियो, विश्वनो तारूजी ।
ते तरियो दरियो मुत्ति तरीशु लोभनो वारूंजी ।।

ए चार कषाया भव तरु पाया, विश्वनो तारूजी ।
बहुभेदे खेदे सहित निकंदी, तू जयो वारूंजी ।।३।।

कंदर्पे दर्पे सवि सुर जीत्या, विश्वनो तारूजी ।
तें तें इक धक्के विक्रम मोड़ियो वारूंजी ।।

हरि नादे भाजे गज नवि गाजे, विश्वनो तारूजी ।
अष्टापद आगल, ते पण छागल, सारिखो वारूंजी ।।४।।

**छक्के छुड़ा दिये** :–राजर्षि अजितसेन पांच[१] समिति, तीन[२] गुप्ति की विशुद्ध साधना में लीन थे । श्रीपालकुंवर सपरिवार उनसे दर्शन कर आनंदविभोर हो गये । कुंवर ने सविधि गुरुवंदन करके कहा –धन्य हैं तरण तारण गुरुदेव ! "संत मुनि के दर्शन के नीच गोत्र, अशुभ कर्मों का क्षय और महान् पुण्य का बंध होता है । मुनि तीर्थ स्वरूप हैं । तीर्थदर्शन का फल तो न मालूम किस भव में मिलेगा । किन्तु संत-दर्शन अति शीघ्र सुसंस्कार, सद्बुद्धि और सद्गति प्रदान करते हैं ।" आपने उपशम की तलवार से क्रोध के छक्के छुड़ा दिये, अहंकार दमन के वज्र से जाति, बल, वैभव, कुल, ज्ञान, तप, लाभ और रूप-सौंदर्य इन आठ महामद पर्वतोंको चूर-चूर कर दिया; सरल स्वभाव की कुल्हाड़ी से विषैली माया–लता को जड़मूल से साफ कर दी; आप निस्पृहा की

---

१ पांच समितिः–पाप से बचने के लिए मन की प्रशस्त एकाग्रता, समिति कहलाती है । (१) ईर्या समिति.–जीवों की रक्षा के लिये सावधानी के साथ, चार हाथ आगे की भूमि देख कर चलना । (२) भाषा समितिः–हित, मित, मधुर और सत्य भाषा बोलना । (३) एषणा समितिः–निर्दोष एवं शुद्ध आहार ग्रहण करना । आदान निक्षेपण समिति–किसी भी वस्तु को सावधानी के साथ उठाना या रखना, जिससे किसी जीव-जन्तु का घात न हो जाय । परिष्ठानिका समिति–मल-मूत्र आदि को ऐसे स्थान पर

नाव से क्षोभ महोदधि के उस पार पहुंचे; सुर-असुर महायोद्धाओं से अजेय कामदेव को आपने ब्रह्मचर्यास्त्र से निरस्त्र कर उसे ऐसा पछाड़ा कि उसके अंग-प्रत्यंगो का पता तक न लगा, इसलिये तो कामदेव को अनंग कहते हैं। सिंह अपनी गर्जना से मतवाले हाथियों की बोलती बंद कर देता है। किन्तु अष्टापद के सामने उसे बकरी सदृश दूम दबा कर भागना कठिन हो जाता है। इसी प्रकार आपके दृढ़ मनोबल के आगे कामदेव की एक न चली, उसके हाथ पैर ठण्डे पड़ गये।

रति अरति निवारी भय पण मारी, विश्वनो तारूजी।
ते मन नवि धरियो ते हज डरियो, तुज्झथी वारूंजी॥

ते तजिय दुगंछा, शी तुज वंछा विश्वनो तारूजी।
ते पुग्गल अप्पा बिहुं परखे थप्पा लक्षणे वारूंजी॥५॥

परिसहनी फोजे तू निज मोजे विश्वनो तारूजी।
नवि भागो लागो रण जिम नागो एकलो वारूंजी॥

उपसर्ग ने वर्गे तू अपवर्गे विश्नो तारूजी।
चालतां नड़ियों तू नवि पड़ियो पाशमां वारूंजी॥६॥

दोय चोर उठंता विषम व्रजंता विश्वनो तारूजी।
धीरज पवि दंडे तेज प्रचंडे ताड़िया वारूंजी॥

नई [२] धारण तरतां पार उतरतां, विश्वनो तारूजी।
नवि मारग लेखा विगत विशेषा देखिये वारूंजी॥७॥

---

विसर्जित करना जिससे जीवोत्पत्ति न हो और किसी को घृणा या कष्ट भी न हो।

२ **तीन गुप्तिः**-इन्द्रियां और मन पर संयम रखना। अर्थात् उन्हें असत् प्रवृत्ति से हटा कर आत्माभिमुख कर लेना। **मनोगुप्तिः**-मन को अशुभ बुरे संकल्पों से अलग करना। **वचनगुप्तिः**-असत्य, कर्कश, कठोर, कष्टजनक अथवा अहितकर भाषा के प्रयोग को रोकना। **कायगुप्तिः**-शरीर को असत् व्यापारों से निवृत्त करके शुभ व्यापार में लगाना; उठने, बैठने, सोने, जागने आदि शारीरिक क्रियाओं में सावधानी रखना।

तिहां जोग नालिका समता नामे विश्वनो तारूजी।
ते जोवा मांडी उतपथ छांडि उद्यमें वारूजी ॥
तिहां दीठी दूरे आनन्द पूरे, विश्वनो तारूजी।
उदासीनता शेरी नहीं भव फेरी वक्र छे वारूजी ॥८॥
ते तू नवि मूके जोग न चूके विश्वनो तारूजी।
बाहिर ने अन्तर तुज निरन्तर सत्य छे वारूजी ॥
नय छे बहुरंगा, तिहाँ न एकंगा विश्वनो तारूजी।
तुमे नय पक्षकारी छो अधिकारी मुक्तिना वारूजी ॥९॥

**राजमार्ग है:**—परम तारक गुरुदेव ! धन्य है, आप सुख को सुख और दुःख को दुःख न मान कर सदा आत्मचिंतन में लीन रहते हैं। आपकी दिव्य, शांत, और हंसमुख मुद्रा निर्भयता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। "निर्भयता सफलता का राजमार्ग है"। आपका मन शरद् के आकाश सा स्वच्छ और हलका है, कोई दुविधा नहीं ; आप समदर्शी हैं। आशा तृष्णा और मान-अपमान तो आप से कोसों दूर है। आप भेद विज्ञान ( आत्मा और देह ये दोनों एक-दूसरे से भिन्न हैं। आत्मा नित्य है तो देह एक माटी की कच्ची गागरिया है ) के गूढ़ रहस्य को समझ कर सदा स्व-स्वभाव में रहने से निहाल हो गये हैं। सच है "अपनी विशुद्ध आत्मा का बोध होना ही तो जीवन की सब से बड़ी विजय है।"

गुरुदेव धन्य हैं ! आप बावीस[1] परिषह आदि अनेक विघ्नों की अग्निपरीक्षा में उत्तीर्ण हो, विशुद्ध संयम की साधना में स्थिर हैं। जैसे कि रणभूमि में बरसती बंदूक की

---

[1] **बावीस परिषह:**—मुनिपद ग्रहण करने के बाद चारित्र में स्थिर रहने और कर्म-बंधन का क्षय करने के लिये जो जो परिस्थिति समभाव पूर्वक सहन करने योग्य है, उसे परिषह कहते हैं। १-२ भूख और पिपासा का चाहे जितना कष्ट हो फिर भी अपने व्रत की मर्यादा के विरुद्ध आहार पानी न लेना ही क्षुधा और पिपासा परिषह है। ३-४ ठण्ड और गरमी के कष्ट को हंसते-हंसते सहन करना शीत और उष्ण परिषह है। ५ डांस, मच्छर, खटमल आदि जन्तुओं के उपद्रव को बिना रोष के सहन करना दंस मशक परिषह है। ६ मर्यादित वस्त्र में (नग्नता) समभाव पूर्वक जीवन व्यतीत करना अचेल परिषह है। ७ अपने साधना मार्ग में अरुचि के प्रसंग उपस्थित होने पर भी धैर्य से डट कर भजन करना अरति परिषह है। ८ साधक स्त्री-पुरुषों को अपनी साधना में विजातीय आकर्षण से न ललचाना स्त्री परिषह है। ९ किसी भी एक स्थान पर नियत वास स्वीकार न कर प्रभु-भजन करना चर्या परिषह है। १० किसी शांत सुंदर स्थान पर मर्यादित

गोलियों के निकट एक मस्त हाथी डट कर शत्रुओं का सामना करता है। गुरुदेव! आपने आत्मविकास के घातक, राहु–केतु (राग-द्वेष) को अपने धैर्य वज्र से चूर-चूर कर, भवसागर पार करने को अपना चरण आगे बढ़ाया।

संसार से मुक्त होने के एक नहीं अनेक मार्ग हैं। इस राजमार्ग को खोजने में अच्छे अच्छे दार्शनिक, संत-महात्माओं की बुद्धि चकरा जाती है। किन्तु आपने अपने योगबल से क्षीर–नीर (दूध और पानी) के समान अनेक विकट महा कठिन निष्फल मार्गों का परित्याग कर उनमें से एक अति महत्वपूर्ण-सरल मार्ग " अनासक्त भाव और समता " को ही अपनाया है। वास्तव में जीवन मुक्त हो, अनुपम आनंद पाने का यह एक रामबाण उपाय है। धन्य है, धन्य है। गुरुदेव! आप इस परम पवित्र राजमार्ग पर बड़े वेग से आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। आप की वाणी, व्यवहार और आचरण में अभेद सा सम्बन्ध है। सचमुच आप बाहर हैं वही अन्दर भी परम पवित्र उज्वल हैं।

तुमे अनुभव जोगी निजगुणो भोगी विश्वनो तारूजी।
तुमे धर्म सन्यासी शुद्ध प्रकाशी तत्वना वारूंजी॥
तुमे आतम दरसी उपशम वरसी विश्वनो तारूजी।
तीजो गुण वाडी थाये ते जाडी पुण्य शुं वारूजी॥१०॥
अप्रमत प्रमत न द्विविध कहीजे विश्वनो तारूजी।
जाणंग गुण ठाणंग एकज भाव ते तें ग्रह्यो वारूजी॥
तुमे अगम अगोचर निश्चय संवर, विश्वनो तारूजी।
फरस्युं नवि तरस्युं चित्त तुम केरूं स्वप्नमां वारूंजी॥११॥

---

समय तक आसन लगा कर भजन करते समय यदि कोई विघ्न आपड़े तो अपने आसन से चलायमान न होना निषद्या परिषह है। ११ कोमल या कठोर ऊंची नीची जैसी भी समय पर जगह या पाट-पाटले मिले उस पर समभाव से शयन करना शय्या परिषह है। १२ कोई व्यक्ति कितने ही कटु अप्रिय शब्द कहे उसे हंसते हंसते सत्कार वत् सहन कर लेना आक्रोश परिषह है। १३ कोई व्यक्ति ताड़न तर्जन करे उसे भी एक प्रकार की सेवा मान संयम से चलायमान न होना वध परिषह है। १४ दीनता और अभिमान न कर सिर्फ संयम निर्वाह के लिये गोचरी (मधुकरी) करना याचना परिषह है। १५ आहार लेने जाने पर यदि आहार न मिले तो उसे तपोवृद्धि मानकर संतोष कर लेना अलाभ परिषह है। १६ रोगादि कष्ट आने

तुज मुद्रा सुन्दर सुगुण पुरंदर विश्वनो तारुजी ।
सूचे अति अनुपम उपशम लीला विश्वनी वारुंजी ॥
जे दहन गहन होय अन्तर चारी विश्वनों तारुजी ।
तो किम नव पल्लव तरुवर दीसे सोहनो वारुंजी ॥१२॥

वैरागी त्यागी तुं सौभागी विश्वनो तारुजी ।
तुझ शुभ मति जागी भावठ भागी मूलथी वारुंजी ॥
जगपूज्य तुं मारो पूज्य छे प्यारो विश्वनो तारुजी ।
पहेलां पण नमियो हवे उपशमियो आदर्यो वारुंजी ॥१३॥

एम चौथे खंडे राग अखंडे संथुण्यो विश्वनो तारुजी ।
जे मुनि श्रीपाले पंचमी ढाले ते कह्यां वारुंजी ॥
जे नवपद महिमा महिमाये मुनि गावशे विश्वनो तारुजी ।
ते विनय सुजस गुण कमला विमला पावशे वारुंजी ॥१४॥

**नयविज्ञानः**—नयविज्ञान एक कला है। इस कला से अनजान मानव किसी भी पदार्थ का स्पष्ट और सही ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है। जैसे कि एक अंगुली के अग्रभाग को हम अंगुली नहीं कह सकते हैं। वैसे ही हम यह भी तो नहीं कह सकते हैं कि अंगुली नहीं है। अतः किसी भी विषय के सापेक्ष विचार निरूपण करे उसे नयविज्ञान कहते हैं।

---

पर उसे शांत भाव से सहन करना रोग परिषह है। १७ कांटे कंकर पथरीली भूमि को हंसते हंसते पार करना या उस पर आनंद से संथारा कर के लेटना तृणस्पर्श परिषह है। १८ पसीने से देह व वस्त्रादि मैले होने पर उससे घृणा न कर उपयोग पूर्वक साफ कर लेना मल परिषह है। १९ मानपमान के समय न फूलना और न दुःखी होना सत्कार परिषह है। २० प्रखर का न तो गर्व करना और न मंद बुद्धि से हताश होना प्रज्ञा परिषह है। २१ सैद्धान्तिक अध्ययन का अभिमान न कर उसके अभाव में दुर्ध्यान का त्याग करना अज्ञान परिषह है। नरक निगोद जीव-अजीव आदि पदार्थ चर्मचक्षु से अदृश्य हैं, इस में संकल्प-विकल्प उठने पर भी पूर्ण श्रद्धा रखना समकित परिषह है।

संक्षेप में नय के दो भेद हैं। द्रव्यार्थिक नय और पर्यायार्थिक नय। इनके सात भेद हैं, (१) नैगम[1] (२) संग्रह (३) व्यवहार (४) ऋजुसूत्र (५) शब्द (६) समभिरूढ़ और (७) एवंभूत-नय।

सम्राट् श्रीपालकुंवरने राजर्षि अजितसेन से कहा—धन्य है, गुरुदेव! आपने नय-विज्ञान के अनूठे तत्त्वज्ञान से अपनी आत्मा को पावन कर, आप अब मोक्ष के अधिकारी बन गये हैं।

**आत्मद्रष्टा-योगी:**—गुरुदेव! आत्मा और अहं का अन्तर जानना ही सबसे बड़ा भेद विज्ञान है। आप इस विज्ञान के एक अनुभवी तत्त्वदर्शक, गीतार्थ आत्मद्रष्टा-योगीराज हैं। आप के हृदय में शान्तरस का एक झरना बह रहा है। आपने शांतरस से चारित्र उद्यान को हरा-भरा कर दिया है, आपके प्रबल पुण्योदय की लताएं चारों ओर अपनी मीठी सुवास फैला रही हैं, सच है, यदि आपकी हृदयवाटिका में कषाय अग्नि होती तो यह चारित्र फुलवाड़ी कभी से सूख जाती। बेचारी तृष्णा पिशाचनी को तो स्वप्न में भी आपके पुण्य दर्शन दुर्लभ है। आपकी परम पवित्र उज्वल मानसिक विचारधारा हमारे चर्म चक्षुओं से परे है। आपकी महिमा अपार है। आपको यदि मैं इन्द्र की उपमा भी तो कैसे दूं? इन्द्रमहाराज तो भोगी, इन्द्रियों के दास, अव्रती हैं। आप अपनी इन्द्रियों के स्वामी, महाव्रती वीतराग महायोगीन्द्र हैं। आप महाभाग्यशाली के परम मनोहर सौम्य प्रशांत अति सुन्दर वीतराग चांद के मुखड़े को बार बार निहारने पर भी मेरे नयन तृप्त नहीं हो पाते हैं। आप कुमति डायन को निरस्त कर जीवनमुक्त, और द्रव्य भाव से निर्ग्रंथ

---

१ नैगम:—जो विचार सकल्पनात्मक लौकिक रूढ़ि या लौकिक संस्कार के अनुसरण में से पैदा होता है वह नैगम नय है। जैसे कि:—एक किसान पाली (धान्य नापने का एक पात्र) बनाने की इच्छा से जंगल में लकड़ी लेने गया। मार्ग में उसके एक मित्र ने उससे पूछा, रामु भैया! कहां चले? उसने कहा, पाली लेने जा रहा हूँ। इस समय रामु के पास न लकड़ी है और न अभी पाली ही बनी है; संकल्प मात्र को ग्रहण करे उसे उसे नैगाम-नय कहते हैं। इसके तीन भेद हैं—भूत, भविष्य और वर्तमान।

संग्रह:—जो विचार भिन्न-भिन्न प्रकार ही वस्तुओं को तथा अनेक व्यक्तियों को किसी भी सामान्य तत्त्व के आधार पर एक रूप में संकलित कर लेता है, वह संग्रह नय है। जैसे कि:—द्रव्य, घट, विद्यार्थी। इसके दो भेद हैं, सामान्य और विशेष।

व्यवहार:—जो विचार सामान्य तत्त्व के आधार पर एक रूप में संकलित वस्तुओं का व्यवहारिक प्रयोजन के अनुसार विभाग करता है वह व्यवहार नय है। जैसे कि:—आपने एक वस्त्रभंडार से केवल वस्त्र की मांग की। व्यवस्थापकजी आपको क्या देंगे? कुछ भी नहीं। आप उनसे स्पष्ट कहियेगा कि श्रीमान्जी! आप हमें एक सफेद खादी की टोपी दें। यही व्यवहार नय है। इसके छे भेद हैं—शुद्ध, अशुद्ध, शुभ, अशुभ, उपचरित और अनुपचरित।

महामुनि बन चुके हैं। आप ऐसे तो द्रव्य से छठे प्रमत्त गुणस्थान पर हैं किन्तु आपकी परम पवित्र विशुद्ध विचारधारा प्रायः अधिकतर सातवें अप्रमत्त गुणस्थान का ही स्पर्श करती रहती है। गुरुदेव गृहस्थ जीवन में आप मेरे आदरणीय काका थे, अब तो आप जगत् पूज्य परमतारक मुनि बन चुके हैं, इससे बढ़कर और हमारे परिवार का सौभाग्य और प्रसन्नता क्या होगी ? धन्य है ! धन्य है। गुरुदेव आपको हमारा त्रिकाल कोटि-कोटि वंदन हो। आपने हमारा कुल तार दिया।

श्रीमान् उपाध्याय यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के चौथे खण्ड की पांचवी ढाल सु-मधुर राग में संपूर्ण हुई। पाठक और श्रोतागण श्रीपाल-कुंवर के समान, ही साधु मुनिराजों की महिमा के गुणगान कर ऋद्धि सिद्ध विनय और सुयश प्राप्त करें।

## दोहा

अजितसेन मुनि इम थुणी, तेहने पाट विशाल।
तस अंजन गज गति, सुमति थापे नृप श्रीपाल॥
कारज कीधां आपणां, आरज ने सुख दीध।
श्रीपाले बल पुण्य ने, जे बोल्यु ते कीध॥

---

ऋजुसूत्र :—जो विचार भूत और भविष्यत् काल का विचार न करके सिर्फ वर्तमान को ही ग्रहण करता है वह ऋजुसूत्र नय है। जैसे कि:—एक लड़का अपने मां-बाप की सेवा करे, तब तो वह पुत्र है। अन्यथा नहीं। इसके दो भेद हैं, सूक्ष्म और स्थूल।

शब्द:—व्याकरण संबंधी लिंग संख्या आदि दोषों को दूर करने वाला ज्ञान-वह शब्द नय हैं। जैसे पुष्प, तारक, नक्षत्र।

समभिरूढ़:—जो विचार, शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर अर्थ भेद की कल्पना करता है वह समभिरूढ़ नय है। जैसे कि:—राजा, नृप, भूपति आदि।

एवंभूत:—जो विचार शब्द से फलित होने वाले अर्थ के घटने पर ही उस वस्तु को उसके समान है, अन्यथा नहीं वह एवंभूत नय है। जैसे कि:—मोक्ष जाने के बाद ही मानव को सिद्ध मानना-एवंभूत नय है।

सप्त-नय का विस्तृत वर्णन श्री अनुयोग द्वार सूत्र, आगमसार, नय चक्रसार, तत्त्वार्थाधिगम सूत्र आदि ग्रंथ देखियेगा।

हमारे सामने है:–राजर्षि अजितसेन का आशीर्वाद ( धर्मलाभ ) ले डेरे पर लौटते समय सम्राट् श्रीपालकुंवर का हृदय भर आया। वे अपने काका के जीवन में अचानक एक अनोखा परिवर्तन देख मुग्ध हो गये। उन्होंने एक शुभ मुहूर्त में अपने चचेरे भाई गजमति को अनेक गांवों का अधिकार दे उसे राजर्षि अजितसेन के राज्यसिंहासन पर स्थापित कर दिया। कुंवर की महान् उदारता देख जनता चकित हो उनकी भूरिभूरि प्रशंसा करने लगी। "वाह रे वाह ! बुराई का बदला भलाई से देने वाले नर विरले ही तो होते हैं।" आज हम अपने बिछुड़े सम्राट् को पाकर निहाले हो गये।

आज रानी मयणासुन्दरी अपने पति के शब्दों को "भूज बले लखमी लही करशुं सकल विशेष रे" मूर्त रूप में देख वह फूली न समाई। "धन्य है ! प्राणनाथ ! श्री सिद्धचक्र का प्रत्यक्ष चमत्कार हमारे सामने है।

## चौथा खण्ड – छट्ठी ढाल

( बलद भला छे सोरठी रे लाल )

विजयकरी श्रीपालजी रे लाल, चंपानगरीये करे प्रवेश रे सोभागी।
टाल्या लोकना सकल क्लेश रे, सो० चंपानगरी ते बनी सु-विशेष॥
शणगार्या हाट अशेष रे सो० पटकूले छाया प्रदेश रे सो०
जय जय भणे नर नारियो रे लाल॥१॥

फरके ध्वज तिहाँ चिहुं दिशे रे लाल, पग पग नाटारंभ रे सो.।
मांड्या ते सोवन थंभ रे सो. गावे गोरी आनन्द रे सो.॥
जेणे रूपे जीती छे रंभ रे सो. बंभ ने पण होय अचंभ रे सो. ज.॥२॥

सुरपुरी झंपा जेकरी रे लाल चंपा हुई तेण वार रे सो.।
मदमोद समुद्रमां सार रे सो. फल्यो साहस मानु उदार रे सो.॥
तिहां आव्यो हरि अवतार रे सो. श्रीपाल ते कुल उद्धार रे सो. ज. रे॥३॥

मोतीय थाल भरी करी रे लाल वधावे वर नार रे सो.।

कर कंकण ना रणकार रे सो. पग झांझरना झमकार रे सो.॥
कटि मेखला खलकार रे सो. बाजे मादलना धौंकार रे सो. ज. ॥४॥
सकल नरेसर तिहां मली रे लाल, अभिषेक करे फरी तास रे सो.।
पितृ पट्टे थापे उल्लास रे सो. मयणा अभिषेक विशेष रे सो० ॥
लघु पट्टे आठजे शेष रे सो. सीधो जे कीधो उद्देश रे सो. ज. ।५॥

**नगर-प्रवेशः**—आज वर्षों के बाद अपने विजयी सम्राट् श्रीपालकुंवर का शुभागमन सुन जनता हर्ष से आनन्दविभार हो उठी। नागरिकों ने अपने घर-आंगने को अशोक और केल के पत्तों से सजाया, द्वारों पर मणि–मुक्ता के झालर-तोरण लटकाए। नगर में चारों ओर प्रमुख राज्यमार्ग में सोने-चांदी के रत्नजड़ित स्तम्भों से अच्छे कलापूर्ण स्वागत द्वार बनाए। उन पर मणि माणिक्य पद्मनील मणि की वंदन वारें लटकाईं, स्थान स्थान पर बहुमूल्य रेशमी रंगबिरंगे वस्त्रों से विश्रामगृह बनाए, देखते-देखते उत्सव का एक पारावार उमड़ आया। चित्र-विचित्र वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित नरनारियों की मेदिनी सम्राट् श्रीपालकुंवर का स्वागत अभिनन्दन अभिवादन करने को नगरउद्यान की ओर चल पड़ी। शहनाईयां ढोल नगाड़े और दुंदुभियों के तुमुल घोष से आकाश गूंज उठा।

सम्राट् श्रीपालकुंवर के दर्शन होते ही नन्हीं बालिकाएं और तरुण युवतियों ने अक्षत (चांवल) कुंकुम मुक्ता और हरिद्रा (हल्दी) से चौक पूरकर बड़े मधुर स्वर में मंगल-गीतों से उनका स्वागत किया।

चंपानगर के भव्य प्रसादों पर लहराती रंग-विरंगी ध्वजा-पताकाएं झुक झुक कर कुंवर का अभिनंदन कर रहीं थीं। गजराज पर स्वर्णखचित हाथीदांत की अम्बाड़ी में मणि-छत्र के नीचे बैठे श्रीपालकुंवर मधुर मुस्कान के साथ जनता का अभिनन्दन, अभिवादन स्वीकार करने आगे बढ़ते जा रहे थे। मार्ग में नगर भवन, छज्जे, अटारी और झरोखों से उन पर अक्षत कुंकुम गंध-चूर्ण और पुष्पमालाओं की वर्षा होने लगी। उनके साथ सुन्दर रेशमी वस्त्रालंकारों से सुशोभित नटियों के भ्रू-भंग, हावभाव, रूप-सौंदर्य और माधुर गीत सुन जनता आश्चर्यचकित हो गई। नगर की महिलाओं के सिर पर स्वर्णकलशों से टकराती रत्न की चूड़ियों की ध्वनि कमर के कंदोरों में लगे घुंघरू और उनके पैरों के पायल, नूपुरों की झंकार सुन ब्रह्मदेव भी देखते रह गये। अरे! इन महिलाओं का सर्जन क्या मेरे हाथों से हुआ है? इनके आगे तो इन्द्र की परियाँ भी पानी भरती हैं। मुझे तो आज पता चला!

**अभिनन्दन** :—श्रीपालकुंवर भी अपने भजन-बल से इन्द्र से चमक रहे थे। उनके दल बल और स्वागत के ठाट-पाट से चंपानगरी सुरपरी (अलका) सी देख पड़ती थी। राजमहल के द्वार पर महिलाओं ने अपने कमल-से कोमल हाथों से राजा-रानी की आरती उतारी और उन्हें मणि-मुक्तओं से बधाकर अन्दर प्रवेश कराया। श्रीपालकुंवर– प्रिय उपस्थित सज्जनो ! माताओ एवं बहिनो ! आज वर्षों के बाद आप लोगों से मिलकर मेरा हृदय फूला नहीं समाता है। आज मैं एक अपार आनन्द का अनुभव कर रहा हूँ। संभव है, मेरे पिताश्री के स्वर्गवास के बाद आपको अनेक संकटों का सामना करना पड़ा होगा, फिर भी आज आपने मेरा तन-धम-धन से भव्य स्वागत कर, एक आदर्श स्वामीभक्ति का परिचय दिया। इसके लिये मैं आपका हृदय से बड़ा आभारी हूँ, अभिनन्दन करता हूँ।

नगर के उच्चाधिकारी, अमीर, उमराव, जनता, श्रीपालकुंवर का विनम्र स्वभाव, प्रतिभा और प्रखर बुद्धि देख मंत्र मुग्ध हो गए। उन्होंने बड़े ही समारोह के साथ फिर से दुबारा कुंवर का राज्याभिषेक कर उन्हें सम्राट पद से अलंकृत कर, रानी मयणासुन्दरी को पट्टरानीपद प्रदान किया। शेष रानियों को भी क्रमशः बहुत से अधिकार दे उन्हें सम्मानित किया। कुंवर ने एक दिन कहा था कि "करशुं सकल विशेष"। सचमुच आज प्रत्यक्ष उनकी प्रतिज्ञा सफल हुई।

**एक मंत्री मतिसागरु रे लाल, तीन धवल तणा जे मित्तरे सो.।**
**ए चारे मंत्री पवित्तरे सो. श्रीपाल करे शुभ चित्तरे सो.।**
**ए तो तेजे हुओ आदित्त रे सो. खरचे बहुलो निज वित्तरे सो. जय०॥६॥**
**कोसंबी नयरी थकी रे लाल, तेड़ाव्यो धवलनो पुत्तरे सो.।**
**तेनु नाम विमल छे युत रे सो. तेह सेठ कर्यो सु मुहूत्त रे सो.।**
**सोवन पट्ट बंध संयुत्त रे सो. कीधा कोष ते अखय सुगुत्त रे सो. जय० ॥७॥**

श्रीपालकुंवर ने मंत्रीमंडल में अपने पुराने मंत्री मतिसागर और धवलसेठ को सद्बुद्धि देने वाले उनके तीन मित्रों को ही स्थान दिया। तथा कोसंबीनगर से धवलसेठ के पुत्र विमलशाह को बुलाकर उसे बड़े ही समारोह के साथ शुभ मुहूर्त में बहुमूल्य सिरोपाव दे, नगरसेठ बनाया। विमलशाह ने भी बड़ी बुद्धिमानी से कुंवर के विपुल धन की अभिवृद्धि और संरक्षण करने में कमी न रखी।

मंत्री मतिसागर ने अजितसेन के समय की प्रजा की सारी कठिनाईयों को दूर करने के लिये कुंवर के हाथों से शुभ मार्ग में अपार धनराशि व्यय करवा कर उनका नाम चमका दिया। सौभाग्यशाली श्रीपालकुंवर की सदा जय हो! जय हो!! मंत्री और नगरसेठ हों तो ऐसे हों।

उत्सव चैत्य अठाइयाँ रे लाल, विरचाये विधि सार रे सो.।
सिद्धचक्रनी पूजा उदार रे सो. करे जाणी तस उपगार रे सो.॥
तेनो धर्मी सहु परिवार रे सो. धर्मे उल्लसे तस दार रे, सो. जय० ॥८॥
चैत्य करावे तेहवा रे लाल, जेह स्वर्ग शुं मांडे वाद रे, सो.।
विधुमंडल अमृत आस्वाद रे सो. ध्वज जीहे लिये अविवाद रे सो.॥
तेणे गाजे ते गुहिरे नाद रे, सो. मोडे कुमतिना उन्माद रे, सो. जय० ॥९॥
पड़ह अमारी वजाविया रे लाल, दीधा दान अनेक रे, सो.।
साचविया सकल विवेक रे, सो. समकितनी राखी टेक रे, सो.॥
न्याये राम कहायो ते छेक रे, सो. ते राज हंस बीजा भेक रे सो. जय० ॥१०॥
अचरिज एक तेणे कर्युं रे लाल, मनगुप्त गृहे हुता जेह रे, सो.।
कर्णादिक नृप ससनेह रे, सो. छोड़ाविया सघला तेह रे सो.॥
निज अद्‌भूत चरित अछेह रे सो. देखावी निज गुण गेह रे सो. जय० ॥११॥
श्रीपाल प्रताप थी तापियो रे लाल, विधि शयन करे अरविन्द रे, सो.।
करे जलधि वास मुकुंद रे, सो. हर गंग धरे निसपंद रे, सो.॥
फरे नाठा सूरज चन्द रे, सो. अरि सकल करे आक्रंद रे, सो. जय० ॥१२॥
तस जस छे गंगा सारिखो रे लाल, तिहां अरि अपजस सेवाल रे, सो.।
कपूर मांहे अंगार रे, सो. अरविंद मांहे अलि बाल रे, सो.॥
अन्य-अन्य संयोग निहाल रे, सो. दिये कवि उपमा ततकाल रे, सो.॥१३॥

**विकास की ओर :**—श्रीपालकुंवर के हाथ में चंपा का शासन आने के बाद नगर में जनता के कई आपसी मन मुटाव, झगड़े-टन्टे सहज ही निपट गए। उनकी

नई नई योजनाओं से चारों ओर राज्य का भारी विकास और जनता का उपकार हुआ। कुंवर ने शिक्षा विभाग, व्यापारिक प्रगति, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ आध्यात्मिक विचारधारा को भी न भुलाया।

नगर में स्थान स्थान पर प्रत्येक मन्दिरों में बड़े ही समारोह के साथ अठाई उत्सव और श्रीसिद्धचक्र की पूजन प्रभावनाएं होतीं। आश्विन शुक्ला और चैत्र शुक्ला में उनके साथ हजारों स्त्री-पुरुष बड़ी श्रद्धा-भक्ति से श्रीसिद्धचक्र-ओली करते। अब तो जनता के हृदय में यह दृढ़ श्रद्धा बैठ गई थी कि "मानव के रूठे भाग्य को चमकाने का श्रीसिद्धचक्र की स-विधि आराधना ही" एक अचूक उपाय है।

श्रीपालकुंवर का स्थापत्य-शिल्पकला के विकास की ओर भी अच्छा लक्ष्य था। उन्होंने दूर दूर से अच्छे निपुण कलाकारों को बुलाकर कई सुन्दर गगनचुंबी सौधशिखरी नूतन जिन मन्दिर बनवाए, कई प्राचीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया, उनकी प्रतिष्ठाएं करवाई। मन्दिरों के शिखरों पर पवन से उड़ती ध्वजाएं तो आकाश से बातें कर रही थी कि हम कहीं चन्द्र की सुधा-किरणों के आस्वादन से वंचित न रह जायं। लहराती ध्वजाए अपने हाथों को लंबा कर कह रही थी कि—

रे मानव ! तू अपने इस चंचल जीवन का गर्व न कर, जीवन क्षण-पल घड़ियों में कण-कण विखर कर अवश बह रहा है। तू अति शीघ्र अपने इस प्रमादी जीवन का मोड़ बदल दे, जिन समान जिनेन्द्र प्रतिमा के दर्शन ही तो तेरा सत्य स्वरूप है। तू सुख की खोज में बाहर न भटक, आत्मचिंतन कर। वीतराग दशा का प्रमुख साधन है, वीतराग दर्शन।

**नाम ही भूल गये** :—श्रीपालकुंवर की राजसभा में सदा अतिथि-सत्कार की धूम मची रहती थी, कुंवर बड़े प्रेम और श्रद्धा-भक्ति से छोटे-बड़े अतिथि को उनकी आवश्यकतानुसार वस्त्र, पात्र, औषध और भोजनादि प्रदान कर उनका आदर-सत्कार करते थे, उनके द्वार से कदापि कोई व्यक्ति खाली हाथ न लौटता था। सच है गृहस्थ के द्वार से किसी अतिथि का रीते हाथ लौट जाना बड़ा अमंगल है। इसी कारण कुंवर की कीर्ति बड़े वेग से देश के कोने कोने में फैल गई। नगर में बड़े-बूढ़े स्त्री-पुरुष अपने घरों और चौपालो में बैठ बातें किया करते, सचमुच कुंवर की दानवीरता से लोग राजा कर्ण का नाम ही भूल गए। अर्थात् उन्हें अनेक युगों के बाद जनता के हृदय के बन्धन से अब सदा के लिये छुटकारा मिल गया। इस प्रकार वे जनता का न्याय भी ऐसा करते थे कि उनके उचित न्याय से लोगों को उनकी राजा

राम के साथ तुलना करने में जरा भी संकोच न होता था। जनता माटी भक्षक मेढ़कों के समान अपराधी रक्षपती घूंस खोर राजाओं के सामने श्रीपालकुंवर को राजहंस की दृष्टि से देखती थी।

**पवित्र गंगा है:**—श्रीपाकुंवलर ने अपने राज्य में चारों ओर डंके की चोट स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि "आराम से जीओ और जीने दो।" वे किसी निरपराध जीवों की हिंसा करने वाले व्यक्ति को अति कठोर दण्ड दिये बिना कदापि न चूकते। उन्होंने ऐसे अनेक शुभ कार्यों से शासन-प्रभावना कर एक महान् आदर्श प्रस्तुत किया। सच है, अधिकारों को पाकर उनका सदुपयोग करने से ही तो सम्यग्दर्शन की विशुद्धि होती है

श्रीसिद्धचक्र के भजन-बल से श्रीपालकुंवर का आत्मबल इतना अधिक बढ़ गया था कि उस दिव्य तेज के सामने संसार की कोई शक्ति टिक नहीं सकती थी। यहाँ कवि कल्पना करता है कि पुराण-साहित्य में तीन देवों को प्रधान माना है। "ब्रह्मा, विष्णु और महेश"। इनको भी सम्राट श्रीपालकुंवर के प्रचण्ड प्रताप (तेज) से बचन के लिये अनेक उपाय करना पड़े। जैसे कि ब्रह्माजी को कमल के फूल की ओट लेना पड़ी, विष्णु भगवान ने समुद्र का आश्रय लिया; कैलाशपति शंकर महादेव को अपने मस्तिष्क का संतुलन बनाए रखने के लिये सिर पर गंगाजी को धारण करना पड़ा। चन्द्र-सूर्य तो आज भी प्रत्यक्ष दिन-रात घूमते-फिरते देख पड़ते हैं। कुंवर के नाम से ही उनके शत्रु-गण ची बोल, भागने लगते। कुंवर की जय-विजय की यशःश्री पवित्र गंगा है तो उनके शत्रुदल की हार अपयश की एक गन्दी कंजी है। कधिक क्या कहूँ, कुंवर ने देश के विकास और जन-जन की भलाई के लिये जो कार्य किये हैं वे उज्वल कपूर के समान हैं तो अन्य स्वार्थी—लालची राजा-महाराजाओं की सेवा का प्रदर्शन काला कोयला है। अर्थात् सम्राट् श्रीपाल के कार्य कमल-फूल के समान जनता को सुखद थे तो अन्य धूर्तों की सेवा के आश्वासन श्यामल भ्रमरों के समान महा दुःखद थे।

**सुरतरु स्वर्ग थी उतरी रे लाल, गया अगम अगोचर ठाम रे सोभागी,**
**जिहां कोई न जाणे नामरे, सो. तिहां तपस्या करे अभिराम रे सो.**
**जब पाम्युं अद्भूत ठाम रे सो. तस कर अंगुली हुआ ताम रे सो. जय० ॥१४॥**
**जस प्रताप गुण आगलो रे लाल, गिरुओ ने गुणवन्त रे सो.**
**पाले राज महंत रे सो. वयरी नो करे अन्तरे सो.**
**मुख पद्म सदा विकसत रे सो. लीला लहेर धरंत रे सो. जय० ॥१५॥**

मेरु मवजे अंगुले रे लाल, कुश अग्रे जलनिधि नीर रे, सो. ।
फरसे आकाश समीर रे सो. तारागण गणित गंभीर रे, सो. ।
श्रीपाल सुगुणनो लीट रे, सो. ते पण नवि पामे धीर रे, सो. जय. ॥१६॥
चौथे खंडे पूरी थई रे लाल, ए छट्ठी ढाल अभंग रे, सो. ।
उक्ति ने युक्ति सुचंग रे, सो. नवपद महिमानो रंग रे, सो. ।
लही ये ज्ञान तरंग रे, सो. वली विनय सुयश सुख संग रे, सो. जय. ॥१७॥

**देना नहीं जानते**:—एक बार देवलोक में वहाँ के कल्पवृक्षों को उल्टे पैर दूम दबाकर भागना पड़ा। क्यों कि वे बिना हाथ पसारे किसी को एक घास का तिनका भी देना नहीं जानते। सच है, "दे दिया सो दूध बराबर और मांग लिया सो पानी"। किसी के बिना मांगे, बिना कहे-सुने, दूसरों की भलाई के लिये अपनी संपत्ति का सदुपयोग करना ही तो श्रीमन्ताई की सार्थकता है।

बेचारे कल्पवृक्षों ने वर्षों तक अज्ञातवास भोगा, कठिन तपश्चर्याएं की तब कहीं उन्हें अपनी आत्मशुद्धि के फल स्वरूप श्रीपाल के हाथों में अंगुलियाँ बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अतः अब ये गत जन्म के कल्पवृक्ष ही अंगुलियों के रूप में दिन-रात धारा प्रवाही दान देते थकते नहीं। "ठोकर लगने से ही तो मानव में बुद्धि आती है"। यहाँ कवि का यह अभिप्राय है कि श्रीपालकुंवर के दोनों हाथों की दसों अंगुलियों की दान प्रवृत्ति से ऐसा ज्ञात होता है मानों यह शास्त्रोक्त दस प्रकार के कल्पवृक्ष ही न हो।

उसी प्रकार सम्राट् श्रीपालकुंवर की कमल के फूल-सी खिली हंस-मुख सूरत उसका सच्चरित नैतिक साहस शत्रुओं के मान-मर्दन की क्षमता, तत्परता, अनुभव शासन करने की योग्यता लग्नशीलता और आध्यात्मिक आचरण आदि अपार महद् गुणों के आगे अन्य बड़े बड़े राजा-महाराजाओं के चरित्र गुण और उनकी शासन-व्यवस्था बड़ी मन्द-निरस देख पड़ती है।

आगे कवि कहता है कि अंगुली के अग्रभाग से मेरुपर्वत की ऊंचाई का अनुमान, कुश (एक प्रकार के घास) की नोंक से समुद्र के संपूर्ण जल को उलचना, विशाल नभोमंडल के समस्त तारकाओंको अंगुलियों पर गिनना और हवा के साथ उड़कर अपने हाथों से गगन-मंडल को छूना अपेक्षाकृत उतना कठिन नहीं कि महाभाग्यशाली सम्राट् श्रीपालकुंवर के अपार सद्गुणों का पार पाना।

श्रीमान् उपाध्याय यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के चौथे खण्ड की छट्ठी ढाल श्रीसिद्धचक्र महिमा दर्शक अलंकारिक शब्दों में सानंद संपूर्ण हुई। इसे पाठक और श्रोतागण सप्रेम पढ़-सुन कर सम्राट् श्रीपालकुंवर के समान ही अखण्ड सुख-सौभाग्य सु-यश और विनयादि सद्‌गुणों को प्राप्त करें।

## दोहा

एहवे राय ऋद्धि भलो, अजित सेन जसु नाम।
ओहिनाण तस उपन्युं, शुद्ध चरण परिणाम ॥ १ ॥

तिण नगरी ते आवियो, सुणी आगम उदंत।
रोमांचित श्रीपाल नृप, हर्षित हुओ अत्यंत ॥ २ ॥

वंदन निमित्ते आवियो, जननी भज्ज समेत।
मुनि नामय करिय प्रदिक्षणा, बेठो धर्म-संकेत ॥ ३ ॥

सुणवा वंछे धर्म ते, गुरु सन्मुख सु विनीत।
गुरु पण तेहने देशना, दे नय समय अधीत ॥ ४ ॥

**सन्मार्ग दर्शनः**—एक दिन सम्राट् श्रीपालकुंवर को एक बागवान ने आकर कहा—महाराज की जय हो!! नाथ! आज बागमें अवधिज्ञानी राजर्षि अजितसेन पधारे हैं। मुनि का नाम सुन कुंवर आनंदविभोर हो गए, उन्हें रोमांच हो गया। कुंवरने बधाई लाने वाले माली को विपुल धन दे उसे निहाल कर दिया। पश्चात् कुंवरने अपने प्रधान मंत्री मंडल, प्रतिष्ठित नागरिकों के साथ सपरिवार बड़े ही समारोह के साथ बाग में आये।

जनता राजर्षि के विशुद्ध संयम, सुधा-दृष्टि, तपोबल और उनकी शांत मुद्रा देख मुग्ध हो गई। सभी ने सम्राट् श्रीपालकुंवर के साथ राजर्षि को वंदन कर उन से सादर प्रार्थना की – गुरुदेव! हमें कृपया सन्मार्ग दर्शन दें।

# चौथा खण्ड-सातवीं ढाल

(राग हस्तिनाग-पुर वर भलो)

प्राणी वाणी जिन तणी तुम्हे धारो चित्त मझार रे।
मोह मुंज्या मत फिरो, मोह मुके सुख निरधार रे॥
मोह मुके सुख निरधार संवेग गुण पालीये पुण्य वंत रे।
पुण्यवंत अनंत विज्ञान, वदे इम केवली भागवंत रे॥ १॥
दश दृष्टान्ते दोहिलो मानव-भव ते पण लद्ध रे।
आरय क्षेत्रे जनम जे ते दुर्लभ सुकृत संबंध रे॥ २॥
आरय क्षेत्रे जनम हुओ पण, उत्तम कुल ते दुर्लभ रे।
व्याधादिक कुले अपनो, शु आरज क्षेत्रे अचभं रे शु. सं. ॥३॥
कुल पामे पण दुल्लहो, रुप आरोग आउ समाज रे।
रोगी रुप-रहित घणा, हीण आउ दीसे छे आज रे, हो. ॥ सं॥ ४॥
ते सवि पामे पण सही, दुलहो छे सु-गुरु संयोग रे।
सघले क्षेत्रे नही सदा, मुनि पामीजे शुभ योग रे, शु. ॥सं॥५॥

**राजर्षि का प्रवचन**:—प्रिय महानुभावो! मोह एक नशा है। मानव इस नशे में अपने विशुद्ध आत्म-स्वरूप को भूल, भौतिक सुखों की मरीचिका के पीछे भटक जाते हैं। किन्तु संसार की प्रत्येक वस्तु के मोह का अंतिम परिणाम सुखद नहीं। संपत्ति का मोह प्रायः हत्या का कारण बन जाता है। सगे-संबंधी वियोग के समय दुःख देते हैं, गगनचुम्बी-भवन भूकंप के समय मसान-घाट से डरावने लगते हैं। भांति भांति के सुख जाकर और दुःख आकर मानवों को रुलाये बिना नहीं चुकते हैं। जीवन मृत्यु दिखा कर और मृत्यु अधिक जीवित रहने की इच्छा जागृत कर स्त्री-पुरुषों के मस्तिष्क को खोखला बना देती है। हर प्रसन्नता का फूल मुर्झा कर कांटा बन जाता है। वास्तव में श्रीजिनेन्द्र देव की वाणी सत्य है कि मोह के त्यागे बिना सुख-शांति की आशा करना स्वप्न में बने करोड़पति के सुख के समान है। बाहिर न भटको। सुख की खोज अपनी अंतर आत्मा में करो।

यदि आप चुल्लग, पासग आदि दस प्रकार के *दृष्टान्तों का चिंतन-मनन करेंगे तो सचमुच आपकी अन्तरात्मा तिलमिला उठेगी। मानवभव का यह उद्देश्य नहीं कि आप जीवन भर केवल रोटी और कपड़ों से ही लड़ते रहें। अपनी विशुद्ध आत्मा को समझ, उसमें रमण करो। आत्म-स्वभाव के विज्ञान को समझे बिना आपको मानसिक शांति मिलना असंभव है।

मानों, आपको प्रबल पुण्योदय से उत्तम कुल और लंबी आयुष्य भी मिली तो क्या आप स्वस्थता और आँख, कान, नाक आदि की अपूर्णता से अपना-पराया भला कर सकते हैं ? नहीं। स्वास्थ्य, शारीरिक रूप-सौन्दर्य और सद्गुरु की सेवा के बिना मानव जीवन भव-वृद्धि का ही कारण है। सद्गुरु का सत्संग भाग्य से ही तो किसी क्षेत्र में मिलता है।

---

* **दृष्टान्त पहला:**—एक चक्रवर्ती राजा ने एक भिक्षुक पर प्रसन्न हो अपने छः खण्ड के नागरिकों को आदेश दिया कि वे उस भिक्षुक को प्रतिदिन एक ही घर से भर-पेट भोजन दें। भोजन का आरंभ सर्व प्रथम मेरे राजप्रासाद से ही होगा। उस भिक्षुक को कई नगर-उपनगरों में भोजन करते वर्षों बीत गये किन्तु उसे एक दिन भी चक्रवर्ती राजा के राजप्रासाद सा स्वादिष्ट भोजन न मिला। अतः वह भिक्षुक चाहता था कि मुझे फिर एक बार चक्रवर्ती के यहां भोजन करने का अवसर हाथ लगे। किन्तु अभी तो उसे शेष क्रमशः संपूर्ण छः खण्ड के नागरिकों के यहां भोजन करना अनिवार्य है।

श्री जिनेन्द्र भगवान का सिद्धान्त है कि संभव, है उस भिक्षुक को किसी विशेष प्रसंग और प्रार्थना से चक्रवर्ती के यहां भोजन मिल सकता है; किन्तु जो व्यक्ति प्रमाद-वश व्यर्थ ही अपना मनुष्य भव गवां देते हैं उन्हें पुनः मनुष्य भव हाथ लगना बड़ा ही दुर्लभ है।

**दृष्टान्त दूसरा:**—एक जुआरी के पास सिद्ध पासे थे अतः कोई भी खिलाड़ी उसे जीत नहीं सकते थे। श्री जिनेन्द्र भगवान का सिद्धान्त है कि किसी एक विशेष सिद्धि से उस खिलाड़ी को जीतना कोई कठिन बात नहीं किन्तु प्रमाद-वश व्यर्थ ही खोया हुआ मनुष्यभव पुनः हाथ लगना ही दुर्लभ है।

**दृष्टान्त तीसरा:**—इस भूतल पर अनेक प्रकार के धान्य पैदा होते हैं। उन समस्त धान्यों के संमिश्रण में एक मुट्ठी भर सरसों के दाने डाल कर, उसे ठीक तरह से हिला दें। फिर आप किसी एक अति वृद्धा मंद-लोचना महिला से कहें कि माताजी! आप इस धान्य के ढेर में से अति शीघ्र इन सरसों के दानों को अलग कर दें। क्या वह अंधी बुढ़िया इस कार्य में सफल हो सकेगी ? कदापि नहीं। श्री जिनेन्द्र भगवान का सिद्धान्त है कि उस धान्यराशि में से किसी विशेष प्रयोग द्वारा सरसों के दाने सहज ही अलग हो सकते हैं किन्तु जो व्यक्ति प्रमादवश व्यर्थ ही अपना अनमोल समय गंवा देते हैं, उन्हें पुनः मनुष्य भव हाथ लगना बड़ा ही दुर्लभ है।

**दृष्टान्त चौथा**—एक राजा को अपने किसी एक गुप्तचर से ज्ञात हुआ कि उसका बेटा, उसे मारकर राज्य लेना चाहता है। अतः राजा ने अपने प्राण बचाने के लिये, राजकुमार को बुला कर कहा—बेटा! अपने घर की यह रीति है कि जो व्यक्ति अपनी राजसभा में लगे एक सौ

महोटे पुण्ये पामिये, जो सद्गुरु संग सुरंग रे।
तेर काठिया तो करे, गुरु दर्शन उत्सव भंग रे, गु. सं वे.॥६॥
दर्शन पामे गुरु तणुं, धूर्त्त व्युद् ग्राहित चित्त रे।
सेवा करी जन नवि शके, होय खोटो भाव अमित्त रे, से सं ॥७॥

---

आठ कोने वाले इन एक सौ आठ स्तंभों को मुझ से बिना हारे जुए में जीत लेगा उसे मैं सहर्ष यह मेरा राज्य दे दूंगा। राजकुमार की बुद्धि चकरा गई। वह अपने पिता की बात का कुछ भी उत्तर न दे सका।

श्री जिनेन्द्र भगवान का सिद्धान्त है कि वह राजकुमार संभव है किसी विशेष साधना के बल से उस राजा को सहज ही जीत सकता है किन्तु जो व्यक्ति आत्म साधना के बिना प्रमादवश व्यर्थ ही अपना समय नष्ट कर देते है उन्हें पुनः मनुष्यभव मिलना बड़ा दुर्लभ है।

**दृष्टान्त पांचवा:**—एक जव्हरीजी परदेश से घर लौटे तब उनको मालूम हुआ कि उनके लड़कोंने उनकी बिना आज्ञा के बहुमूल्य रत्न पानी के भाव दूर देश के व्यापारियों को बेच दिये। उन्होंने बिगड़ कर अपने बेटों को आदेश दिया कि तुम लोग इसी समय जाकर व्यापारियों से मेरे रत्न वापस ले आओ। नहीं तो मैं तुम्हें अपने घर पैर न रखने दूंगा।

बेचारे भोले-भाले लड़कों ने व्यापारियों को खोजने के लिये चारों ओर भारी दौड़ धूप की किन्तु उन्हें कहीं भी उन व्यापारियों का पता न लगा। श्री जिनेन्द्र भगवान का सिद्धान्त है कि संभव है कि व्यापारियों का पता आज नहीं तो कल लग सकता है किन्तु जो व्यक्ति आत्मसाधन के बिना प्रमाद-वश व्यर्थ ही अपना समय नष्ट कर देते हैं, उन्हें फिर मनुष्य भव हाथ लगना बड़ा ही दुर्लभ है।

**दृष्टान्त छट्ठा:**—एक गांव में एक साधु और एक ठाकुर दोनों पास पास रहते थे। एक बार दोनों एक साथ रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न में पूर्ण चन्द्र को निगल गये दोनों की आंख खुली। साधु ने दौड़ कर अपने महन्तजी से कहा—गुरुजी! आज मैंने सपने में पूर्णमासी के चन्द्र को मुंह में निगला है। भोजनानन्दी महन्तजी ने कहा—बेटा! आज तुम को चकाचका तर माल मिलेगा। पांचों अंगुलियों घी में है। सचमुच उसे बस्ति में पैर रखते ही, बढ़िया घी में लथ-पथ एक रोटा मिला, उसे देखते ही साधु के मुंह से लार टपक पड़ी।

ठाकुर ने महन्त के मुंह से स्वप्न का फल सुना तो उसकी बुद्धि चकरा गई। अरे! ऐसे मांगलिक स्वप्न का बस यही मूल्य? वह चुपचाप आगे बढ़ा, उसने सविधि एक ज्ञानी गुरु के चरणों की रूपा नाणा से पूजन कर उनसे स्वप्न का फल पूछा। गुरु ने उसके विनय और विनम्र स्वभाव से प्रसन्न होकर कहा। महानुभाव! आपका अतिशीघ्र भाग्योदय होने वाला है। सचमुच उसका उपाश्रय के बाहर पैर रखना ही था कि एक हस्तिनी ने उस पर राज्याभिषेक कर उसे महा सम्राट् के पद पर पहुंचा दिया।

नगर में ठाकुर के स्वप्न लाभ की चर्चा आग, पानी की तरह बड़े वेग से चारों ओर फैल गई। साधु ठाकुर को राज्यसिंहासन पर बैठे देख आश्चर्य चकित हो गया। वह राज्य प्राप्ति की कामना से कई बार सोया और जागा किन्तु उसे दुबारा फिर पूनम का चन्द्र न दिखा।

गुरु सेवा पुण्ये लही, पासे पण बेठा मित्त रे।
धर्म श्रवण ता हे दोहिलुं, निद्रादिक दिये जो मित्त रे, नि. सं. ॥८॥
पामी श्रुत पण दुल्लही, तत्त्वबुद्धि ते नरने न होय रे।
शृंगारादि कथा रसे, श्रोता पण निज गुण खोय रे, श्रो. सं. ॥९॥

श्री जिनेन्द्र भगवान का सिद्धान्त है कि संभव है वह साधु फिर दुबारा स्वप्न में पूनम के चन्द्र को देख सकता है किन्तु जो व्यक्ति प्रमाद-वश व्यर्थ ही अपना अनमोल समय खो देते हैं, उन को पुन: मनुष्यभव हाथ लगना बड़ा ही दुर्लभ है।

**दृष्टान्त सातवां:**—मथुरा के सम्राट् जिनशत्रु की दृढ़ प्रतिज्ञा थी कि मैं अपनी राजकुमारी उसी राजकुमार को दूंगा जो कि राधावेध में सफल होगा। दूर-दूर से हजारों-लाखों राजकुमारों ने आकर तैल से भरे कड़ाव की ओर झांककर कड़ाव के निकट एक स्तंभ पर आठ चक्रों के मध्य में बड़े वेग से घूमती-फिरती राधा-लकड़ी की पुतली की आंख की काली कीकी को छेदना चाहा किन्तु उस राधावेध कला में किसी एक भी राजकुमार को सफलता न मिली। श्री जिनेन्द्र भगवान का सिद्धान्त है कि जो व्यक्ति प्रमाद- वशव्यर्थ ही अपना अनमोल समय नष्ट कर देते हैं। उनको पुन: मनुष्यभव हाथ लगना बड़ा ही दुर्लभ है।

**दृष्टान्त आठवां:**—एक कछुआ एक दिन शरद् पुनम के दर्शन कर आनन्द विभोर हो गया। वह अपने परिवार को भी शरद्-चंद्र के दर्शन कराना चाहता था। अत: उसने सागर के तल में गोता मारा और अपने परिवार को ले कर उपर लाया तो संयोग वश हवा के झोकों से जल में चारों ओर कंजी ही कंजी छा गई। अब शरद् पुनम के दर्शन करना उसके हाथ की बात नहीं सैकड़ों वर्षों में न मालूम कब ऐसा सुयोग हाथ लगे। श्री जिनेन्द्र भगवान का सिद्धान्त है कि विशेष प्रयत्न करने पर संभव है कछुआ अपने परिवार को शरद् पूनम के दर्शन करा भी दे किन्तु जो व्यक्ति प्रमाद-वश व्यर्थ ही अपना अनमोल समय खो देता है, उसे पुन: मानवभव मिलना बड़ा ही दुर्लभ है।

**दृष्टान्त नवमां:**—एक समुद्र के इस पार गाड़ी का जूड़ा और उस पर समिला (खूंटी) रखा था। संयोग वश हवा के जोरदार झोकों से दोनों बहते सागर में गुड़क पड़े। आशा नहीं कि समिला जूड़े के छिद्र में प्रवेश पा सके। श्री जिनेन्द्र भगवान का सिद्धान्त है कि संभव है किसी विशेष प्रयोग से समिला पुन: जूड़े में प्रवेश पा सकता है किन्तु जो व्यक्ति प्रमाद-वश व्यर्थ ही अपना अनमोल समय नष्ट कर देते हैं उन्हें पुन: मनुष्यभव हाथ लगना बड़ा ही दुर्लभ है।

**दृष्टान्त दशवां:**—मेरुपर्वत के ऊंचे शिखर पर चढ़ कर बड़े भारी स्तंभ के अणु-अणु बनाए, फिर उनको एक नलिका में भर कर हवा से दसों दिशाओं में फूंक-फूंक कर बिखेर दें। पश्चात् कोई कहे कि इन अणुओं का संचय कर पुन: स्तंभ बना दो। क्या स्तंभ बन सकता है? श्री जिनेन्द्र भगवान का सिद्धान्त है कि संभव है कोई सिद्ध पुरुष बिखरे हुए अणुओं से स्तंभ बना भी दे किन्तु जो व्यक्ति प्रमाद-वश व्यर्थ ही अपना अनमोल समय नष्ट कर देता है, उसे पुन: मनुष्यभव हाथ लगना बड़ा ही दुर्लभ है।

**तत्त्व कहे पण दुल्लही, सद्दहणा जाणो संत रे।**
**कोई निज मति आगल करे, कोई डावा डोल फिरंत रे को. सं. ॥१०॥**

युगलिक क्षेत्रों में तो साधु-साध्वी का सत्समागम हैं नहीं। अन्य क्षेत्रोंमें किसी दिन कोई संत मुनिराज भूले-भटके आ निकलते हैं तो आप पर आलस, मोह अवज्ञा आदि विघ्न (*तेरह काठिये) सद्गुरु की छाया तक पड़ने नहीं देते हैं। यदि आपने किसी प्रकार सद्गुरु के निकट पहुंचने का साहस भी किया तो वहाँ व्याख्यान में आपको निद्रा सतायेगी, आपका चंचल मर्कट मन चारों ओर भटकने लगेगा। आपको प्रवचन श्रवण में जरा भी आनन्द न आयेगा क्यों कि आप अनेक जन्मों से शृंगारादि विषयों के वातावरण में घुले मिले हैं। अतः तत्त्वज्ञान आपके कानों पर पड़ते ही आपके विचार बड़े डांवाडोल हो उठेंगे। श्रीवीतराग देव के तत्त्वज्ञान और सद्गुरु की शिक्षा पर दृढ श्रद्धा और अभिरुचि होना बड़ी दुर्लभ है। संभव है तत्त्वज्ञान और श्रद्धा की निर्बलता के कारण आप एक ×ठग साधु के समान आत्मश्रेय के लाभ से हाथ मलते रह जाय।

---

* **तेरह काठिया:**—१ आलस:—प्रवचन सुनने जाना है, अच्छा कल चलेंगे। इसी प्रकार प्रतिदिन कल का अन्त नहीं। २ मोह:—बच्चे को कौन संभालेगा? दवा लाना है। ३ अवज्ञा:—प्रवचन सुनें या अपना पेट पालें। ४ अभिमान:—बिना पावों निमंत्रण के कौन जाए। ५ क्रोध:—सट्टा सुरा आदि व्यसनों के त्याग का नाम सुन खीझना। ६ प्रमाद:—व्यर्थ की गप्पों में समय खोना। ७ भय:—मुनिराज के पास जाऊंगा तो वहां कुछ सौगन लेना पड़ेगें। ८ शोक:—किसी की मृत्यु का बहाना कर धर्म ध्यान से जी चुराना। ९ अज्ञान:—प्रवचन, धर्म ध्यान के समय लज्जा से इधर-उधर मुंह-छिपाना। १० विकथा:—राष्ट्रिय गप-सप, स्त्रियों के नख-शिख, खान-पान राजा महाराजाओं की भली बुरी चर्चाओं में उलझ कर धर्म-ध्यानादि का सुअवसर हाथ से खोना। ११ कंजूसी:—व्याख्यान में जाऊंगा तो वहाँ पानड़ी मांडते समय शरम में पड़ना पड़ेगा। १२ कौतुक:—मन्दिर उपाश्रय जाते समय सड़क के चौराहे पर खेल तमाशे में भटक जाना। १३ विजय:—कपड़े सिलाना, जमाईजी को बुलाना, मजदूरों से काम लेने की घट-भंजन में गुरु दर्शन, प्रवचन श्रवण आदि शुभ अवसर को हाथ से गंवाना।

× **साधु का दृष्टान्त:**—एक संत अपने शिष्य के साथ पैदल भ्रमण करते हुए, एक नगर में आये। महात्मा अच्छे विद्वान पहुंचे हुए थे। उनकी सेवा में प्रतिदिन हजारों भक्त स्त्री-पुरुष आने लगे। भक्तों के वस्त्राभूषणों की तड़क-भड़क देख उनके चेले का मन चल-विचल होने लगा। संत उसी समय इस बात को ताड़ कर वहाँ से आगे चलते बने। किन्तु चेला उनके साथ चलने में जरा आना-कानी करने लगा। उसने कहा—गुरुजी! आप मुझे सोने के कड़े पहनाओ तो मैं साथ चलूं? नहीं तो आप पधारो राम राम। ठण्डे-ठण्डे। संत ने मुस्करा कर कहा—बेटा! भौतिक

कई व्यक्ति सद्गुरु प्रवचन इस कान से सुन उस कान से निकाल देते हैं तो कई अपनी अपनी अकारण ही कषाय कर बैठते हैं।

आप विचारे पामिये, कहो तत्त्व तणो किम अन्तरे।
आलसुआ गुरु शिष्यनो इहाँ भाव जो मन वृतंत रे, म. सं. ॥११॥
बठर छात्र गज आवतां, जिम प्राप्त अप्राप्त विचार रे।
करे न तेहथी उग रे, तेम आप मति निराधार रे, ते. सं. ॥१२॥
आगमने अनुमान थी, वली ध्यान रसे गुण गेह रे।
करे जे तत्त्व गवेषणा, ते पामे नहिं संदेह रे, ते. सं. ॥१३॥
तत्त्व बोध ते स्पर्श छे, संवेदन अन्य स्वरूप रे।
संवेदन वंध्ये हुई, जे स्पर्श ते प्राप्ति रूप रे, जे. सं. ॥१४॥
तत्व ते दशविध धर्म छे, खंत्यादिक श्रमण नो शुद्ध रे।
धर्मनुं मूल दया कही, ते खंति गुणो अविरुद्ध रे, ते. सं. ॥१५॥

सुखों की चकाचौंध में भान न भूलो! अपन साधु हैं। अपने को कड़े कंठी से क्या मतलब! शिष्य को बहुत कुछ समझाया किन्तु उसके कान की जूं तक न रेंगी। संत अकेले चल दिये।

साधु बड़ा ठग चालाक था उसके पास कुछ समय में नगद नारायण का ढेर हो गया। उसने एक भक्त से कहा—सोनीजी! आप मुझे एक कड़े जोड़ बना दो। स्वर्णकार बड़ा धूर्त था उस के मुंह से लार टपक पड़ी। सच है सुनार किसी का सगा नहीं होता है। उसने मुस्कराते हुए उपर के मन से कहा। बाबा! मैं आप से धृष्टता के लिये क्षमा चाहता हूं। यह काम मुझ से न होगा। गुरु की एक दमड़ी भी खाना महा पाप है। आपका पैसा कच्चा पारा है। मैं बाल-बच्चे दार हूं। साधु—सोनीजी! घबड़ाओ मत। आप पर मुझे पूर्ण विश्वास है, तब तो आप से कहा। सुनार—बाबा! आपकी इस कृपा के लिये मैं बड़ा आभारी हूं। मैं तो यह काम कदापि नहीं करूंगा। बाजार बहुत लम्बा चौड़ा पड़ा है। आपका जो चाहे उससे आप कड़े बनवालें। यदि आपके विशेष आग्रह और प्रेम से मैं कड़े बना भी दूंगा तो मेरे भाग्य में यश नहीं। मेरी जात और सराफा बाजार मेरे विरुद्ध है। अतः वह आपको बहकाए बिना न रहेगा। संभव है आप भी उनके गाये गाये मुझ पर चिढ़ जाए और शाप दे दें फिर तो भला मैं गरीब सुनार घर का रहा न घाट का असमय में मारा जाऊं।

ठग-साधु सोनीजी की लच्छेदार चिकनी चुपड़ी बातें सुन मन्त्र-मुग्ध हो गया। उसने धूर्त सोनी की पीठ थप-थपा कर कहा—बेटा! दुनिया दीवानी है, उससे हमें क्या? "बके उसे बकने दो, अपना काम थकने दो।" साधुने तो सोने का पासा सुनार के हाथ में रख ही दिया। तुझे तो यह काम ही पड़ेगा।

**हार जाते हैं:—क्या अपनी अपनी मान्यता और संप्रदायवाद की लंबी चौड़ी बातें कर, प्रमाद करने वालों का कभी कल्याण हुआ है? नहीं। आत्म-कल्याण और सम्यक्त्व की विशुद्धि होती है, सद्गुरु के प्रवचनों पर सदा चिंतन, मनन और आचरण करने से। राग-द्वेष**

सोनीजी बाबा को दण्डवत् कर चलते बने। उसने घर जाकर समान नाप तौल की बड़ी सुहावनी एक शुद्ध स्वर्ण की और दूसरी शत-प्रतिशत पीतल की कड़ा जोड़ बनाकर तैयार की पश्चात् एक दिन उसने साधु के हृदय पर अपनी छाप जमाने को एक चाल चली, वह विशुद्ध सोने की एक बड़ी सुन्दर बेल बूटे दार कड़ा जोड़ लेकर साधु के पास पहुंचा। उसने साधु को बड़े प्रेम से दण्डवत् कर मधुर शब्दों में कहा—बाबा! ये आपके कड़े तैयार हैं, इसे आप पहन कर देखले। साधु ने आज अपने जीवन में पहली बार ही सुवर्ण के कड़े पहने थे, वह हर्ष से उछल पड़ा। उसने खिलखिला कर हँसते हुए सोनीजी को आशीर्वाद दिया बेटा तेरा कल्याण हो!

सोनी—बाबा! अभी तो इस कड़े जोड़ को उजालना शेष है। जब इन पर चमक आयेगी तब तो फिर नगर में आप ही आप देख पड़ेगें। आप भी जन्मभर याद करेंगे कि हाँ किसी भक्त ने कोई वस्तु बनाकर दी थी। साधु ने मुस्कराते हुए कड़े जोड़ सोनीजी को वापस लौटा दी। सुनार ने बड़े नखरे के साथ दो-चार पैर पीछे हट, अपने दोनों कान पकड़ कर कहा—अरे......रे ...रे राम...राम बाबा! आप यह क्या कर रहे हैं, "बिना विचारे जो करे सो पाछे पछिताय"। आप से इस दास ने पहले ही कहा था कि मेरे भाग्य में जस नहीं अतः मेरी आप से सादर विनम्र प्रार्थना है कि आप एक बार सराफे में जाकर व्यापारियों से इन कड़ों की ठीक तरह से परख करालें। यदि मेरी जात और सराफे को जरा भी ज्ञात हुआ कि मैंने आपकी कुछ सेवा की है, तो फिर ये सब एक साथ मेरे पर टूट पड़ेगें।

साधु ने कहा—अरे! सोनीजी, आप भी कैसी बात करते हैं, आपकी बात सुन मुरदा भी हँस पड़े सोनी ने साधु के चरणों में लौटते हुए कहा—बाबा! सगे बाप का भी विश्वास करना महा पाप है। आप एक नहीं दस दुकान पर जाकर इन कड़ों को अवश्य ही एक बार कसौटी पर चढ़ा के देखलें। भोला बाबा अपने प्यारे भक्त की इच्छा को टाल न सका। वह अपने कड़े लेकर सराफ-बजार के इस छोर से उस छोर तक बीसों दुकान पर घूमा, जिसने भी उन कड़ों की मनमोहक बनावट और विशुद्ध सोना देखा उसने प्रशंसा के पुल बांध दिये। अब तो साधु को सोनी की सेवा में जरा भी संशय न रहा। वह हंसते हंसते अपनी कुटिया पर लौटा। सोनीने उसके दर्शन होते ही आगे बढ़कर बाबा को प्रणाम कर पूछा—कहो बाबा क्या समाचार हैं? वाह भई, वाह! तेरा काम तो पूरा सो टंच है। बाबा! कड़ों को अभी उजालना बाकी है, साधु ने कहा—लेजा! भोर में जल्दी ले जाना।

सोनी बाबा को प्रणाम कर घर लौटते समय मार्ग में मन ही मन फूला न समाया उसने अपनी मूछ पर बल देते हुए कहा—भगवान! अच्छा काठ का उल्लु फँसा अब तो अपने राम के पौ बाहर पच्चीस हैं उसने घर आते ही शुद्ध स्वर्ण के कड़ों को चट से चुपचाप एक संदूक में दबा, उस के बदले दूसरे पीतल के कड़ों पर स्वर्ण का पानी चढ़ा या उन्हें बढ़िया चमका कर, वह उलटे पैर बाबा के पास पहुंचा। साधु कड़ों की भड़कीली चमक-दमक देख आश्चर्य चकित हो गया। उसने अपने सेवक सोनी की पीठ ठोकते हुए उसकी निस्पृह सेवा और कला की प्रशंसा के पुल बांध दिये।

**की मंदता और अहंकार के त्याग से जो मंदबुद्धि स्त्री-पुरुष सद्गुरु के प्रवचनों पर विशुद्ध अटल श्रद्धा और सन्मार्ग का आचरण नहीं करते हैं, वे *आलसी गुरु शिष्य और ×तार्किक छात्र के समान अपना अनमोल मनुष्य भव हार जाते हैं।**

सुनार-बाबा! भले ही इस तुच्छ सेवक की प्रशंसा करें किन्तु मेरी जात और ये बनिये इस को कच्चा चबाने को मुँह फाड़े तैयार खड़े हैं। साधु—बेटा तू कहीं पागल तो नहीं हो गया। "अरे! तेरा-मेरा दिल राजी तो क्या करेगा काजी?" सोनी—बाबा! आप तो बड़े दयालु हैं, किन्तु मेरी दुकान का पुर्जा और यही कड़ बनियों को बता उनके हृदय के विचार तो टटोल लें, आपको प्रत्यक्ष अनुभव हो जायगा कि वे कितने भले आदमी हैं। बाबा! बाबा!! मैं आपके पैर पड़ता हूं, आप इस दास की एक तुच्छ बात तो हंसी में न उड़ाएं, देर न करें आपका और मेरा एक अभिन्न स्नेह और धर्म प्रेम है। कहीं इस में बलन पड़ जाय। सोनी की आँखों से टप टप आसूं बहने लगे। वह गिड़गिड़ाकर साधु के पैरों में लोटने लगा। अपने प्यारे भक्त की आँखों में आंसू देख साधु भी रो पड़ा। उसे विवश हो सराफे की शरण लेनी पड़ी। वह जहाँ भी गया सभी ने एक स्वर से यही कहा कि "ऊपर बेल बूंटा और नीचे पैंदा फूटा" यह तो कड़े पीतल के टुकड़े हैं!! साधु को सराफों की बात पर जरा भी विश्वास न हुआ। उसके हृदय में तो उस धूर्त सोनी ने ऐसी बात ठसा दी थी कि कई वृद्ध अनुभवी जवेरी व्यापारियों के लाख समझाने पर भी वह साधु टस से मस न हुआ। उसकी बुद्धि चकरा गई। वह घर का रहा न घाट का। अंत में उसे धन और धर्म दोनों से हाथ धोना पड़ा।

इसी प्रकार यह आत्मा अनादिकाल से विषय वासना के मोहवश शृंगार हास्य रसादि के साहित्य और उपदेशों से लुभा, श्रीसद्गुरु के टकसाली वचनों की उपेक्षाकर अपने आत्मश्रेय से हाथ धो बैठता है।

* **दृष्टान्तः**-एक झोंपड़ी में एक गुरु-शिष्य रहते थे। दोनों इतने आलसी थे कि उनको बाहर से अपनी झोंपड़ी में जाकर सोना भी पहाड़सा मालूम होता था। एक दिन वे दोनों अपनी अपनी फटी गुदड़ी से मुँह ढक कर झोपड़ी के बाहर ही पड़े रहे। शीतकाल था। पिछली रात कड़ाके की ठण्ड में गुरु ने अपने चेले से पूछा—बेटा! हम कहाँ हैं? बड़े जोरों से जाड़ा लग रहा है शिष्य ने उठने के आलस से झूठ ही कह दिया कि हम झोपड़ी के अंदर हैं। इतने में कहीं से एक कुतिया ठण्ड में धूजती हुई गुरुजी के पास जा बैठी, गुरुजी के हाथ में उसकी पूँछ आते ही उनने चेले से पूछा—बेटा! क्या मेरे पूँछ है? चेला—गुरुजी! पूँछ नहीं आपकी लंगोटी का पल्ला होगा आप तो चुपचाप पड़े रहो।

चेले उठ कर देखा नहीं कि वास्तव में गुरुजी पर क्या बीत रही है और न गुरुजी ने ही अपना मुँह खोल कर देखा कि मेरे पास क्या बलाय है अंत में वे दोनों आलसी गुरु-शिष्य ठण्ड सिकुड़ कर मर ही गये किन्तु झोपड़ी में न गये इसी प्रकार मानव अपने दुराग्रह और संप्रदायवाद की केवल बाते करना ही जानते हैं किन्तु वे तत्त्व खोजने का पुरुषार्थ न कर बेचारे भव-भ्रमण के चक्कर से मुक्त नहीं हो पाते हैं।

× **दृष्टान्तः**—एक महावत ने कहा हटो! हटो! दूर हटो!! मेरा हाथी मचल रहा है। बेचारी जनता अपने प्राण लेकर भागी किन्तु एक दर्शन शास्त्र का कीट विद्यार्थी "प्राप्तम् अप्राप्तम्" की

**प्रमाण एक दर्पणः**—आप दूसरे के आँख, कान, नाक और रूप रंग देख उसकी आलोचना, प्रत्यालोचना, समालोचना कर सकते हैं किन्तु अपनी देह और इन्द्रियों का स्वयं निरीक्षण करना आपके हाथ की बात नहीं। आपके और नाक की बनावट कैसी है ? इस का सही उत्तर पाने और अपने आत्मविश्वास के लिये आपको किसी दर्पण का सहारा लेना अनिवार्य है।

इसी प्रकार कई वक्ता और लेखक अपने प्रभावशाली भाषण और साहित्य द्वारा आपके हृदय को अपनी सहज ही आकर्षित कर लेते हैं। संभव है आपको भौतिक तड़क-भड़क और लौकिक अनेक सुविधाएं देख वक्ता और लेखक के मंतव्य-विचारधारा और वेषभूषा की ओर लुढ़कते जरा भी देर न लगे, किन्तु इस भुल भुलैया का अन्त कहाँ और कैसे होता है, यह तो वही मानव जानते हैं, जो कि इसके पात्र बन चुके हैं।

आज प्रत्यक्ष अनेक मानव पश्चात्य दूर देश के आचार-विचार, खान-पान, वेष-भूषा और साहित्य के मोह में अपनी दिव्य आत्मशक्ति-सत्स्वरूप- वीतराग मार्ग, आर्य संस्कृति हाथ धो, राह भटक गये हैं। उनको धूम्रपान, सुरा सेवन, रात्री भोजन, घूंसखोरी, असत् भाषण, विश्वास-घात आदि असत् व्यवहार करते मन में जरा भी संकोच नहीं होता, चोरी-जारी करने वाले व्यक्ति अपने आपको बड़े चतुर समज मन ही मन फूले न समाते हैं।

यदि आप किसी से पूछें कि क्यों भाई ! आप ऐसा क्यों करते हैं ? शांति के लिये। अरे यह शांति....कै...सी। क्षणिक शांति के लिये स्थायी शांति से मुंह मोड़ना। इन सारे रोगों की और बुराइयों की जड़ एक ही है, वह है अध्यात्मिक वृत्ति का अभाव और आगम प्रमाण आदि साहित्य के पठन-पाठन का संकोच। प्रमाग नय, ध्यान-आदि एक ऐसा दिव्य दर्पण है कि उस ओर मानव की दृष्टि पड़ते ही उसे पता चल जाता है कि मैं कहाँ और किस ओर हूँ। प्रत्येक लेखक और वक्ता के

---

उधेड़ बुन में राजमार्ग से जरा भी टस से मस न हुआ। अर्थात् वह सोचने लगा कि हाथी किस को मारेगा ? यदि वह अपने निकट वाले को मारता है तो सर्व प्रथम उसका महावत मरेगा या दूर वाले को ही मारता है, फिर तो प्राणी मात्र की मृत्यु निश्चित है। अपने राम क्यों भागने लगे ? मैं कदापि राजमार्ग से न हटूंगा। समयज्ञता के अभाव में उस दुराग्रही अपनी मान्यता के पगले छात्र को मदोन्मत्त गजराज ने एक क्षण में चीर कर फेंक दिया।

सच है, इसी प्रकार आप मति, अभिमानी मानवों को तत्त्वज्ञान और सद्गुरु प्रदर्शित सन्मार्ग मिलना असंभव ही है। अतः वे मनुष्य भव हार जाते हैं।

विचारों को परखने के लिये *आगम प्रमाण, अनुमान प्रमाण एक सही माप दंड है।

**ध्यानः**— स्थिर दीपशिखा के समान निश्चल और अन्य विषय के संचार से रहित केवल एक ही विषय के धारावाही प्रशान्त सूक्ष्म बोध को ध्यान कहते हैं, क्यों कि शक्ति का विकास संकल्प की दृढ़ता और तीव्रता में निहित है। ध्यान के अवलम्बन से मानसिक शक्ति की अभिवृद्धि हो जाती है, और आत्मा में एक अनूठा सामर्थ्य प्रकट होता है। अतः धर्माराधन में ध्यान का महत्वपूर्ण स्थान है।

× ध्यान के चार विभाग हैं:-१ आर्त्तध्यान-शोक, चिन्ता से उत्पन्न वृत्ति प्रवाह। २ रौद्र ध्यान-पाप जनक दुष्ट भावों से उत्पन होनेवाला दुःसंकल्प। ३ धर्मध्यान-आत्म स्वरूप दर्शन की तीव्र इच्छा। ४ शुक्लध्यान शुद्ध-आत्मदर्शन से प्रकट सर्वथा विशुद्ध आत्मवृत्ति।

ध्यान से मन की चंचलता मंद पड़ने से आत्मार्थी मानव के हृदय में सम्यक्त्व प्राप्ति व उस की विशुद्धि के लिये तत्त्व-बोध जानने की एक भारी उत्कंठा जाग उठती है। पश्चात् वह सद्‌गुरु व तत्त्वबोध पाने के लिये सतत प्रयत्नशील रहता है। तत्त्व-बोध के दो भेद हैं। संवेदन तत्त्वबोध और स्पर्श तत्त्वबोध।

(१) संवेदन-तत्त्वबोध का अर्थ है किसी ग्रन्थ या पदार्थ को बिना मनोयोग के स्थूल दृष्टि से दृष्टि-पथ ( नजर ) में निकाल कर उसका मन माना आचरण करना। यह तत्त्वबोध वंध्या के अपने समान निष्फल है। (२) स्पर्श-तत्त्वबोध का अर्थ है, जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि तत्त्वों का बड़ी श्रद्धा और मनोयोग से तल-स्पर्शी ( गंभीर ) अध्ययन कर उसका सदा चिंतन-मनन और यथा शक्ति आचरण करना। सचमुच स्पर्श-तत्त्वबोध ही तो आत्म कल्याण का मार्ग है। इसके उपभेद दस प्रकार के यतिधर्म क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचनता और ब्रह्मचर्य है। इसकी विशेषता है, "अहिंसा परमो धर्मः"।

---

* आगम प्रमाण-शास्त्रों की साक्षी से जो बात जानी जाती है। जैसे नरक, निगोद, देवलोक आदि। अनुमान प्रमाण-किसी चिह्न विशेष को देख कर वस्तु का ज्ञान हो, जैसे कि धुंए को देख कर अग्नि का बोध होना।

× आर्त ध्यानः—अरति, शोक, संताप और चिन्ता हमारे मन पर छा जाती है, उसके प्रमुख चार कारण हैं।

इसके चार भेद ( पाये ) हैं:—१ अमंगल समय और विपरीत वस्तुओं के संयोग से व्याकुल जीवात्मा अपने अनेक कष्टों से छूटकारा पाने का ही सदा संकल्प-विकल्प चिन्ता किया करते हैं। इसे अनिष्ट संयोग पहला आर्त ध्यान कहते हैं। २ व्यापार-धन्धे में हानि, आग, पानी और चोरी

विनय वश छे गुण सवे, ते तो मार्दव ने आयत्त रे।
जेहने मार्दव मन वस्युं, तेणे सवि गुण-गण सम्पत्त रे ते. सं. ॥१६॥
आर्जव विण नवि शुद्ध छे, नवि धर्म आराधे अशुद्ध रे।
धर्म विना नवि मोक्ष छे. तेणे ऋजु भावी होय बुद्ध रे ते. सं. ॥१७॥
द्रव्योपकरण देहनां, वलि भक्त पान शुचि भाव रे।
भाव शौच जिम नवि चले, तिम कीजे तास बनाव रे, ति. सं. ॥१८॥

आदि में धन-लुट जाने पर दिनरात आंसू बहाना, बात-बात में खीझना इष्ट वियोग दूसरा आर्त ध्यान है। ३ शारीरिक और मानसिक चिंताओं में दिन-रात, रात-दिन घुलते रहना। रोगचिन्ता तीसरा आर्तध्यान है। ४ अग्र सोच:–भविष्य की चिन्ता करना, इस साल मकान बनवाऊंगा, आते साल बच्चे का विवाह करूंगा, इस व्यापार में नौकरी में लाभ मिलेगा? अथवा दान शील तप की आराधना से अगले भव में देव देवेन्द्र-चक्रवर्ती आदि पद मिलेगा भी या नहीं इस प्रकार अनेक बातों की उधेड़बुन में लगे रहना, चौथा आर्तध्यान है। आर्तध्यान करने से पांचवे-छट्ठे गुण स्थान तक तिर्यंच गति का बन्ध होता है।

प्रश्न – आर्तध्यान से तो प्रायः कोई विरले ही मानव बचते हैं? तो क्या सभी तिर्यंच गति में जावेंगे? उत्तर—नहीं। आर्तध्यान के समय मानव का आयुष्य बन्ध अथवा मृत्यु हो तो वह तिर्यंचगति में जाता है।

रौद्र ध्यान:–मानसिक भयंकर विचारधारा को रौद्र ध्यान कहते हैं। इस के भी प्रमुख चार भेद हैं:–१ हिंसानुबन्धी:–अपने हाथों से अथवा दूसरे व्यक्ति को प्रलोभन देकर किसी जीव को सताना, उसे प्राणमुक्त कर बड़े प्रसन्न होना। युद्धादि की प्रशंसा करना पहला रौद्र ध्यान है। २ मृषानुबन्धी:-बड़ी सफाई के साथ झूठ बोल कर लोगों को बनाना, मन ही मन फूलना, अपनी आत्म-श्लाघा करना दूसरा रौद्र ध्यान। ३ चौर्यानुबन्धी:–डाका डालना, "राम राम जपना, पर यामाल अपना" आदि अनर्गल शब्दों का प्रयोग कर प्रसन्न होना, अपनी मुंछों पर बल देकर कहना कि डकैती का माल पचाना मर्दों का काम है। यह तीसरा रौद्र ध्यान है। ४ परिग्रह रक्षणानुबन्धी:–अपने परिवार के मोह वश भयंकर पापारंभ से पैसा जोड़कर प्रसन्न होना। मिथ्या अभिमान करना। मैं नहीं रहूंगा उस दिन सब को नानी दादी याद आते देर न लगेगी। यह चौथा रौद्र ध्यान करने से पांचवें गुण स्थान तक नरक गति का बन्ध होता है। किसी जीव को छठे गुण स्थान में रौद्र ध्यान का पहला पाया होता है।

प्रश्न—छठे गुण स्थान में रौद्र ध्यान का पहला पाया होने से क्या वह जीव जीव नरक में जाता है? उत्तर—नहीं। यहां रौद्र ध्यान आता अवश्य है किन्तु आयुष्य बन्ध नहीं होता, क्यों कि छठे गुण स्थान में देव गति का बंध निश्चित सा है।

**धर्मध्यान:**–धार्मिक कार्यों में मानसिक अभिरुचि और प्रगति करना धर्मध्यान है। इसके चार प्रकार हैं। १ आज्ञा विचय:–सर्वज्ञ प्रदर्शित नय, प्रमाण, निक्षेप युक्त द्रव्य का स्वरूप सिद्धस्वरूप और निगोद का स्वरूप सत्य है, उस पर पूर्ण श्रद्धा रखना, वीतराग आज्ञा को स्याद्वाद निश्चय व्यवहार रूप

पंचाश्रव थी विरमीये, इन्द्रिय निग्रहीजे पंच रे।
चार कषाय त्रण दंड जे, तजिये ते संयम संच रे, न. सं. ॥१९॥
बांधव धन इन्द्रिय सुख तणो, वली भय विग्रह नो त्याग रे।
अहंकार ममकार नो, जे करसे ते महाभाग रे, ते. सं ॥२०॥
अविसंवादन जोगजे, वलि तन मन वचन अमाय रे।
सत्य चतुर्विध जिन कह्यो, बीजे दर्शन न कह्या रे, सं. ॥२१॥

कहना, सुनना, मनाना और सदा हृदय में उसके चिंतन की अभिरुचि-जागृत रखना आध्यात्मिक विकास की ओर प्रसन्न मन हो आगे बढ़ना, आज्ञा विचय ध्यान है। २ अपाय विचयः-दोषों के स्वरूप और उनसे पीछा कैसे छुड़ाना ? इसका मनोयोग से उपाय सोचना। मैं अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र युक्त अनन्त शक्तिमान विशुद्ध आत्मा हूं। इस प्रकार सदा अपने मन को केन्द्रित करना स्व-स्वभाव में रमण करना अपाय विचय ध्यान है। ३ विपाक विचयः-प्रत्येक जीव को अपने शुभाशुभ संचित कर्मों को भोगना तो निश्चित ही है अतः सुख-दुःख के समय फूलने और रोने पीटने के संकल्प-विकल्पों का हृदय से त्याग कर, प्रकृति, स्थित, रस प्रदेश बन्ध, उदय उदीरणा और सत्ता के फल का बड़े मनोयोग से चिंतन-मनन करना विपाक विचय ध्यान है। ४ संस्थान विचयः-इस में जीवों के भ्रमण स्थानों का और वहां की पीड़ा का चिंतन कर उससे मुक्त होने का उपाय सोचना संस्थान विचय ध्यान है।

**धर्मध्यान के अन्य चार प्रकारः**—(१) पदस्थ ध्यान महामन्त्र नवकार के पांच पदों के गुणों का चिंतन कर मन को एकाग्र करना (२) पिंडस्थ ध्यान अपनी देह में स्थित आत्मा का ध्यान करना। पिंडस्थ ध्यान का अभ्यास करते समय पांच प्रकार की धारणाओं का प्रयोग करने से अति शीघ्र विशेष कर्मक्षय होते हैं।

**पार्थिवी धारणाः**—मध्य लोक को क्षीर सागर, उसके बीचो-बीच स्थित जंबूद्वीप को स्वर्ण कमल और उसके भी मध्य में स्थित सुमेरु को कर्णिका के रूप में चिंतन करें। फिर उसके उपर स्फटिक के श्वेत सिंहासन पर अपने को विराजमान होने का चिंतन करना चाहिये। "मैं कर्मों को भस्म कर डालने के लिये अपनी आत्माको प्रकाशमय-निष्कलंक बनाने के लिये आसीन हूं।" इस प्रकार का चिंतन करना पार्थिवी धारणा है।

**आग्नेयी धारणाः**—पृथ्वी धारणा के पश्चात् वहीं सुमेरु पर स्थित साधक अपनी नाभि के भीतर के स्थान में, हृदय की ओर उठे हुए और फैले हुए सोलह पत्तों वाले कमल का चिंतन करें। प्रत्येक पत्ते पर पीत वर्ण से सोलह स्वर लिखे हों। कमल की श्वेत कर्णिका पर पीले वर्ण का "ह्रँ" लिखा हुआ सोचना चाहिये।

इस कमल के ठीक उपर औंधा, आठ पत्तों वाला दूसरा मटिया रंग का कमल विकल्पित करना चाहिए। उसके प्रत्येक पत्ते पर काले रंग से लिखे हुए आठ कर्मों की कल्पना करना।

षड्‌विध बाहिर तप कह्युं, अभ्यन्तर षड्‌विध होय रे।
कर्म तपावे ते सही, पडिसोअ वृत्ति पण जोय रे। सं. ॥२२॥
दिव्य औदारिक काम जे, कृत कारित अनुमति भेद रे।
योग त्रिके नव वर्जवुं, ते ब्रह्म हरे मन्त्रि खेद रे। सं. ॥२३॥
अध्यात्म वेदी कहे, मूर्च्छा ते परिग्रह भाव रे।
धर्म अकिंचन ने भण्यो, ते कारण भवजल नाव रे। सं. ॥२४॥

---

तत्पश्चात् नाभि के कमल में बने हुए अक्षर "ई" के रेफ से धूम्र निकलने की कल्पना करनी चाहिये और फिर अग्नि ज्वाला निकलने की। फिर सोचना चाहिये कि अग्निज्वाला क्रमशः वृद्धिगत हो रही है, ऊपर के कमल में स्थित आठ कर्मों को दग्ध कर रही है, फिर वह ज्वाला कमल के मध्य में छेद कर ऊपर मस्तक तक आ पहुँची है, उसकी एक रेखा दाहिनी और दूसरी बाईं ओर निकल रही है, फिर नीचे की ओर आ कर दोनों को मिला कर एक अग्निमयी नई रेखा बन गई है। अर्थात ऐसा चिंतन करें कि अपने शरीर के बहार तीन कोण वाला अग्निमण्डल बन गया है।

तीनों लकीरों में से प्रत्येक में "र" अक्षर लिखा हुआ सोचें। तत्पश्चात् त्रिकोण के बहार, तीन कोणों पर अग्निमय स्वस्तिक लिखा हुआ तथा भीतर तीन कोणों में प्रत्येक पर अग्निमय "ॐ अर्हम्" लिखा हुआ सोचें। फिर ऐसा चिंतन करना चाहिये कि अग्नि मण्डल, भीतर आठ कर्मों को जला रहा है और बहार इस शरीर को भस्म कर रहा है। समस्त कर्म और शरीर जलकर राख हो गए हैं और अग्नि शान्त हो गई है। इस प्रकार चिंतन करना आग्नेयी धारणा है।

**वायवी धारणाः**—अग्नेयी धारणा का चिंतन करने के पश्चात् साधक को यह धारणा करनी चाहिये। इसका स्वरूप यों है—चारों ओर वेग के साथ वायु बह रही है। मेरे चारों ओर वायु ने गोल मंडल बना लिया है। वह वायु दग्ध हुए कर्मों की तथा शरीर की राख उड़ा रही है और आत्मा को स्वच्छ कर रही है।

**वारुणी धारणाः**—जल का विचार करना वारुणी धारणा है। वायवी धारणा के अनन्तर इसका चिंतन इस प्रकार करना चाहिये, गगन मेघमण्डल से व्याप्त हो गया है। बिजली चमक रही है। मेघ गर्जना होने लगी है और मूसलधार वर्षा प्रारम्भ हो गई है। मैं मध्य में स्थित हूँ। मेरे ऊपर अर्ध चन्द्राकार जल-मण्डल है। यह जल पाप-मल का प्रक्षालन कर रहा है। आत्मा निर्मल बनता जा रही है।

**तत्त्वरूपवती धारणाः**—वारुणी धारणा के पश्चात् ऐसा चिंतन करना चाहिये। कर्म-मल हट जाने से मैं शुद्ध, बुद्ध, अशरीर, अकर्मा, ज्योतिपुंज हो गया हूं।

३ **रूपस्थ-ध्यानः**—संपूर्ण बाह्य और आंतरिक महिमा से सुशोभित श्रीअर्हन्त भगवान का

***क्षमा धर्मः**—क्षमा अहिंसा का एक विभाग है। अपराधी को क्षमा देने, और अपने अपराध के लिये क्षमा याचना करने से जीवन दिव्य बन जाता है। जैन आगम शास्त्रों में दृढ़ता पूर्वक क्षमायाचना करने का विधान है।

महानुभावो! आपसे यदि किसी का अपराध हो गया हो तो सारे काम छोड़ दो और सबसे पहले क्षमा मांगो। जब तक क्षमा न मांग लो, भोजन मत करो, शौच मत करो, और स्वाध्याय-ध्यान न करो। क्षमा प्रार्थना करने से पहले मुंह का थूक गले न उतारो।

तीर्थंकरों के इस कठोर विधान का परिणाम यह है कि परस्पर क्षमायाचना की परम्परा अब तक अखण्ड रूप से चली आ रही है। स्त्री-पुरुष प्रतिदिन सुबह शाम, प्रति-पक्ष, प्रति चौमासी और और प्रति वर्ष (संवत्सरी) उदार हृदय से अपने अपराधों की क्षमायाचना करते हैं।

---

अवलम्बन लेकर उस पर अपने मनको स्थिर करना रूपस्थ ध्यान है। यह तीनों धर्म ध्यान की गिनती में हैं।

४ **रूपातीत-ध्यानः**—निरंजन, निर्विकार अमूर्त, अशरीर सिद्ध परमात्मा का ध्यान करना रूपातीत ध्यान है।

**शुक्ल ध्यानः**—शुक्ल ध्यान की प्राथमिक अवस्था (१) पृथक्त्व वितर्क सविचार अवस्था कहलाती है। यहाँ वितर्क का अर्थ है 'श्रुत' और विचार का अर्थ पदार्थ, शब्द और योग संक्रमण होता है। अभिप्राय यह है कि इस ध्यान के प्रयोग में ध्येय वस्तु, उसका वाचक शब्द और मन आदि योगों का परिवर्त होता रहता है। फिर यह एकाग्रता आत्मस्थ—मानसिक ही होती है। (२) इस के पश्चात् जब ध्यान में कुछ अधिक परिपक्वता आती है, तो किसी एक ही वस्तु का ध्यान होने लगता है। पदार्थ शब्द और योग का संक्रमण रुक जाता है। उस समय का ध्यान एकत्व वितर्क अविचार शुक्ल ध्यान कहलाता है। (३) मन, वचन, काय के स्थूल योगों का निरोध कर देने पर सिर्फ स्वासोच्छ्वास जैसी सूक्ष्म क्रिया ही शेष रह जाती है, उस समय का ध्यान सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति शुक्ल ध्यान कहलाता है। (४) इस ध्यान के पश्चात् जब सूक्ष्म क्रिया का भी सर्वथा अभाव हो जाता है, और आत्म-प्रदेश सुमेरु की तरह अचल हो जाते हैं उस समय का सर्वोत्कृष्ट ध्यान व्युपरत क्रिया निवर्ति शुक्ल ध्यान कहलाता है। इस ध्यान के प्रभाव से अत्यल्प काल में ही पूर्ण सिद्धि सिद्धपद की प्राप्ति हो जाती है।

**योग का सर्वांग रूपः**— मित्रा, तारा, बला, दीप्ता, स्थिरा, कान्ता, प्रभा और परा इन आठ दृष्टियों के क्रमिक विकास में भी प्रतिपादित किया है।

ध्यान का विशेष-वर्णन योगशास्त्र 'योग दीपक' योग दृष्टि समुच्चय, योग-बिन्दु आदि ग्रंथों में बड़ा सुन्दर और माननीय है। पाठक उसे अवश्य ही पढ़कर, ध्यान का अभ्यास करें।

***क्षमा की साधना के पांच उपायः**—१ कोई अपने पर क्रोध करे तो उसका कारण ढूंढ़ना। यदि क्रोध का कारण आपको समझ में आ जाय और वास्तव में आपकी भूल हो

**मार्दव धर्मः**—चित्त में कोमलता और व्यवहार में नम्रता होना मार्दव धर्म है। इस की साधना विनय से होती है। धर्म की जड़ भी तो विनय ही है। मार्दव-धर्म की सिद्धि के लिये जाति, कुल, धन, वैभव, सत्ता-बल, बुद्धि, श्रुत-अध्ययन और अपने तपो-बल के अभिमान का त्याग करना अति-आवश्यक है।

**३ आर्जव धर्मः**—कुटिलता का त्याग। अपने विचार, वाणी और व्यवहार की एकता होने पर ही इस की साधना होती है। आर्जव धर्म, समाज में पारस्परिक विश्वास के लिये जितना

---

तो आप दूसरे को दोष न दें। उसका उपकार मानो कि वह आपको आगे के लिये बड़ा सावधान कर रहा है। क्रोध से आड़ा पूर्व के तप-जप और संयम की साधना क्षण में नष्ट हो जाती है। मान लो यदि आप सचमुच निर्दोष हैं। यदि फिर भी सामनेवाला व्यक्ति अपने क्रोधी स्वभाववश अज्ञानता से आप पर क्रोध कर बैठता है तो आप उस पर लक्ष्य न देकर शांत भाव से रहें। इसे क्रोध के निमित्त होने या न होने का चिंतन कहते हैं।

(२) जिसे क्रोध आता है वह स्मृतिभ्रंश होने से आवेश में आकर दूसरों के साथ शत्रुता बांधता है, फिर उनको मारता या हानि पहुँचाता है, और ऐसा करने से अपने अहिंसा व्रतका भंग करता है, इत्यादि अनर्थ परंपरा का जो चिंतन है। इसे क्रोध वृत्ति के दोषों का चिंतन कहते हैं।

(३) कोई अपनी पीठ पीछे कड़वा कहे बुराई करे तो ऐसा चिंतन करना कि बेसमझ लोगों का कु-स्वभाव नहीं मिटता, इसमें अप्रसन्नता की बात ही क्या है? उलटा लाभ है, जो बेचारा सामने न आकर पीठ पीछे बोलता है। यदि कोई प्रत्यक्ष सामने आकर भद्दे शब्दों की बोछार करे तो उस समय अपने कान से बहरे बनकर मन में सोचना कि मूर्खों का यही स्वभाव है। यदि मूर्ख अपनी मूर्खताका त्याग न करे तो सज्जन "मैं" अपनी सज्जनता क्यों छोड़ने लगा? देता तो गाली ही है, कोई प्रहार तो नहीं करता।

इसी प्रकार यदि कोई प्रहार करे तो अपने प्राण मुक्त न करने के बदले में उसका उपकार मानना और यदि कोइ प्राण से मुक्त करे तो धर्मभ्रष्ट न करने के कारण लाभ मान कर उसकी दया का चिंतन करना इस प्रकार जितनी अधिक कठिनाईयां उपस्थित हों उतनी ही विशेष उदारता और विवेकबुद्धि से कड़ी समस्याओं को सरल बना देना। इसे बाल स्वभाव का चिंतन कहते हैं।

(४) कोई अकारण ही अपने पर क्रोध करे तो उस समय अपने मन में अंश मात्र दुःख क्रोध न लाकर मन में दृढ़ निश्चय करना कि क्रोधी व्यक्ति तो बेचारा निमित्त मात्र है; किन्तु यह प्रसंग तो मेरे पूर्वकृत अशुभ कर्मों का ही तो फल है। इसे कृत कर्मों का फल चिंतन कहते हैं।

(५) कोई व्यक्ति आप पर अकारण ही क्रोध कर बैठे, उस समय आप सहसा आवेश क्रोध में न आकर अपने में सोचें, चिंतन करें कि "क्रोध एक ठण्डी आग है" इसमें अपनी आत्म-शक्ति का स्वाहा करनेवाले मानव को सिवाय बेचैनी अशांति के कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता। अतः मुझे अपनी दिव्य आत्मशक्ति का बड़े शांत भाव से सन्मार्ग में ही सदुपयोग करना सर्वश्रेष्ठ है। इसे क्षमा गुण चिंतन करते हैं।

लिये जितना आवश्यक है उतना ही निर्मलता के लिये भी आर्जव से निर्मल बुद्धि वस्तु के सत्य स्वरूप को ग्रहण करती है।

❀ ४ शौच धर्म—लोभ से दूर रहो। लोभ एक भयंकर संक्रामक रोग है। इस से मानव के सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं। कीर्ति, प्रतिष्ठा धरा (धरती) धरोहर-धन और धन्धे के लोभ में हजारों स्त्री-पुरुषों को असमय में अपने अनमोल प्राणों से हाथ धोना पड़ा। अपने चेले, चेली और पद की लोलुपता से साधु, साध्वियों को भी आर्तध्यान होना संभव है। वे मानव धन्य हैं जो कि छाया से बच कर अपने आत्म स्वभाव में रह कर सदा अनासक्त भाव से जीवन व्यतीत करते हैं।

५ सत्य धर्मः—अविसंवादन योग वस्तु का यथार्थ स्वरूप और मन, वचन, काया की कपटरहित प्रवृत्ति होना। तथा नाम-ऋषभदेव, स्थापना—ऋषभदेव की प्रतिमा, चित्र, द्रव्य-कृष्णजी, रावण, श्रेणिक आदिभावी जिन, भाव-महाविदेह क्षेत्र में विचरते तीर्थंकर इन चार प्रकार के निक्षेपों से जैन दर्शन ने सत्य धर्म को प्रधान माना है। "जं सच्चं तं खु भगवं भगव" अर्थात् सत्य ही भगवान है।

+ ६ संयम—धर्म—मनोवृत्तियों पर, हृदय में उत्पन्न होने वाली इच्छाओं पर और इन्द्रियों पर संयम रखना संयम-धर्म है। स्पष्ट है कि मन और इन्द्रियों को वश और इच्छाओं का दमन किए बिना न आप को संतोष हो सकता है और न समाज, राष्ट्र, या विश्व में ही शांति स्थापित हो सकती है।

पाश्चात्य विचारधारा से प्रेरित कई भारतीय जन भी आज लालसाओं की तृप्ति में अपने जीवन की सफलता मान बैठे हैं। इच्छाओं का रोधन-दमन करना वे निर्बलता का चिह्न मानते हैं किन्तु इस भ्रान्त धारणा का परिणाम आज प्रत्यक्ष हमारे सामने है। मानव जाति की आवश्यताएं दिन प्रति दिन बढ़ती जा रही हैं, और मनुष्य उन की

---

❀ शौच धर्मः—साधन और अपने शरीर में भी आसक्ति न रखना ऐसी निर्लोभता को शौच धर्म कहते हैं। इस के भी दो भेद—हैं द्रव्य और भाव। द्रव्यशौच-निर्दोष आहार पानी ग्रहण करना। भावशौच—कषायादि मानसिक विकारोंका त्याग करना।

+ संयम धर्मः—संयम के सत्रह भेद हैं:-पंच महाव्रत, चार कषाय, पांच इन्द्रियों का निग्रह और मन, वचन, काया की विरति।

इसी प्रकार पांच स्थावर और चार त्रस—इनके विषय में नव संयम— प्रेक्ष्य संयम, उपेक्ष संयम, अपहृत्य संयम, प्रभृज्य संयम, काय संयम, वाक् संयम, मनः संयम और उपकरण संयम, यह सतरह प्रकार का संयम है। संयम की विशुद्ध आराधना ही मानव भव की सार्थकता है।

पूर्ति की मृगतृष्णा में पड़ा दुःखी हो रहा है। निरंकुश कामनाओं के फल-स्वरूप ही संसार अनेक प्रकार के संघर्षों का अखाड़ा बन रहा है। कोई नहीं जानता कि मनुष्य की कामना किस केन्द्र पर जा कर रुकेगी और कब मनुष्य की उलझनों और संघर्षों की इतिश्री होगी ? यह जानना संभव भी नहीं हैं। क्यों कि:—

"इच्छा हु आगास-समा अणंतिया" जैसे आकाश अनंत है, उसी प्रकार इच्छाएं भी अनंत हैं। एक इच्छा की पूर्ति होने से पहले ही अनेक नवीन इच्छाएं उत्पन्न हो जाती हैं, अतः जैसे आध्यात्मिक उन्नति के लिये संयम की आवश्यकता है, उसी प्रकार लौकिक समस्याओं को सुलझाने के लिये भी वह अनिवार्य है।

*७ **तपो धर्मः**—जीवन को सफल बनाने और क्लिष्टकर्म क्षय करने का तप एक महत्त्वपूर्ण उपाय है। तपस्या से समस्त कार्य सिद्ध होते हैं। तप असाधारण मंगल है। कई लोग धूनी तापना, कांटों पर लेटना, गर्मी के दिनो में धूपमें खड़ा हो जाना, शीतकाल में वस्त्ररहित बैठना आदि को ही तप मान बैठते हैं, किन्तु यह तप नहीं केवल काय क्लेश मात्र है। वास्तविक तप वही है जिस से कि आत्मा के गुणों का पोषण हो।

तप के दो विभाग हैं, बाह्य और अभ्यंतर, उपवास करना, कम खाना, अमुक वस्तु का त्याग कर देना आदि बाह्य तप है, और अपनी भूलों एवं अपने अपराधों के लिये प्रायश्चित् करना, गुरुजनों की विनय करना, सेवा करना, स्वाध्याय करना और त्याग अभिग्रह करना अभ्यंतर तप है।

८ **त्याग धर्मः**— अप्राप्त भौतिक पदार्थों की इच्छा का त्याग और सन्मुख उपस्थित वस्तुओं से विमुख होना ही तो आदर्श त्याग है। जीवन में जब वास्तविक

---

* तप के बारह भेद हैं छः बाह्यः—(१) अनशनः—मर्यादित समय तक या जीवन के अन्त तक प्रत्येक आहार-पानी का त्याग करना-अनशन तप है। (२) उनोदरीः—अपनी भूख हो उससे अल्प भोजन करना उनोदरी तप है। (३) वृत्ति संक्षेपः—प्रत्येक वस्तु के लालच को कम करना वृत्ति संक्षेप है। (४) रस त्यागः—दही, दूध, घृत, शक्कर, तैल और गुड़ विकारवर्धक पदार्थों का सर्वथा या प्रतिदिन यथाशक्ति एक, दो, तीन वस्तु को त्याग करना रस परित्याग तप है। (५) शय्यासन संलीनताः—किसी एकान्त निर्विघ्न स्थान पर रह कर भजन करना शय्या-संलीनता तप हैं। (६) काय क्लेशः—ठंड, गरमी, केश लुंचन या अनेक प्रकार के आसनों से अपने शरीर को कष्ट देना काय क्लेश तप है।

छः अभ्यन्तरः—(१) प्रायश्चित्त-ग्रहण किये हुए व्रतों में प्रमादवश लगने वाले दोषों को आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापना आदि से शुद्धि हो वह प्रायश्चित्त तप है।

त्याग भावना जागृत होती है, तब मनुष्य कम से कम साधन-सामग्री से भी संतुष्ट और आनंद से रहता है। इन्द्रियों के दास विषय-वासना के कीट मानव भौतिक विपुल साधन सामग्री पाकर भी संतोष का अनुभव नहीं कर सकते हैं।

आदर्श त्याग को अपनाने से मानव के पास अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह नहीं होता, इस से जनता किसी पदार्थ से वंचित नहीं रहती है और विश्व सहज ही अशांति के वातावरण से बच जाता है। वे मानव धन्य हैं, जो आदर्श त्याग की ओर प्रगतिशील हैं।

**९ अकिंचन धर्मः**—संसार के किसी भी पदार्थ पर ममता न रखो। एक फटी गुदड़ी की लोलुपता-मूर्छा एक भारी परिग्रह है, न कि ममत्व के अभाव में अपार धन, धान्य और गगनचुंबी सुन्दर भवनादि। भौतिक पदार्थों पर आसक्ति रखने से विवेक नष्ट हो जाता है। इसी कारण आत्मा अपने स्वरूप से विमुख हो राह भटक जाता है। ममत्व समस्त दुःखों का मूल है। जब पर पदार्थ को अपना माना जाता है तो उसके विनाश या वियोग के समय अधिकांश दुःख होना निश्चित है।

यदि आप आज ही यह दृढ़ संकल्प कर लें कि "मैं किसी भी पदार्थ को अपना नहीं मानता" तो फिर जीवन पर्यंत आपके जीवन में दुःख नाम की कोई भी वस्तु शेष न रहेगी। सच है, दुःख का मूल ममता और सुख का मूल समता (अकिंचन धर्म) है। अध्यात्मिक प्रगति, एक अनूठा अति आनंद-मय जीवन बनाने का यह एक ही अचूक रामबाण उपाय है।

**१० ब्रह्मचर्य धर्मः**—संसार में अनेक धर्म और धर्माचार्य, मुल्ला काजी मौलवी हैं, संभव है प्रत्येक के सिद्धान्त और साधना में मतभेद हो सकता है किन्तु ब्रह्मचर्य व्रत के लिये

---

(२) विनयः-ज्ञान-आगम ग्रंथों का अध्ययन करना, दर्शन समकित से भ्रष्ट न होना, प्रतिदिन सामायिक करना ज्ञानी गुरु गीतार्थी, विद्वानों का आदर सत्कार करना विनय तप है। (३) वैयावृत्यः—आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष-विद्यार्थी, ग्लान-रोगी, गण-अनेक आचार्यों के साधु-साध्वी एक साथ पढ़ने वाले, कुल एक ही गच्छ के साथ पढ़नेवाले, संघ-साधु साध्वी, श्रावक श्राविका, साधु दीक्षित मुनि, समनोज्ञ-ज्ञानादि गुणों में समान हो उनकी तन-मन-धन से सेवा करना, वैयावृत्य तप है। प्रश्न—विनय और वैयावृत्य में क्या अंतर है? उत्तर—विनय तो मानसिक धर्म है, और वैयावृत्य शारीरिक धर्म है। (४) स्वाध्यायः—वाचना शब्द या अर्थ का पहला पाठ लेना प्रच्छना—संदेह को दूर करना, अनुप्रेक्षा—सूत्र या अर्थ का अपनी बुद्धि मन से चिंतन करना। आम्नाय—अध्ययन किये हुए सूत्र और अर्थों का शुद्ध उच्चारण कर बार बार उसकी आवृत्ती (पाठ) करना। धर्मोपदेश—व्याख्यान देना स्वाध्याय तप है। व्युत्सर्गः-धन, धान्य, मकान आदि और कषायादि मानसिक विकारों का त्याग करना व्युत्सर्ग तप है। (६) ध्यानः—मन की चंचलता का त्याग करना ध्यान तप है। अनेक क्लिष्ट अशुभ कर्मों को क्षय कर सम्यग्दर्शन की विशुद्धि करने का बाह्य अभ्यंतर तप एक रामबाण उपाय है।

तो सभी ने एक स्वर से कहा है कि वीर्य की एक ही बिन्दु का दुरुपयोग मृत्यु है तो बिन्दु-बिन्दु का संरक्षण एक अति उत्कृष्ट तप, संजीवन-सुधा है। प्रत्येक मानव सुख, स्वास्थ्य और दीर्घ-जीवन चाहता है। इनकी प्राप्ति ब्रह्मचर्य से होती है। यदि स्वास्थ्य को भवन का रूप दें, तो ब्रह्मचर्य को उसकी नींव मानना पड़ेगा। जैसे नींव को ठोस किये बिना कोई बड़ा भवन खड़ा नहीं रह सकता है, वैसे ही ब्रह्मचर्य के बिना स्वास्थ्य भी नहीं रह सकता। आप सुखी बनना चाहते हैं? हां, तो *ब्रह्मचर्य का पालन करें। आत्मबल आत्मतेज की प्राप्ति का एक ही साधन ब्रह्मचर्य है। जिसने अपने बाल्यकाल में ब्रह्मचर्य का पालन कर लिया उसके लिये इस संसार में कोई कार्य असंभव नहीं है। सफलता का मूल मंत्र है: ब्रह्मचर्य ही सर्वोत्तम तप है।

क्या आप चाहते हैं कि आप से जनता प्रेम करे? संसार का प्रत्येक मानव आपकी ओर आकर्षित हो? आपकी प्रत्येक बात शिरोधार्य कर मान दें! हां तो आपको ब्रह्मचर्य की सबल पतवार हाथ में लेनी होगी, फिर देखो कितनी सुगमता और वेग से आपकी जीवन-नौका प्रत्येक प्रकार की कठिनाई रूपी भंवरों को पार करती ई आगे बढ़ती चली जाती है।

क्या आप चाहते हैं कि आपके मुंह पर लाल-गुलाबी छटा हो? आपके नेत्रों में अनूठी ज्योति हो? चाल में अनोखापन हो? आपकी छाती में उठान, हृदय में दृढ़ता हो? आपके शरीर का प्रत्येक अंग सुगठित-बलवान हो? आपके शत्रु सदा आपसे भय मानें, सफलता आपका स्वागत करे, आपकी बोली मनमोहिनी हो? हां, तो आज आप किसी भी अवस्था में क्यों न हों, ब्रह्मचर्य का पालन प्रारंभ कर दें। फिर देखियेगा कि आप संसार में कैसे चमकते हैं। सारा संसार भौंरे की भांति आपके चारों ओर मंडराने लगेगा। आपके जीवन में एक नवीन प्रकाश की ज्योति खिल उठेगी।

---

* **ब्रह्मचर्य में दो शब्द हैं:**—एक ब्रह्म और दूसरा चर्य। ब्रह्म-गुरुकुल में, चर्य-रहना। इसी अपेक्षा से साधु-साध्वी आजन्म सद्गुरु की शरण में रह औदारिक, वैक्रिय और शारीरिक काम-भोग का त्याग करते हैं और ब्रह्म-वीर्य की, चर्य-रक्षा करते हुए आत्मविकास की प्रगति कर, एक दिन अवश्य ही परम पद (मोक्ष) प्राप्त कर लेते हैं। ब्रह्म-आत्मा में चर्य-रमण करना ही तो ब्रह्मचर्य है।

**ब्रह्मचर्य-व्रत की पांच भावना:**—१ स्त्री, पशु, नपुंसकों के निवासस्थान का त्याग। २ रागपूर्वक स्त्री-कथा का त्याग। ३ स्त्रियों के अंग-उपांगों का घूर-घूर के देखने का त्याग। ४ पूर्व में किये हुए संभोगादि विषयों के स्मरण का त्याग। ५ अति पौष्टिक उत्तेजक भोजन का त्याग। ब्रह्मचर्य के अठारह हजार भेद हैं।

ब्रह्मचर्य का विनाश आपका विनाश है। ब्रह्मचर्य की रक्षा आपके जीवन की सुरक्षा है। मानव क्षणिक विषय की लोलुपता-वश अपने पैरों पर कुठाराघात कर बैठता है। अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जिन्होंने बचपन में क्षण भर के लिये अपना सर्वनाश किया, आज वे प्रत्यक्ष जो कुछ कमाते हैं वह चुपचाप डाक्टर-वैद्यों को अर्पण कर दिन-रात आंसू बहाते हैं।

णमो बंभवय धारिणं, —"भगवान महावीर"

वीर्य ही आपकी हड्डियों का सत्त है, मस्तक का भोजन है, जोड़ों-संधियों का तेल है। श्वास की मधुरता है! अगर आप को संसार में आकर कुछ करना है, चार दिन जीना है तो पहले अपने वीर्य की रक्षा करो। —"डॉ. मेळवील कीथ एम. डी."

जननेन्द्रिय, पाकस्थली और मस्तिष्क, तीनों का आपस में सम्बन्ध है. एक रोगी होने से दूसरे भी बचते नहीं। ब्रह्मचर्य से सदा तीनों निरोग रहते हैं। —"डॉ. जी. एन. बिपर्ट"

जगत में सुख और शांति स्थापित करने के लिये स्त्री और पुरुष दोनों को नियमित ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। —"मिस्टर-टाल्सटाय"

मानव जीवन का सार वीर्य है। —"डॉ. पी. डी. हार्नेसाब"

वीर्यवान के लिये ही संसार है। ब्रह्मचारी ही जगत् को जीत सकता है। —"सत्यदेवजी"

अतः आज से आप अपने मन में दृढ़ संकल्प कर लें कि मैं विशेषरूप से अपने वीर्य की रक्षा कर ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। संकल्प करने से आपकी विचारधारा बदलते देर न लगेगी। वासनाओं की तृप्ति और परिवार का कल्याण होगा। आपकी प्रत्येक मनोकामनाएं सफल होंगी। सच है, जैसे बीज बोओगे वैसा ही फल पाओगे। प्रतिदिन सुबह और सायंकाल किसी शांत स्थान या अपने बिछोने से उठ कर भूमि पर मौन बैठ कर भगवान से प्रार्थना करो।

**आज का दिन मंगलमय हो:—** (१) हे प्रभो! आज मैं परायी स्त्री, छोटी को बहिन और बड़ी को मां की दृष्टि से देख, ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा। आज का दिन मेरे लिये मंगलमय हो। (२) हे देव! मेरी इन्द्रियों के घोड़ों को कुवासना के पथ में बढ़ने न दो, मेरी रक्षा करो, मुझे बल, साहस और विवेक प्रदान करो। आज का

दिन मेरे लिये मंगलमय हो। (३) हे प्रभो ! आप स्वयं प्रेम स्वरूप आनंदघन हैं, शांति और क्षमा आपकी दासी हैं, इसी प्रकार इस दास के रोम-रोम में शांति क्षमा और निर्विकार भावना का संचार हो, आज का दिन मेरे लिये मंगलमय हो (४) हे प्रभो ! मेरी मानसिक वृत्तियाँ दिन-प्रति-दिन पवित्र और शांत होती जा रही हैं। नाथ ! अब आप मुझे आरोग्य स्वास्थ्य, निर्भयता, और दिव्य तेज प्रदान करो। आज का दिन मेरे लिये मंगलमय हो। (५) हे प्रभो ! मैं अपनी पवित्र आत्मा के अनंत गुणों से परिपूर्ण हूँ, असंयोगी, अविनाश और पर से भिन्न स्वतंत्र हूँ। मेरी असत् बुद्धि का अविलंब अंत हो। देव ! मुझे सन्मार्ग और भवो-भव में सम्यग्दर्शन, केवलीभाषित धर्म, वीतराग-दशा, और आपकी शरण प्राप्त हो। आज का दिन मेरे लिये मंगलमय हो।

अपवित्र मन को शुद्ध करने के लिये दृढ़ संकल्प और भगवत् प्रार्थना एक महत्त्वपूर्ण अचूक उपाय है। जैसे-जैसे इसकी प्रबलता बढ़ती जायेगी वैसे ही आपकी अनेक कठिनाइयाँ एक के बाद एक हल होकर आगे आपको बड़ा अद्भुत आनंद आयगा।

**ब्रह्मचर्य-घातकः**—आज मानव धूम्रपान और गांजा, भंग, और अफीम खाने की व तम्बाकू सूंगने से अतिथि-सत्कार कर और मादक पदार्थों का सेवन करने में अपना बड़प्पन, सौभाग्य मानते हैं। किन्तु उन्हें पता नहीं कि हम स्वयं अपने हाथों से अपने और मित्रों के भाग्य और जीवन के हरेभरे उद्यान में आग लगा, यमराज को घर के खूंटे से बांध रहे हैं।

धूम्रपान से वीर्यनाश और आँखों की ज्योति मंद हो जाती है। हृदय और स्मरणशक्ति दुर्बल हो जाती है। कफ बढ़ता है। दम और खाँसी घर दबाती है। सच है—"झगड़े की जड़ हंसी, रोग की जड़ खाँसी, तम्बाकू में निकोलन (निकोटिन) एक भयंकर विष है, वह मानव को अति शीघ्र काल के गाल में ढकेले बिना नहीं रहता। तम्बाकू की दुर्गंध से मेढ़क, पक्षी, मक्खी और मच्छर तक मर जाते हैं।

नशे से सदा आलस्य छाया रहता है, जीवनशक्ति नष्ट हो जाती है, रक्त-विकार हो जाता है। नशे से चिड़चिड़ा स्वभाव व स्वप्नदोष होने की संभावना रहती है। नशेबाज अपने धन और विश्वास से हाथ धो मुंह लपोड़ता रह जाता है। अतः ब्रह्मचारी को सदा मादक पदार्थ (नशे) तम्बाकू सूंघने, खाने और पीने (धूम्रपान) से दूर रहना चाहिए। "ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्यनाश मृत्यु है।

**ब्रह्मचारी के लिये आवश्यकः**—क्या आप अपना सोया भाग्य चमकाना चाहते

है ? हां ! जो आप आज ही प्रति-दिन सुबह चार बजे अपना बिछोना त्याग करने का प्रण कर, भगवत् भजन करना आरंभ कर दें। प्रातः जल्दी उठने से शरीर और मन बड़ा स्वस्थ, प्रसन्न रहता है | Early to bad early to rise, Makes a man healthy wealthy and wise. सुबह जल्दी उठने और रात को जल्दी शयन करने से मानव स्वस्थ, धनवान और विद्वान् बनता है। सूर्योदय के बाद देरी से उठने वाले स्त्री पुरुष सदा रोती सूरत और सुस्त रहते हैं, उनसे लक्ष्मी और सरस्वती रुष्ट हो अपना मुंह मोड़ लेती हैं। दिन चढ़े उठने से शरीर में आलस और स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है | अतः प्रातःकाल जल्दी उठकर भगवत् भजन और अध्ययन करना मानव के लिये सोने में सुगन्ध है।

**पवित्र रखो**:—रात को बड़ी देर तक बिजली, ग्यास आदि के तेज प्रकाश में काम करना नेत्र और शारीरिक स्वास्थ्य के लिये बड़ा ही घातक है। मानव को रात्रि में लगभग दस बजे तो सो ही जाना चाहिए, छः घण्टे से अधिक नींद न लें। सोते समय मन को दुर्वासनाओं से अलग कर दें। यह मन-वानर बड़ा चंचल है, नींद में न मालूम कहाँ इधर-उधर भटकता रहता है। मानसिक चंचलता एक अभिशाप है। आयुर्वेद-आचार्यों का अभिप्राय है कि वीर्य की एक बिंदु का भी अपव्यय-दुरुपयोग न होने दो। अपने मन और विचारों को सदा पवित्र रखो। वीर्य उत्पत्ति की प्रक्रिया का बार-बार चिंतन मनन करो—

**वीर्य कैसे बनता है ?**:—आप जो भोजन करते हैं, उसका प्रति *पांच-पांच दिन के अन्तर से रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डियाँ और मज्जा बनती हैं। पश्चात् निरर्थक पदार्थ मल-मूत्र आँख, कान का मैल पसीना नख केश आदि के रूप में बदल कर अन्त में क्रमशः तीस दिन चार घण्टे में वीर्य बनता है। यह प्रक्रिया-विधि आपके शरीर में चन्द्र-सूर्य के समान सदा दिन-रात, रात-दिन चलती ही रहती है अर्थात् चालीस ग्रास भोजन से एक बूंद रक्त और चालीस बून्द रक्त से एक बूंद वीर्य बनता है। एक तोला वीर्य की क्षति मानव के आधा सेर ४० तोले रक्त के दुरुपयोग के समान है। अतः महापुरुषों ने हमें अन्य व्रत-नियमों की अपेक्षा इस बात पर अधिक जोर दिया है कि ब्रह्मचर्य का पालन कर अधिक से अधिक वीर्य का संचय करो, स्वस्थ बलवान बनो! एक ही वीर्य की बिन्दु में नव लाख जीवों की हिंसा होने की संभावना रहती है। निर्बल मानव इस भूतल पर भार भूत है।

---

* कई वैद्यों का मत है कि वीर्य निर्माण की क्रिया में क्रमशः सात सात दिन का अन्तर रहता है।

**वीर्यरक्षा के अचूक उपायः**—निश्चित समय पर मल-मूत्र का अवश्य त्याग कर दो, इस के वेग को रोकना वीर्यरक्षा के लिये बड़ा घातक है। पेट को साफ और हलका रखो। प्रातः काल उठकर प्राणायाम-व्यायाम करो, गहरे श्वास लो, दस पंदरह मिनिट के नियमित व्यायाम से आपके शरीर की क्रांति निखर उठेगी। आपकी स्मरणशक्ति और नेत्रों की सुरक्षा के लिये प्रतिदिन शीर्षासन करना न भूलो। भोजन सदा प्रसन्न मन और अनासक्त भाव से करो। भोजन करते समय कदापि चिन्ता और क्रोध न करो। प्रत्येक वस्तु को अल्प और दांतों से खूब चबा चबा कर खाओ। भोजन सूर्य स्वर में और जल-पान चंद्र स्वर में करना अमृत के समान है। भोजन करते समय मौन रहो। सदा भोजन में घी, तेल में तले चटपटे तेज मसालेदार पदार्थ अधिक काम में न लो। पक्ष में एक बार उपवास करना, भोजन के बाद कुछ दूर टह कर आधा घंटे अपनी बांई करवट लेटना शक्ति स्फूर्ति और स्वास्थ्यप्राप्ति का एक रामबाण उपाय है। दिन में नींद न लो। अपने दांतों को बंद कर धीरे धीरे चूस चूस कर जल-पान करो। इस से वर्षों तक आपके दांत न हिलेंगे और नेत्रों की ज्योति मंद न होगी। बुरे साथियों से दूर रहो। *अश्लील साहित्य न पढ़ो। +सिनेमा चलचित्रों से बचो। ×सायकल का अधिक उपयोग न करो। चाय, शकर और मिर्ची ये तीनों विष हैं, इनको अपने निकट न आने दो।

---

* **अश्लील साहित्यः**—अश्लील साहित्य, जिसमें कामवासनाओं को जगाने की सामग्री का अधिक वर्णन होता है, विद्यार्थियों के लिए किसी समय भी पढ़ना अच्छा नहीं है। गृहस्थी की देखा-देखी विद्यार्थी भी रेल के सफर में, रविवार को छुट्टियों में समय बिताने के लिये अश्लील कहानी, उपन्यास, नाटक आदि पढ़ने लगते हैं। ऐसे साहित्य पढ़ने से मन में बुरी भावनाएं उत्पन्न होती हैं। इससे विद्यार्थी एवं प्रत्येक मानव को वीर्य-विकार का अनेक व्याधियाँ आ घेरती हैं। इससे बचने के लिये भूल कर भी अश्लील-गंदे साहित्य न पढ़ना चाहिए।

\+ **सिनेमाः**—आपको सिनेमाओं से इसलिए बचना है कि इनके जरिये बहुत दिनोंसे जनता को जो दी जा रही है, वह जनता के स्वास्थ्य और सामायिक आवश्यकता, दोनों के विपरीत है। मनोरंजन के नाम पर स्त्रियों के लज्जाजनक दृश्य दिखाकर, जनता के मन में जिन इच्छाओं को जन्म दिया जाता है अथवा बढ़ाया जाता है, वह उन्हें लम्पट-दुराचारी बनाकर उनके स्वास्थ्य का सर्वथा नाश करता है। सिनेमा मनोविनोद नहीं, चरित्र के पतन और ब्रह्मचर्य के विनाश का खुला द्वार है। छात्रावस्थामें सिनेमा देखना महान घातक है। आज मानव ९० प्रतिशत वीर्य-विकार के रोगसे पीड़ित हैं इसका कारण सिनेमा है। सिनेमा के धार्मिक चित्रों में भी प्रायः शृंगार रस का पुट रहता है अतः सिनेमा के बुरे प्रभावों से बचने के लिए उनका न देखना ही श्रेयस्कर है।

× **सायकलः**—सायकल मानव के स्वास्थ्य और दीर्घायु की इतिश्री-संहार की एक दुधारी

**रात को सोने से पहले:—**यह वीर्य को सुरक्षित रखने की एक अति महत्त्वपूर्ण बड़ी चमत्कारिक क्रिया है। इससे जहज ही आपकी शारीरिक थकावट दूर होकर आपको बड़े आनन्द से नींद आती है, स्वास्थ को बल मिलता है। आप रात को सोते समय जल से अपने हाथ-मुंह और पैर को जंघा तक धो डालें। फिर अपने बिछोने पर सीधे चित्त लेट जाएं, सिर के नीचे तकिया न रखें। दो मिनिट चुप चाप शांत लेटने के बाद एक गहरी श्वास लेकर अपने फेफड़ों के अन्दर की दूषित-विषैली हवा दूर कर दें। फिर सिर, नेत्र, गर्दन छाती पैर आदि शरीर के प्रत्येक भाग पर दृष्टि डाल कर उन अंगों को बिलकुल ढीले कर दो। ऐसा तीन बार करने के बाद अपने दोनों हाथों से शरीर के प्रत्येक अंग को स्पर्श करते हुए यह दृढ़ भावना करो कि मेरे सब अंग नियमित रूप से बराबर काम कर रहे हैं। यदि किसी जगह कोई विशेष विकार-रोग है तो उस स्थान पर अधिक हाथ रखना चाहिए। और यह भावना करना चाहिये कि मेरा *रोग दूर हो रहा है।

---

नंगी तलवार है। यह बाहर से जितनी सुन्दर और उपयोगी है, उतना ही अन्तिम फल घातक सिद्ध हुआ है। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं दम, खांसी, हृदयरोग और स्त्री-पुरुषों के अनेक गुप्त रोग। वृद्ध अनुभवी महानुभावों का कहना है कि आज नवयुवकों के मुंह पर असमय में जो बुढ़ापा छा जाता है, उसका एक यह भी प्रमुख कारण है सायकल का उपयोग। कारण स्पष्ट ही है कि पैदल चलने-घूमने फिरने से मानव के रक्त में एक विशेष गति उत्पन्न होती है, इसके अभाव में शरीर में कुरूपता आना स्वाभाविक ही है।

*** रोग दूर करने की विधि:—**बिछोने पर लेटकर आपके शरीर में जहाँ भी रोग-पीड़ा हो, उस पर हाथ रख कर एक गहरी श्वास लें फिर अपने शरीर के प्रत्येक अंग को आप आज्ञा दें कि तुम बिलकुल शिथिल ढीले हो जाओ। ऐसा तीन बार करें। जब आपके प्रत्येक अंग शिथिल हो जांय उस समय आप अपने मन को जहाँ रोग हो उस पर स्थिर करो, मनमें दृढ़ संकल्प करो कि मेरा रोग इस स्थान से हटकर श्वास द्वारा बाहर निकल रहा है। कुछ दिनों में आप अवश्य ही बिना औषध के स्वस्थ-निरोग हो जावेंगे। चाहिए अटल श्रद्धा, दृढ़ संकल्प।

जैसे मान लो आपको कब्ज अथवा अपच का रोग है तो आप सोते समय अपने सारे शरीर को शिथिल कर अपने पेट पर दोनों हाथ रख कर पहले मन को पेट पर स्थिर करो। फिर अपने मन को आज्ञा दो कि वह आपके समस्त उदररोग को जड़ से निर्मूल कर मार भगाए। इस प्रकार दस-पंद्रह मिनिट करने के बाद फिर कल्पना करो कि मेरी जठराग्नि, तिल्ली, लिवर, आंतड़ियाँ सब बराबर अपना काम कर रहीं हैं, दूषित मल अलग हो रहा है। इसे भी दस-पंद्रह मिनिट बड़े मनोयोग से करियेगा।

इस प्रकार आप दृढ़ विश्वास के साथ एक सप्ताह करें। फिर देखो कि उसका कितना सुन्दर परिणाम होता है। यह योग एक अच्छे अनुभवी विद्वान् वृद्ध महोदय का परीक्षित है।

अब आप अपने मन को आज्ञा दें। रे मन! तू पाप-मार्ग में इधर-उधर न भटक, मैं अब चार शरण, भगवन्नामस्मरण करते हुए शयन करता हूं। मैं प्रातःकाल चार बजे स्वस्थ होकर बड़े आनंद से उठूंगा। मेरा मन और मस्तिष्क उस समय फूल सा हलका प्रफुल्लित होगा।

**चार चरणः**—अरिहंते शरणं पवज्जामि, सिद्धे शरणं पवज्जामि, साहू शरणं पवज्जामि। केवलि पन्नतं धम्मं शरणं पवज्जामि।

इसके बाद जब तक आपको नींद न लगे निम्न मंत्र का बार बार स्मरण करो

ॐ आनंदम् ह्रीं आनंदम् श्रीं आनंदम्, ऐं क्लीं ॐ।
सहजानंदम् सहजानंदम्, सहजानंदम् ॐ ह्रीं ॐ॥
परमानंदम्, परमानंदम् परमानंदम्, ॐ श्रीं ॐ।
ॐ आनंदम् ह्रीं आनंदम् श्रीं आनंदम्, ऐं क्लीं ॐ॥

पांच भेद छे खंतिना, उवयार-वयार विवाग रे।
वचन धर्म तिहां तीन छे, लौकिक दोई अधिक सोभाग रे॥ सं. ॥२५॥
अनुष्ठान ते चार छे प्रीति भक्तिने वचन असंग रे।
त्रण क्षमा छे दोय मां अग्रिम दोय मां दोय चंग रे॥ सं ॥२६॥
वल्लभ स्त्री जननी तथा, तेहना कृत्य मां जुओ राग रे।
पड़िक्कमणादिक कृत्य मां, एम प्रीति भक्तिनो लाग रे॥ सं. ॥२७॥
वचन ते आगम आसरी, सहेजे थाय असंग रे।
चक्र भ्रमण जिम दंड थी, उत्तर तद भावे चंग रे॥ सं. ॥२८॥

**क्षमा के पांच भेदः**—(१) उपकार क्षमा—किसी मनुष्य ने आपका उपकार-भला किया हो उसके समय पर कटु शब्द, कटु व्यवहार को चुपचाप सहन करना उपकार क्षमा है और बिना मन से अथवा किसी भयादि लज्जा से परस्पर खमत खामणा क्षमा-याचना करना उपचार क्षमा है। (२) अपकार क्षमा—किसी श्रीमन्त, बलवान मनुष्य के सामने निरुपाय हो चुप बैठना अपकार क्षमा है। (३) विचार क्षमा-क्रोध एक ठण्डी आग है, यह मानव के अनेक जन्म क्रोड़ +पूर्व के जप, तप, संयम को

---

+ सित्तर लाख छप्पन हजार क्रोड़ वर्ष का एक पूर्व होता है।

क्षण में नष्ट कर देता है अतः दूसरे के कटु शब्द और व्यवहार को शांत भाव से सह लेना विपाक-विचार क्षमा है। (४) वचन क्षमा – किसी मनुष्य को कटु शब्द बोल उसका मन दुःखाना अथवा दूसरों के कटु शब्द सुन अपने मन में दुःख न लाना वचन क्षमा है। (५) धर्मक्षमा – गजसुकमाजी के समान अपने आत्म-स्वरूप को समझ सुख-दुःख से अलग रह कर एक मात्र मोक्ष का अभिलाषी होना धर्मक्षमा है। इसमें उपकार, अपकार और विपाक यह तीन क्षमा लौकिक तथा वचन और धर्मक्षमा लोकोत्तर क्षमा है।

**क्षमा के चार अनुष्ठानः**— अनुष्ठान का अर्थ है, नियमित आराधना। इसके चार भेद हैं। (१) प्रीति-प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान (पच्चक्खाण) प्रीति अनुष्ठान है। (२) भक्ति-सामायिक, चतुर्विंशति-स्तव और गुरु-वंदन भक्ति अनुष्ठान है। (३) शास्त्र-आज्ञानुसार साधना करना वचन-अनुष्ठान है। (४) सहज प्रवृत्ति असंग-अनुष्ठान है।

प्रश्न – छः आवश्यक का उद्देश्य तो कर्म निर्जरा है, फिर इसमें ऐसी भिन्नता क्यों? उत्तर-निर्जरा अवश्य है किन्तु अपेक्षा कृत उसमें इतना अंतर है, जैसे घर में धर्मपत्नी और मां। महिला पर्याय की अपेक्षा तो स्त्री और मां दोनों समान और प्रिय हैं किन्तु जब अनुराग का प्रश्न उपस्थित होगा वहाँ दोनों में दिन-रात का अंतर हो जायगा। अर्थात् मानव को पत्नी के साथ प्रीति-राग और मां के साथ भक्ति-राग का व्यवहार करना अनिवार्य है अतः ज्ञानी भगवान ने छः आवश्यक को विशेष रूप से स्पष्ट समझाने का प्रयत्न किया है।

प्रश्न – असंग–सहज प्रवृत्ति का क्या अभिप्राय है? उत्तर – यह मन-वानर पल में तोला, पल में माशा बन राह भटक जाता है, अतः इसे कुंभार के चक्र समान एक सही मार्ग की ओर मोड़ देना असंग सहज वृत्ति है। अर्थात् यह मन उस चक्र के समान सदा अपने विशुद्ध आत्म-स्वभाव में ही रमता रहे।

विष गरल अनुष्ठान छे, तद् हेतु वलि अमृत होय रे।
त्रिक तजवा दोय सेववा, ए पांच भेद पण जोय रे॥ सं. ॥२९॥
विष क्रिया ते जाणीये, जे अशनादि उद्देश रे।
विष ततखिण मारे यथा, तेम एहज भव फल लेश रे॥ सं. ॥३०॥
परभवे इन्द्रादिक ऋद्धिनी, इच्छा करतां गरल थाय रे।
ते कालांतर फल दीए, मारे जिम हड़कियो वाय रे॥ सं. ॥३१॥

लोक करे तिम जे करे, उठे बेसे संमूर्च्छिम प्राय रे।
विधि विवेक जाणे नहीं, ते अन्यानुष्ठान कहाय रे ॥ सं. ॥३२॥
तद्हेतु ते शुद्ध राग थी, विधि शुद्ध अमृत होय रे।
सकल विधान जे आचरे, ते दीसे विरला कोय रे ॥ सं. ॥३३॥
करण प्राति आदर घणो, जिज्ञासा जाणनो संग रे।
शुभ आगम निर्विघ्नता, ए शुद्ध क्रियाना लिंग रे ॥ सं. ॥३४॥
द्रव्यलिंग अनन्ता धर्या, करी क्रिया फल नवि लद्ध रे।
शुद्ध क्रिया तो संपजे, पुद्गल आवर्त्तने अद्ध रे ॥ सं. ॥३५॥
मारग अनुगति भाव जे, अपुनर्बंधकता लद्ध रे।
क्रिया नवि उपसंपजे, पुद्गल आवर्त्तने अद्ध रे ॥ सं. ॥३६॥

**अज्ञान कष्ट से दूर रहो :**—जैनधर्म एक वैज्ञानिक धर्म है, इसका सिद्धान्त है कि अंधश्रद्धा और अज्ञान क्रिया विधान से सदा दूर रहो।। प्रत्येक जप-तप, क्रिया-विधान साधना को ज्ञान और विवेक की कसोटी पर कस कर ही करो, थोड़ा और अच्छा शुद्ध करो।

आज कई स्त्री-पुरुष नवपद्-ओली-सिद्धचक्र आराधना, वर्धमान तप, बीस स्थानक तप, कल्याणक तप, ज्ञान पंचमी, मौन एकादशी, आदि अनेक तप करते हैं, अष्टमी चतुदर्शी उपवास में २४ व २६ घंटे निराहार रहते हैं। उन श्रावक-श्राविकाओं से यदि पूछा जाय कि महानुभावो! आज आपको तपाराधन करते वर्षों बीत गए, आपके विचार, वाणी और व्यवहार में कुछ परिवर्तन हुआ ? नहीं। कषाय (क्रोध, मान, माया लोभ) मंद हुई ? आपको किसी से ईर्षा और वैर तो नहीं है ? तो उत्तर में हम क्या पाएंगे, एक हल्की मुस्कान हंसी। इसी प्रकार पढ़े-लिखे वर्ग जिनको *चार प्रकरण, तीन भाष्य,

* १ चार प्रकरण:—जीव विचार, नवतत्त्व, दंडक और संग्रहणी। २ तीन भाष्य—चैत्यवंद, गुरुवंदन और पच्चक्खाण भाष्य। ३ छः कर्मग्रंथ—१ कर्म विपाक २ कर्मस्तव ३ बंध स्वामित्व ४ षट्शीति ५ शतक ६ षष्ट सप्ततिका कर्मग्रंथ। ४ पंच-प्रतिक्रमण:-राई, देवसिय, पाक्षिक, चौमासी और संवत्सरी।

छः कर्मग्रंथ, पंच-प्रतिक्रमण मुख-पाठ हैं, वे नित्य प्रति जिन पूजन, सुबह शाम प्रतिक्रमण करने से नहीं चूकते उनसे हम पूछे कि महानुभाव ! आप कितने आगे बढ़े ? आपकी आराधना के संस्मरण क्या हैं ? आप कभी असत्य-भाषण तो नहीं करते ? आपके व्यापारिक लेनदेन में तो *न्यायसंपन्न विभव का ही प्रमुख स्थान होगा ? आपको मान-संमान का रोग तो लागू नहीं है ? आपको दैनिक कार्यक्रम में +अठारह पापस्थान के एक एक शब्द का सदा लक्ष्य बना रहता होगा ? आप प्रतिदिन किसी शुभ खाते में हाथ बटाने, अतिथि-याचक की सेवा-लाभ की प्रतीक्षा में रहते हैं, या चंदा-टीप लिखाने वाले की सूरत देख किनारा करने की सोचते हैं ? आपने अपनी भूल को ढकने का तो कभी प्रयत्न नहीं किया न ? आपको अपनी भूल दिन-रात, रातदिन सदा खटकती रहती है ? यदि कोई मनुष्य आपके दुर्गुण को प्रकाश में लाए तो आप उसके साथ कैसा वर्ताव करेंगे ? उसे कुछ पारितोषिक देंगे ? उत्तर में क्या पाएंगे ? हलकी हंसी मुस्कान बस । इसी मुस्कान से आज मानव साधना क्यों और कैसे ? की राह भटक दिन प्रतिदिन दया का पात्र बनता जा रहा है । ज्ञान और क्रिया में असमानता का व्रतनियम जप-तप के साधकों के लिये बहुत ही घातक सिद्ध हुआ है । कहीं भूख-प्यास, शीत-ताप सहन करने पर भी आपकी वाणी व्यवहार, विचार और भौतिक पदार्थों की आसक्ति में परिवर्तन का न होना वास्तव में दुर्भाग्य-अज्ञान कष्ट हैं । अतः अब आँखे खोलो और ज्ञानी सद्गुरु की शरण में साधना के मर्म को समझ अपना जन्म सफल करो ।

**साधना क्यों और कैसे ?** :—साधना क्यों ? साधना का एक मात्र उद्देश्य है—१ मिथ्यात्व-अंधश्रद्धा, अज्ञान कष्ट का त्याग और आध्यात्मिक विकास की सतत अभिरुचि । भव भ्रमण का अंत और कषाय की मंदता । २ कठोर व्रत-नियम जप तप, ज्ञान-ध्यान, ये सम्यग्दर्शन की विशुद्धि और कर्मक्षय के उपादान कारण हैं । साधना कैसे ? :- साधना कैसे करना यह भी एक समस्या है । इस समयका हल तो व्रत-नियम आराधक स्त्री-पुरुषों की अभिरुचि स्वास्थ्य और प्रकृति पर ही निर्भर है । जैसे एक व्यक्ति निर्जल उपवास बड़े आनंद से कर सकता है किन्तु उसके लिये निरस—

* न्याय संपन्न—विभव—नीति से कमाया हुआ धन ।

+ अठारह पाप—स्थान—१ प्राणातिपात, २ मृषावाद, ३ अदत्ता दान (चोरी) ४ मैथुन, ५ परिग्रह, ६ क्रोध ७ मान, ८ माया ९ लोभ, १० राग, ११ द्वेष-ईर्षा, १२ कलह, १३ अभ्याख्यान-कलंक, १४ पैशुन्य-चुगलखोरी, १५ रति-अरति १६ पर-परिवाद-निंदा, १७ माया-मृषावाद-कपट, १८ मिथ्यात्व-शल्य ।

आयंबिल करना एक विकट समस्या है, इस व्रत से उसे वमनादि होने लगते हैं। इसी प्रकार एक मानव एक ही बैठक पर लगातार दो-चार घण्टे बैठकर शास्त्र-वाचन धारणा-ध्यान, जप आदि सानंद बड़े प्रेम से कर सकता है, किन्तु उसे भूख जरा भी सहन नहीं होती। अतः महापुरुषों का अभिप्राय है कि "तावत् हि तपो कार्यं यावत् दुर्ध्यानो न भवेत्"—तप वही श्रेष्ठ है, जिसकी आराधना से साधक के मन में बुरे संकल्प-विकल्प, दुर्ध्यान न हो। तप का अंतिम फल है मंद-कषाय और भव-भ्रमण का अंत होना। हाँ! साधक स्त्री-पुरुषों को एक यह भी लक्ष्य रखना आवश्यक है कि मेरी साधना-क्रिया शुद्ध है या अशुद्ध।

**क्रिया के पांच भेदः**—*(१) विषक्रिया (२) गरलक्रिया, (३) अन्योन्य-अनुष्ठान क्रिया, (४) तद् हेतु क्रिया और (५) अमृत क्रिया। इन में तीन अशुद्ध और दो क्रियाएं शुद्ध हैं। यह मार्गदर्शन श्रमण वर्ग को ही लक्ष्य करके दिया गया है, किन्तु यह विधान वास्तव में प्रत्येक साधक-आराधना करने वाले मानव के लिए विशेष उपयोगी है। वे महानुभाव धन्य हैं, जिनका लक्ष्य शुद्ध क्रिया की ओर है।

---

* १ **विषक्रियाः**—(१) मिष्ठान्न भोजन, श्रीफल, बताशे, नगद रुपये, थाली, लोटा, सुन्दर डिब्बियों आदि की प्रभावना के प्रलोभन अथवा भगत, बड़े धर्मात्मा कहलाने के मोह से सामायिक, प्रतिक्रमण, जिन पूजन, व्याख्यानश्रवण करना विषक्रिया है। (२) इसी प्रकार मान-संमान, क्रिया-पात्र की प्रसिद्धि प्राप्त करने के प्रलोभन से गृहस्थ को देखकर बिना श्रद्धा के उत्कृष्ट क्रिया का प्रदर्शन करना, रसीले-मिष्ठान, भोजन और पूज्य-आचार्य, उपाध्याय, पंन्यास, गणि आदि पद की लोलुपता से विशेष अध्ययन कर, चारित्र की आराधना करना विषक्रिया है। विष-मानव को अति शीघ्र मृत्यु के घाट उतार देता है उसी प्रकार विषक्रिया करने वाले साधक साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका व स्त्री-पुरुषों को सिवाय दुर्गति के और कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता।

२ **गरलक्रियाः**—देव-देवेन्द्र-इन्द्र, चक्रवर्ती राजा-महाराजा आदि का पद व ऋद्धि-सिद्धि पाने की लालसा से कठोर व्रत-नियम और शुद्ध चारित्र की आराधना करना गरल क्रिया है। प्रश्न-विष और गरल में क्या अन्तर है? उत्तर-विष मानव के तत्काल ही प्राण ले लेता है किन्तु गरल कालान्तर के बाद अपना प्रभाव बतलाता है। जैसे किसी को एक पागल कुत्ते ने काटा है तो वह न जाने कब उगल कर मानव के प्राण हर लेगा। इसी प्रकार साधक के तपोबल-चारित्र बल का फल उसे भविष्य में कुछ समय तक ऋद्धि-सिद्धि तक ही सीमित रह जाता है, किन्तु उसके भव-भ्रमण का अंत नहीं हो पाता। अतः साधक को गरलक्रिया से सर्वथा दूर रहना चाहिए।

३ **अन्योन्य-अनुष्ठानक्रिया**:—बिना श्रद्धा, सूत्र, अर्थ और द्रव्यानुयोग को समझे उदर-पोषण-पेट भरने के प्रलोभन से दूसरों के देखा-देखी बन्दर कुदाना ओघ संज्ञा है, लोक प्रसन्नता के लिये धार्मिक क्रिया करना लोक संज्ञा, अर्थात् अन्योन्य-अनुष्ठान क्रिया है। यह क्रिया भी भव-वर्धक संसार में भटकाने वाली है, अत: व्रत-नियम आराधक महानुभाव और साधु-साध्वी को इस क्रिया से सर्वथा दूर रहना चाहिये।

**शुद्ध क्रिया के लक्षण:**—व्रत के महत्त्व और विधि के सूत्र-अर्थ को समझ उसकी प्रसन्न-मन श्रद्धा बहुमान और हृदय से आराधना करना, तथा व्रत विधि के जानकार सद्गुरु या वृद्ध श्रावक की सेवा करना चाहिए। व्रत की स-विधि शुद्ध भाव से आराधना करने से अनेक विघ्नों-कर्मों का नाश, द्रव्य-संपत्ति, धनधान्य और भाव संपत्ति-सद् ज्ञान-विज्ञान, विनय-विवेकादि की प्राप्ति होती है। वे महानुभाव साधु-साध्वी धन्य हैं जो कि सदा अमृत क्रिया करने की लगन रखते हैं।

कई मानव ऐसे हैं जिनको गर्व है कि मैंने नवपद, बीस स्थान, वर्धमान, कर्म चूर आदि तपों की दस–बीस–पचास–साठ ओलियाँ की हैं, मैं व्रतधारी बड़ा तपस्वी हूँ। मैं वर्षों का दीक्षित हूँ मैंने बेले तेले अट्ठाईयाँ, दस-बीस उपवास किये हैं, अन्य लोग तो रोटी-राम भोजनानंदी हैं, यह उनका भ्रम है। बिना उपयोग और सम्यक्त्व की स्पर्शना, कषाय की मंदता के कोटी पूर्व के तप–जप–संयम का कोई मूल्य नहीं। ऐसे तो इस जीव ने एक लाख योजन प्रमाण के मेरु पर्वत के बराबर गृहस्थ जीवन में बेठके-आसन, मुख वस्त्रिका, माला और साधु अवस्था में रजोहरण-ओगे मुहपत्ति, पात्रे तरपणी को अपने उपयोग में ले डाला फिर भी भव-भ्रमण न मिटा।

---

४ **तद्हेतु क्रिया:**—अपनी आत्मा को संसार से मुक्त करने की दृढ़ भावना से श्रीसद्गुरु की शरण में रहकर या उन की आज्ञा से स-विधि बड़े मनोयोग और अटल श्रद्धा से प्रति-दिन सामायिक, प्रतिक्रमण, जिन-पूजन, धारणा-ध्यान आदि व्रत-नियमों का परिपालन करते हुए एक दिन सद्गुरु से दीक्षा ग्रहण कर चारित्र की बड़े शुद्ध भाव से स-विधि उपयोग पूर्वक आराधना करना तद्हेतु क्रिया है। इस क्रिया से आध्यात्मिक-विकसा की ओर सतत अभिरुच रखने वाले साधारण पढ़े-लिखे मानव भी विशुद्ध चारित्र की आराधना का लाभ ले सकते हैं।

५ **अमृत क्रिया:**—चांदी, सोना, माणिक, मोती, हीरे, पन्ने आदि एक से एक बढ़कर बहु मूल्य पदार्थ हैं, इसी प्रकार मोक्ष-साधना में अमृत क्रिया का प्रधान स्थान है। अमृत क्रिया का अर्थ है आचार, विचार और उपचार की उच्चतम श्रेणी–भावोल्लास। एक छोटा-सा दीपक अंधकार समूह को नष्ट कर देता है। एक अग्नि का कण घास के बड़े भारी ढेर को बात की बात में राख कर देता है। इसी प्रकार जीवन में सामायिक, प्रतिक्रमण-पौषध, जिन-पूजन, दान, शील, तप आदि धार्मिक क्रियाओं में एक बार भी अपूर्व भावोल्लास अमृत क्रिया का होना भवभ्रमण से मुक्त कर शाश्वत सुख-मोक्षप्रद है। Never look to the quantity of poor actions but pay praticular to the quality thereof—हमने कितना किया है यह देखना चाहिए, परन्तु कैसा किया यह देखने की विशेष आवश्यकता है।

सच है, अपुनर्बंधकता अर्थात् मिथ्यात्व मोहिनी कर्म की स्थिति के उत्कृष्ट बंध का निश्चित ही बंद होने से मानव को शुद्ध धर्म क्रियाएं आराधन करने का सुअसर हाथ लगता है।

फिर *अर्धपुद्गल-परावर्त काल में इस जीव को सम्यक्त्व का स्पर्श होता है। यदि सम्यक्त्व स्पर्श कर वापस न जाए तो सम्यक्त्वधारी महा भाग्यवान मानव निश्चित ही छांसठ सागरोपम से कुछ अधिक समय में अनादिकाल के भवभ्रमण से मुक्त हो परम पद प्राप्त कर लेता है।

विशेषः—नवतत्त्व प्रकरण का अभिप्राय है कि जिन लोगों ने +अंत मुहुर्त्त मात्र सम्यक्त्व की स्पर्शना कर ली है, उनको निश्चित ही अर्ध पुद्गल परावर्त्तन काल भव भ्रमण शेष रहता है।

**अरिहंत सिद्ध तथा भला, आचारज ने उवज्झाय रे।**
**साधु नाण दंसण चरित, तव नव पद मुगति उपाय रे॥ सं.॥३७॥**

---

* **पुद्गल परावर्त्तः**—असंख्यात वर्षों का एक पल्योपम, दस कोड़ा-कोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम अर्थात् सागरोपम वर्ष की व्याख्या करते हुए जैन-शास्त्रों में कहा गया है कि एक योजन (चार कोस) लंबा चौड़ा गहरा प्याले के आकार का एक गड्ढा (पल्य) खोदा जाय जिसकी परिधि तीन योजन हो और उसे उत्तर कुरु के मनुष्य के एक दिन से सात दिनों तक के बालाग्र से इस प्रकार भरा जाय कि उसमें अग्नि, जल तथा वायु तक प्रवेश न कर सके। उस गड्ढे में से १००-१०० वर्षों से एक बालाग्र निकाला जाय और इस प्रकार एक-एक बालाग्र निकालने पर जितने काल में वह पल्य खाली हो जाय उसे एक पल्योपम वर्ष कहते हैं। ऐसे दस कोटा-कोटी पल्योपम वर्ष का एक सागरोपम होता है। बीस कोटा-कोटि सागरोपम का एक कालचक्र, अनंत कालचक्र का एक पुद्गल परावर्त काल होता है।

**अपार्ध पुद्गल परावर्त्तः**—जीव पुद्गलों को ग्रहण करके शरीर, भाषा, मन और श्वासोच्छ्वास रूप में परिणत करता है। जब कोई एक जीव जगत में विद्यमान समग्र पुद्गल परमाणुओं को आहारक शरीर के सिवाय शेष सब शरीरों के रूप में तथा भाषा, मन और श्वासोच्छ्वास रूप में परिणत करके उन्हें छोड़ दे इसमें जितना काल लगता है, उसे पुद्गल परावर्त कहते हैं। इसमें कुछ ही काल कम हो तो उसे अपार्ध पुद्गल परावर्त कहते हैं।

+ **अन्तर्मुहूर्त्तः**—दो समय से लेकर दो घड़ी ४८ मिनिट में एक भी समय कम हो तो इतने काल का अंतर्मुहूर्त्त कहते हैं। दो समय का काल जघन्य अंतर्मुहूर्त्त, दो घड़ी में एक समय कम उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त और बीच का सब काल मध्यम अंतर्मुहूर्त्त समझना चाहिये।

ए नवपद ध्यातां थकां, प्रगटे निज आतम रूप रे।
आतम दरिसण जेणे कर्युं, तेणे मूंध्यो भव कूप रे॥ सं.। ३८॥
क्षण अर्धे जे अघ टले, ते न टले भवनी कोड़ी रे।
तपस्या करतां अति घणी, नहीं ज्ञान तणी जोड़ी रे॥ सं.॥ ३९॥
आतम ज्ञाने मगन जे, ते सवि पुद्‌गलनो खेल रे।
इन्द्रजाल करी लेखवे, न मिले तिहाँ देइ मनमेल रे॥ सं॥४०॥
जाण्युं ध्यायो आत्मा, आवरण रहित होय सिद्ध रे।
आतम ज्ञान ते दुःख हरे, एहिज शिव हेतु प्रसिद्ध रे॥ सं.॥४१॥
चौथे खंडे सातमी, ढाल पूरण थई ते खास रे।
नवपद महिमा जे सुणे, ते पामे सुजस विलास रे॥ सं.॥४२॥

**वही मानव मुक्त होगाः**—श्रीअरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व-साधु, दर्शन ज्ञान, चरित्र और तप इन का सांकेतिक नाम है– श्रीसिद्धचक्र। कर्मबंधनों से मुक्त होने का अचूक एक ही रामबाण उपाय है श्रीसिद्धचक्र की आराधना। हाँ! कर्म बंधनों से वही मानव मुक्त होगा जिस की आत्म-दर्शन की ओर सतत अभिरुचि हो, अर्थात् उसका यह दृढ़ निश्चय हो कि "आत्मा का एक स्वतंत्र अस्तित्व है" मेरी आत्मा जड़ से अलग है। मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध हूँ। ऐसा मानने वाला व्यक्ति विशेष भव-भ्रमण नहीं करता। सच है, आत्मदृष्टा विवेकी मानव अर्ध क्षण में जितने कर्मों का क्षय करता है, उतने अज्ञानी मानव पूर्व कोटी अर्थात् सित्तर लाख छप्पन हजार क्रोड़ पूर्व तक महान उग्र जप तप करने पर भी अपने कर्मों का क्षय नहीं कर सकता। अतः आत्मदर्शन आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व का बोध उतना ही अधिक उपयोगी है जितना कि रात्रि के बाद सूर्योदय का होना। सूर्य मानव को नवजीवन, नवचेतना नवस्फूर्ति, स्वास्थ्य-बल, साहस प्रदान कर उसकी कायापलट कर देता है, तो आत्मदर्शन, मानव के अनादि कालीन मिथ्यात्व–अज्ञान, मोह, ममत्व को दूर कर उसे एक नया प्रकाश, नई सद्‌विचारधारा, आत्म-जागरण के सन्मार्ग का दर्शन उपहार भेट कर उसे अजर अमर, अचल, शाश्वत सुख–मोक्ष प्रदान करता है। क्या प्रकाश के आगे अंधेरा टिक सकता है? नहीं। इसी प्रकार आत्मदर्शन के प्रकाशसे मानव के हृदय के बुरे संकल्प विकल्प आचार विचार छूमंतर हो जाते हैं। फिर वह मानव आत्म-विवेक के अनुसंधान

से अपने अनुकूल पदार्थ और मान-संमान के व्यवहार से न तो प्रसन्न ही होता है, और न कभी अपमान, निंदा आदि कटु व्यवहार से शोकातुर-दुःखी होता है। वह समझ जाता है कि अपने को बहुत मत मानो, क्योंकि वही सारे रोग की जड़ है। मानना ही तो मान है। मान सीमा है। आत्मा तो असीम है और सर्वव्यापी है। निखिल लोका–लोक उसमें समाया है। वस्तु मात्र हम में हैं। हमारे ज्ञान में है। बाहर से कुछ पाना नहीं है। बाहर से पाने और अपनाने का प्रयत्न करना लोभ है। वह, जो अपना है उसीको खो देना है। मानने हमें छोटा कर दिया है, जानने देखने की शक्तियों को मंद कर दिया है। हम अपने ही में घिरे रहते हैं। इसी से धक्का लगता है, दुःख होता है। इसी से राग है, द्वेष है, संघर्ष है। सब को अपने में पाओ, भीतर के अनुभव से पाओ। बाहर से पाने का प्रयत्न करना माया है, झूठ है, वासना है। उसी को प्रभु ने मिथ्यात्व कहा है। आत्मा में यह जो अनादि के मिथ्या संस्कार जड़ और मृण्मय हो गये हैं, उनको हमें त्याग कर नवीन और अति पवित्र शुभ कर्मों के बीच से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करना होगा।

श्री अजितसेन राजर्षि ने कहा – श्रीपाल ! अपनी आत्म शक्ति के दुरुपयोग से अनादिकाल के संचित अशुभ कर्मों से छुटकारा पाने का यही एक सर्वश्रेष्ठ उपाय है कि मानव अपनी विशुद्धात्मा को समझे, इसी समय अपने दिव्य आत्मबल का सदुपयोग करना आरम्भ कर दें। सदा अपने शुद्ध आत्मा स्वरूप में रत रहें। मुमुक्षु आत्म-ज्ञानी मानव अपने लोक-व्यवहार को इन्द्रजाल चलचित्र के समान मिथ्या मानता है। जैसे कि एक मदारी के छूमंतर–हाथ की सफाई से बने रुपये। यदि छू-मंतर से रुपये बनना संभव हों तो क्या मदारी आजीवन घर घर हाथ पसारे ? नहीं। सच है, भौतिक सुख, सुख नहीं सुखाभास है, भव-भ्रमण का एक अप्रशस्त मार्ग है। इस से बचना ही तो मानव-भव की वास्तविक सफलता है।

प्रश्न-क्या संसार के भौतिक सुखों की तड़क–भड़क, चकाचौंध अनेक माया-जाल प्रपंचों के बीच रहकर भी बेचारा दयनीय मानव आत्मदर्शन में अनूठे आनंद अनुभव कर सकता है ?

उत्तर–अवश्य। मुमुक्षु आत्मार्थी मानव भोग, रोग, शोक या समर प्रांगण-रणभूमि के बीच ही क्यों न हो, वह वहाँ भी अपने विशुद्ध आत्म-स्वभाव में लय-लीन रह कर एक अनुपम, अनूठे दिव्य आनन्द का अनुभव करता है। जैसे कि तंदूल-मगर मच्छ। यह मच्छ सदा लवण समुद्र के खारे जल में रह कर भी वहां सदा अति मधुर शीतल जल का ही पान करता है।

प्रत्येक मानव अपने आत्मबल और श्रीसिद्धचक्र की आराधना से एक दिन समस्त कर्म-बन्धनों को क्षय कर अंत में परम-पद—मोक्ष प्राप्त कर लेता है। श्रीमान् यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के चौथे खण्ड की मननीय-सातवीं ढाल सानंद संपन्न हुई। श्रीसिद्धचक्र के गुणगान से श्रोतागण और पाठकों को महान यश और कीर्ति प्राप्त हो।

## दोहा

इणी परे देइ देशना, रह्यो जाम मुनिचंद।
तब श्रीपाल ते वीनवे, धरतो विनय अमंद ॥ १ ॥
भगवन् ! कहो कुण कर्म थी, बालपणे मुज देह।
महा रोग ए उपनो, कुण सुकृते हुओ छेह ॥ २ ॥
कवण कर्म थी में लही, ठाम ठाम बहु रिद्धि।
कवण कुकर्मे हूँ पड्यो, गुणनिधि जलनिधि जलमध्य ॥ ३ ॥
कवण नीच कर्मे हुओ, डूंब पणो मुनिराय।
मुझने ए सवि किम हुओ, कहिए करि सुपसाय ॥ ४ ॥

**सामना करना पड़ा ?**:—शांत, दांत परम कृपालु राजर्षि अजितसेन मुनि की धर्मदेशना सुन सम्राट् श्रीपालकुंवर विभोर हो गये। उन्होंने राजर्षि को हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से प्रार्थना की—प्रभो ! मुझे बचपन में महा भयंकर कुष्ट रोग हुआ व उससे छुटकारा मिला, ऋद्धि-सिद्धि और सुयश की प्राप्ति हुई। मैं समुद्र में गिरा, मुझे एक अछूत डूंब जाति के कलंक का सामना करना पड़ा ? यह क्यों हुआ, कुछ समझाने की कृपा करेंगे ?

## चौथा खण्ड – आठवीं ढाल

( सांभरी आ गुण गावा, मुज मन हीरना रे )

सांभलजो हवे कर्म विपाक कहे मुनि रे, कांई कीधुं कीधुं कर्म न जाय रे।
कर्म वशे होय सुख दुःख जीवने रे, कर्मथी बलियो को नवि थाय रे ॥ सं. ॥ १ ॥

भरत क्षेत्र मां नयर हिरण्यपुरे हुओ रे, महीपति महोटो श्रीकांत रे।
व्यसन तेहने लाग्युँ आहेड़ा तणुं रे, कोई वारे राणी एकांत रे ।।सां.।।२।।
राणी तेहनी जाणी सुगुणा श्रीमती रे, समकित शीलनी रेख रे।
जिन धर्मे मति रूड़ी कूड़ी नहीं मने रे. दाखे शील विशेष रे।सां.।।३।।
पियु तुझने आहेड़े जावुं नवि घटे रे जेहने केडे छे नरकनी भीति रे।
धरणी ने परणी बे लाजे तुज थकी रे,मांडी जेणे जिव हिंसानी अनीति रे।।सां४।।
मुख तृण दीधे अरिपण मुके जीवतो रे, एहवो छे रूढ़ो क्षत्रीनो आचार रे।
तृणआहार सदा जे मृग पशु आचरे रे, तेहने मारे जे आहेड़े ते गमार रे।सां।५।
ससलां नासे पासे नहीं आयुध धरे रे, राणी जाया वाणी तेहने केड़ रे।
जे लागे ते आगे दुःख लहेशे घणां रे, नाठासुंबल न को क्षत्रा वेद रे।।सां।।६।।
अबल कुलाशी झखने निज द्रुम पीडतां रे, खगने मृगने तृणभक्षी ने दोष रे।
हणतां नृपने न होय इम जे उपदिशे रे, तेणे कीधो तस हिंसक कुल पोष रेसां।।७।
हिंसानो ते खोसा सघले सांभली रे, हिंसा नवि रूढ़ी किण ही हेत रे।
आप संतापे पर संतापे पामियो रे, आहेड़ी ते जाणो कुलमां केत रे ।।सां।।८।
जाओ रसातल विक्रम जे दुर्बल हणे रे, एतो लेश्या-कृष्णनो धन परिणाम रे।
भूंडी करणी थी जग अपजस पामीये रे, लीहालो खातां मुख होवे श्याम रे सां९
एहवां राणीए वयण कह्यां पण रायने रे. चित्त मांहे नवि जाग्यो कोई प्रतिबोध रे।
घन वरसे पण नवि भीज मगसेलियो रे, मूरख ने हित उपदेश होय क्रोध रेसां।।१०।

**भूतपूर्व घटनाएं** :—अवधि—ज्ञानी राजार्षि अजितनसे ने कहा—श्रीपाल ! तीर्थंकर, गणधर बलदेव, वासुदेव, राजा महाराजा आदि समर्थ शक्तिशाली मानवों के यदि कहीं हाथ टिके हैं तो सिर्फ कर्म-राज के आगे। कर्म की गति बड़ी विचित्र है। यदि आप अपने भूतपूर्व संस्मरणों का मनन करेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि मानव की एक साधारण सी भूल का परिणाम कितना भयंकर एवं दुःख-द होता है। सम्राट श्रीपाल-गुरूदेव ! कृपया मेरी गत जन्म की घटनाओं का कुछ परिचय देंगे ?

राजर्षि अजितसेन—राजन् ! इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में हिरण्यपुर नामक एक नगर था। वहाँ एक श्रीकान्त नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम था श्रीमती। श्रीमती बड़ी सहृदया, धर्मात्मा, सद्गुणानुरागी जैन धर्मोपासिका थीं। उसे राजा का शिकारी स्वभाव बड़ा खटकता था। एक दिन उसने राजा से कहा—प्राणनाथ ! किसी निरपराध मूक पशु की हिंसा करना मानवता का अभिशाप है। तृण–भक्षक, पीठ बता अपने प्राणों को ले भागते हुए प्राणी पर पीछे से शस्त्र-अस्त्र ले टूट पड़ना क्षत्रिय कुल के लिये एक भारी कलंक है। क्षत्रियों का प्रमुख कर्तव्य है कि वे प्राणियों के मुंह में तृण देख उसे अवश्य ही अभय कर दे। महापुरुषों ने स्पष्ट ही कहा है कि "क्षतात् त्रायते सः क्षत्रिः"। अनेक संकटों से मुक्त करने को अपने प्राणों की बाजी लगा कर जनता-जनार्दन प्राणी-मात्र की रक्षा करे वही वास्तविक क्षत्रिय–राजपूत है। इतिहास इस बात का साक्षी है। आपकी छत्रछाया में रहने वाले बेचारे मूक प्राणी हिरन, खरगोश, सुअर, बारहसिंगे, सिंह, चीते आदि का वध करना उचित नहीं। क्यों कि ऋण और वैर तो सदा इस जीव के साथ चलते हैं। अकारण किसी से वैर बसाना सोया साँप जगाना है। आज अपकी सत्ता और बल के सामने बेचारे निर्बल मानव और मूक पशु–पंखी अपना सिर नहीं उठा पाते हैं। वे विवश हो आपके अन्याय, हठधर्मी, अत्याचारों को चुपचाप सह लेते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि वे कोरे मिट्टी के पुतले या मरे मुरदे ही हैं।

याद रक्खो ! उनकी अंतर-आत्मा तो अजर अमर ज्ञानवान है, वह अपसे आज नहीं तो कल, भवांतर में किसी भी पर्याय–रूप में किसी भी अवस्था में अपने वैर का बदला लिये बिना न रहेगी ! एक द्वारपाल ने ग्वाले के भव में तीर्थंकर श्रमण भगवान महावीर के कानों में खीले ठोके, एक काचरी के जीव ने राजा बन कर खंधक महामुनि की खाल खींची और अपने पूर्व-भव का प्रत्यक्ष बदला लिया। आपको आपना जीवन भला और दुःख एक बला मालूम होता है इसी प्रकार अन्य जीवों को भी अपना जीवन अति प्रिय और मरण अप्रिय है। अतः Live and let live जीओ और जीने दो। * सभी जीवों को अपने समान समझ कर किसी भी प्राणी भूत-जीव तथा सत्त्व को मत मारो, दास मत बनाओ, पीड़ा मत पहुंचाओ—और किसी को भी संताप मत दो और न किसी को उद्विग्न करो। यही धर्म ध्रुव है, शाश्वत है और नित्य है।

*—सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावे, ण परिघितव्वा, ण परितावेयव्वा ण किलामेयव्वा ण उद्दयव्वा एस धम्मे सुद्धे णिय ए-सासए, समिच्च लोयं खेयन्ने हिं पवेइ ए। आचारांग सूत्र १–उ० १

कई बुद्धि के बारदान स्वार्थी मांसाहार लोलुपी मूर्ख लोग कहा करते हैं कि राजा को अपने अधिकार की भूमि में पशु-पंखी, जलचर-जलमुर्गी, मगर-मत्स आदि का शिकार करना निर्दोष है, यह एक भ्रम है। यह उतना ही सत्य है जितना कि बालू-रेत से सुगंधित तैल, उल्लु-पक्षी को सूर्यदर्शन और एक बावने-ठिगने पुरुष के हाथ से आकाश-गामी चंद्र-सूर्य को स्पर्श करनेकी कामना का सफल होना। प्रत्येक धर्माचार्य ने* हिंसा-शिकार का घोर विरोध किया है। शिकारी स्वयं एक महान् आपत्ति में फंस वह दूसरों को भी भारी संकट में डाल देता है। इस का प्रत्यक्ष उदाहरण है, इस भूतल पर भटकते लूले लंगड़े कोढ़ी निर्धन प्राणी, अरे! वह बल-पुरुषार्थ किस काम का जिस से कि निःशस्त्र मूक वन-जन्तुओं का संहार हो। क्रूर मनोकामनाओं का फल कदापि शुभ नहीं होता। सच है, कोयला खाने से मुंह सदा काला ही रहता है।

अतः प्राणनाथ! मेरा आप से सादर अनुरोध है कि आप आज ही शिकार करने का त्याग कर दें। आपके इस दुर्व्यसन से मुझे और धरती माता को नीचे देखना पड़ता है। रानी ने अपने स्वामी श्रीकान्तराजा को बहुत ही समझाया किन्तु राजा का कठोर हृदय पिघल न सका—जैसे कि पुष्करावर्त्त मेघ की मधुर वृष्टि से मगसेलिया पाषाण की निर्लेपता। राजा ने चिढ़कर कहा— प्रिये! मेरे सामने अपनी डेढ-अकल न बघारो। सच है, कुसंस्कारों के अभाव में मानव को चिढ़ आना स्वाभाविक है, किन्तु रानी ने आपने साहस और कर्तव्य से जरा भी मुख न मोड़ा।

अन्य दिवसे शत सात उल्लंठे परवर्यो रे, मृगया संगी आव्यो गहन वन राय रे।
मुनि तिहां कहे व्याधि पीड्यो कोढीयो रे, उल्लंठ ते मा देई घनघाय रे।सां।११
जिस ताडे ते मुनि ने तिम नृपने हुवे रे हास्यतणो रस मुनि मन ते रस शांत रे।
करि उपसर्गने मृगयाथी वल्या सातशे रे, नृप साथे ते पहोंता घर मन खांत रे सां १२
अन्य दिवस मृग पूंठे धायो एकलो रे, राजा मुगलो पेठो नइतट रान रे।
भूलो नृप ते देखे नइतट साधुने रे, बोले नइ जलमां मुनि माली कानरे॥सां॥१३
कांइक करुणा आवी कढ्यो नीरथी रे, घेर आवीने राणीने कही वात रे।
सा कहे वीजानी पणहिंसा दुःख दियेरे, जनम अनंत दुःखदिये ऋषिघातरे।।सां१४

* पंगु कुष्टि कुणित्वादि, दृष्ट्वा हिंसां फल सुधीः। निरागस्त्रसजन्तूनां, हिंसां संकल्पतस्त्यजेत्॥१॥
वने निरपराधानां, वायु तोय तृणाशिनाम्। निघ्नन् मृगाणां मांसार्थी विशिष्येत् कथं शुनः॥२॥

राजा भाखे नवि करस्युं फरि एहवुं रे, बोता केना इस वासर जाम रे।
गोख थकी मुनि दीठो फिर तो गोचरी रे, चिचारी राणीनी शिक्षा ताम रे॥सां.॥१५॥
नगरी विटाली भीखे कहे नृप उल्लंठने रे, काढो बाहिर एहने झाली कंठ रे।
राणीए दीठा गोख थकी ते काढ़ता रे, राजाने आदेशे लागा लंठ रे॥सां॥१६॥
राणी रूठी राजाने कहे शुं करो रे, बोतानु बोल्युं पालो न वचन्न रे।
मुनि उपसर्गे सर्गे जावुं दोहिलुं रे, नरके जावा लागयुं छे तुम मन्न रे॥सां॥१७॥
नृप उपशमियो मुनि तेड़ी घरे रे, राणी भाखे राजा ए अन्नाण रे।
मुनि उपसर्गें पाप कर्युं इणे मोटकुं रे, ए छूटे ते कहिये कांई विन्नाण रे॥सां.॥१८॥

**नंगे सिर भूत बन बैठा** :—एक दिन श्रीकान्त राजा अपने धूर्त गुण्डे साथियों को साथ ले किसी एक सघन वन में शिकार खेलने निकला। वहाँ एक वृक्ष के नीचे एक मुनि ध्यान कर रहे थे। उन्हें देख राजा ने अपने साथियों को सुना कर कहा—अरे! यह नंगे सिर कौन भूत बन बैठा है? मार भगाओ, साले कोढ़ी को—कहीं अपशकुन करेगा। राजा के कहने मात्र की देर थी, गुण्डों ने तड़ा-तड़ महामुनि को दो-चार चपतें लगा दी। यह दृश्य देख राजा हर्ष से उछल पड़ा। मुनि को पता नहीं कि कहां क्या हुआ। वे तो निर्भय हो अपने आत्म-ध्यान में लीन थे, उनके हृदय में एक अनुपम आनंद–शांत रस का झरना बह रहा था। वे अपनी जड़ काया की ओर क्यों ध्यान देने लगे। राजा अपने साथियों के साथ आगे चल दिया।

मार्ग में एक दिन एक सुन्दर हिरन को भागते देख राजा ने उसका बड़े जोरों से पीछा किया किन्तु वह एक सघन झाड़ीमें कहीं अदृश्य हो गयो गया। राजाने उसको खोजनेमें बहुत कुछ सिर पटका किन्तु वह हिरन को पा न सका। राजा शिकार के मोह में राह भटक गया, उसके साथी न मालूम किधर निकल गए, कुछ पता न लगा। प्रचण्ड धूप में उसकी दुर्दशा हो गई। कुछ दूर चल कर उसने एक नदी के तट अपना घोड़ा बांध, जलपान कर विश्राम किया। वहाँ निकट ही एक वटवृक्ष के नीचे एक मुनि ध्यान में खड़े थे, उनको देख राजा श्रीकान्त को फिर से सनक सवार हुई। उसने मुनि के दोनों कान पकड़ कर उनको जल में डुबाना चाहा किन्तु मुनि का शांत स्वभाव देख, उसी समय उसके विचार बदल गए। दयासे

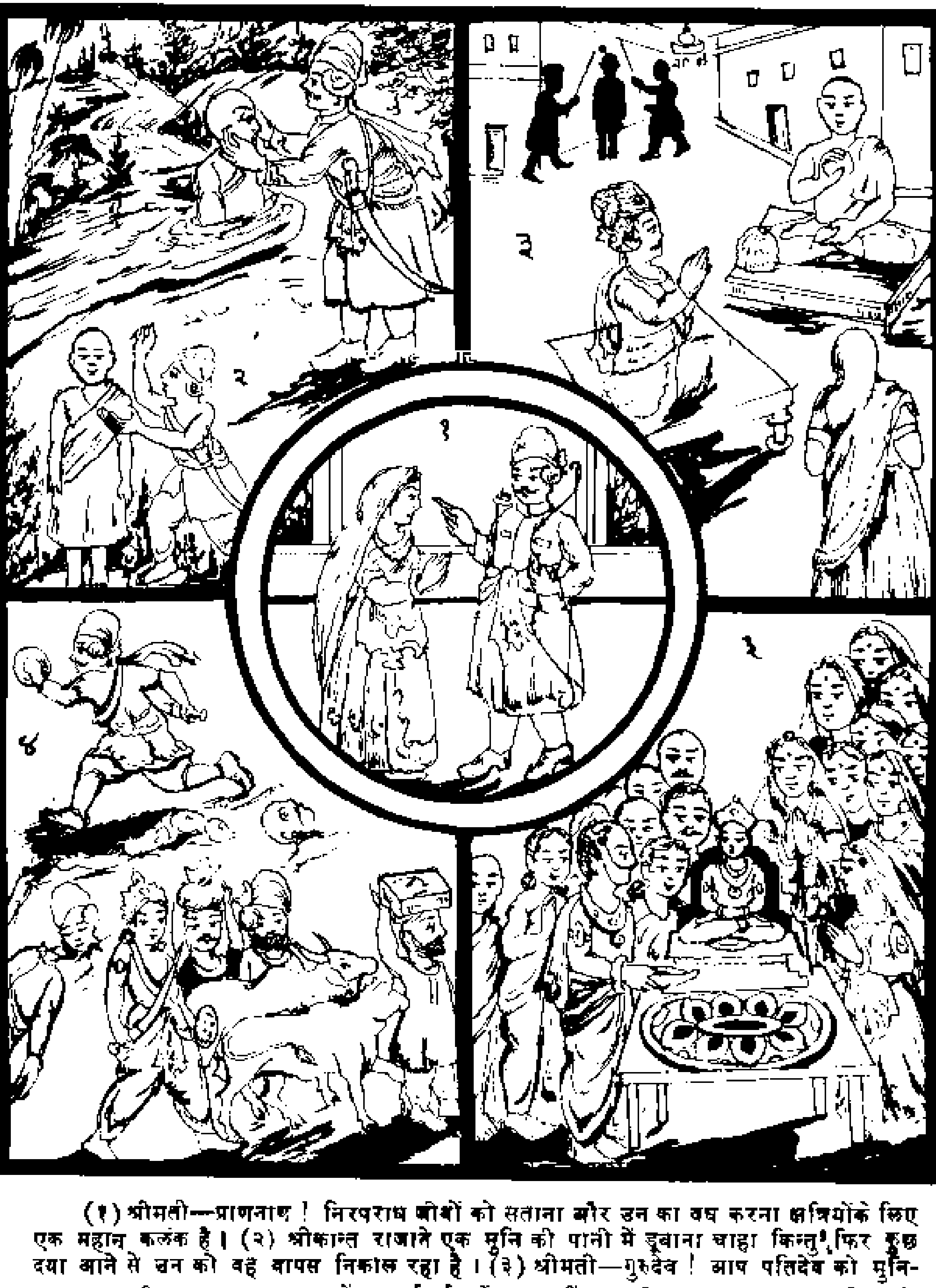


(१) श्रीमती—प्राणनाथ ! निरपराध जीवों को सताना और उन का वध करना क्षत्रियोंके लिए एक महान् कलंक है। (२) श्रीकान्त राजाने एक मुनि को पानी में डुबाना चाहा किन्तु फिर कुछ दया आने से उन को वह वापस निकाल रहा है। (३) श्रीमती—गुरुदेव ! आप पतिदेव को मुनि-आशातना की क्षमा प्रदान कर इन्हें सन्मार्गदर्शन दें। (४) सिंह जागीरदार श्रीकान्त राजा के छक्के छूड़ा, अपना धनमाल और पशु ले वापस आ रहा है। (५) श्रीकान्त राजा और रानी श्रीमती ने पूर्व भव में नवपद आराधना की थी वे ही अब ये दोनों श्रीपाल-मयणा है।

उसने उन मुनि को जल से बाहिर निकाल कर उनको मूर्छित अवस्थामें ही नदीके तट-पर पटक भाग निकला, फिर उसने राजमहलमें आकर अपनी रानी श्रीमती से कहा कि आज जंगलमें बड़ा मजा आया, वहां दो नंगे सिर सेवड़े मिल गए थे। एकको तो मेरे साथियों ने तड़ातड़ दो चार चपतें लगाईं और दूसरे का मैंने उसके कान पकड़ कर जलमें डुबाना चाहा किन्तु मुझे उसकी शांत मुद्रा पर कुछ दया आ गई अतः वापस उसे जलसे बाहर निकाल कर वहीं नदीके तट पटक कर मैं तो यहां चला आया।

**हृदय कांप उठा:**—राजा श्रीकान्त की बात सुन रानी श्रीमती का हृदय कांप उठा। उसने कहा—प्राणनाथ! आपने यह क्या किया? एक साधारण जीवको सताने से भी मानवको अनेक जन्मों तक भयंकर दुःखों का सामना करना पड़ता है तो भला फिर आपने तो एक त्यागी तपस्वी मुनिराज की भारी आशातना की, एवं संतको अकारण महान कष्ट पहुंचाया है, अतः अब आपको न मालूम कब तक इस पाप का कटु फल भोगना पड़ेगा। अबकी बार तो रानी श्रीमती के शब्दों ने राजा के आचार-विचारों की कायापलट कर दी। प्रिये! खेद है कि सचमुच मैंने एक सन्त मुनिराज का भारी अपराध किया है। अब मैं भविष्य में कदापि ऐसी अनुचित भूल न करूंगा।

एक दिन राजा श्रीकान्त अपने राजमहल की अटारी पर बैठे थे, सहसा उनकी दृष्टि नगर में जाते एक मुनि पर पड़ी। उन्हें देखते ही वे एकदम आपे से बहार हो गए। उन्होंने आवेश में आकर कहा—द्वारपाल! जाओ रक्षाधिकारी से कहो कि उस सेवड़े को इसी समय धक्के मारकर नगर से बहार कर दे। यह न जाने कहां से इधर आ निकला। नगर को गंदा करेगा। एक परम योगी शांतमूर्ति संत को धक्के मारते देख नगर में चारों ओर भारी हलचल मच गई। रानी श्रीमती के कान पर यह बात पड़ते ही उसका सिर ठनका। उसने राजा से कहा—प्राणनाथ! आप श्रीमान के अभिवचन का यही मूल्य! हाथी के दांत बाहर निकलने के बाद अन्दर नहीं जाते "प्राण जाहि पर वचन न जाहि।" आपने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि अब मैं कदापि किसी संत-महात्मा को कष्ट न दूंगा। फिर आज राज-सेवकों ने मुनि को धक्के मार कर महान् कष्ट दिया। अकारण राह चलते किसी जीवात्मा को सताना, उनकी मंगल साधना में रोड़े अटकाना भयंकर दुर्गति को नौता देना देना है। आपको मैंने पहले बहुत कुछ समझाया था, फिर भी न जाने वापस इस दुर्मति ने आपके मंगलमय भावी जीवन को महान संकट में ढकेलने का अवसर दिया।

नाथ! बड़े भाग्य से ही तो हमारे सौभाग्य का सूरज उगा है जो आज सवेरे ही अपने नगर में एक परम योगीराज पधारे थे, आपकी भूमि धन्य हुई। मेरा आपसे सादर

अनुरोध है कि आप मुनि को अपने राजमहल में आमंत्रित कर उनसे अपने अपराध की क्षमायाचना करे, सत्संग का लाभ लें। राजाने प्रसन्नता पूर्वक उसी समय मुनिको बुलाने के लिये अपने सेवकों को भेजा।

सज्जन जे भूडुं करता रूडुं करे रे तेहना जगमां रहेशे नाम प्रकाश रे।
आंबो पत्थर मारे तेहने फल दिये रे, चंदन आपे कापे तेहने वास रे॥सां.॥१९॥
मुनि कहे महोटा पातकनुं पालणुं रे, तो पण जो होय एहनो भाव उल्लास रे।
नवपद जपतां तपनां तेहन तप भलं रे, आराधे सिद्धचक्र होय अघ नाश रे सां.२०
पूजा तप विधि सीखी आराध्युं नृपे रे, राणी साथे ते सिद्धचक्र विख्यात रे।
उजमणा मांहे आठे राणीनी सही रे, अनुमोदे वली नृपनुं तप शत सात रे सां.२१

**बुराई का बदला:**—राजा मुनि की शांत मुद्रा, उनका हंसमुख स्वभाव देख आनन्दविभोर हो गया। उसने मन ही मन कहा—अरे! धन्य है इन क्षमासागर मुनिराज को। मैंने व्यर्थ ही कष्ट दे इनका भारी अपमान करने की धृष्टता का फिर भी इन के नाक पर सल न आया। इन संत के स्थान पर यदि मैं होता तो न जाने क्या होता। मैं जीते जी तो मेरे वैरी की पेढ़ी न चढ़ता। सच है- "क्षमा बड़न को होत है, ओछन की उत्पात"—आम के पेड़ को पत्थर मारो वह मीठा फल देता है। चंदन का पेड़ अपने घातक कुल्हाड़े को अनूठी सुगन्ध प्रदान कर उसका स्वागत करता है। धन्य हैं वे जीवात्माएं जो कि बुराई का बदला भलाई से दे अपना नाम अमर कर जाते हैं। रानी ने मुनि को सादर वंदन कर कहा—परम कृपालु गुरुदेव! इस धृष्टता के लिये हम आपसे बार-बार क्षमा चाहते हैं। खेद है कि मेरे प्राणनाथ के प्रमादवश आप को अकारण ही एक भारी कष्ट का सामना करना पड़ा। मुनि—रानीजी! कष्ट! समभाव दशा में भी कहीं कष्ट शेष रहता है? नहीं। कष्ट का मूल है पर का मोह, पर अर्थात् मैं और मेरे में अपने आपको खो देने का पागलपन। पर-वश मानव के प्रति राग-द्वेष, क्रोधादि को स्थान देना अपने मन की दुर्बलता है। इस दुर्बलता से मुक्त मानव सदा सुखी रहता है। मुनि के क्षणिक सत्संग और उपदेश ने राजा-रानी के जीवनका रंग बदल दिया। दोनों के हृदय गद्गद हो उठे। उन की आंखो से अश्रुधारा बहने लगी। राजा ने कहा—धन्य है!! परम तारक गुरुदेव, आज आपने हमारे यहां पधार कर बड़ी कृपा की। सच है- "गुरु दीवो गुरू देवता, गुरू बिन घोर अंधार।"

रानी—गुरुदेव! तीर्थ की आशातना से कौनसे कर्म का बन्ध होता है? मुनि—रानीजी! तीर्थ के दो भेद हैं। ऐक स्थावर-तीर्थ दूसरा जंगल। जिनप्रतिमा, शास्त्र, जैन

उपाश्रयादि स्थावर तीर्थ हैं और साधु-साध्वी, ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध, तपोवृद्ध श्रावक-श्राविकाएं, माता-पिता, बड़े भाई आदि जंगम-तीर्थ हैं। इन की आशातना से प्रायः अशातावेदनीय कर्म का बंध होता है । ये अन्धे, काणे, लूले, लंगड़े, गूंगे, बहरे, रोगी और निर्धन व्यक्ति अशातावेदनीय कर्म के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । रानी– गुरुदेव ! प्राणनाथ को मुनि अशातना के पाप से मुक्त होने को अब क्या करना चाहिये ? मुनि– रानीजी ! यों तो धर्मशास्त्रों में कर्म-मल से मुक्त होने के अनेक मार्ग हैं किन्तु राजा को यदि अपने जटिल कर्मों से मुक्त होना है तो उन्हें श्रीसिद्धचक्र महामंत्र की आराधना करना चाहिये ।

**हृदय से सराहना:**–रानी– गुरुदेव ! हम दोनों पति-पत्नी आपकी आज्ञानुसार अवश्य ही श्रीसिद्धचक्र की आराधना करेंगे । आपकी इस कृपा के लिये आपको बहुत-बहुत धन्यवाद ! पश्चात् रानी ने सविधि व्रत सम्पूर्ण कर, एक भारी समारोह के साथ उजमणा ( व्रत की अन्तिम विधि उत्सव ) किया । जिसे देख रानी श्रीमती की अन्य आठ सखियाँ और राजा के सातसौ साथी चकित हो गए । सभी ने एक स्वर से राजा को धन्यवाद दे श्रीसिद्धचक्र व्रत की सराहना की ।

अन्य दिवस ते गया सिंह नृप गामड़े रे, भांजी ते वलिया लई गोधन रे ।
केड़ कीने सिंहे मार्याते मरी रे, कोढ़ी हुओ क्षत्री मुनि उवसग्ग रे ॥सां. २२॥
पुण्य प्रभावे राजा हुओ श्रीकांत तू रे, श्रीमती राणी मयणासुंदरी तुज्ज रे ।
कुष्ठिपणुं जल मज्जन डूंब पणुं तुम्हे रे, पाम्युं ए मुनि आशातना फल गुज्ज रे सां
सिद्धचक्र श्रीमती वयणे आराधियुं रे, तेहथी पाम्यो मघलो ऋद्धि विशेष रे ।
आठ सखी रानीनुं तप अनुमोदियुं रे, तेणें ते लघु देवी हुई तुझ शुभ वेष रे सां ॥
सांप खाओ तुझ आठभार्ये कह्युं शोक्यने रे, तेणे सांपे दंसी न टले पाप रे ।
र्म प्रशंसा करी राणा हुआ ते, सातसे रे, घात विधुरते सिंह लिये व्रत आप रे सा.
मास अणसण अजितसेन ते हुं हुओ रे, बाल पणे तुज राज हर्यु ते राण रे ।
बांधी पूरव वैरे तुझ आगल धरे रे, पूरव अभ्यासे मुझ आव्युं नाण रे सां
जाति संभारी संयम ग्रही लही ओहिने रे इहाँ आव्यो जेणे जेवा कीधा कर्म रे ।
तेहने तेहवां आव्या फल सुख दुःख तणा रे सद्गुरु पासे जाणे कुण ए मर्म रे सां

चौथे खंडे ढाल हुई ए आठमी रे, एहमां गायो नवपद महिमा सार रे।
श्रीजिन विनय सुजस लहीजे एहथी रे, जगमां होवे निश्चे जयजय कार रेसां.

**क्यों भूल रहे हो ?** :—एक बार राजा — श्रीकान्तने अपने सात सौ साथियों के साथ एक सिंह जागीरदार के गांव पर चढाई कर दी, उसके गांव को लूटा और वहाँ से वह नौ-दो-ग्यारह हो गया। पश्चात् जागीरदार को जब मालूम हुआ कि श्रीकान्त उसके गांव का धन-माल और पशु ले भागा है तो उसने अपने वीर सैनिकों के साथ उसका पीछा किया, मार्ग में ही उसके सात सौ साथियों को यमपुर पहुंचा कर श्रीकान्त के छक्के छुड़ा दिये। उसे अपने मुंहकी खाकर प्राण ले भागना पड़ा। पश्चात् सिंह जागीरदार अपना धन-माल और पशुओं को ले वापस लौट गया।

राजर्षि अजित सेन—श्रीपाल कुंवर! आपको पता है कि उस श्रीकान्त और उसके साथियों का आगे क्या हुआ ? नहीं। क्यों भूल रहे हो ? आप स्वयं ही तो गत जन्म में श्रीकान्त राजा थे, और मयणासुन्दरी आपकी रानी श्रीमती थीं। आपके पास जो सात सौ राणा बैठे हैं, ये वही साथी हैं जिन्होंने आपके सिद्धचक्र-व्रत की सराहना की थी। इनको मैंने गत भव में अपनी तलवार से यमपुर पहुंचा दिया था। अतः मुझसे इस भव में इन्होंने बंदी बनाकर आपके सामने उपस्थित किया। मेरे हृदय में विश्वासघात—आपका राज हड़प ने की जो दुर्मति उत्पन्न हुई उसका एक ही प्रमुख कारण है, अपने अगले जन्म की लेनदेन का निपटारा। अर्थात् मैं वही सिंह जागीरदार हूँ जिसका कि आपने गांव और पशु-लूटा था। लेन-देन का नाम सुन श्रीपाल-मयणासुंदरीके रोमांच खड़े हो गए। सच है, ऋण और वैर सदा साथ चलता है, अतः इस से सदा दूर रहना चाहिए।

राजर्षि अजितसेन—श्रीपालकुंवर! शुभाशुभ कर्म क्या नहीं करते ? आपको जो प्राणांत जल-घात, असाध्य कुष्टरोग और डूंब जाति के कलंक का सामना करना पड़ा यह सब पूज्य मुनिराज को सताने का ही कटु फल था। इन संकटों के सामने यदि कोई साधारण मानव आप प्रत्येक होता तो वह कभी से यमलोक पहुंच जाता किन्तु आपने गत जन्म में रानी श्रीमती की शुभ प्रेरणा से श्रीसिद्धचक्र व्रत की आराधना की थी अतः उसी के प्रभाव से स्थान पर घोर संकटसे बचे बाल-बाल बचे गए। जगह—जगह आपको सुयश जय-विजय ऋद्धि सिद्धि मान-सम्मान की प्राप्ति हुई। आपकी जो छोटी आठ रानियां हैं, वे गत भव में रानी श्रीमती की सखियां थीं

उन्होंने आपके व्रताराधन की हृदय से सराहना की थी, अतः वे फिर यहाँ आप लोगों से आ मिलीं। इन में जो रानी तिलकमंजरी है, इसने गत भव में एक भारी भूल की, इसने क्रोधावेश में अपनी एक सौत से केवल इतना ही कहा था कि "तुझे सांप खाए।" देखो कहना सहज है किन्तु कटु वचन के फल को भोगना बड़ी टेढ़ी खीर है। सचमुच इसे एक काले साँप ने ऐसा डसा कि यह पानी तक न मांग सकी। इसे अपनी भूल का कटु फल भोगना ही पड़ा। इस के माता पिता ने इसे मरघट में चिता पर लेटा दी थी। यदि उस दिन एक पांच मिनट आप वहाँ नहीं पहुंचे होते फिर तो क्या शेष था ? इस का कहीं पता तक नहीं लगता।

श्रीपालकुंवर-गुरुदेव ! मैंने आपसे चंपानगर का राज-पाट स्वीकार करने का सादर अनुरोध किया था ? फिर भी आपने उसे अस्वीकृत कर वन की राह क्यों ली ? राजर्षि अजितसेन--श्रीपालकुंवर ! मानव लाख अनुरोध हजारों उपाय करे किन्तु भवान्तर के शुभाशुभ संस्कार उसे लोह-चुम्बक के समान अपनी ओर आकर्षित कर ही लेते हैं। मैं पूर्व भव में आप पर विजय प्राप्त कर जब वापस अपने गांव को लौटा तो विजय के उपलक्ष्य में मेरे सामने जनता की ओर से बधाई पत्रों और धन्यवाद की झड़ी, उपहारों का ढेर लग गया किन्तु सामने दीवार पर एक मकड़ी को देख मैं चौंक पड़ा। उसी समय मेरी अंतरात्मा ने कहा कि रे सिंह ! तू जनता की मिथ्या मान-बड़ाई की चकाचौंध में भान न भूल। एक अन्न के कीट मूर्ख मानव पर विजय नहीं, विजयी तो वह महापुरुष है जिसने काल को जीत कर अजरामर जीवन की विजय-पताका लहराई। एक कवि ने इस का बड़ा सुंदर शब्दचित्र प्रस्तुत किया है—

करत-करत धन्ध कछु न जाने अंध आवत निकट दिन आगले चपाक दे।
जैसे बाज तीतर को दाबत है अचानक, जैसे बक मछली को लीलत लपाक दे॥
जैसे मक्षिका की घात मकरी करत आय, जैसे सांप मूसक ग्रसत गपाक दे।
चेतरे अचेत नर सुन्दर संभार राम, ऐसीं तोहि काल आय लेइगो टपाक दे।

रे मानव ! क्यों तू मोह में भान भूला है, तुझे पता नहीं कि तेरी मृत्यु के दिन अति शीघ्र तेरे निकट आ रहे हैं। जैसे कि बाज तीतर पर झपट पड़ता है, बगुला चट से मच्छी को निगल जाता है, सांप चूहे को गप से गले के नीचे उतारते देर नहीं करता वैसे ही मृत्यु अपना मुंह फाड़ तेरे सिर पर खड़ी है—न मालूम किस समय तेरे पर टूट पड़े। तू "शतं विहाय" बड़ी सावधानी के

साथ कुछ भगवान का भजन कर अपना जीवन सफल कर ले। यदि तू अपने आत्म कल्याण की राह भटक गया तो *धनपाल सेठ के समान हाथ मलता रह जायगा। सच है, "काल करे सो आज कर।"

**कौन कहां है?:**—राजर्षि अजितसेन ने कहा—श्रीपाल! बस इसी कारण मैंने सहर्ष अपने राजपाट के मोह का त्याग कर भगवानकी शरण ली। दीक्षा ग्रहण कर कठोर व्रत-नियमों की आराधना करने लगा। अन्त समयमें अनशन कर वहां से मैंने यहां जन्म लिया है। मैं आपका हृदयसे आभारी हूँ कि आपने समरभूमि में मुझे अपने गत जन्म के लेखे-जोखेसे मुक्त होनेका सुअवसर प्रदान कर मेरी आंखें खोल दीं। फिर तो पूर्वके संस्कारों का पनपना कोई नई बात नहीं। यह मेरा सौभाग्य है कि आज मैं अवधिज्ञान के बल से यह जान सका कि कौन कहां है?

सम्राट् श्रीपालकुंवर, मयणासुंदरी और उनके सातसौ अमीर-उमराव राणा अपनी स्पष्ट राम-कहानी सुन चकित हो गए। उन्होंने राजर्षि अजितसेन को कोटि कोटि धन्यवाद दे सविधि वंदना की।

श्रीमान् पूज्य उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के चौथे खण्ड की आठवीं ढाल संपूर्ण हुई। श्रीसिद्धचक्र व्रत-आराधक श्रोतागण और पाठकों को श्री सिद्धचक्र के प्रभाव से सदा जय-विजय, धन—धान्य सुख-सौभाग्य विनय और यश की निश्चय ही प्राप्ति होती है।

---

* **धनासा हाथ मलता रह गया:**—एक सेठ था उसे गांव के लोग धनपाल कह कर पुकारा करते थे, किन्तु वह था बड़ा कंगाल। उसका घर-घराना, गठीला बदन रूप-सौंदर्य देख, एक संत को बड़ी दया आई। उन्होंने सोचा, बेचारा मानव भव, उत्तम कुल, निरोग शरीर पाया है, इसे एक ऐसा सुन्दर अवसर दूं जिस से यह अपने धनपाल नाम को सार्थक कर जनम सुधार ले। उन्होंने उसे एक पारस पत्थर का छोटासा टुकड़ा देकर कहा—सेठ! मैं तीर्थयात्रा करने जा रहा हूं। मैंने इस पारसमणि से बहुत बहुत लाभ लिया है। अब आप भी इस अनमोल मणि से अपनी मनोकामना सफल कर लें। आप जानते हैं इस छोटे से पत्थर में क्या चमत्कार है? नहीं! यह पारस है। इस के स्पर्श से लाखों मन लोहा अपना रंग बदल क्षण में स्वर्ण बन जाता है। आप इस मणि को अपने पास रखें। देखते क्या हो, तुम निहाल हो जाओगे। सेठ—महात्माजी! मैं आपके इस अनुग्रह के लिए हृदय से आभारी हूं। आप वापस कब तक दर्शन देंगे? महात्मा—सेठ! मैं आज से ठीक एक वर्ष में वापस आकर अपनी धरोहर ले लूंगा। आप इस अवसर को हाथ से न गंवाएं। महात्मा आशीर्वाद दे यात्रा करने आगे बढ़ गए।

धनपाल सेठ पारसमणी को पाकर फूले न समाए। वे मणि को छाती से लगा कर हवाई-महल बांधने लगे। एक दिन वे बाजार में गए। वहां लोहे के भावकी पूछताछ की। कई जगह भटके,

## दोहा

इम सांभली श्रीपाल नृप, चिंते चित्त मझार।
अहो अहो भव नाटके, लहिये इस्या प्रकार ॥ १ ॥
कहे गुरु भते हवणा नथी, मुज चरित्रनी सत्ती।
करि पसाय तिणे उपदिसो, उचित करण पडिवत्ति ॥ २ ॥
वलतुं मुनि भाखे नृपति, निश्चय गति तू जोय।
करम भोग फल तुज घणुं, इह भव चरण न होय ॥ ३ ॥
पण नवपद आराधतां, पामीश नवमुं सर्ग।
नर सुर सुख क्रमे अनुभवी, नवमें भव अपवर्ग ॥ ४ ॥
ते सुणी रोमांचित हुओ, निज घर पहोंतो भूप।
मुनि पण विहरंतो गयो, ठाणांतर अनुरूप ॥ ५ ॥

**अनुगृहीत करें :**—सम्राट् श्रीपालकुंवर राजर्षि से अपने पूर्व-भव का घटनाचक्र सुन आश्चर्यचकित हो गए। अब तो पूर्ण रूप से उनकी अंतरात्मा मान गई कि सचमुच

---

कहीं सौदा न जमा। किसी ने कहा सेठ! आपको इतना थोक माल लेना है तो क्यों इतनी उतावल करते हो। बाजार तो दिन पर दिन गिर रहे हैं। आज नहीं तो कल। सेठ ने सोचा वास्तव में बात ठीक है, पैसे देकर माल लेना है फिर देखा जायगा। महंगा माल क्यों लूं? अभी पूरा एक वर्ष पड़ा है। जब चाहूंगा तब मालामाल हो जाऊंगा। धनपाल के बाप-दादे बड़े नामी सुप्रसिद्ध सेठ थे अतः उनके नाम से चारों ओर बाजार खुला था, धनपाल कहीं भी जाता उसे दुकानदार बड़े आदर से मन चाहा माल उधार दे, उसे बिना पानी से घोटते देर न करते।

धनपाल के तो दिन पर दिन रंग बदलने लगे, अब वह तो धनपाल की जगह धनाशा बन गया। संत-महात्मा के आशीर्वाद मिले फिर क्या कहना! धनपाल को उदय-अस्त का पता नहीं। वह सदा बाजार से लोह लेने की सोचता किन्तु उसे अपने अतिथि और परिवार के लोगों की हाँ जी, हाँ जी में अवकाश ही न मिलता। संध्या हुई उसे अपना कार्य सिद्ध करने की याद आती तो उधर बाजार बन्द हो जाता। कल-कल करते पूरा वर्ष बीत गया। भोर होते ही तीर्थयात्रा कर महात्मा आ टपके। उनकी सूरत देख सेठ की आँखें फटी की फटी रह गईं। महात्माजी अपना चमत्कारिक मणि ले वन में पधार गये। प्रमादी सेठ हाथ मलता रह गया।

भव–भ्रमण का नाटक भी एक भारी समस्या है। वे मानव धन्य हैं, कृत पुण्य हैं जो कि इस विकट समस्या से मुक्त हो परमपद पाने को उत्सुक हैं। गुरुदेव! मेरी भी यही शुभ कामना है कि एक दिन मुझे भी चारित्ररत्न की प्राप्ति हो। किन्तु इच्छा होते हुए भी मैं आगे नहीं बढ़ पाता हूँ। कि एक दिन मुझे अन्य कोई आत्मश्रेय का मार्ग दर्शन देकर अनुगृहीत करें। राजर्षि अजितसेन ने मुस्कराकर कहा श्रीपाल! सच है–इस समय आपको भोगावली कर्मों का उदय है, अतः इस भव में तो आपको चारित्र उदय आना असंभव है किन्तु आप मनुष्य भव, देव-भवादि का सुख भोग करते हुए क्रमशः नवमें भव में आप निश्चित ही परम पद–मोक्ष को पाएंगे। सम्राट श्रीपालकुंवर अपने जनम-मरण के फेरों का एक दिन अन्त होने की सुन आनंद विभोर हो फूले न समाए। उन्होंने कहा–धन्य है! धन्य है!! गुरुदेव आपकी इस महान् कृपा के लिए हम लोग हृदय से आभारी हैं। पश्चात् राजर्षि अजितसेन जनता को धर्मलाभ दे, हिरण्यपुर से आगे पधार गए और श्रीपालकुंवर अपने राजमहल की ओर चल दिये।

## चौथा खण्ड – नवमीं ढाल

(राग–कंत तमाकू परिहरो)

हवे नरपति श्रीपाल ते निज परिवार संयुत्त मेरे लाल।
आराधे सिद्धचक्र ने विधि सहित गृहीत सुमुहुत्त मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां
मयणासुंदरी त्यारे भणे, पूर्वे पूज्युं सिद्धचक्र मेरे लाल।
धन त्यारे थोडुं हतुं, हवणां तू ऋद्धे शक्र मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां २
धन महोटे छोटुं करे, *धर्म उजमणुं तेह मेरे लाल।
फल पुरुं पामे नहीं, मत करजो तिहां संदेह मेरे लाल, मननो महोटो मो.
विस्तारे नवपद तणी तिणे पूजा करी सु विवेक मेरे लाल।
धननो लाहो लीजिये राखो महोटी टेक मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।४।।
मयणां वयणां मन धरी, गुरु भक्ति शक्ति अनुसार मेरे लाल।
अरिहंतादिक पद भलां आराधे ते सार मेरे लाल, मननो महोटो मोजमां ।।५।।

* (पाठांतर) जे करणी धर्मनुं तेह।

नव जिन घर नव पड़िमा भली, नव जिर्णोद्धार करावि, मे. ।
नानाविध पूजा करी, जिन, आराधन शुभ भाव ॥ मे. म. ॥६॥
एम सिद्ध तणी प्रतिमा तणुं, पूजन त्रिहुं काल प्रणाम, मे. ।
तन्मय ध्याने सिद्धनुं करे आराधन अभिराम ॥ मे. म. ॥७॥
आदर भगति ने वंदना, वेयावच्चादिक लग्ग, मे. ।
शुश्रूषा विधि सांचवी, आराधो सूरि समग्ग ॥ मे. म. ॥८॥
अध्यापक भगतां प्रति, वसनाशन ठाण बनाय, मे. ।
द्विविध भगति करतो थको, आराधो नृप उवज्झाय ॥ मे. म. ॥९॥
नमन वंदन अभिगमन थी, वसही अंशादिक दान, मे. ।
करतो वेयावच्च घणुं, आराधे मुनि पद ठाण ॥ मे. म. ॥१०॥

वनों में बासंती खिली थी, चारों ओर पुष्पों के झरते पराग से दिशाएं पीली हो चलीं थीं। दक्षिणी पवन देश-देश के फूलों की गंध उड़ा कर ला रहा था, चारों ओर स्निग्ध नवीन हरियाली छा रही थी। सम्राट् श्रीपालकुंवर स्वर्ण सिंहासन पर बैठ बड़े आनंद से अपना दैनिक कार्यक्रम राज-का का संचालन कर रहे थे। उनके लोक-व्यवहार से स्पष्ट झलक रहा था कि उन्हों ने परम पूज्य राजर्षि अजितसेन के सत्संग से प्रभावित हो अपने जीवन का मोड़ बदल दिया है, अब वे बड़े वेग से भोग में योग की साधना कर रहे हैं, अर्थात् उनके शयन, विलेपन, भोजन, वस्त्रालंकार धारण, गीत-गान श्रवणादि प्रत्येक कार्य सदा अनासक्त भाव से ही होते थे। एक दिन रानी मयणासुंदरी ने कहा—प्राणनाथ! अब श्रीसिद्धचक्र व्रताराधना के दिन निकट आ रहे हैं। गत आराधना के समय हम लोग इधर उधर प्रवास में थे, मार्ग में कई असुविधाओं के कारण हम लोग मनचाहा लाभ न ले सके, अब तो हमारे पास धर्म के प्रभाव से इन्द्र के समान ऐश्वर्य, शारीरिक स्वास्थ्य, राज-पाट आदि साधन उपस्थित हैं। अतः मेरा आप श्रीमान् से सादर अनुरोध है कि अब हमें अति उत्कृष्ट भाव और तन-मन-धनसे श्रीसिद्धचक्र व्रत आराधना करना चाहिये।

सम्राट् श्रीपाल कुंवर—प्रिये! संसार में रत्नजड़ित हार, कंगन, भुजबंध, गगन-चुम्बी राजप्रासाद, बहुमूल्य वस्त्रालंकारादि की कामना के लिये मुंह फुलाने वाली नारियों की कमी नहीं। अनेक स्त्रियां खान-पान, अपनी मनचाही सुविधाओं के जाल में फंस कर अपने पति को विष देने में संकोच न कर, शीलव्रत से हाथ धो एक दिन इस संसार से

चलती बनती हैं, किन्तु मैं तुम्हें पाकर धन्य हो गया। मैं तुम्हारी इस मंगल कामना का हृदय से स्वागत करता हूँ। तुमने मुझे गत भव में शिकार आदि दुर्व्यसनों की राह से बाल-बाल बचा कर यहां मनुष्य भव पाने का सुअवसर दिया। इस जन्म में भी तुमने मुझे समय समय पर अपने आदर्श अभिप्राय दे कर आध्यात्मिक विकास की ओर बढ़ने में मेरा बहुत कुछ साथ दिया है।

सच है, स्त्री हो तो ऐसी हो; जो कि मयणसुन्दरी के समान अपने प्राणनाथ और सास आदि परिवार की हृदय से सेवा-शुश्रूषा करे और उनको सन्मार्गदर्शन दे श्रीसिद्धचक्र व्रताराधक बना अपना नाम अमर कर दे, त बतो महिलाओं को श्री सिद्धचक्र की ओली करना सार्थक है—अन्यथा काया कष्ट तो यह जीव अनादि से करता आ रहा है।

**आंखे खोलो, आगे बढ़ो:**—व्रताराधक बहिनो! उठो, आंखें खोलो, आगे बढ़ो! आप वर्षों से श्रीसिद्धचक्र-नवपद ओली करती चली आ रहीं है। आप में मयणासुन्दरी सदृश कितनी सहनशीलता, क्षमा, धैर्य, साहस और निर्भयता जाग्रत हुई? क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्षा, परिवार से लड़ने-झगड़ने और छोटे बच्चों को मार-पीट करने, झिड़कने की आदत दूर हुई? नहीं, तो फिर आपके हृदय पर तपाराधन का क्या प्रभाव पड़ा? नवपद ओली का यह अर्थ नहीं कि आप वर्ष में दो बार स्वस्तिक, खमासमण, और प्रदक्षिणा के फेरे फिर कर संतोष मान लें, आयंबिल (दिन में एक बार निरस आहार) कर तन को सुका कर चुप-चाप बैठ जाएं। नवपद ओली करते समय आप प्रत्येक पद की बीस माला अर्थात् दो हजार जाप क्यों करते हैं? जाप से आपकी दरिद्रता दूर हुई? घर का क्लेश शांत हुआ? नहीं। यह एक का ही कारण है कि आपने आराधना की, किन्तु अपने आप को नहीं समझा कि मैं कौन हूँ? मेरी प्रवृत्ति कैसी है।

**मैं कौन हूं:**—मानव जब नवपद आराधना करना आरम्भ करते हैं उस समय उसे स्वयं अनुभव होने लगता है कि मैं जिन अरिहंत सिद्धादि के जाप और आराधना करता हूँ उसी के समान यह मेरा पवित्र आत्मा है, आत्मा ज्ञाता द्रष्टा है, जिस में अपार बल है, वह मैं हूँ, मेरा सांसारिक विषयों से कुछ भी संबंध नहीं है। मेरी आत्मा शुद्ध है, इस में परमात्मा के सभी गुण विद्यमान हैं। इस प्रकार जैसे जैसे आत्मतत्त्व का अनुभव होता है वैसे-वैसे इन्द्रिय-भौतिक सुख सुलभ होने पर भी नवपद-सिद्धचक्र आराधक स्त्री-पुरुषों को वे सुख नहीं रुचते हैं। जहां रुचि मंद हुई कि फिर तो सांसारिक सभी झंझटें भौतिक सुख की तृष्णा, कलह कषायादि अपने आप ही मंद हो जाते हैं।

**प्रवृत्ति कैसी है ?** :–प्रवृत्ति दो प्रकार की होती है। अच्छा सोचना, अच्छा बोलना, अच्छे कार्य करना; मन, वचन, काया की सत्प्रवृत्ति है और बुरा सोचना, बुरा बोलना, बुरे कार्य करना असत्प्रवृत्ति है। भगवान सदा सत्प्रवृत्ति में ही रहते हैं, उसी प्रकार उनके आराधक भी यदि सत्प्रवृत्ति का ही आचरण करते रहें तो दुःख का अस्तित्व ही न रहे। सिद्धचक्र व्रत की यही सार्थकता है कि क्रोध, मान, माया, लोभ और ईर्षा से दूर रहें, सदा सत्प्रवृत्ति में रहने की अपनी आदत डालें। मयणा-सुन्दरी के समान सदा सिद्धचक्र के ध्यान में मग्न रहते हुए अपने प्राणनाथ, सास-ससुर की सेवा सुश्रूषा करके अपना आत्म-कल्याण करें। श्रीसिद्धचक्र आराधना अर्थात् नवपद ओली की आराधना वर्ष में दो बार होती है, इसका यही हेतु है कि साधक स्त्री पुरुष हर छठे माह अपनी आत्मा के गुण-दोष का संशोधन कर आध्यात्मिक विकास में आगे बढ़ें।

**भागने की सोचते हैं** :–सम्राट् श्रीपालकुंवर ने रानी मयणासुन्दरी के अनुरोध से प्रसन्न हो, श्री सिद्धचक्र–व्रताराधन की स्वीकृति प्रदान कर दी। पश्चात् वे दोनों राजा-रानी बड़े शान्त भाव प्रसन्न मन से व्रत-आराधना करने लगे। उनको अन्य नवपद व्रत आराधक बाल वृद्ध स्त्री-पुरुषों के साथ स्वस्तिक, खमासमण, प्रदक्षिणा, चैत्यवंदन, स्तुति, काउसग, आयंबिलादि विधिविधान करते बड़ा आनंद आता। वे प्रतिक्रमण और चैत्यवंदनादि में आने वाले मूल-सूत्र और खमासमण के दोहों के अर्थ का चिंतन–मनन करते करते आनंदविभोर हो जाते। उनके देह की रोम-राजि विकसित हो उठती।

आज तो व्रताराधक स्त्री-पुरुष, तू चल मैं आया, चट-पट विधिविधान कर भागने की सोचते हैं। कौन किस की प्रतीक्षा करे, कौन विधि-विधान के सूत्र-अर्थों का मनन-चिंतन करे ? यह उचित नहीं। विधि-विधान से अनजान स्त्री-पुरुषों को प्रत्येक क्रिया करते समय उनको अपने साथ रख, उनका उत्साह बढ़ाओ, विधि-विधान के प्रत्येक सूत्र और अर्थ का मनन-चिंतन करो। इस में महान् लाभ है। व्रताराधन के दो भेद हैं। द्रव्य और भाव (१) स्वस्तिक, प्रदक्षिणा, खमासमणा, पच्चक्खाण आदि करना द्रव्य-आराधना है (२) अपने मन, वचन, और काया के शुभ योग से क्रियाविधि में आने वाले सूत्र-अर्थों के गूढ़ रहस्य को समझ कर आराधना करना तथा बड़े उदार भाव से साधु, साध्वी, श्रावक-श्राविका, जिन मंदिर, जिर्णोद्धार और ज्ञान-साहित्य प्रकाशन में अपनी गाढ़ी कमाई के धन का सदुपयोग करना भाव क्रिया है। कई महानुभाव साधन-संपन्न हैं, उनके पास पुण्योदय से पैसे की कमी नहीं फिर भी वे महानुभाव

संघ सेवा साहित्य प्रकाशन आदि सत् कार्यों में हाथ बटाते समय कुछ पिछड़ जाते हैं। यह उचित नहीं। ऐसा करने वाला व्यक्ति स्वयं अपने आपको धोखा देता है। महा पुरुषोंने तो स्पष्ट चेतावनी दी है "चला लक्ष्मीः, चला प्राणा"- धन और प्राण दोनों चंचल है। रे मानव! इन से तू अधिक परमार्थ कर सुयश पा ले, अन्यथा एक दिन तू यों ही हाथ मलता रह जायगा। तेरे मन की मन में रह जायगी।

श्रीपालकुंवर द्रव्य और भाव दोनों प्रकार से आराधना का लाभ लेते थे। उन्होंने (१) अरिहंत पद की–आराधनार्थ बावन जिनालय वाले गगनचुंबी नव सौधशिखरी अच्छे कलापूर्ण मंदिर बनवाए। अनेक प्रतिष्ठांजनशलाकाएं और मंदिरों के जीर्णोद्धार करवाए। उनकी ओर से मंदिर-उपाश्रयों में सदा एक न एक उत्सव-महोत्सव होते ही रहते थे। (२) सिद्ध-पद की आराधना में सदा वे रूपातीत सिद्ध स्वरूपी अपनी आत्मा का ध्यान करने का प्रयत्न करते। (३) आचार्य-पद की आराधना में शासन सम्राट् परम पूज्य बहुश्रुत गीतार्थ आचार्यों को सादर विनंती कर उनको अपनी राजधानी में चातुर्मास करा उनके सत्संग का लाभ लेते। उनको वस्त्र, पात्र, शास्त्र, आहार, औषधादि दान दे उनकी अनेकविध सेवा शुश्रूषा कर नित्य सविध *पांच अभिगम से वंदन करते। (४) उपाध्याय पद की आराधना में वे अध्यापक और विद्यार्थियों की प्रगति के लिये कई गुरुकुल, छात्रावास खोलते। होनहार छात्रों को दूर-दूर से बुला कर उन्हें छात्रवृत्ति दे अच्छे प्रतिभाशाली विद्वान बनाते। उपाध्यायजी महाराज को अनेक जैनागम शास्त्रों को सोने-चांदी के सुन्दर अक्षरों में लिखवाकर भेट करते। (५) साधुपद की आराधना में सम्राट् श्रीपालकुंवर अपनी राजधानी चंपानगर के उपाश्रयों में विराजमान पूज्य आचार्य, उपाध्याय, साधु, साध्वी, को नित्य वंदन करते, उनको आहार-पानी की प्रार्थना करते। यदि वे किसी दिन अपने घर आहार-पानी के लिये पधारते तो उनको दान देनेके ×पांच दूषणों-दोषों का त्याग कर दान देते समय दान के +पांच भूषण हैं उनका लक्ष्य रख कर वे दान देते। ओघा-रजोहरण पात्रे, तरपणी, वस्त्र शास्त्र आदि से श्रमण-समुदाय की भक्ति करते।

---

* पांच-अभिगम का वर्णन पृष्ठ ४७ के नोट में देखिये।

× पांच दूषण:–(१) अनादर–साधु-साध्वी, अतिथि को देख बड़-बड़ाना। (२) विलंब–साधु-साध्वी, अतिथि का देख उनका स्वागत कर आहार-पानी देने में टालम-टोल करना। (३) निंदा–साधु-साध्वी को अनिच्छा से दान देकर उनकी जनता में बुराइयां करना। (४) कटु भाषण–साधु-साध्वी को भली-बुरी सुना कर दान देना। (५) दान देकर पछताना।

+ पांच-भूषण–(१) आनन्द–अपने द्वार पर साधु-साध्वी को देख प्रसन्न होना। अश्रु–सन्तों देख इतना अधिक हर्ष हो कि आखों से अश्रुधारा बहने लगे। धन्य है। धन्य है!! गुरुदेव। आप सदा

तीर्थ यात्रा करी अति घणी, संघ पूजा ने रह जत्त। मे.।
आराधे दर्शन पद भलुँ, शासन उन्नति दृढ़ चित्त॥ मे. म. ॥११॥

सिद्धान्त लिखावी तेहने, पालन अर्चादिक हेत। मे.।
नाण–पद आराधन करे, सज्झाय उचित मन देत॥ मे. म. ॥१२॥

(६) दर्शनपद की आराधना में सम्राट् श्रीपालकुंवर ने सपरिवार अनेक तीर्थयात्राएं कीं, धर्मशालाएं बनवाईं, रथ-यात्रा आदि अनेक स्थानों पर उत्सव-महोत्सव किए, स्वामी-वात्सल, संघ-पूजन कर श्रीजिनशासन की प्रभावना की। (७) ज्ञान-पद की आराधना में उन्होंने कई नूतन विशाल ज्ञान-मंदिर बनवा कर उसमें हस्तलिखित जैनागम-शास्त्र व्याकरण काव्य अलंकार, ज्योतिष-आयुर्वेदादि ग्रंथों का संग्रह किया। छात्रवास, गुरुकुल आदि लोक-कल्याणक संस्थाएं स्थापित कर उनके संचालन का संपूर्ण व्यय अपने भंडार से देते और स्वयं भी राजा-रानी दोनों सद्गुरु से तत्त्व-ज्ञान का अध्ययन कर ज्ञानपद की आराधना करते थे।

व्रत नियमादिक पालतो, विरतीनी भक्ति करंत। मे.।
आराधे चारित्र धर्म ने, रागी यतिधर्म एकंत॥ मे. म. ॥१३॥

तजी इच्छा इह पर लोकनी, हुई सघले अप्रतिबद्ध। मे.।
षट् बाह्य अभ्यन्तर षट् करी, आराधे तव पद शुद्ध॥ मे. म. ॥१४॥

उत्तम नवपद द्रव्य भाव थी, शुभ भक्ति करी श्रीपाल। मे.।
आराधे सिद्धचक्र ने, नित पामे मंगल माल॥ मे. म. ॥१५॥

(८) चारित्र-पद की आराधना में सम्राट् श्रीपालकुंवर सदा व्रत-नियमों का पालन करते हुए भगवान से प्रार्थना करते–हे प्रभो! मुझे वीतराग धर्म से रहित चक्रवर्ती

---

आत्म-स्वभाव, ज्ञान–ध्यान की साधना में लगे रहते हैं। मुझे भी एक दिन ऐसा ही सु-अवसर प्राप्त हो इसी प्रकार शुभ विचारधारा इतनी उत्कृष्ट हो कि आप के तन की रोम-राजि हर्ष से प्रफुल्लित हो उठे। (४) बहुमान-साधु-साध्वी को देख दौड़ कर उनके चरणस्पर्श करना (५) प्रिय वचन–मानव से भूल होना स्वाभाविक है। यदि साधु-साध्वी को किसी बात के लिए कुछ सुझाव देना उचित हो या कोई शंका-समाधान ही करना हो तो ऐसे ढंग से बातचीत करें कि उनको अप्रिय न लगे।

पदकी इच्छा नहीं किन्तु वीतराग धर्म से युक्त और दरिद्रता सहर्ष स्वीकार है। मुझे सुख की लालसा और दुःख का भय नहीं। बस, जीवन में एक यही इच्छा है कि मेरा रोम रोम सर्वज्ञ भासित धर्म से ही सदा ओतप्रोत वासित बना रहे। मुझे वह सुअवसर शीघ्र ही प्राप्त हो कि मेरे इस क्षणभंगुर शरीर से सिवाय धर्मक्रिया के अन्य कोई क्रिया न हो। वे द्रव्य भोग भोगते थे किन्तु उनका अंतरंग हृदय उनसे अनासक्त शुद्ध सदा अलग ही रहता था। जैसे कि वैद्य-डाक्टरों की दवा की पुड़ियाएं कोई लेना पसंद तो नहीं करते हैं किन्तु फिर भी उनको दवा लेना ही पड़ती है। अतः उसका विशुद्ध श्रावकचार की साधना की ओर विशेष लक्ष था। सच है, श्रावकाचार ही जीवन है।

श्रावक वही है जो सदा हंसमुख प्रसन्न मन, देव-गुरु-भक्ति कारक व्रताराधक फला फूला निर्भय रहे। उसके आचार-विचार और उपचार में एक अनूठी प्रतिभा, आकर्षण हो। उसका नाम सुनते ही एक बार मानव चौंक पड़े। जैसे कि आनन्दजी, कामदेवजी, खेमादेदराणी, मंत्री तेजपाल, वस्तुपाल भामाशाह, पेथड़शाह आदि-किन्तु खेद है कि आज उल्टी गंगा बह रही है। श्रावक-श्राविकाओं की रोती सूरत, देव-गुरु-धर्माराधन की विमुखता, आचार-विचार–उपचारकी शिथिलता डरपोक जीवन एक प्रत्यक्ष भारी विचित्र समस्या बन रहा है। श्रावक नाम सुनते ही जनता अपने नाक भौंह सिकोड़ने लगती है। कई ओछे लोग "श्रावक-बनिया" याने पहले नम्बर का ठग, धोखेबाज, कामचोर, ईर्षालु, सुस्तराम, चार सो बीस—भद्दे शब्द बोलते नहीं लजाते। आज घर घर में, बाजार–मंदिर–उपाश्रय–धर्मस्थानों में ईर्षा, द्वेष और पक्षपात की भयंकर होली जल रही है। भाई को भाई नहीं चाहता; बेटा बाप को उखाड़ फेंकने की सोचता है, बहू सास को अपने तलवे चटाने की धुन में है; उसे बर्तन-बासन, चूला फूंकना, हाथ से धान्य पीसना नहीं सुहाता। पड़ोसी को मुंह फुलाए घूरता रहता है। मकान-मालिक किरायेदारों का शोषण करना चाहता है तो किरायेदार भी कम नहीं; वह भी सेठ को बिना छकाए नहीं रहते।

इससे अधिक और क्या होगा? जैन कुल में जन्म पाने वाले मानव और श्रीसिद्धक्र-नवपद तप करने वाले स्त्री-पुरुषों के जीवन में इन दुर्गुणों का होना एक अभिशाप है। अरे! जहां हर छठे माह चैत्र शुक्ला और आश्विन शुक्ला में आत्मशुद्धि के महापर्व की आराधना हो वहां के श्रीसंघ और श्रीसिद्धचक्र-व्रताधारक स्त्री-पुरुषों की यह दशा! उनके जीवन में राग, द्वेष, कषाय, ईर्षा, आपसी कलह एक-दूसरे को पछाड़ने की भावना, अविनयादि का होना क्या शोभा देता है? नहीं। जैनधर्म के संपर्क में आने के बाद इन दुर्भावनाओं को रखना बहुत बुरी बात है। सच है,

**एक अचम्भा ऐसा हुआ, जलमें लागी लाय।
जैन धर्म को पाय के, छोड़े नहीं कषाय॥**

प्रश्न – क्रोध किसे नहीं आता? दुर्गुण किसमें नहीं है? उत्तर-महानुभाव! हमारा यह अभिप्राय नहीं कि मानव को यदि क्रोध आता है, उसमें दुर्गुण है तो वह व्रताराधन जप-तप का ही त्याग कर दे या करनेवाले को अपने पास ही न फटकने दे। उनसे घृणा करे। मानव में जन्म-जन्मांतरों के संस्कारवश, कम-अधिक मात्रा में कषाय और दुर्गुणों का होना स्वाभाविक है। तभी तो मानव को छद्मस्थ-अपूर्ण कहा है। भगवान का सिद्धान्त है कि "बढ़े चलो हिम्मत मत हारो"। अपनी अनादि काल की जो भूल है, उसे सुधारो। आराधक बन आगे बढ़ने का Try Try again, बार बार प्रयत्न करो।

प्रश्न–आगेबढ़ने और बुराइयों से बचने का उपाय क्या है? उत्तर–इसका यही एक सर्वश्रेष्ठ उपाय है कि आप श्रावक के इक्कीस गुणों को याद कर उसका ठीक उसी प्रकार पालन करें। सच्चे श्रावक बनें।

**श्रावक के गुण:–** (१) श्रावक का किसी को कष्ट देने का स्वभाव न होना चाहिए। (२) वह प्रतिभाशाली, बलवान हो, उसके मुंह पर सदा सरलता, प्रसन्नता झलकती रहे। (३) वह शांत, दान्त, क्षमाशील, मिलनसार, विश्वासपात्र और धैर्यवान हो। (४) समयज्ञ और लोकप्रिय हो। (५) क्रूरतारहित हो। (६) लोकापवाद से डरे, इहलोक और परलोक के विरुद्ध आचरण न करे। (७) मूर्ख, धूर्त और विवेकहीन न हो। (८) व्यवहारकुशल और भले-बुरे का पारखी हो। (९) लज्जाशील हो। (१०) दयालु हो। (११) सम-भावी हो अर्थात् भली-बुरी बातें देख या सुन कर एक दम से आवेश में न आवे। राग-द्वेष से दूर रहे। लंपट न हो (१२) बाहर-भीतर से सरल समान सम्यग्दृष्टि हो (१३) गुणानुरागी हो। (१४) न्यायपक्ष का साथ दे, अन्याय से सदा दूर रहे। (१५) भविष्य का विचार कर सोच समझ कर ही आगे बढ़े। (१६) विशेषज्ञ-सत्-असत्, हित-अहित, गुण-दोष को जानने में चतुर हो। (१७) अपने आदर्श पूर्वजों के सन्मार्ग पर ही चले। (१८) विनयवान् हो। (१९) पराये उपकार को माने-गुणचोर न हो। (२०) "परोपकाराय सतां विभूतयः"—अर्थात् सत्पुरुषों की संपत्ति परहित और परमार्थ के लिये ही होती है। ऐसी श्रावक की रीति-नीति हो। (२१) अपने जीवन की अंतिम सांस तक धर्मध्यान, प्रभु-भजन, दान पुण्यादि के सुअवसर को वह हाथ से न जाने दे।

साहित्य-शास्त्र में गृहस्थाश्रम को अपेक्षा-कृत स्वर्गीय संसार की उपमा दी गई है। आज आप अपने हृदय से तो पूछियेगा कि आपका संसार कैसा है ? मन जानता है। अरे! इतने दबे स्वर में क्यों बोल रहे हो ? क्या शास्त्रकार भूल गए ? जी नहीं, हमारी भूल ही हमें खा रही है। हमने श्रावक के इक्कीस गुणों का पालन नहीं किया। न हमारे परिवार में इन उत्तम गुणों की चर्चा ही कभी होती है। सच है आज समाज और परिवार में जो अशांति और बुराईयाँ बड़े वेग से फैल रही हैं, इस का यही एक कारण है कि मानव बातें और व्रत-नियमादि तो बहुत ही करते हैं किन्तु महापुरुषों के अनुभूत सन्मार्ग दर्शक श्रावक के इक्कीस गुणों की ओर जरा भी आंख उठा कर नहीं देखते। आज हजार श्रावक-श्राविकाओं में से शायद ही दो चार स्त्री-पुरुषों को इक्कीस गुणों के नाम याद होंगे। भला फिर आप के परिवार और समाज में प्रगति कैसे हो ? संभव है, कोई यह कहे कि अरे, इस साधारण छोटी सी बात में क्या धरा है ? क्या आप इसे एक छोटी सी बात मानते हैं ? बस, यहीं आप राह भटक गये हैं। एक भारी मूल्य की सोने की सुन्दर घड़ी है, उसके एक छोटे से लीवरके एक ही दांते की उसमें यदि कमी है तो संसार उसे क्या घड़ी कहेगा ? नहीं, चूनेदानी। उसका कोई मूल्य नहीं। इसी प्रकार जो व्यक्ति श्रावक के इक्कीस गुणों की उपेक्षा कर बैठता है वह मानव प्रत्यक्ष इस संसार में भारभूत है, उसके जीवन का कोई अर्थ नहीं। महापुरुषों के अनुभूत पवित्र शब्दों की एक ही चिनगारी मानव के जनम–जनम के पापों को क्षण भर में स्वाहा कर उसे "नर से नारायण" भगवान बना देती है

प्रिय पाठक और श्रोतागण ! आगे बढ़ो ! आगे बढ़ो !! आज ही दृढ़ संकल्प के साथ सर्व प्रथम श्रावक के इन इक्कीस गुणों का अपने जीवन में आचरण करना आरंभ कर दें। अपने परिवार को भी सप्रेम इस सन्मार्ग की ओर आकर्षित कर अपना जीवन सफल बनाओ। सचमुच आपका स्वर्गीय संसार चमक उठेगा। श्रीसिद्धचक्र के आठवें चारित्र पद की आराधना का वास्तविक फल यही है कि आप केवल नाम के श्रावक ही न रह कर इन इक्कीस गुणयुक्त सच्चे श्रावक बनें, श्रीपालकुंवर के समान श्रीजिन-शासन की शोभा बढ़ाएं।

इम सिद्धचक्रनी सेवना, करे सदा साढ़ा चार ते वर्ष। मे.।
हवे उजमणा विधि तणो, पूरे तप उपनो हर्ष॥ मे. म. ॥१६॥
चौथे खंडे पूरी थई ढाल नवमी चढ़ते रंग। मे.।
विनय सुजस सुख ते लहे, सिद्धचक्र थुणे जे चंग॥मे. म. ॥१७॥

(९) तपपद—की आराधना में श्रीपालकुंवर बड़े ही शान्त और निःस्वार्थ भाव से *१२ प्रकार का तप करते थे। उनको प्रत्येक चैत्र शुक्ला और आश्विन-शुक्ला में आराधना करते जब पूरे साढ़े चार वर्ष हो गए तब वे श्रीसिद्धचक्र-व्रत का उजमणा करने-की सोचने लगे। श्रीमान् यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के चौथे खण्ड की नवमीं ढाल सानंद संपूर्ण हुई। श्रीसिद्धचक्र व्रत की श्रद्धा और भक्ति से आराधना करने वाले पाठक और श्रोतागण को विनय और सु-यश की प्राप्ति होती है।

## दोहा

हवे राजा निज राजनो, लच्छी तणे अनुसार।
उजमणुं सेह तपतणुं, मांडे अति ही उदार ॥१॥

सम्राट् श्रीपालकुंवर और रानी मयणासुंदरी दोनों ही पति-पत्नी श्रीसिद्धचक्र-व्रत से उजमणे के लिये बड़े ही उदार भाव और श्रम से बहुमूल्य वस्तुओं का संग्रह करने लगे।

## चौथा खण्ड—दसवीं ढाल

(भोलीड़ा हंसारे विषय न राचिये)

विस्तीरण जिन भवन विरचिये, पुण्य त्रिवेदिक पीठ।
चंद्र चंद्रिकारे धवल भुवन तले, नवरंग चित्र विसीठ ॥१॥
तप उजमणुं रे इणि परे कीजिये, जिम विरचे श्रीपाल।
तप फल वाधे रे उजमणे करी, जेम जल पंकज नाल ॥तप. इ. ॥२॥
पंच वरणनारे शालि प्रमुख भला, मंत्र पवित्र करी धान्य।
सिद्धचक्रनी रे रचना तिहां करे, संपूर्ण शुभ ध्यान ॥ तप. इ. ॥३॥

* बारह प्रकार के तप का वर्णन पृष्ठ ३०३ के नोट में देखें।

अरिहंतादिक नवपदने विषे, श्रीफल गोल उवंत ।
सामान्ये घृत खण्ड सहित सवे, नृप मन अधिको रे खन्त ॥ तप. इ. ॥४॥

जिनपद धवलुंरे गोलक ते ठवे, शुचि कर्केतन अट्ठ ।
चौत्रीश हीरे रे सहित बिराजतुं, गिरुओ सुगुण गरिट्ठ ॥ तप. इ. ॥५॥

सिस पदे अड़ माणिक गतड़ां, वली इगतीस प्रवाल ।
धुसृण विलेपित गोलक तस ठवे, मूरति राग विशाल ॥ तप. इ. ॥६॥

पण मणि पीत छत्रीश गोमेद के, सूरि पदे ठवे गोल ।
नील रयण पचवीस पाठक पदे, ठवे विपुल रंग रोल ॥ तप. इ. ॥७॥

रिष्ट रतन सगवीसते मुनि पदे, पंच राग पट अंक ।
सगसट्ठि इगवन्न सित्तरी पंचास ते, मुगता शेष निःशंक ॥ तप. इ. ॥८॥

ते ते वरणे रे चीरादिक ठवे, नवपद तणे रे उद्देश ।
बीजी पण सामग्री मोटकी, मांडे तेह नरेश ॥ तप. इ. ॥९॥

बीजोरां खारेक दाड़िम भलां, कोहोलां सरस नारंग ।
पूंगी-फल वली कलश कंचन तणा, रतन पुज अतिचंग ॥ तप. इ. ॥१०॥

जे जे ठामे रे जे ठववुं घटे, ते ते ठवे रे नरिंद ।
ग्रह दिग्पाल पदे फल फूलडां, धरे स-वरण आनन्द ॥ तप. इ ॥११॥

उजमणा इसे कहते हैं:—सम्राट श्रीपालकुंवर ने अपने सिद्धचक्र-व्रत की अराधना के उपलक्ष में एक बड़े ही समारोह के साथ भारी महोत्सव (उजमणा) आरंभ किया। मंदिरजी के विशाल सभा-मंडप से चारों ओर हवा से लहराती रंग-बिरंगी ध्वजा-पताकाओं का शब्द कह रहा था कि रे मानव ! यह संसार हमारे समान चंचल है। तू अब इधर-उधर न भटक सम्राट् श्रीपालकुंवर के समान बड़े मनोयोग और उदार भाव, श्रद्धा से श्रीसिद्धचक्र-व्रत की आराधना और उजमणा कर अपना जन्म सफल बना ले। लाल-पीले-हरे रंग की चमकीली रोशनी का संकेत था कि रे मानव ! तू अब अधिक प्रमाद-मोह-ममता न रख, याद रख ! ये काले सिर के मानव पुण्य के साथी हैं, पाप का साथी कोई नहीं।

तू अतिशीघ्र श्रीसिद्धचक्र की आराधना और उजमणा कर अपना मानव-भव सफल बना ले अन्यथा यह दुनिया हमारे समान रंग बदलते देर न करेगी। फिर तू "घर का न घाट का" कहीं का न रहेगा। प्रतिभाशाली बन। कुंवर ने एक रत्नजड़ित स्वर्ण के कलापूर्ण सिंहासन-समवसरण पर श्री जिनेन्द्रदेव की अनुपम दिव्य प्रतिमाजी और श्री सिद्धचक्रजी का यंत्र विराजमान कर उसके पास एक बड़े पाट पर गेहूँ, चावल, चने, मूंग, उड़द आदि धान्य से सविधि नवपद मंडल की रचना की।

फिर अरिहंत-पद के बारह गुण हैं अतः मंडल के पहले अरिहंत–पद की धूप–दीप केशर से पूजन कर उन्होंने श्रीफल के बारह * गोलों को घी–शक्कर से भर उसके साथ २४ बहुमूल्य हीरे श्रीसिद्धचक्र-यंत्र के सामने पाट पर चढ़ाये। दूसरे सिद्ध–पद की पूजन कर उस पर गोले और बहुमूल्य ३१ कर्केतन रत्न और लाल प्रवाल चढ़ाये। तीसरे आचार्य-पद की पूजन कर उस पर गोले और ३६ पीले रंग के गोमेदक रत्न चढ़ाए। चौथे उपाध्याय-पद की पूजन कर उस पर गोले और पच्चीस बढ़िया पन्ने चढ़ाए। पांचवें साधु-पद की पूजन कर उस पर गोले और अरिष्ट रत्न (शनि के) २७ नग चढ़ाए। छट्ठे दर्शन–पद की पूजन कर उस पर गोले और ६७ बहुमूल्य मोती चढ़ाए। सातवें ज्ञान-पद की पूजन कर उस पर गोले और ५१ मोती चढ़ाए। आठवें चारित्र–पद की पूजन कर उस पर गोले और ७० मोती चढ़ाए। नवमें तप-पद की पूजन कर उस पर गोले और ५० मोती चढ़ाए।

सम्राट् श्रीपालकुंवर ने नवपद मंडल, नवग्रह और दश दिग्पालों की नैवेद्य वस्त्र, फल, फूलादि से ऐसे उदार भाव, श्रद्धा और विधिविधान से पूजन-अर्चन की उसे देख राजधानी चंपानगर और उसके आस-पास की जनता आश्चर्य चकित हो गई। "धन्य है सम्राट श्रीपाल को! विधि–विधान–उजमणा इसे कहते हैं।"

**गुरु विस्तारे उजमणुँ करी, न्हवण उत्सव करे राय।**
**आठ प्रकारी रे जिन-पूजन करे, मंगल अवसर थाय ॥तप. इ.॥१२॥**

* नवपद मंडल में जिस पद का जैसा रंग से गोले रंगहै उसी रंग कर चढ़ाये जाते हैं। साथ ही प्रत्येक पद के जितने गुण हैं, प्रायः उतने ही रत्न–मोती गोले आदि चढ़ाते हैं। सिद्धपद आचार्य-पद और साधुपद में कहीं-कहीं अंतर है, जैसे कि सिद्ध भगवान के आठ और अपेक्षाकृत ३१ गुण हैं। आचार्य भगवान पंचाचार पालक है व अन्य को पंचाचार पालने की प्रेरणा देते हैं अतः तीसरे पद की पूजन ३६ रत्न के साथ पांच पीले पुखराज भी चढ़ाते हैं। साधुपद के ऐसे तो २७ गुण हैं किन्तु वे पंच महाव्रतधारी हैं अतः उस पद में पांच हीरे आदि रत्न रखते हैं।

संघ तिवारे रे तिलक माला तणुं मंगल नृप ने करेई।
श्री जिन माने रे संघे जे कर्युं, मंगल ते शिव देई॥ तप. इ.॥१३॥
तप उजमणे रे वीर्य उल्लास जे, तेहज मुक्ति निदान।
सर्व अभव्ये रे तप पूरा कर्यां पण नाव्युं प्रणिधान॥ तप. इ.॥१४॥
लघु कर्माने रे किरिया फल दिये, सफल सु-गुरु उवएस।
सर होये तिहां कूप खनन न घटे, नहीं तो होय किलेश॥तप. इ.॥१५॥
सफल हुवो सवि नृप श्रीपाल ने, द्रव्य भाव जस शुद्ध।
मत कोई राचो रे काचो मत लेई साचो बिहुं नय बद्ध॥ तप. इ.॥१६॥
चोथे खंडे रे दशमी ढाल ए, पूरण हुई सु प्रमाण।
श्रीजिन विनय सुजस भगति करो पग पग होई कल्याण॥ तप. इ.॥१७॥

मंगल बधाई:—सम्राट् श्रीपालकुंवर ने बड़े हर्ष और श्रद्धा-भक्ति से महोत्सव के अंत में श्री जिनेन्द्रदेव का सविधि अभिषेक और अष्ट-प्रकारी पूजन कर भगवान से हाथ जोड़ कर अपने अविनय, अपराध आशातना आदि की हृदय से क्षमा-प्रार्थना की। उस समय दूर दूर के कई प्रतिष्ठित नागरिकों के बधाई-पत्रों का ढेर लग गया। चंपानगर के समस्त जैन श्रीसंघ ने उनके भाल पर संघ-पति पद का केशरिया तिलक कर उन्हें इन्द्रमाला पहनाई। तालियाँ और धन्यवाद की ध्वनि से आकाश गूंज उठा। भाट-चारण लोग श्रीपाल-कुंवर के व्रताराधन की अनुमोदना करते हुए सुरीले गीत आलाप रहे थे। सच है, संघ में संघपति पद का एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण आदरणीय स्थान है।

व्रताराधन और उसके अंत के उजमणे के उत्सव-महोत्सव की धामधूम के साथ ही अपने मानसिक विचारों की पवित्रता, दृढ़ श्रद्धा, भक्ति और आध्यात्मिक विकास का होना भी बहुत आवश्यक है। अपने हृदय के बुरे विचारों को बदल देना ही वास्तविक व्रताराधना है। अभव्य मानव भी तप करते हैं किन्तु उनकी दृष्टि अपने आत्म-स्वभाव की ओर न होने से वे मान-बड़ाई के मोह में अपना तन सूखा कर राह भटक जाते हैं। जो स्त्री-पुरुष सरल स्वभावी मंद-कषाय विनम्र श्रद्धालु हैं वे अपने सतत मनन-चिंतन से या किसी सद्गुरु के उपदेश से आत्म-स्वभाव और उसकी अनंत शक्ति को समझ इस संसार सागर से ऊपर उठ कर मोक्ष-सुख प्राप्त करते हैं। अभव्य को सिवाय भव-भ्रमण के

कुछ भी पल्ले नहीं पड़ता। सच है, जलाशय से दूर पथरीली भूमि पर लाख घन-हथोड़े चलाओ, श्रम करो, फिर भी वहाँ पत्थर ही रहेगा।

उजमणा का यह अर्थ नहीं कि मानव चार दिन ढोल-नगाड़े गड़-गड़ाकर, उत्सव-महोत्सवकी तड़क-भड़क, चकाचौंध में खो जाय या जनता का मुंह मीठा करा कर ही छुट्टी पा ले। उजमणा का अर्थ है मानव जीवन में एक अनूठा परिवर्तन, चेतन के अन्तरालों में उजाला, मानसिक संघर्षों पर विजय, आशा तृष्णा की इतिश्री, मोहराशि का अन्त, सहजानंद का सूर्योदय, हृदय में एक अनुपम आनन्द की गुद-गुदी। अनादि काल की अंधश्रद्धा विश्वास और अपने हृदय की दुर्बलता से विमुख हो वीतराग दशा पाने का सही प्रयत्न ही वास्तविक श्रीसिद्धचक्र-व्रताराधन का फल और उजमणे की सार्थकता है।

श्रीसिद्धचक्र-व्रताराधक स्त्री-पुरुष साढ़े चार वर्ष की अवधि में ८१ आयंबिल की जो कठोर तपश्चर्या करते हैं उसका यही एक हेतु है कि—"करत करत अभ्यास के जड़ मति होत सुजान"—अनादि काल से भौतिक जड़ पदार्थों के मोह में उलझा हुआ यह चेतन, पर से उपर उठकर स्व में घुल-मिल जाए अर्थात् पौद्‌गलिक सुख की मूर्छा से मुक्त हो अपने सहजानंद की ओर मुड़ जाय। इसी प्रकार सम्राट् श्रीपालकुंवर ने व्रताराधक स्त्री-पुरुष व अन्य मनुष्यों को ज्ञान-दान, धर्मध्यान के उपकरण और उनके भोजनादि की उचित व्यवस्था, संघ-पूजा कर व्रत के अंत में द्रव्य और भाव उजमणे का लाभ लिया। श्रीमान् यशोविजयजी उपाध्याय कहते हैं कि यह श्रीपाल-रास के चौथे खण्ड की दसवीं ढाल संपूर्ण हुई।

श्री जिनेन्द्र भगवान का "विनय" अर्थात् उनकी पवित्र आज्ञा का पालन और उनकी तन, मन, धन से भक्ति करने वाले पाठक और श्रोतागण को सुयश और आत्म-कल्याण-मोक्ष की प्राप्ति होती है। सविधि आराधना कर उजमणा करे वे स्त्री-पुरुष धन्य हैं।

## दोहा

नमस्कार कहे एहवा, हवे गंभीर उदार।
योगीसर पण जे सुणी, चमके हृदय मझार ॥ १ ॥

सम्राट् श्रीपालकुंवर जब भगवान श्रीसिद्धचक्र की भक्ति-पूजन व उनके गुण-गान करने बैठते थे उस समय भावावेश में उनके मुंह से कई बार ऐसे हृदय-स्पर्शी अति

महत्त्वपूर्ण शब्द निकल पड़ते थे कि उन शब्दों के गूढ़ार्थ का मनन-चिंतन कर, अच्छे अच्छे विद्वान मानव और कई योगी आनंदविभोर हो उठते। उनके सिर हिलने लगते।

(छप्पय छंद-श्रीसिद्धचक्र स्तवन)

जो धुरि सिरि अरिहंत मूल दृढ पीठ पइट्ठिओ।
सिद्ध सूरि उवज्झाय साहु चिहुं पास गरिट्ठिओ ॥१॥

दंसण नाण चरित्त तवहि पड़िसाहा सुंदरु।
तत्तक्खर सरवग्ग लद्धि गुरु पयदल दुंबरु ॥२॥

दिसिवाल जक्ख जक्खिणि पमुह सुरकुसुमेहिं अलंकिओ।
सो सिद्धचक्क गुरु कप्पतरु कम्ह मनवंछित फल दिओ ॥३॥

सम्राट् श्रीपालकुंवर कहते हैं कि श्रीसिद्धचक्र-यंत्र मानों एक कल्पवृक्ष है। जैसे कि हम वृक्ष में मूल, बड़ी टहनीयां, पत्ते, फल और फूल देखते हैं, उसी प्रकार इस सिद्धचक्र यंत्र में मूल श्री अरिहंत भगवान है तो सिद्ध भगवान, आचार्यदेव, उपाध्याय जी और सर्व साधु-साध्वी बड़ी शाखाएं है। दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप छोटी टहनियां हैं। ॐ ह्रीं आदि आदि बीजाक्षर और श्रीअरिहंतादि नवपदों में जो स्वर व्यंजन और अट्ठावीस लब्धियां हैं वे वृक्ष की पत्तियां हैं। तीर्थंकरों के भक्त अन्य यक्ष-यक्षाणियाँ, नवग्रह, दस, दिग्पाल वृक्ष के फूल हैं। सिद्धचक्र यंत्र की सुंदर आराधना का अंतिम फल है परम पद-मोक्ष। यह कल्पवृक्ष हमारी मनोकामनाओं को सफल करे।

## दोहा

नमस्कार कही उच्चरी शक्रस्तव श्रीपाल।
नवपद स्तवन कहे मुदा, स्वर पद वर्ण विशाल ॥१॥

मंगल तूर बजावते, नाचंते वर पात्र।
गायंते बहु विधि धवल, विरुद्ध पढ़ंते छात्र ॥२॥

संघ पूजा साहम्मि-वच्छल, करी तेह नर नाथ।
शासन जैन प्रभावतो, मेले शिवपुर साथ ॥३॥
पट्ट-देवी परिवार अन्य, साथे अविहड राग।
आराधे सिद्धचक्र ने, पामे भवजल ताग ॥४॥
त्रिभुवन पालादिक तनय, मयणादिक संयोग।
नव निरुपम गुण निधि हुआ, भोगवतां सुख भोग ॥५॥
गय रह सहस ते नव हुआ, नव लख जच्च तुरंग।
पत्ति हुआ नव कोड़ि तस, राज नीति नव रंग ॥६॥
राजनिकंटक पालना, नव शत वर्ष विलीन।
थापी तिहुअण पाल ने, नृप हुओ नवपद लीन ॥७॥

**वानप्रस्थ बन गए:**—सम्राट् श्रीपालकुंवर अपने सुशिक्षित आज्ञाकारी त्रिभुवन आदि नव-पुत्र, सुशीला-नव महारानियाँ, नौ लाख हवा से बातें करने वाले हृष्टपुष्ट अच्छे बढ़िया घोड़े, नौ हजार कलापूर्ण भांति भांति के रथ, नौ हजार मतवाले हाथी, नव क्रोड़ शूरवीर-धीर योद्धाओं का समूह और फले फूले विशाल राजपाट को देखकर वे आनंद-विभोर हो गए। उनके रोम रोम में जय सिद्धचक्र! जय सिद्धचक्र!! यही एक बात समा रही थी। उन्हें जब अपने नए-पुराने संस्मरण याद आते तो उनका हृदय गद्गद हो जाता, उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगती, उनके समस्त शरीर की रोमराजि विकसित हो उठती। वे अपने परिवार सगे सनेही मित्रों से कहते—बेटा! भाइयो!! बहती गंगा में हाथ धो लो, मानव चोला पाया है तो श्रीसिद्धचक्र व्रत की सविधि आराधना—जप-तप कर, अपना जन्म सफल कर लो। भवसागर से तिरने का, जनम जनम की अंतराय तोड़ने का यह एक अचूक रामबाण सफल उपाय है।

(सिद्ध अरिहंत में मन रमाते चलें)

सिद्ध अर्हन्त में मन रमाते चलें, सर्व कर्मों के बंधन हटाते चलें।
इन्द्रियों के घोड़े विषय में अड़ें जो अड़ें भी तो संयम के कोड़े पड़ें।
तन के रथ को सु-पथ पर चलाते चलें, सिद्ध अर्हन्त में मन रमाते चलें ॥१॥

सन्त निर्ग्रन्थ का ध्यान धरते चलें, पाप तजके सब काम करते चलें।
सद्गुणों का परम धन, कमाते चलें, सिद्ध अर्हन्त में मन रमाते चलें ॥२॥
दुःख में तड़पें नहीं, सुख में फूलें नहीं, प्राण जाए मगर धर्म भूलें नहीं।
प्रेम श्रद्धा के बल को बढ़ाते चलें, सिद्ध अर्हन्त में मन रमाते चलें ॥३॥

मैं एक दिन इसी राजधानी चंपानगरी से अपनी माता कमलप्रभा के साथ रीते हाथ, बिना वस्त्र के नंगा, असहाय बन प्राण लेकर भागा था। बस इसी श्रीसिद्धचक्रव्रत की शरण ने ही मेरे जीवनमें एक अनूठा रंग ला, अनेक संस्मरणों का इतिहास बना दिया। इस प्रत्यक्ष चमत्कारिक मंत्र और व्रत की आराधना से मेरे अशुभ कर्मों की अंतराय ऐसी टूटी की मैं निहाल हो गया। आज मुझे अपने चारों दिशा में फैले विशाल राज-पाट प्रजाजन और परिवार से पूर्ण संतोष है। अधिक क्या कहूँ, मुझे चंपानगर के लंबे-चौड़े शासन पर राजकरते लगभग नौ सौ वर्ष होने आये। मैंने कई बार धूप-छांह, सर्दी गर्मी देखी किन्तु इस व्रत के प्रभाव से आज तक मेरा सिर तक न दुःखा। सच है—"पहला, सुख निरोगी काया।" अब तो मैं "शर्त विहाय" निवृत्त होना चाहता हूँ।

एक दिन सचमुच चंपानगर के सम्राट् श्रीपाल कुंवर शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न में अपने बड़े सुयोग्य पुत्र त्रिभुवनपाल को राज्याभिषेक कर वे वानप्रस्थ बन गए। अर्थात् राजा और रानियों ने यह दृढ प्रतिज्ञा कर ली कि अब हम आजन्म विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए श्री सिद्धचक्र का ध्यान और सिवाय परमार्थ के किसी भी आरम्भ-समारंभ, राजकीय आदेश, निर्देश में हस्तक्षेप न करेंगे। फिर सम्राट् अपनी सभी रानियों और परिवार के साथ घंटों बैठ कर सत्संग, स्वाध्याय ध्यानादि का अनुपम आनंद लेते। वे प्रातः-काल मंदिर में सविधि भगवान श्रीसिद्ध की पूजन, चैत्य-वंदन स्तवनादि करते समय बड़ी शांति से प्रत्येक सूत्र का शुद्ध उच्चारण कर उसके अर्थ-भावार्थ का चिंतन-मनन, करते करते आनंदविभोर हो जाते। रानियों के कलापूर्ण संगीत भक्ति—नृत्य में एक अनूठा आकर्षण था। कई स्त्री-पुरुष बालक-बालिकाएं बड़ी श्रद्धाभक्ति और प्रेम से उनके साथ श्रीसिद्धचक्र की आराधना कर फूले न समाते।

मयणासुन्दरी आदि सभी रानियाँ और सम्राट् श्रीपाल के हृदय से "अहं-मम" का विष तो शरद ऋतु के मेघ के समान छूमंतर हो गया था, अतः उन्हें स्वाध्याय-ध्यान प्रतिक्रमण, पौषधि करने वाले तपस्वियों की पगचंपी आदि सेवा करते जरा भी संकोच न होता। वे स्वालंबी बन बड़ी जयणा से तपस्वियों को पारणा-भोजन कराते, बालक-बालिकाओं

को धार्मिक शिक्षण देते, ऐसे अनेक आध्यात्मिक विकास के कार्यों में हाथ बँटा कर वे बड़े आनंद से जीवन-मुक्त दशा का अनुभव कर परम पद मोक्ष की साधना करने लगे। जीवन इसी का नाम है। धन्य है सम्राट् श्रीपाल को।

## चौथा खण्ड – ग्यारहवीं ढाल

( राग–श्री सिमंधर साहेब आगे )

त्रिजेभवे वर स्थानक तप करी, जेणे, बांध्युँ जिन नाम रे।
चौसठ्ठि इन्द्रे पूजित जे जिन, किजे तास प्रणाम रे।
भविका सिद्धचक्र पद वंदो जिम चिरकाले नंदो रे॥ भ. सि. ॥१॥
जेहने होय कल्याणक दिवसे, नरके पण अजुवालु।
सकल अधिक गुण, अतिशयधारी, ते जिन नमि अघ टालुं रे॥ भ. सि. ॥२॥
जे तिहु नाण समग्ग उप्पन्ना, भोग कम्म क्षीण जाणी।
लेई दीक्षा शिक्षा दिये जनने, ते नमिये जिन नाणी रे॥ भ. सि. ॥३॥
महागोप, महा माहण कहिये, निर्यामक सत्थ वाह।
उपमा एहवी जेहने छाजे, ते जिन नमिये उच्छाह रे॥ भ. सि. ॥४॥

**एक ही अनुपम साधनः**—सम्राट्-श्रीपालकुंवर और उनकी महारानी मयणासुंदरी आदि रानियों का जीवन अब तो कुछ और ही बन गया था। वे बड़े सुखी स्थिरचित्त, आनंदी थे। उनका एक ही लक्ष्य था अपनी चित्त विशुद्धि और सदा सद्गुणों की पूर्णता के लिये सावधान रहना। वे कहते थे – रे मन! तू भगवान श्रीसिद्धचक्र को बार बार प्रणाम कर। यह अविचल, विमल, मंगल स्वरूप, आनंद शांतिमय पद पाने का एक ही अनुपम साधन है। श्रीसिद्धचक्र यंत्र में नव-पद हैं, उसमें पहला पद गत भव में श्री बीसस्थानक तप आराधक चौसठ इन्द्रों से परि-पूजित+महागोप, *महामाहण, सार्थवाह, जन्म से ही मति, श्रुत, अवधि ये

---

+ **महागोपः**—भव-भ्रमण के दुःखों से मुक्त होने का सन्मार्ग-दर्शक परमोपकारी।

* **महामाहणः**—पृथ्वी काय, अप्काय तेउ काय, वाउ काय, वनस्पतिकाय और त्रस काय के संरक्षक, आत्मज्ञानी।

**निर्यामकः**—अपने सदुपदेशों से मानवों को तिरानेमें नाव के समान।

से ही मति ्रुत, अवधि ये तीन ज्ञान अपने साथ लाने वाले *चौंतीस अतिशय और वाणी के +पैंतीस गुण विभूषित, अपने राजपाट विपुल वैभवादि को ठुकरा, परम-पावन वीतराग-दीक्षा ग्रहण कर अपने कठोर त्याग तप से मनःपर्यव, और केवलज्ञान प्राप्त कर जनता-जनार्दन को परम-पद --मोक्ष की राह दर्शक, भगवान श्रीअरिहंत हैं, इनके जन्म के समय नरक में प्रकाश और वहाँ के जीवात्माओं भी क्षणिक शांति मिलती

---

* **चौंतीस अतिशय:**— जिनेन्द्र देव के जन्म से चार अतिशय, घाती कर्म–(ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय) के क्षय होने से ११ अतिशय तथा देवकृत १९ अतिशय होते हैं। जन्म के (१) भगवान का शरीर अति सुन्दर गौर वर्ण निरोग, होता है। (२) उनके शरीर का रुधिर और मांस गौ दूध के समान सफेद और विकार-रहित होता है। (३) उनका आहार–भोजन और निहार–टट्टी पेशाब चर्मचक्षु से अदृश्य होते हैं। (४) उनके श्वास में कमल के फूल सी बढ़िया सुगंध होती है।

**घातीकर्म के क्षय के बाद:**—(१)भगवान की व्याख्यान सभा एक योजन (चार कोस) लम्बी चौड़ी भूमि में तीन लोक के मनुष्य, देव और पशु-पंखी बड़े आनंद से समा सकते हैं (२) भगवान सदा अर्धमागधी भाषा में ही धर्मोपदेश देते हैं किन्तु देव, मनुष्य और पशु-पंखी आदि प्रत्येक जीव को उस समय यही ज्ञात होता है कि भगवान तो हमारी ही भाषा में उपदेश दे रहे हैं, और सभी जीव उसको बड़ी सरलता से समझ लेते हैं। (३) भगवान जहाँ भी विचरते हैं, बिराजते है वहाँ चारों ओर के रोग-शोकादि नष्ट हो जाते हैं। (४) भगवान के समवसरण में प्राणी मात्र अपने जन्मजात वैरभाव को भूल वे आपस में एक-दूसरे से प्रेम करने लग जाते हैं, जैसे साँप-चूहा, बिल्ली, कुत्ता, सिंह, हरिण आदि। (५) भगवान जिनेन्द्र जिस दिशा और देश में प्रवास करते हैं वहाँ कभी दुष्काल नहीं पड़ता है। (६) आपस में युद्ध नहीं छिड़ते हैं। (७) हैजा, प्लेग आदि संक्रामक रोग नहीं फैलते हैं। (८) न अतिवृष्टि होती है। (९) अनावृष्टि से नया पाक नष्ट नहीं होता। (१०) धान्य के पाक में कीड़े नहीं लगते। (११) जिनेन्द्र भगवान का ऐसा सुन्दर दिव्य तेज है कि दर्शक-गण उनके सामने आँख उठाकर देख नहीं सकते हैं, अतः उस तेज को सम बनाने के लिये उनके सिर के पीछे सदा एक भा-मण्डल रहता है।

**देवकृत अतिशय:**—(१) मणिमय रत्न सिंहासन (२) भगवान के मस्तक पर तीन छत्र (३) इन्द्रध्वज (४) भगवान पर चंवर सदा डोलते रहते हैं (५) भगवान के आगे आकाश में धर्मचक्र चलता है (६) भगवान के शरीर से बारह गुणा बड़ा अशोक वृक्ष, जिनेन्द्र के मस्तक पर छाया करते हुए सदा साथ चलता है (७) भगवान जिनेन्द्र सदा पूर्व दिशा की ओर ही मुख रख कर देशना देते हैं किन्तु चारों दिशाओं में बैठी जनता को ऐसा ज्ञात होता है कि भगवान तो हमारी ओर मुंह करके चारों दिशा में बिराजे हैं। (८) भगवान के समवसरण के आगे चांदी, सोना और रत्न-मय तीन कोट होते हैं। (९) भगवान चलते हैं तब नव स्वर्ण कमल आगे-आगे बिछते जाते हैं, भगवान उन कमलों पर पैर रखकर चलते हैं। (११) भगवान के दीक्षित होने के बाद उनके नख और केश फिर आ-जीवन नहीं बढ़ते। (१२) भगवान की सेवा में कम से कम लगभग एक करोड़ देवता रहते हैं। (१३) देव सुगन्धित जल का छिड़काव करते हैं। (१४) जल और स्थल में उत्पन्न फूलों की घूटने तक वर्षा होती है। (१६) उत्तम पंखी भगवान को प्रदक्षिणा देते हैं। (१७) सदा मंद-मंद अनुकूल हवा चलती है। (१८) भगवान जिस मार्ग से

है ऐसे भगवान अरिहंत-देव को हमारा त्रिकाल कोटि कोटि वंदन हो। मेरे सन्मित्रो! व श्रीसिद्धचक्र व्रताराधक स्त्री-पुरुषो! आप भी ऐसे परम वीतराग श्रीअरिहंत भगवान को बार-बार वंदन कर अपना मानवभव सफल करें।

**आठ प्रातिहारज जस छाजे, पांत्रिस गुण युत वाणी।**
**जे प्रति बोध करे जग जनने, ते जिन नमिये प्राणी रे ॥भ. सि.॥५॥**

---

विचरते हैं, उस पथ के वृक्ष उनको झुक-झुक कर प्रणाम करते हैं। (१९) देव आकाश में दुंदुभि बजाते हैं। ऐसे चौतीस अतिशय-युक्त भगवान श्री अरिहंत देव को हमारा कोटि-कोटि त्रिकाल वंदन हो।

+**वाणी के पैंतीस गुण:**—(१) भगवान की लोकप्रिय भाषा अर्धमागधी है। (२) भगवान की वाणी एक योजन-चार कोस के घेरे में बैठे सभी प्राणी को समान रूप से सुनाई देती है। (३) भगवान की वाणी बड़ी सरल और हृदयस्पर्शी शब्दों से ओतप्रोत होती है। (४) भगवान की वाणी मेघ के सदृश गंभीर और सुखद होती है। (५) भगवान की वाणी समयानुकूल और बड़ी संतोषप्रद होती है। (६) प्रत्येक श्रोता यही समझता है कि भगवान मुझ से ही बात कर रहे हैं। (७) भगवान की वाणी धाराप्रवाही और महत्वपूर्ण होती है। (९) वाणी निर्विरोध स्पष्ट होती है। (१०) वाणी अनर्गल और मिथ्या शब्दों से रहित होती है (११) वाणी निःसंदेह, (१२) निर्दोष होती है। (१३) वाणी बारीक से बारीक विषय की और सरल होती है। (१४) (१५) वाणी रुचिकर (१६) और षट् द्रव्य नवतत्त्व आदि द्रव्यानुयोग से सम्बन्धित होती है। (१७) वाणी विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध आदि साहित्यिक नियमानुसार होती है। (१८) वाणी काव्य समान बड़ी प्रिय होती है। (१९) भगवान नय-निक्षेपादि तत्त्वों का वर्णन ऐसे आकर्षक ढंग से करते हैं (२०) कि श्रोतागण उस अनूठे विषय की चर्चा में षट् रस भोजन के सामने आंख उठा कर भी नहीं देखते हैं। (२१) भगवान अपने उपदेश में कदापि किसी का कटाक्ष नहीं करते हैं। (२२) उनके उपदेश में प्रत्येक बात उपयोगी, धार्मिक, निष्कपट (२३) और दीपक के समान स्पष्ट अज्ञानांधकार नाशक ही होती है। (२४) उनकी वाणी सदा आत्म-प्रशंसा और परनिंदा से दूर रहती है। (२५) भगवान की वाणी में कर्ता, कर्म, क्रिया, लिंग, कारक आदि व्याकरण की अशुद्धि ढूंढने पर भी नहीं मिलती है (२६) अतः श्रोतागण हृदय से स्वीकार कर लेते हैं कि प्रभो! आप निश्चित ही सर्वगुणसंपन्न हैं (२७) वे वाणी सुन-सुन कर आश्चर्यचकित हो आनंद विभोर हो उठते हैं। (२८) भगवान न अति धीरे और (२९) न अति शीघ्र ही बोलते हैं (३०) कि जिससे श्रोतागण के हृदय में कोई भ्रम पैदा न हो (३१) भगवान जिनेन्द्र प्रसन्न मन हो ऐसी सुन्दर मधुर भाषा बोलते हैं कि उसे मनुष्य, देव, पशु-पंखी सभी बड़े सरल ढंग और आनंद से समझ लेते हैं। (३२) अतः उनके शिष्यवर्ग की बुद्धि का विकास होता है (३३) भगवान प्रत्येक विषय को भांति-भांति से समझाते हैं (३४) जिससे उनकी वाणी में पुनरुक्तिदोष भी नहीं लगे। (३५) और श्रोतागण को समझने में सिर पचाने का भी कष्ट न करना पड़े। ऐसे परम तारक पैंतिस गुण अलंकृत श्री अरिहंत भगवान को हमारा कोटि-कोटि त्रिकाल वंदन हो।

समय पए-संतर अण फरसी, चरम तिभाग विशेष।
अवगाहन लही जे शिव पहोता, सिद्ध नमो ते अशेष रे॥ भ. सि. ॥६॥
पूर्व प्रयोग ने गति परिणामे, बन्ध छेद असंग।
समय एक उर्ध्व गति जेहनी, ते सिद्ध प्रणमो रंग रे॥ भ. सि. ॥७॥
निर्मल सिद्ध शिलाने उपरे, जोयण एक लोकंत।
सादि अनन्त तिहां स्थिति जेहनी, ते सिद्ध प्रणमो संतरे॥ भ. सि. ॥८॥
जाणे पण न शके कही पुरगण, प्राकृत तिम गुण जास।
उपमा विण नाणी भव मांहे, ते सिद्ध दियो उल्लास रे। भ. सि. ॥९॥
ज्योति शुं ज्योति मिली जस अनुपम, विरमी सकल उपाधि।
आतमराम रमापति समरो, ते सिद्ध सहज समाधि रे॥ भ. सि. ॥१०॥

**सिद्ध-पद**:—परम तारक श्री अरिहंत भगवान सयोगी-केवली गुणस्थान से आगे बढ़कर जब अयोगी गुणस्थान प्रवेश में करते हैं, उस समय " अ इ उ ऋ लृ " इन पांच स्वरों को मध्यम स्वर से बोलने में जितना समय लगता है, बस उतने ही समय में वे अपने मानव देह का तीसरा भाग कम ($\frac{२}{३}$) की अवगाहना कर अशरीरी-सिद्ध अर्थात् वे पूर्ण मुक्त बन जाते हैं।

प्रश्न—अरिहंत भगवान जब संपूर्ण कर्मों को क्षय कर अशरीरी बन जाते हैं तो फिर वे ऊर्ध्वलोक में सिद्ध शिला तक कैसे पहुंचते हैं? उत्तर—पूर्व प्रयोग, गति-परिमाण, बन्धन छेद, और असंग क्रिया से श्रीअरिहंत परमात्मा सदा शाश्वत-सुखद स्थान उर्ध्व लोक में सिद्धशिला पर जाकर एक अनुपम दिव्य ज्योति में समा जाते हैं। उदाहरणः—१ पूर्व प्रयोग :—जैसे कि धनुष्य से बाण छूटते ही वह अपने आप ही बड़े वेग से आगे बढ़ने लगता हैः- वैसे ही मानव की विशुद्धि आत्मा भी कर्म-मल से छुटकारा पाते ही वह सिद्ध शिला की ओर प्रस्थान कर देता है। २ गति परिमाणः—आग से त्याग धुंआ उठते ही वह प्रायः आकाश की ओर चल पड़ता है, वैसे ही मानव की विशुद्धात्मा ऊर्ध्व लोक कीं ओर ही अपनी राह पकड लेता है। ३ बन्धन छेदः—जैसे कि एरण्ड के कन सूर्य के उग्रताप से सहज ही फट पड़ते हैं, उस समय उनके बीज आकाश मार्ग की ओर उछलते हैं। वैसे ही मानव की कर्म-बंधनों से मुक्त विशुद्ध अशरीरी आत्मा का सिद्धशिला की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक ही है। ४ असंग क्रियाः—जैसे कि कुम्हार अपने डंडे से चक्र को एक बार जोरों से हिलाता है

फिर तो वह चक्र अपने आप घूमता रहता है, उसी प्रकार मानवकी आत्मा एक बार सांसारिक आधि, व्याधि और उपाधियों से मुक्त होते ही अपने आप सिद्ध शिला की ओर चल पड़ताहै।

रे मानव ! संसार के संपूर्ण दुःख आधि, व्याधि, उपाधियों से मुक्त आदि-अनंत अनुपम शश्वत सुख के स्वामी, आध्यात्मिक विभूति संपन्न आत्म-स्वभाव में सदा लीन, ज्योति स्वरूप श्रीसिद्ध भगवान को तू बार बार प्रणाम कर। प्रश्न—सिद्ध लोक के सुख की किसी सुख के साथ तुलना हो सकती है? उत्तर – नहीं। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल में ऐसा कोई भौतिक सुख या पदार्थ नहीं है जिसकी हम सिद्ध लोक के आध्यात्मिक अनुपम सुख के साथ तुलना कर सकें।

जैसे कि एक किसान प्रसंगवश कलकत्ता जैसे नगर में जा पहुंचा। वहां के लंबे-चौड़े बाजार, सड़कें और मोटर तांगें ट्रामों की तड़क-भड़क देख वह मंत्र-मुग्ध हो गया। क्योंकि उसके जीवन में नगर-दर्शन का यह सर्वप्रथम अवसर था। जब वह वापस अपने खेत की ओर लौटा तो उसके सगे-स्नेही-साथियों ने उससे सारी बातें पूछीं—कहो वहाँ क्या देखा? कैसा आनंद आया? किसान बेचारा मुस्करा कर रह गया, वह कुछ भी उत्तर न दे सका। इसका अर्थ यह नहीं कि उसने नगर नहीं देखा। वास्तव में बात यह है कि वह जानता अवश्य था किन्तु वह अपने मुंह से कुछ कह नहीं सका। क्योंकि उसके सामने जंगल में खेत के पास कोई ऐसा पदार्थ नहीं कि जिसके साथ वह नगर की तुलना कर उसका कुछ उत्तर दे। इसी प्रकार सिद्धलोक का अनुपम सुख गूंगे का गुड़ है। सर्वज्ञदेव केवली भगवान सिद्धलोक के संपूर्ण सुख की अपने ज्ञान में हस्तामलक सदृश देखते हैं, जानते हैं किन्तु इस क्षणभंगुर संसार में ऐसा कोई भी सुख नहीं है कि जिसके साथ सिद्धलोक के सुख की तुलना कर ज्ञानी भगवान हमें उस सुख को समझा सकें। सच है, वेद-वेदान्त भी तो यही कहते हैं—"नेति! नेति!" श्रीसिद्धचक्र यंत्र में दूसरे पद पर अलंकृत परम सुखी, आत्मानंदी श्री सिद्ध भगवान को हमारा कोटि-कोटि त्रिकाल वंदन हो।

पंच आचार जे सुधा पाले, मारग भाखे साचो।
ते आचारज नमिये तेहशुं, प्रेम करीने जाचोरे॥ भ. सि. ॥११॥
वर छत्तीस गुणे करी सोहे, युग प्रधान जन मोहे।
जग बोहे न रहे खिण कोहे, सूरि नमुं ते जोह रे॥ भ. सि. ॥१२॥
नित्य अप्रमत्त धर्म उवएसे, नहीं विकथा न कषाय।
जेहने ते आचारिज नमिये, अकलुष अमल अमाय रे॥ भ. सि. ॥१३॥

जे दिये सारण वारण चोयण, पडि़ चोयण वली जनने।
पटधारी गच्छ थंभ आचारज, ते मान्या मुनि मनने रे ॥भ. सि. ॥१४॥
अत्थमिये जिन सूरज केवल, वंदिजे जगदीवो।
भुवन पदार्थ प्रगटन पटु ते, आचारय चिरंजीवो रे ॥भ. सि. ॥१५॥

**शासन दीपकः**—रे मानव तू ! श्रीसिद्धचक्र यंत्र में तीसरे पद पर विराजमान अति लोकप्रिय प्रखर वक्ता ज्ञान-दर्शन, चारित्र, तप, वीर्याचार के आराधक और अन्य साधु-साध्वी मंडल को पंच आचार, पंच-महाव्रतों की विशुद्धाराधना करने का प्रोत्साहन-दायक। (१) सारणा—श्रमण संघ और श्रावक-श्राविकाएं सम्यग्दर्शन की कहाँ किस प्रकार आराधना करती हैं। इसकी सार संभाल रखने वाले। (२) वारणा—जनता में फैले अशुद्ध शिथिल आचार विचार और उपचारों को दूर करने में सतर्क। (३) चोयणा—श्रीसंघ को आध्यात्मिक विकास, विद्याध्ययन, धर्मध्यान, पवित्र आचार-विचारों की ओर आकृष्ट कर उन्हें प्रगति का सन्मार्ग दर्शक। (४) पडि चोयणा-बार बार भूल करने वाले व्यक्ति को उचित दण्ड प्रायश्चित्त दे उन्हें सप्रेम सन्मार्ग की ओर आगे बढ़ाने में कुशल, सूर्य-चन्द्र के समान लोका-लोक प्रकाशक, तीर्थंकर-जिनेन्द्रदेव व सामान्य केवली के बाद अज्ञानांधकार नाशक-शासनदीपक आचार्य महाराज को बार बार प्रणाम कर सहृदय शांत, दांत, क्रोधादि विकथा बुरी बातों से अलग निस्पृह छत्तीस गुणालंकृत श्रमण-संघ के परम उपकारी गच्छ नायक, स्व-पर दर्शन शास्त्र में निपुण आचार्यदेव दीर्घायु हो। स्वर्ग, मृत्यु, पाताल का परिचय देने में श्रुत-केवली श्री आचार्य महाराज को हमारा कोटि-कोटि त्रिकाल वंदन हो।

द्वादश अंग सज्झाय करे, पारग धारक तास।
सूत्र अरथ विस्तार रसिक ते, नमो उवज्झाय उल्लास रे ॥भ. सि. ॥१६॥
अर्थ सूत्र ने दान विभागे, आचारय उवज्झाय।
भव त्रण्ये लहे जे शिव संपद, नमिये ते सुपसाय रे ॥भ. सि. ॥१७॥
मूरख शिष्य निपाइजे प्रभु, पहाण ने पल्लव आणे।
ते उवज्झाय सकल जन पूजित सूत्र अरथ सवि जाणे रे ॥भ. सि. ॥१८॥
राजकुवर सरिखा गण चिंतक, आचारिज पद जोग।
जे उवज्झाय सदा ते नमतां, नावे भव भय शोक रे ॥ भ. सि. ॥१९॥

बावना चंदन रस सम वयणें, सहित ताप सवि टाले ।
ते उवज्झाय नमिजे जे वली, जिन शासन अजुआले रे ॥ भ. सि. ॥२०॥

**बावना चन्दनः**—रे मानव ! तू श्रीसिद्धचक्रयंत्र के चौथे पद में विराजमान राजकुमार के समान,* बारह उपांग के पठन-पाठन में संलग्न, धर्मशास्त्रों के मर्म प्रकाशक, आचार्यश्री की अनुमति से साधु-साध्वियों को सदा वाचना देने में उत्सुक, पत्थर-कठोर हृदय शिष्य के हृदय में ज्ञानांकुर प्रकट कर चोटी का ठोस विद्वान बनाने में कुशल, एक विशेष प्रकार के महासुगंधित बावना चंदन समान, स्वर-व्यंजनों के बावन अक्षरों से बनी अपनी प्रभावशाली वक्तृत्व-कला से जनता को सम्यग्दर्शन की ओर आकर्षित कर उनके हृदय को शांत करने वाले, समय समय पर आचार्य श्री को श्रीसंघ की प्रगति जनक अभिप्राय देने में प्रधानमंत्री समान, शासन प्रभावक, भवरोग नाशक श्री उपाध्यायजी महाराज को प्रणाम कर ! सर्व पापनाशक आगामी तीसरे भव में मोक्षगामी श्री उपाध्यायजी महाराज को हमारा कोटि कोटि त्रिकालवंदन हो ।

जिम तरु फूले भमरो बेसे, पीड़ा तस न उपावे ।
लेइ रस आतम संतोषे, तिम मुनि गोचरी जावे रे ॥ भ. सि. ॥२१॥
पंच-इन्द्रि ने कषाय निरूंधे, षट् कायक प्रति पाल ।
संयम सतरे प्रकार आराधे, वंदो तेह दयाल रे ॥ भ. सि. ॥२२॥
अढार सहस शीलांगना धोरी, अचल आचार चरित्र ।
मुनि महंत जयणा युत वांदी, कीजे जन्म पवित्र रे ॥ भ. सि. ॥२३॥
नवविध ब्रह्म गुप्ति जे पाले बारस विह तप शूरा ।
एहवा मुनि नमिये जो प्रकटे पूरव पुण्य अंकूरा रे ॥ भ. सि. ॥२४॥
सोना तणी परे परीक्षा दीसे दिन दिन चढते वाने ।
संयम खप करता मुनि नमिये, देश काल अनुमान रे ॥ भ. सि. ॥२५॥

---

* बारह उपांगः—१. अचारांगसूत्र, २. सूत्र कृतांग सूत्र, ३. स्थानांग सूत्र, ४. समवायांग, ५. विवाह पन्नत्ति-भगवती सूत्र, ६. ज्ञाताधर्म कथांग ७. उपासक दशांग, ९ अनुत्तरोपपातिक दशांग, १०. प्रश्न व्याकरणांगसूत्र, ११ विपाक सूत्रांग, १२. दृष्टिवादांग सूत्र ।

**भाव के अनुसारः**—रे मानव ! तू श्रीसिद्धचक्र यंत्र के पांचवे पद में विराजमान परम कृपालु + सतरह प्रकार का संयम आराधक, भ्रमर के समान बिना किसी को कष्ट दिये निर्दोष प्रत्येक घर से अति अल्प आहार ले सदा अपने स्वाध्याय, ध्यान-जप-तपमें संलग्न छः काय जीवों संरक्षण की भावना वाले÷ अठारह हजार भेद के शीयल रथ को खींचने में हृष्टपुष्ट बैल के समान मनोबली *नव-विधि ब्रह्मचर्य व्रत धारक संत-मुनिराज को वंदना कर अपना जन्म सफल कर। महान् पुण्योदय से ही तो अनेक जन्मों के बाद संत मुनिराज के दर्शन होते हैं। मुनि जीवन भी एक समस्या है। इसमें भूख-प्यास, शीत-ताप, झूठे कलंक, मिथ्या-भ्रम, लोकनिंदा, अपमानादि ऐसे अनेक विचित्र प्रसंगादि खड़े हो जाते हैं कि उस समय मुनियों की कठोर परीक्षा हुए बिना नहीं रहती। किन्तु ऐसे समय में आत्मार्थी त्यागी-तपस्वी, शांत-दांत, साधु-साध्वी अपने पवित्र आचार-विचार सहनशीलता से स्वर्ण-से चमक उठते हैं। फिर आध्यात्मिक विचार से उनके जीवन की सुनहली कांति दिन दूनी रात रात चौगुनी निखर कर उन्हें सदा के लिये प्रातः स्मरणीय बना देती है। सच है, जैसे घीसने, काटने, ठोकने-पीटने और तपाने से सोने की परीक्षा होती है, वैसे ही परिषहादि अग्नि-परीक्षा से मुनियों की।

परम उत्कृष्ट, त्यागी-तपस्वी वीतराग साधु-साध्वियों का सत्संग और उनके पुण्य दर्शन का लाभ तीसरे-चौथे आरे में या महाविदेह क्षेत्र आदि पुण्य भूमि में ही संभव है किन्तु अभी इस कलियुग में द्रव्य क्षेत्र—कालभाव के अनुसार जो साधु-साध्वियाँ उत्तम चारित्र

---

+ **सतरह प्रकारः**—के संयम का वर्णन पृष्ठ ३०२ के नोट में देखें।

÷ **अठार-सहस्र शीलः**—मन, वचन और काया इन तीन योगों को करण-करावण और अनुमोदन इन तीन से गुणा किया तो ३ × ३ = ९ हुए। फिर नौ को आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार से गुणा किया ९ × ४ = ३६ हुए। फिर ३६ को पांच इन्द्रियों से गुणा किया तो ३६ × ५ = १८० हुए। फिर इसको पृथ्वी कायादि पांच, विकलेन्द्रिय तीन, संज्ञी असंज्ञी दो, कुल दस से गुणा किया तो १८० × १० = १८०० हुए। फिर इस को दस प्रकार के यति धर्म से गुणा किया तो इसको १८०० × १० = १८००० भेद हुए।

* **नव-विध ब्रह्मचर्यः**—(१) पशु-शाला में न ठहरें। (२) स्त्रियों के साथ एकान्त में बात न करें। (३) जहाँ स्त्री पहले बैठी हो उस स्थान पर ब्रह्मचारी पुरुष को और जहाँ पहले पुरुष बैठा हो वहाँ स्त्री दो घड़ी (४८ मि.) तक न बैठे। (४) स्त्री-पुरुष को और पुरुष स्त्री की सुन्दरता को घूर-घूर कर न देखें। (५) ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करके पूर्व के अनुभूत भोगादि की कभी चर्चा न करें। (६) गृहस्थों के शयनादि स्थान के निकट ब्रह्मचारी शयन न करें। (७) ब्रह्मचारी विषय जाग उठे ऐसी औषधियाँ और पौष्टिक पदार्थों को न लें। (८) ब्रह्मचारी अपने शरीर की टाप-टीप न करे। (९) ब्रह्मचारी अधिक भोजन न करें।

की आराधना कर दिन प्रति-दिन आध्यात्मिक विकास कि ओर आगे बढ़ रही हैं उनको हमारा कोटि-कोटि त्रिकाल वंदन हो।

शुद्ध देव गुरु धर्म परीक्षा, सद्दहणा परिणाम।
जेह पामीजे तेह नमीजे, सम्यग्दर्शन नाम रे॥ भ. सि. ॥२६॥
मल उपशम क्षय उपशम क्षय थी, जे होय त्रिविध अभंग।
सम्यग्दर्शन तेह नमिजे, जिन धर्मे दृढ रंग रे॥ भ. सि. ॥२७॥
पंचवार उपशमिय लहीजे, क्षय उपशमिय असंख।
एकवार क्षायिक ते समकित, दर्शन नमिये असंख रे॥ भ. सि. ॥२८॥
जे विण नाण प्रमाण न होये, चारित्र तरु नवि फलियो।
सुख निर्वाण न जे विण, लहिये समकित दर्शन न बलियो रे॥ भ. सि. ॥२९॥
सड़सठ्ठ बोले जे अलंकरियो, ज्ञान चारित्रनु मूल।
समकित दर्शन ते नित्य प्रणमो, शिव पंथनुं अनुकूल रे॥ भ. सि. ॥३०॥

**सम्यग्दर्शनः**—श्री सिद्धचक्र यंत्र में छट्ठा दर्शन पद है। आत्म विकास की पूर्ण साधना में सम्यग्दर्शन का एक प्रमुख अति-महत्त्वपूर्ण स्थान है। सम्यग्दर्शन के बिना विपुल और सूक्ष्म से सूक्ष्म ज्ञान भी अज्ञान है। अति उत्कृष्ट जप, तप, चारित्र भी काय-क्लेश और भव-भ्रमण के कारण हो सकते हैं। ज्ञान-अनुभूति के बाद यदि मानव में समता, अपनी विशुद्ध-आत्मा की परख, अटल श्रद्धा और विश्वास जागृत नहीं हुआ फिर तो उसका ज्ञान निरर्थक भार स्वरूप ही है। उसे श्रद्धा के बिना न तो अपने—स्वरूप पर और न अपने अधिकार की मर्यादा पर पूर्ण भरोसा होता है और न संसार के अनन्त-अनन्त जड़-चेतन द्रव्यों के स्वतंत्र अस्तित्व पर ही विश्वास होता है। उस अविश्वासी और मिथ्यादर्शी मानव की यही भावना रहती है कि सारा संसार मेरी अंगुली के संकेत पर नाचे, मेरी सत्ता को स्वीकार कर, मेरी आज्ञा का कोई भी उल्लंघन न करे। किन्तु यह तो एक भ्रम मात्र है। इस असत्य धारणा ने ही तो आज मानव को दानव बना रखा है।

जगत् में जो सत् है उसका कभी विनाश नहीं होता है और जो असत् है उसकी उत्पत्ति नहीं होती। जितने भी मौलिक द्रव्य इस लोक में विद्यमान हैं वे सब अपने

मूल स्वरूप में स्थिर रहते हैं। एक द्रव्य दूसरा द्रव्य नहीं बनता, किन्तु प्रत्येक द्रव्य अपनी अनादि कालीन पर्याय-धारा में प्रवाहित हो रहा है, इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य का रूपान्तर होता है किन्तु द्रव्यान्तर नहीं होता। मूल द्रव्य छः हैं। १ धर्मास्ति-काय, २ अधर्मास्ति-काय, ३ आकाशास्ति-काय, ४ पुद्गलास्ति-काय, ५ जीवास्ति-काय, ६ और काल-तत्त्व नौ हैं: १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ संवर, ७ बंध, ८ निर्जरा और ९ मोक्ष। अनेकान्त दृष्टि ही इन द्रव्यों या तत्त्वों को समझने का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

तत्त्व-श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन कभी-कभी अपनी आत्मविशुद्धि से स्वतः अपने आप और किसी समय सत्संगति से या सद्गुरु के उपदेश से प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन का विरोधी गुण मिथ्यात्व है। जो श्रद्धा-विमुख, सत्य-विरुद्ध है, वह मिथ्यात्व अथवा मिथ्यात्व-दर्शन है। देव, गुरु और धर्म के विषय में भ्रमपूर्ण या विपरीत धारणा बनाने से मिथ्यात्व की उत्पत्ति होती है। मनुष्य अज्ञान-वश यह समझने में असमर्थ हो जाता है कि आराध्य देव कैसे पावन, पवित्र, संपूर्ण ज्ञानी और सर्वथा निर्विकार *अठारह दूषण से मुक्त होना चाहिए? इस सत्य बात को न समझने के कारण वह मिथ्यात्व के चक्कर में फंस जाता है। शास्त्र के रहस्य का सही अभिप्राय न समझने से या अश्लील-गंदे कु-शास्त्र के वाचन-स्वाध्याय से शास्त्रीय मिथ्यात्व आता है।

कु-गुरु एक अभिशाप है। इससे संसार में मिथ्यात्व फैलता है। मानव वेष-धारी ढोंगी साधुओं की लच्छेदार बातें, उनके छल-कपट, यंत्र मंत्र, सट्टे आदि के प्रलोभन में फंस कर सन्मार्ग से राह भटक जाते हैं। "दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम"। धर्म का यह अर्थ नहीं कि आप बिना सोचे-समझे अपने कुलाचार, रूढ़ीवाद, अंधश्रद्धा के पीछे आँखें मूंद कर आपस में एक-दूसरे की धज्जियाँ उड़ाएं, लड़ मरें। सम्यग्दर्शन का अर्थ है-सन्मार्ग। बाहर और भीतर समान रहो, आडम्बर से बच विशुद्धाचरण की ओर आगे बढ़ते चलो। मैं अपने अनमोल समय, जीवन, धन और स्वस्थता का दुरुपयोग न कर उसका सदुपयोग ही करूंगा। सुख बाहर नहीं, निश्चित ही मेरी अंतर आत्मा में है, ऐसे दृढ़ संकल्प का होना ही सम्यग्दर्शन है।

---

*अठारह दूषण:—१ दानांतराय, २ लाभांतराय, ३ भोगांतराय, ४ उपभोगांतराय, ५ वीर्यांतराय, ६ हास्य, ७ रति, ८ अरति, ९ भय, १० शोक, ११ जुगुप्सा, १२ राग, १३ द्वेष, १४ मिथ्यात्व, १५ निद्रा, १६ काम-विकार, १७ अज्ञान, और १८ अव्रत।

देव, गुरु, धर्मः–जिस मानव की आत्मा अति उत्कृष्ट त्याग तप की साधना से सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग और अनन्त शक्तिमान बन गई है, जिसने मिथ्यात्व, मोह, अज्ञान, निद्रा, काम-विकार, हास्य, रति-अरति आदि अनेक शारीरिक, पुनर्जन्म, मानसिक विकारों पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त कर ली है, जो शुद्ध आत्म स्वरूप का साक्षात्कार कर चुका है वही सु-देव है। जिसे कि अरिहंत भगवान कहते हैं।

प्रश्न–क्या अरिहंत ही सु-देव है, दूसरे नहीं ? उत्तर–अरिहंत के समान ही यदि कोई भी मानव पुनर्जन्म, काम-विकार और राग-द्वेष से मुक्त है तो उसे सु-देव मानने में कोई दोष नहीं। चाहे वह राम, कृष्ण-गोविंद, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर-महादेव या अल्लाह-अकबर, पैयगम्बर ही क्यों न हो।

सु-गुरुः–जिस संत-महात्मा श्रमण मुनिराज के जीवन में पंचमहाव्रत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह, रात्रि भोजन के त्याग की सुगंध महकती है, जो अपने विशुद्ध आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिये सदा प्रयत्नशील हैं, जो विश्व के समस्त जीवों का कल्याण चाहते हैं, वे ही सु-गुरु हैं।

सु-धर्मः–आत्मा को पूर्णता की ओर ले जाने वाला, तथा तत्त्व का यथार्थज्ञान कराने वाला वीतराग कथित अनेकांत श्रुत और मुक्ति प्राप्त कराने वाला विशुद्ध चारित्र ही सु-धर्म हैं।

सम्यग्दृष्टि मानव को अपने विशुद्ध आत्म-स्वरूप का भान होते ही उसके जीवन में एक अनूठा दिव्य परिवर्तन हो जाता है। उसे अपने आत्मिक-आनंद की तुलना में संसार के भौतिक सुख बड़े निरस ज्ञात होते हैं। वह जल-कमल के समान भोग में योग की साधना कर आध्यात्मिक विकास की ओर आगे बढ़ता चला जाता है। सम्यग्दृष्टि मानव के विचार बड़े सरल और सुलझे हुए होते हैं। उसमें कदाग्रह, तथा मत-आग्रह नहीं होता। वह सत्य को ही सर्वोपरि मान उसकी ही उपासना करता है। संसार की कोई भी शक्ति उसे सत्य, धर्म और अचल आत्मविश्वास से डिगा नहीं सकती है। फिर उसे अपने विशुद्ध आत्म-स्वभाव पर अटल पूर्ण श्रद्धा प्रकट होने लगती है–अर्थात् इस प्रकार के शुद्ध आचार-विचार मानव की मुक्ति का द्वार खोल देते हैं।

सम्यग्दर्शन के आठ अंगः–(१) निस्संकिय–मानवता का अभिशाप है असत्य भाषण। इसका प्रमुख कारण है कषाय और अज्ञान। श्री जिनेन्द्र भगवान अक्रोधी, अ-मानी, अ-मायी, अ-लोभी निस्पृही, सर्वज्ञ पूर्ण ज्ञानी हैं। अतः उनके वचन-सिद्धान्त सर्वथा सत्य और मान्य

है। पर पूर्ण श्रद्धा-विश्वास होना सम्यग्दर्शन का पहला अंग है (२) निक्कंखिय–किसी प्रकार के प्रलोभन में पड़कर सांसारिक सुखों की अथवा पर-मत की इच्छा से दूर रहना सम्यग्दर्शन का दूसरा निःकांक्षित अंग है। (३) निव्वित्तिगिच्छा-अपने जप-तप की साधना के फल में संशय न करना, साधु-साध्वी के मैले वस्त्र और शरीर को देख मन में ग्लानि न करना सम्यग्दर्शन का तीसरा विचिकित्सा अंग है। (४) अमूढदिट्ठी–सम्यग्दृष्टि मानव के विचार और प्रवृत्ति विवेकपूर्ण होती है। वह किसी दूसरे के देखा-देखी अंधानुकरण न कर प्रत्येक कार्य को बड़ी ही सावधानी से करता है। सदा प्रमाद से बच कर पर-हित और अपनी आत्म विशुद्धि की ओर आगे बढ़ना सम्यग्दर्शन का चौथा अमूढ दृष्टित्व अंग है। (५) उवपूहः–जो गुणी जन, पढ़े-लिखे विद्वान है, संयमी, धर्म-प्रभावक श्रीसंघ और देश-सेवक, सम्यग्दर्शन के आराधक हैं उनको तन-मन, धन से सहयोग देकर उन्हें आगे बढ़ाने का प्रयत्न करना, गुणानुरागी बन गुणवान उत्तम स्त्री-पुरुषों की हृदय से प्रशंसा करना सम्यग्दर्शन का पाँचवा उपबृहण अंग है। (६) थिरीकरण-मानव जीवन भी एक समस्या है। "सब दिन न होत एक समान"—सच है, जीवन में किसी समय धूप तो किस समय छाह का प्रसंग आ ही जाता है। ऐसे समय में धर्मध्यान करनेवाले आराधक स्त्री-पुरुषों की असुविधाओं को दूर कर उन्हें प्रकट या अप्रकट–गुप्त रूप से सहयोग देना तथा साधु-साध्वी, त्यागी संत महात्माओं को पतन की राह से बचा कर उन्हें सविनय स-प्रेम आराधना के सन्मार्ग में दृढ़ बनाने का भरसक प्रयत्न करना सम्यग्दर्शन का छट्ठा स्थिरीकरण अंग है। (७) वच्छल–मानव के साथ बाप-बेटे, सासु-बहु, भाई-बहन, साला-सालियाँ आदि परिवारिक संबंध तो अनादि काल से बनता–बिगड़ता चला आ रहा है; किन्तु सहधर्मी बन्धु का साथ तो बिना भाग्य के ढूंढने पर भी नहीं मिलता। परिवार का भरण-पोषण, उनके शिक्षण की व्यवस्था तो आपके लिये एक अनिवार्य बंधन है। यदि आप इस कार्य में टालम-टोल भी करेंगे तो आपका परिवार आपसे शासन द्वारा अपने अधिकार की निधि निश्चित ही ले लेगा। किन्तु आपके सह-धर्मी बन्धु जहाँ तक उनका बस चले, वहाँ तक वे कदापि आपके सामने अपना हाथ नहीं पसारेंगे। उनकी असुविधाओं का अंत और अभ्युदय आपकी सद्-भावना पर निर्भर है। "सगपण मोटो साहमीतणो" स्व-धर्मी को सम्यग्दर्शन आराधक तत्त्व-चिंतक तप-त्याग धर्मरसिक सुशिक्षित बना देना अक महान् सेवा है। यही सम्यग्दर्शन का सातवां वात्सल्य अंग है।

पभावणाः- संसार में वीतराग के विशुद्ध आचार-विचार और उनके सिद्धान्त का प्रचार करना, चतुर्विध संघ शास्त्र प्रकाशन, जिनमंदिर और जीर्णोद्धार आदि धार्मिक कार्यों को प्रगतिशील बना जिन-शासन की प्रभावना करना सम्यग्दर्शन का आठवां प्रभावक अंग है।

**मोदक से भूख भाग सकती है?**:—मुमुक्षु आत्मार्थी स्त्री-पुरुषों को सम्यग्दर्शन के सतसठ* भेदों का विस्तृत वर्णन सद्गुरु से अवश्य ही जानना चाहिये। संक्षिप्त में अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ और समकित-मिश्र, मिथ्यात्व मोहिनी इन सात प्रकृतियों के क्षयोपशम, और क्षय से क्षयोपशम, उपशम और क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। इस जीवात्मा ने क्षयोपशम समकित की योग्यता तो अनेक बार पाई और गवांई, उपशम की अवधि पांच बार ही मानी जाती है, उपशम समकित वाले मुमुक्षु अति अल्प भव में मोक्ष पाने की योग्यता प्राप्त कर लेते हैं। क्षायिक समकित का विकास सदा अचल ही रहता हैं।

अतः परमपद मुक्ति की साधना का मूल सम्यग्दर्शन ही है। इसके रहस्य को समझ कर उसका बिना मनोयोग के आचरण किये मानव का गंभीर शास्त्र-अध्ययन, उसकी बड़ी चटपटी लच्छेदार संभाषण कला और जप-तप चारित्र केवल उदर-पोषण का साधन है। जब तक मानव का लक्ष्य शुद्ध और दृष्टि निर्दोष न हो तब तक उसे मानसिक शांति और मुक्ति प्राप्त होना असंभव है। सच है, क्या स्वप्न में केशरिया-मोदक से भूख भाग सकती है? नहीं।

धन्य हैं वे साधक जो कि सम्यग्दर्शन की कठोर साधना में संलग्न हैं या अपने उद्देश्य में सफल मनोरथ हो परम-पद मोक्ष के अतिथि बन चुके हैं। परम पावन साधक मनभावन श्री सम्यग्दर्शन को हमारा त्रिकाल वंदन हो। रे मानव! तू दर्शन पदालंकृत श्री सिद्धचक्र को त्रिकाल कोटि-कोटि वंदन कर।

भक्ष अभक्ष न जे विण लहिये, पेय अपेय विचार।
कृत्य अकृत्य जे विण लहिये, ज्ञान ते सकल अधार रे। भ. सि. ॥३१॥
प्रथम ज्ञान ने पछी अहिंसा, श्रीसिद्धान्ते भाख्युं।
ज्ञान ने वंदो ज्ञान म निंदो ज्ञानी ए शिव-सुख चाख्युँ रे ॥भ. सि. ॥३२॥
सकल क्रिया नुं मूल ते श्रद्धा, तेहनुं मूल जे कहिये।
तेह ज्ञान नित नित वंदी जे, ते विण कहो किम रहिये रे ॥भ. सि. ॥३३॥

---

*सम्यग्दर्शन के संक्षिप्त भेदः—४ सद्दहणा, ३ लिंग, ६ जयणा, १० विनय, ३ शुद्धि, ५ दोष, ८ प्रभावक, ५ भूषण, ५ लक्षण, ६ भावना, ६ आगार और ६ स्थान। कुल सतसठ भेद हैं। इनका वर्णन अन्यत्र देखें।

पंच ज्ञान मांहे जेह सदागम, स्व पर प्रकाशक जेह ।
दीपक परे त्रिभुवन उपकारी, वली जेम रवि शशि मेहरे ॥ भ. सि. ॥३४॥
लोक उर्ध अधोतिर्यक, ज्योतिष वैमानिक ने सिद्ध ।
लोका लोक प्रकट सवि जेह थी, ते ज्ञाने मुज शुद्धि रे ॥ भ. सि. ॥३५॥

मानव में अपने लोक-व्यवहार और मुक्ति-लाभ के लिये सम्यग्ज्ञान और श्रद्धा का होना अनिवार्य है । सच है :—"पढमं नाणं तओ दया" बिना ज्ञान के अहिंसा परमो धर्मः का पालन करना असंभव है । मानव को अपने भले बुरे कर्तव्यों का और भक्ष्य दाल भात, शाक-रोटी आदि सात्विक आहार अभक्ष्य—मांस, माखन रात्रि-भोजन आदि तामसिक आहार, पेय—दूध, छाछ, गन्ने का रस, आदि, अपेय—शराब, ताड़ी, कोको, कॉफी, चाय आदि मादक रसों के हेय-उपादेय का विवेक भी बिना सद्ज्ञान के प्राप्त नहीं होता । दैनिक धार्मिक और व्यावहारिक क्रियाएं और श्रद्धा का प्राण भी सद्ज्ञान ही तो है । अतः रे मानव ! तू बड़े मनोयोग से सद्ज्ञान का पठन-पाठन मनन-चिंतन कर, भूल कर भी किसी के अध्ययन, अध्यापन, स्वाध्याय-ध्यान में विघ्न न कर, संत-महात्मा-ज्ञानी की निंदा से बचें, सत्साहित्य के प्रकाशन का सौभाग्य प्राप्त कर, अपने ज्ञानावरण असद् कर्मों से पीछे हट आध्यात्मिक विकास की ओर आगे बढ़ । विद्वान् की हर जगह पूछ और उनका आदर सत्कार होता है ।

ज्ञान के पांच भेद हैं । मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव और केवल ज्ञान । आत्मा ज्ञानमय है । इसमें अपार ज्ञानशक्ति है । किन्तु ज्ञानावरण कर्मों से आच्छादित होने के कारण ज्ञान का पूर्ण प्रकाश नहीं हो पाता । अतः मानव के पुरुषार्थ से जैसे-जैसे आवरण हटने लगते हैं वैसे ही ज्ञान का विकास होने लगता है, अंत में संपूर्ण आवरणों के नष्ट होते ही एक दिन अंतिम स्व-पर प्रकाशक, स्वर्ग मर्त्य पाताल के प्रकट-अप्रकट द्रव्य और उनके गूढ़ रहस्यों का दिग्दर्शक, जगत् के अज्ञान अंधकार को दूर करने में चंद्र, सूर्य और दीपक सा परमोपकारी केवलज्ञान प्रकट हो जाता है । सम्राट् श्रीपालकुंवर कहते हैं कि हमें एक दिन ज्योतिष, वैमानिक और परम पद सिद्ध-शिला का सन्मार्गदर्शक केवलज्ञान प्राप्त हो, यही शुभ कामना । परम विशुद्ध केवलज्ञान को हमारा त्रिकाल कोटि-कोटि वंदन हो ।

देश विरति ने सर्व विरति जे, गृहि यति ने अभिराम ।
ते चारित्र जगत जयवंतु, कीजे तास प्रणाम रे ॥ भ. सि. ॥३६॥

तृण परे जे षट् खण्ड सुख छंडी चक्रवर्ती पण वरियो ।
ते चारित्र अक्षय सुख कारण, ते में मन माहे धरियो रे ॥ भ. सि. ॥३७॥
हुआ रंक पणे जेह आदरी, पूजित इंद नरिंदे ।
अशरण शरण चरण ते वंदु, पूर्युं ज्ञान आनंद रे ॥ भ. सि. ॥३८॥
बार मास पर्याये जेह ने, अनुत्तर सुख अति क्रमिये ।
शुक्ल शुक्ल अभिजात्य ते उपर, ते चरित्र ने नमिये रे ॥ भ. सि. ॥३९॥
चयते आठ कर्म नो संचय, रिक्त करे जे तेह ।
चारित्र नाम निरुत्ते भाख्यु, ते वंदु गुण गेह रे ॥ भ. सि. ॥४०॥

चारित्रः सत्-असत् का त्याग और सत् कार्यों में प्रवृत्ति करना ही चारित्र धर्म है। वास्तव में सम्यग्-चारित्र या सदाचारहीन जीवन, बिना सुगंध के फूल के समान है। श्रावक और साधु दोनों मुमुक्षु हैं। दोनों का एक ही उद्देश्य है मुक्तिलाभ, पाप से बचना। फिर भी दोनों की साधना में महान् अंतर है। एक के अणुव्रतादि बारह व्रत हैं तो दूसरे के पचमहाव्रत।

१ अहिंसा अणुव्रतः-पहला व्रत—स्थूल प्राणातिपात—हिंसा से दूर रहो। संसार में जीव दो प्रकार के हैं, त्रस और स्थावर। १ त्रस :—सुख-दुःख के प्रसंग पर जो जीव अपनी इच्छा से एक जगह से दूसरी जगह आते हैं, चलते-फिरते और बोलते हैं, वे त्रस जीव दो–तीन–चार और पांच इन्द्रियों वाले होते हैं। २ स्थावर–जो जीव इच्छा होने पर भी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा नहीं सकते वे स्थावर हैं। जैसे :—पृथ्वीकाय, अप्काय (पानी) तेउ (अग्नि)काय, वाउकाय और वनस्पतिकाय।

हिंसा के भेदः—१ आरंभी–अपने जीवन-निर्वाह, भोजन, जलपान और परिवार के लिये होने वाले आरंभ-समारंभ को आरंभी हिंसा कहते हैं। २ उद्योगी–मानव अपने व्यापार, पशु-पालन, खेती आदि धंधे करता है। उसमें उसकी मानसिक इच्छा किसी जीव की हिंसा करने की नहीं है, फिर भी हिंसा होना स्वाभाविक है। इसे उद्योगी हिंसा कहते हैं। ३ विरोधी–अपने देश, कुटुम्ब-परिवार, और प्राणों की रक्षा के लिए किसी का सामना करना विरोधी हिंसा है। ४ अपने स्वार्थ के लिये किसी निरपराध, निर्बल, मूक, असहाय प्राणी को जान-बूझ कर सताना, मारना संकल्पी हिंसा है। इन चार भेदों में गृहस्थ-श्रावक को संकल्पी हिंसा का सर्वथा त्याग कर, शेष आरंभी, उद्योगी और

विरोधी हिंसा से यथाशक्ति अवश्य ही बचते रहना चाहिये।

अणुव्रत–१ किसी प्राणी को मार-पीट-दुःख न दें २ किसी को लुला-लंगडा, नकटा, अंधा काणा बना उसकी सुंदरता को नष्ट न करें। ३ किसी पशु–पंखी, कुत्ते, बिल्ली, सांप, बिच्छु, बंदर आदि प्राणी को बंधनादि कष्ट न दें। ४ गधे-घोड़े, बैल, ऊंट, भैंसे आदि प्राणी पर उनकी शक्ति से अधिक वजन न लादें। नौकर-चाकर–दास दासियों से उनकी मर्यादा से अधिक काम न लें। ५ अपने अधीन रहने वाले दास–दासी पशु–पंखी, परिवार के स्त्री–पुरुषों को समय पर भोजन देना न भूलें। रात्रि भोजन से बचें। अहिंसा-अणुव्रत के साधक मानव को इन पांच दोषों से सावधान रहना चाहिये।

२ सत्याणु व्रतः–झूठी साक्षी देना, झूठा लेख-पत्र करना, चुगलखोरी, गुप्त बातें प्रकट करना, किसी को कु-मार्ग नशे-पत्ते, वेश्यागमनादि के चक्कर में फंसाना आत्म-प्रशंसा, पर-निंदा आदि स्थूल-असत्य हैं। पांच दोष–१ किसी को झूठा कलंक न दें। २ किसी के गुप्त दोष को जनता में प्रकट न करें। ३ अपनी पत्नी, परिवार राष्ट्र आदि के साथ विश्वासघात न करें। ४ किसी को बुरी सलाह न दें। ५ किसी को धोखा दे कर खोटे लेख व लेन-देन न करें। सत्याणु व्रत के साधक मानव को इन पांच दोषों से सदा सावधान रहना चाहिए।

३ अचौर्याणु व्रतः–मन, वचन और शरीर से किसी की सम्पत्ति को बिना अनुमति के न लेना अचौर्याणु व्रत है। पांच दोष–चोरी का माल न खरीदें। २ चोर को चोरी करने में सहयोग न दें। ३ राज्य विरुद्ध कार्य अर्थात् काला बाजार, करचोरी आदि न करें। ४ किसी को कम न दें और न उसका अधिक लें। ५ किसी शुद्ध पदार्थ में अशुद्ध वस्तु मिला कर जनता को धोखा न दें। अचौर्याणुव्रत के साधक मानव को इन पांच दोषों से सदा सावधान रहना चाहिये।

४ ब्रह्मचर्याणु व्रतः–काम-भोग एक मानसिक विकार है, इसका अंत विषय-भोग से होना असंभव है। शारीरिक-मानसिक बल स्वास्थ्य और आध्यात्मिक विकास के लिये संभोग से बचना ही ब्रह्मचर्य है। इसका विशेष वर्णन इसी ग्रंथ के पृष्ठ ३०४ में पढ़ियेगा। पर-स्त्री त्याग और स्वपत्नी-संतोष ही जीवन है।

१ पासवानः–किसी रखैल से संबंध न रखें। २ कुंवारी, विधवा वेश्या के सामने आंख उठाकर न देखें। ३ दुबारा विवाह न करें किसी दूसरे की सगाई-सगपण की झंझटों में भूल कर न पड़ें। ४ अप्राकृत ढंग से संभोग कर मृत्यु को आमंत्रण न दें। ५ विषय-भोग के दास न बनें। ब्रह्मचर्याणु-व्रत के साधक मानव को इन पांच दोषों से सदा सावधान रहना चाहिए।

**५ परिग्रह परिमाण व्रत:**—आज संसारमें चारों ओर संघर्ष की जड़ है परिग्रह। परिग्रह सब से बड़ा पाप है। जब तक मानव के हृदय में असीम लोभ-लालच-आशा-तृष्णा कि विषैली गेस (वायु) है तब तक मानव सुख से सो नहीं सकता। यदि आप सुख की नींद सोना और प्रसन्न मन जागना चाहते हैं, तो अनावश्यक परिग्रह से दूर रहें।

(१) अपनी आवश्यकता से अधिक या किसी परिवार के व्यक्ति के नाम की ओट में व्यापार, खेती, मकान आदि न रखें। (२) सोना, चाँदी, जव्हारात आदि आभूषण, नौकर चाकर, गाय, भैंस, रोकड़, सिक्का आदि इतना ही रखें कि जिससे आपको भविष्य में कदापि दुर्ध्यान न हो। (३) अपने दैनिक व्यवहार के वस्त्र पात्र, खाद्य पदार्थों का अमुक संख्या में ही अनासक्त भाव से उपयोग करें।

**६ दिग्परिमाण व्रत:**—लोभी मानव तृष्णावश देश-विदेश, ग्राम-नगरों में जीवन भर इधर उधर भटकता ही रहता है। फिर भी उसे संतोष नहीं। अतः इस निरंकुश तृष्णा पर अधिकार करना दिग्व्रत है। व्रतधारी स्त्री-पुरुषों को प्रत्येक दिशा में जाने आने की मर्यादा कर संयम से रहना चाहिये।

**७ उपभोग परिभोग परिमाण व्रत:**—भोजन और बार-बार काम में आने वाले वस्त्र पात्र वाहन आदि का अमुक परिमाण रख संसार के शेष समस्त पदार्थों का त्याग कर देने से मानव सहज ही अनेक पापों से बच सकता है।

**८ अनर्थ दण्ड:**—विवेकशून्य मानव की मनोवृत्ति अकारण व्यर्थ ही सदा कर्म बन्धन करती रहती है इसे अनर्थ दण्ड कहते हैं। इससे बचने के चार उपाय हैं। (१) अपध्यान:—किसी जीव को कष्ट न दो, उसका कभी बुरा मत सोचो। (२) जाति, कुल, बल, लाभ, धन, ज्ञान, तप, और अपने शरीर की सुन्दरता का अभिमान न करो। (३) हिंसादान—जन संहार शस्त्र अस्त्र विषैले पदार्थ का न निर्माण करो और न किसी को दो। (४) पापोपदेश-अपने स्वार्थ और आनन्द के लिये कदापि किसी को बुरी सलाह न दो और न किसी दुर्जन (गुन्डे) की संगत करो।

**९ सामायिक व्रत:**—मानव के मन और सिर को प्रफुल्लित बना आध्यात्मिक विकास का ओर आगे बढ़ने का सामायिक एक रामबाण उपाय है। एक सामायिक का समय ४८ मिनट है। इस अल्प काल का सदुपयोग करने वाला मानव बाणु करोड़, उनसाठ लाख, पच्चीस हजार पल्योपम और एक पल्योपम का सातवां या आठवां भाग देवलोक का आयुष्य बांधता है। इतना ही नहीं

यदि मानव की विचारधारा विशेष शुद्ध होती रहे तो वह अड़तालीस मिनिट से भी कम समयमें सहज ही लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर लेती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को नियमित अधिक न बन सके तो कम से कम एक सामायिक तो अवश्य कर लेना चाहिए।

१० देसावगाशिक व्रतः—व्यर्थ ही इधर-उधर न भटक किसी पर्व कल्याणक तिथि या अपनी अपनी सुविधानुसार यथासमय आरम्भ-समारम्भ, पाप-व्यवसायों का त्याग कर एकसाथ तीन या दस सामायिक कर स्वाध्याय-ध्यान-आत्मचिंतन करना देसावगाशिक व्रत है।

११ पौषध व्रत—शाश्वत सुख—मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन चारित्र है। इस पद को पाने की लालसा से अपनी सुविधानुसार दिन-रात, केवल दिन या रात स्वाध्याय ध्यान में रह कर उपवास-आयंबिलादि व्रत करना पौषध व्रत है। पौषध का फलः—एक दिन-रात का पौषध करने वाला मानव सत्ताबीस सो क्रोड़, सत्तोतर क्रोड़, सत्तोतर लाख, सत्तोतर हजार, सात सो सत्तोतर पल्योपम और एक पल्योपम का सातवां आठवां भाग देवलोक का आयुष्य बांधता है।

१२ अतिथि संविभाग व्रत—साधु, साध्वी, संत-महात्मा या किसी ब्रह्मचारी श्रावक-श्राविका को बड़े भक्तिभाव, उदार मन से आहार-पानी, औषध और उनके ज्ञान ध्यान, संयम-साधना के उपकरण प्रदान करना अतिथि-संविभाग व्रत है। आत्मार्थी मानव को एक क्षण भी अव्रत में न रह आज ही श्रावक के बारह व्रत ग्रहण कर उसका हृदय से आचरण करना ही कल्याणमार्ग है। व्रतधारी मानव को सागर सम अपार आश्रवों का बंध घट कर शेष एक जलबिन्दु इतना ही आश्रव बंध होता है।

सर्व विरति चारित्रः—पौषध में सीमित त्याग है तो चारित्र में आजीवन। बाल-लुँचन, पैदल भ्रमण, अनियत-वास, भूमिशयन, इन्द्रियों पर अधिकार, भूख-प्यास, शीत ताप, मच्छर-खटमल, रोगादि कष्टों को हंसते हंसते सहन करना। आहार पानी मिले तो ठीक, न मिले तो संतोष से उसे तपोवृद्धि मान चुपचाप अपने स्वाध्याय ध्याय में संलग्न रहना; संयम; आराधना के आवश्यक पदार्थ गृहस्थ से दान लेकर ही अपने उपयोग में लेना सर्वविरति चारित्र है। चारित्र की तुलना में एक छः खण्ड अधिपति चक्रवर्ती अपने संपूर्ण राज्य अष्ट-सिद्धि, नव-निधि को तृण के समान मानते हैं। तभी तो भगवान शांति, कुंथु, अरनाथ, भरत चक्रवर्ती ने अपनी विपुल विभूति को ठुकरा कर इस परम तारक चारित्र की शरण ली।

चारित्र एक महान तप है। अधिक नहीं केवल एक ही वर्ष की विशुद्ध चारित्राराधना मानव को सहज ही निःसंदेह अनुत्तर-विमान के द्वार पर पहुंचा देती है। यदि एक साधारण सा राह

चलता मानव भी चारित्र की शरण ले लेता हो तो अनेक राजा-महाराजा-चक्रवती-इन्द्रमहाराज उसकी चरणरज अपने सिर चढ़ा कर अपने आपको धन्य मानते हैं। जय हो! जय हो!! शिव सुख-दायक सर्वविरती विशुद्ध चारित्र की। अशरण को शरण दायक परम तारक को हमारा बार बार त्रिकाल वंदन हो। कर्म और भव का जिससे अन्त हो उसे शास्त्र चारित्र कहते हैं। रे मानव! चारित्र-पदालंकृत श्री सिद्धचक्र को तू त्रिकाल वंदन कर।

जाणंता त्रिहुँ ज्ञाने संयुत, ते भव मुक्ति जिणंद।
जेह आदरे कर्म खपेवा, ते तप शिवतरु कंदरे। भ० ॥ ४१ ॥
करम निकाचित पण क्षय जाइ, क्षमा सहित जे करता।
ते तप नमिये जेह दीपावे, जिन शासन उज्मंता रे ॥ भ० ॥ ४२ ॥
आमोसही पमुहा बहुलद्धि, होवे जास प्रभावे।
अष्ट महा सिद्धि नव निधि प्रकटे, नमिये ते तप प्रभावे रे ॥ भ० ॥ ४३ ॥
फल शिव सुख महोटु सुर नरवर, संपत्ति जेहनुं फूल।
तप सुर तरु सरीखो वंदु, शम मकरंद अमूल रे ॥ भ० ॥ ४४ ॥
सर्व मंगल मांहि पहेलु मंगल, वरणविये जे ग्रंथे।
तप पद त्रिहुँ काल नमि जे, वर सहाय शिव पंथे रे ॥ भ० ॥ ४५ ॥
एम नवपद थुणतो तिहां लीनो, हुओ तन मय श्रीपाल।
"सुजस" विलासे चौथे खण्डे, एह अग्यारमी ढाल रे ॥ भ० ॥ ४६ ॥

**कहीं भी ठिकाना नहीं:**—भव-भ्रमण और अनेक संकटों से छुटकारा पाने का तपाराधन एक प्रमुख साधन है। तपाराधन के बल से ही तो मोक्षगामी अनेक तीर्थंकर, गणधर, मुनिराज ने परम पद पाया है। तपाराधन तो अनेक व्यक्ति करते हैं किन्तु इस साधु दिव्य तेज को पचाना बड़ी टेढ़ी खीर है। प्रायः पचानवे प्रतिशत मानव तपोबल के अजीर्ण से चिड़चिड़े महा क्रोधी बन अपने किये-कराये पर पानी फेर देते हैं।

क्रोध एक भयंकर आग है। संभव है, आगसे जला मानव फिर भी पनप सकता है किन्तु क्रोध से जले का कहीं भी ठिकाना नहीं। क्रोध मानव के क्रोड़ पूर्व के उत्कृष्ट संयम को क्षण में

नष्ट कर बेचारे साधक को दुर्गति के गर्त में ढकेले बिना नहीं रहता। क्रोधी स्त्री-पुरुषों का तप केवल कायाकष्ट, शरीर सुखाना है। इसी प्रकार किसी पर रीस करना भी बहुत बुरा है। यह विष से भी महा भयंकर विष है। साधारण विष तो मानव को एक ही बार मारता है, किन्तु रीसका हलाहल विष मानवको भव भव में कमर टेढ़ी करनेसे नहीं चूकता। अतः व्रताराधक महानुभावो! आप क्रोध और रीस से सदा दूर रहो!! दूर रहो!! व्रताराधना वही है जिससे क्षमा बल, आध्यात्मिक विकास और भव-भ्रमण का अन्त हो।

व्रताराधन के बल से अष्टसिद्धि-नवनिधि आमोसहि खेलोसहि आदि अनेक लब्धियोंकी प्राप्ति होना तो एक साधारण सी बात है, किन्तु यदि व्रताराधक मानव क्षमा सहित बड़े वेग से आत्मचिंतन की ओर कुछ आगे चल पड़े तो उसका पल में बेड़ा पार हो जाय। श्री सिद्धचक्र आदि प्रत्येक तप के संपूर्ण होते ही व्रत कर अन्तिम उत्सव ( उजमणा ) करना न भूलें। व्रत-आराधना पर उजमणा एक मंगल कलश के समान है। इस से अनेक दूसरे व्यक्तियों को आध्यात्मिक विकास और व्रताराधना करने की विशेष प्रेरणा मिलती है।

क्षमा सहित तप एक मानों कल्पवृक्ष है। इसके चक्रवर्ती की संपदा, अष्टसिद्धि, नवनिधि रंग-रंगीले सुंदर फूल हैं; शांत-रस समता पराग और जन्म-जरा के दुःख का सर्वथा अंत होना ही मोक्ष का मधुर फल है। सर्व मंगल में आदि मंगल शिव सुखदायक तप पद को हमारा सदा त्रिकाल वंदन हो। रे मानव! तू भवपार होने का सर्वश्रेष्ठ आलंबन श्रीसिद्ध चक्र को वंदन कर।

श्रीपाल रास के चौथे खण्ड की ग्यारवीं ढाल संपूर्ण हुई। उपाध्याय यशोविजयजी कहते हैं कि अब तो श्रीपालकुंवर और उनके परिवार के लोग श्रीसिद्धचक्र के भजन-कीर्तन और ध्यान में इतने अधिक रंग गये हैं कि मानों वे जीवनमुक्त ही न हो। इस प्रकार रास के श्रोता और पाठकों को भी चाहिये कि वे भी श्रीपालकुंवर समान ही श्रीसिद्धचक्र के रंग में गहरे रंग जाय।

## दोहा

इम नवपद थुणतो थको, ते ध्याने श्रीपाल।
पाम्यो पूरण आउखे, नवमो कल्प विशाल।। १ ।।
राणी मयणा प्रमुख सवि, माता पण शुभ ध्यान।
आउखे पूरे तिहां, सुख भोगवे विमान।। २ ।।

नर भव अंतर स्वर्ग ते, चार बार लही सर्व।
नव में भव शिव पामशे, गौतम कहे निर्गर्व ॥३॥
ते निसुणी श्रेणिक कहे, नवपद उलसित भाव।
अहो नवपद महिमा बड़ो, ए छे भव जल नाव ॥४॥
वलतु गौतम गुरु कहे, एक एक पद भत्ति।
देवपाल मुख सुख लह्या, नवपद महिमा तहत्ति ॥५॥
किं बहुना मगधेश तू इक पद भक्ति प्रभाव।
हो ईश तीर्थंकर प्रथम निश्चय ए मन भाव ॥६॥

**गौतम गणधरः**—सम्राट् श्रेणिक ! श्रीपालकुंवर और उनकी माता कमलप्रभा तथा मयणासुंदरी आदि रानियां अपना अपना आयुष्य पूर्ण कर वे सभी एक हो नवमे देवलोक में गए। पश्चात् वहाँ से वे मनुष्य, देव, मनुष्य, दे कार चार चार भव कर अंतिम नवमें मनुष्य भव में मोक्ष में जायेंगे।

मगध सम्राट् श्रेणिक – प्रभो ! वास्तव में श्रीपाल-मयणा की यह एक आदर्श सिद्धचक्र आराधना है। इनके धन्य जीवन से हमें अपने आत्मविकास की ओर आगे बढ़ने की स्फूर्ति और विशेष प्रेरणा मिलती है। जिन्हें भवसागर से पार होना है वे अवश्य ही नवपद-नाव का आलंबन लें। मोक्ष का यही एक राजमार्ग है।

**पद्मनाभ तीर्थंकरः**—एक दिन राजगृही से प्रयाण करते समय श्री गौतम गणधर ने कहा, राजन् ! "समयं म पमाए" अपने अनमोल समय का सत्संग, सद्विचार और सदाचरण में प्रयोग करना ही जीवन है। किन्तु आज मानव भौतिक सुख-सुविधाओं की चकाचौंध में भटक गया है। मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है ? तथा जीवन का सही उद्देश्य क्या है ? इन सब को वह भूल बैठा है। उसकी दृष्टि में वह बाल्य अवस्था खेल-कूद और लाड़-प्यार के लिये है, युवावस्था घूमने-फिरने और अपने मन की साध पूरी करने के लिये है। यह शरीर मेरा है। यह परिवार मेरा है। यह धन-दौलत और भव्य भवन मेरे हैं। बस इन संकल्प-विकल्प में ही उसके मस्तिष्क के तंतु उलझे रहते हैं। अर्थात् सांसारिक सुविधा के साधनोंको अधिक संग्रह करना और उसका उपयोग व संरक्षण करना ही आज के मानव की एक आदत सी पड़ गई है।

सच है, इस तरह की मनोवृत्ति से प्रेरित हो कर ही तो आज के युग में अणु बम, राकेट और कीटाणु बम जैसे भयंकर घातक शस्त्रास्त्रों का आविष्कार और निर्माण हो रहा है। किन्तु त्राण और संरक्षण के लिए बनाई गई यह आणविक शक्ति ही आज मानसिक अशांति का कारण बन चुकी है।

भगवान महावीर ने स्पष्ट कहा है कि रे मानव! तू इस शरीर, अपने मित्रों और प्राप्त धन-दौलत, भवन आदि भौतिक साधनों को अपना मान फूला नहीं समाता है, यह तेरा निरा अज्ञान है। इससे त्राण और संरक्षण पाने का जो तेरा तन-तोड़ श्रम है वह सर्वथा निरर्थक है। निःसंदेह यह तेरा नश्वर शरीर एक दिन तुझे धोखा देने वाला है। माता-पिता आदि परिवार आपत्ति के समय तेरे दुःख में हाथ बटा न सकेंगे और न यह धनधान्य संपत्ति ही तेरे साथ चलने वाली है। अतः तू "शर्त विहाय" श्री सिद्धचक्र की शरण ले। इसके सिवाय कोई किसी का साथी नहीं।

गौतम गणधर—राजन्! सविधि संपूर्ण नवपद–सिद्धचक्र की आराधना करना सोने में सुगंध है। संभव है, यदि किसी कारणवश मानव के पास इतना लंबा समय और शक्ति न हो तो इन अरिहंत, सिद्ध, आचार्यादि नवपदों में से किसी एक पद की आराधना करने वाला व्यक्ति भी अपनी विशुद्ध विचारधारा के बल से देवपाल आदि अनेक भक्तों के समान एक दिन अपना आत्म-कल्याण कर परम पद–मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार राजन्! आपको इस समय एक नवकारशी (४८ मिनिट के व्रत) का भी उदय नहीं है फिर भी आप निःसंदेह भविष्य में आने वाली चोवीसी में पद्मनाभ नामक प्रथम तीर्थंकर होंगे।

गौतम वचन सुणी इस्या, उठे मगध नरिंद।
वधामणी आवी तदा, आव्या वीर जिणंद ॥७॥
देवे समवसरण रच्युँ, कुसुम वृष्टि तिहाँ कीध।
अंबर गाजे दुंदभि, वर अशोक सुप्रसिद्ध ॥८॥
सिंहासन माडयुं तिहां, चामर छत्र ढलंत।
दिव्य ध्वनि दिये देशना, प्रभु भामंडल वंत ॥९॥
वधामणी देई वांदवा, आव्यो श्रेणिक राय।
वांदी बेठो परखदा, उचित थानके आय ॥१०॥

श्रेणिक उद्देशी कहे, नवपद महिमा वीर।
नवपद सेवी बहु भविक, पाम्या भवजल तीर॥११॥
आराधननुं मूल जस, आतम भाव अछेह।
तिणे नवपद जे आतमा, नवपद मांहे तेह॥१२॥
ध्येय समापति हुए, ध्याता ध्यान प्रमाण।
तिण नवपद छे आतमा, जाणे कोई सुजाण॥१३॥
लही असंग क्रिया बले, जस ध्याने जिण सिद्धि।
तिणे तेहवुं पद अनुभव्यो, घट मांहि सकल समृद्धि॥१४॥

**भगवान की सेवा में:**—मगध सम्राट् श्रेणिक श्री गौतम गणधर को विदा दे अपने राजमहल की ओर लौट रहे थे उसी समय एक बागवान ने राजा को सिर झुका कर कहा, नाथ! आज अपने बाग में एक दिव्य अशोक वृक्ष के नीचे अनेक देवताओं ने एक भव्य समवसरण की अति सुंदर रचना की है, उसके चारों ओर सुगंधित जल फूलों की वृष्टि कर देव देवांगनाएं फूली नहीं समातीं। समवसरण के मध्य एक रत्न पीठ पर पूर्वाभिमुख श्री श्रमण भगवान महावीर देव विराजमान हैं। उनके सिर पर तीन छत्र हैं। भगवान के दोनों ओर इन्द्र चवर ले खड़े हैं। आकाश में देवदुंदभी का शब्द सुन दूर दूर से अनेक देव, देवी, नर-नारियाँ, पशु-पंखी भगवान को वदन करने आ रहे हैं। कृपया आप भी भगवान की सेवा में पधारें। भगवान का शुभागमन सुन सम्राट् श्रेणिक आनंदविभोर हो गए। उन्होंने संवाददाता को विपुल धन दे निहाल कर दिया। पश्चात् वे वहाँ से अपने महल की ओर न जा कर उसी समय उलटे पैर वे समवसरण में पहुंचे और भगवान को वंदन कर अपना आसन ग्रहण किया।

**भगवान महावीर:**—"मनो साहस्सिओ भीमो दुट्ठसो परिधावई" राजन! मानव का मन एक अति दुष्ट भयानक साहसिक वायुवेग घोड़े के समान है। इस निरंकुश मन को साधे बिना मानव खड़ा सूख जाए फिर भी उसका कहीं ठिकाना नहीं। इस चंचल मन पर विजय पाना है? हां, तो अपने आप को कर्ता-भोक्ता न मानो, समभाव से अपने उदय में आगत शुभाशुभ कर्मों को भोग कर नवीन आस्रवों से सतत बचने का प्रयत्न करो। आज से अपने हृदय में यह दृढ़ निश्चय कर लो कि दूध और घी के समान नवपद और आत्मा दोनों अभिन्न हैं। "नवपद छे आत्मा नवपद मांहे तेह"—इस गूढ़ रहस्य को समझ अनेक मानव भवसागर से पार हो परम पद को प्राप्त

हुए हैं। अपनी आत्मा के विशुद्ध स्वरूप को समझ उसमें ही सदा मगन रहने में ध्याता, ध्येय और ध्यान की सफलता और बुद्धिमानी है।

नवपद और आत्मा के अभेद रंग में रंगे हुए मानव के हृदय में न तो भगवान के प्रति राग ही रहता है और न संसार के प्रति द्वेष। अतः वह असंगी मानव अपने शुद्धोपयोग और उदासीन भाव से मध्यस्थ बन सदा परम सुखी रहता है। सच है, अनुपम सुख का भंडार बाहर नहीं; मानव के विशुद्ध विचार हृदय और आचरण में है।

## चौथा खण्ड – ढाल बाहरवीं

(राग स्वामी सिमंधर उपदिशे)

अरिहंत पद ध्यातो थको, दव्वह गुण पज्जाय रे।
भेद छेद करी आतमा, अरिहंत रूपी थाय रे॥१॥
वीर जिनेश्वर उपदिशे, सांभलजो चित्त लाई रे।
आतम ध्याने आतमा, ऋद्धि मिले सवि आई रे॥२॥ वी.
रूपातीत स्वभाव जे, केवल दंसण नाणी रे।
ते ध्याता निज आजमा, होय सिद्ध गुण खाणी रे॥३॥ वी.
ध्याता आचारण भला, महामंत्र शुभ ध्यानी रे।
पंच प्रस्थाने आतमा, आचारज होय प्राणी रे॥४॥ वी.
तप सज्झाए रत सदा, द्वादश अंगना ध्याता रे।
उपाध्याय ते आतमा, जगबंधव जग भ्राता रे॥५॥ वी.
अप्रमत्त जे नित्य रहे, नवि हरखे नवि सोचे रे।
शांत सुधारस आतमा शुं मुंडे शुं लोचे रे॥६॥
सम संवेगादिक गुणा, क्षय उपशम जे आवे रे।
दर्शन तेहिज आतमा, शुं होय नाम धरावे रे॥७॥ वी.
ज्ञानावरणी जे कर्म छे, क्षय उपशम तस थाय रे।
तो हुए एहिज आतमा, ज्ञान अबोधता जाय रे॥८॥ वी०

**मानव से भगवान:**—मानव का मन और हृदय एक अपार शक्ति का भंडार है। आज का मानव इस दिव्य महाशक्ति को भूल विषय-वासनाओं का दास, लोभ लालच का पुतला और मानसिक अशांति का घर बन, वह एक कस्तुरी मृग के समान राह भटक गया है। भौतिक सुखों के पीछे भागते भागते अनादि काल बीता, फिर भी परतों पर ही रहा। सच है, परद्रव्य की पराधीनता में त्रिकाल में न किसी को कुछ सुख मिला है और न मिलना ही संभव है। यदि मानव अपने शक्तिशाली मन और संकल्प का सदुपयोग कर जीवन का मोड़ बदल दे तो वह सहज ही पल में मानव से भगवान बन जाय। अनन्त सुख-समृद्धि उसके पैरों में लौटने लगे। चाहिये अपनी अन्तर-आत्मा की अद्भुत शक्ति को परखने की कला।

वास्तव में द्रव्य, गुण और पर्याय से आत्माभिमुख पुरुषार्थी मानव में जरा भी अन्तर नहीं। जैसे कि (१) संग्रह नय की अपेक्षा अभेद दृष्टि से संपूर्ण विश्व अरिहन्त है। (२) रूचक प्रदेशों की अपेक्षा सभी अरूपी अगुरु अलघु सिद्ध हैं। (३) महामंत्र श्री नवकार और पंच पीठ सह सूरि मन्त्राराधक शासन प्रभावक आचार्यश्री के विशद गुणों का मनन-चिंतन कर उन्हें पाने का सतत अभ्यासी मानव भाव आचार्य है। (४) विश्वबन्धु अति लोकप्रिय परम कृपालु अंग-उपांगादि आगम शास्त्रों के पठन-पाठन में संलग्न, जप, तप, परोपकारादि परायण उपाध्यायश्री के पावन गुणों का मनन चिंतन कर उन्हें पाने की कामनावाला मानव भाव उपाध्यान है। (५) सदा सविनय विनम्र भाव से सद्गुरु की सेवा सुश्रूषा में जागरूक, अहंकार, आलस, ममता, द्वेष से दूर हर्ष, क्रोध, श्रम और घबराहट आदि दुर्गुणों से मुक्त, आँख, कान, आदि इन्द्रियों के विजेता, भव संतप्त मानव को अमृत सम सन्मार्गदर्शक, सुख, दुःख मे समभावी, सदा संतोषी, आदर्श निर्ग्रन्थ महामुनि के सद्गुणों का सतत मनन-चिंतन कर मुनि-पद पाने का अभिलाषी सतत त्याग वैराग्य रंग की और अभिमुख मानव भाव साधु है। बस इसी अपेक्षा से मानव और भगवान में अभेद है।

फिर तो सम– न किसी से वैर न किसी से स्नेह, संवेग मोक्षाभिलाषा, निर्वेद अनासक्त आचरण, अनुकंपा प्राणी मात्र की शुभकामना, निस्पृह सेवा, आस्था-अनन्य विशुद्ध श्रद्धा से वीतराग मार्ग, आध्यात्मिक विकास की और सतत आगे बढ़ने की अभिरुचि से ही तो सम्यग्दर्शन की विशुद्धि होती है। न कि धर्म की ठेकेदारी अर्थात् लोक-प्रदर्शन और केवल बातों के जमा-खर्च से। वास्तव में सम्यग्दर्शन ही आत्मा का चमकता चांद है।

जाण चारित्र ते आतमा, निज स्वभाव मांहि रमतो रे।
लेश्या शुद्ध अलकर्यो, मोह वने नहीं भमतो रे ॥९॥ वी०
इच्छा रोधे संवरी, परिणति समता योगे रे।
तप ते एहिज आतमा, वरते निज गुण भोगे रे ॥१०॥ वी०
आगम नो आगम तणो, भाव ते जाणो सांचो रे।
आतम भावे थिर हो जो, पर भावे मत राचो रे ॥११॥ वी०
अष्ट सकल समृद्धिनी, घट मांहे ऋद्धि दाखी रे।
तिम नवपद ऋद्धि जाण जो, आतम राम छे साखी रे ॥१२॥ वी०
योग असंख्य छे जिन कह्या, नवपद मुख्य ते जाणो रे।
एह तणे आलंबने, आत्म ध्यान प्रमाणो रे ।।१३॥ वी० ॥
ढाल बारमी एहवी, चोथे खण्डे पूरी रे।
वाणी वाचक जस तणी, कोई नये न अधूरी रे ।१४॥ वी०

**सुन्दर राजमार्ग:**—सम्यग्दर्शन के सुनहले दिव्य प्रकाश में क्या अज्ञानांधकार टिक सकता है ? नहीं। सम्यग्दर्शन के साथ ज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृतियों के क्षय-उपशम से मानव के हृदय से मोह-ममता, राग, द्वेष अनेक संकल्प-विकल्प मंद होने लगते हैं, अतः वह अपने विशुद्ध आत्म-स्वभाव का ज्ञाता-द्रष्टा बन आनन्दविभोर हो उठता है। फिर वह भौतिक सुख, मान बडाइ ऋद्धि-सिद्धि के मोह से मुक्त हो बड़े वेग से विशुद्ध आचार-विचार-समभाव जप-तप की ओर आगे बढ़ निसंदेह एक दिन परम पद अविचल निमल सुपद मोक्ष प्राप्त कर लेता है।

अनूठी सुखशांति बाह्य जगत् व्यर्थ के आडंबर में नहीं। शांति है, अनासक्त मानव और ज्ञानी के हृदय में। अतः जिन्हें भवसागर से पार होने की कामना है वे मुमुक्षु मानव परम-पदप्राप्ति के विविध-अपार उपायों की भूलभूलैया में न उलझ कर आगम-शुद्धोपयोग नो आगम ( क्रिया रुचि ) से अतिशीघ्र नवपद-श्रीसिद्धचक्र की आराधना में जुट जाए। अद्भुत मानसिक शांति और परमपद-मोक्षप्राप्ति का यह एक अति महत्त्वपूर्ण सुन्दर राजमार्ग है। इस राजमार्ग का सच्चिदानन्द अनूठा आनन्द अनासक्त भाव और हृदय से श्रीसिद्धचक्र की आराधना करने से ही प्राप्त होता है। केवल बातों से नहीं।

श्रीमान उपाध्याय यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि यह श्रीपाल रास के चौथे खण्ड की बारहवीं ढाल संपूर्ण हुई। इसमें मैंने जैन सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। यह "वाणी वाचक जसतणी" अर्थात् भगवान महावीर का मार्गदर्शन सत्य है कि अपेक्षाकृत नवपद और आत्मा दोनों अभिन्न हैं। जैसे दूध और घी, तिल और तेल।

## दोहा

वचनामृत जिन वीरना, निसुणी श्रेणिक भूप।
आनंदित पहोता घरे, ध्यातो शुद्ध स्वरूप ॥१॥
कुमति तिमिर सवि टालतो, वर्धमान जिन भाण।
भविक कमल पड़ि बोह तो, विहरे महियल जाण ॥२॥
ए श्रीपाल नृपति कथा, नवपद महिमा विशाल।
भणे गुणे जे सांभले, तस घर मंगल माल ॥३॥

**रंगील रंग में:**—श्री श्रमण भगवान महावीर का प्रवचन सुन मगध सम्राट् की आँख खुल गई। वे आनन्दविभोर हो मान गए कि मोक्ष टेढ़ी खीर नहीं। जितना कि आज के विवेकशून्य आलसी मानव उसे मान बैठे हैं। मोक्ष पाना बड़ा सरल और सुगम है, किन्तु चाहिए उसे पाने की अभिरुचि और अपनी विशुद्ध आत्मा को समझ उसमें गहरे रंग जाने की कला जैसे कि – एक कुशल कलाकार मिस्त्री एक सुन्दर मकान बनाने में अपना संपूर्ण जीवन और बुद्धि को समाप्त कर दे फिर भी विश्व में अजोड़ भवन पूर्ण होना असम्भव है। किन्तु अपने आत्म-स्वभाव के रंग में रंगा हुआ तत्त्वज्ञ मानव विशुद्ध भावना के प्रबल वेग से अधिक नहीं लगभग दो घड़ी के अन्तर्गत ही परम पद-मोक्ष प्राप्त कर सकता है। अतः आत्म स्वरूप में मस्त रहो।

न क्लेशो न धनव्ययो न गमनं देशांतरे प्रार्थना।
केषांचित् न बलक्षयो, न तु भयं पीड़ा न कस्माश्चन॥
सावद्यं न न रोग जन्म पतनं, नैवान्यसेवा न हि।
चिद्रूप स्मरणे फलं बहुतरं, किन्नाद्रियंते बुधैः ॥१॥

रे महानुभावो! अपने आपको समझो 'Know Thyself' यह भवसागर से पार होने का एक अति सुगम राजमार्ग है। अपने विशुद्ध स्वभाव को समझने में न जरा भी कष्ट है, न बल न धन न पराई चाकरी और न किसी आरंभ-समारंभ की ही कोई आवश्यकता है। इस निर्भय राजमार्ग को समझने में न किसी से लड़ाई झगड़ा और न कोई शारीरिक रोग ही होने की सम्भावना है। आत्म-स्वरूप अनेक महत्त्वपूर्ण गुप्त सिद्धियों का भंडार है। अतः इस से दूर न रहो। वे मानव धन्य है जो कि सदा अपने आत्म-स्वरूप में मगन रहते हैं।

सम्राट् श्रेणिक अपने विशुद्ध आत्म-स्वरूप में मगन हो अपने राजप्रासाद की ओर लौट गये पश्चात् भगवान श्री अपने लोकालोक प्रकाशक दिव्य ज्ञान से जनता के अज्ञानांधकार को दूर करने राजगृही से अन्यत्र पधार गए।

इस अति महत्त्वपूर्ण प्रभावशाली श्रीपाल राजा की (रास) कथा को जो पाठक और श्रोता श्रद्धा-भक्ति से पढ़ेंगे, सुनेंगे, उनके घर सदा ही आनंद मंगल हो यही शुभ-कामना।

## चौथा खण्ड – ढाल तेरहवीं

(राग–धनाश्री, थुणियो थुणियो रे प्रभु)

तूठो तूठो रे मुझ साहिब तूठो, ए श्रीपाल रास करंता ज्ञान अमृत वुठो रे॥ १
पायस मां जिम वृद्धिनुं कारण, गोयम नो अंगूठो।
ज्ञान मांहि अनुभव तिम जाणो, ते विण ज्ञान ते झूठो रे॥ मु. ॥२॥
उदक पयोमृत कल्प ज्ञान तिहां त्रीजो अनुभव मीठो।
ते विण सकल तृषा किम भाजे, अनुभव प्रेम गरिठो रे॥ मु. ॥३॥
प्रेम तणी परे सीखो साधो, जोई शेलड़ी सांधो।
जिहां गांठ तिहां रस नवि दीसे, जिहां रस तिहां नवि गांठो॥ मु. ॥४॥
जिन ही पाया तिन ही छिपाया, ए पण एक छे चीठो।
अनुभव मेरु छिपे किम महोटो, ते तो सघलो दीठो रे॥ मु. ॥५॥
पूख लिखित लिखे सवि लेई, मिसी कागल ने कांठो।
भाव अपूरव कहे ते पंडित, बहु बोले ते बांठो रे॥ मु. ॥६॥

अवयव सवि सुन्दर होय देहे, नाके दिसे चाठो।
ग्रन्थ ज्ञान अनुभव विणते हवुं, शुक जिस्यो श्रुत पाठो रे॥ मु. ॥७॥
संशय नवि भांजे श्रुत ज्ञाने, अनुभव निश्चय जेठो।
वाद विवाद अनश्चित करतो, अनुभव विण जाय हेठो रे॥ मु ॥८॥

**अनुभव प्राप्त करें:**—हे प्रभो! आज इस श्रीपाल रास के शेष भाग को संपूर्ण करते मेरा हृदय फूला नहीं समाता क्यों कि पूज्य विनय विजयजी महाराज रचित श्रीपाल रास की साढ़े सातसौ गाथाओं के बाद इस ग्रन्थ में अमृत सम ज्ञान गंगा की पूर्णता का सम्पूर्ण श्रेय देवाधिदेव आपको ही है। मैं उपाध्याय यशोविजय तो एक निमित्त मात्र हूँ। जैसे कि श्री अष्टापद गिरी पर हजारों सन्त महात्माओं को पारणा कराने में एक अति अल्प दूध पाक के पात्र के साथ श्री गौतम गणधर के हाथ का यशस्वी अगूंठा।

सफलता का प्रमुख साधन है किसी सन्त महात्मा के चरण स्पर्श, सत्संग और वर्षों का सैद्धान्तिक अनुभव। बिना अनुभव आचरण मानव के प्रत्येक आचार विचार और साहित्य सर्जन संपादनादि कार्य प्रायः मिथ्या निरस है। अनुभव ज्ञान के तीन भेद हैं। उदक कल्प, पयः कल्प, और अमृत कल्प। (१) उदक कल्पः—व्याकरण साहित्य, कथा वार्ता, दोहा सवैया, रास आदि का ज्ञान उदक कल्प ज्ञान है। अर्थात् इन ग्रन्थों का मानव को श्रवण और स्वाध्याय तक ही आनंद आता है। जैसे कि शीतल जल से कुछ समय शांति मिल सकती है, किन्तु अन्त में मानव प्यासा का प्यासा ही रहा। (२) पयः कल्पज्ञान-बिना गुरु गम और आचरण के जैनागम, सूत्र सिद्धान्त को पढ़ना श्रवण करना पयः कल्प ज्ञान है। जैसे कि दूध पीने से तरी आई किन्तु भूख तो शांत न हुई। इसी प्रकार स्वाध्याय ध्यान शास्त्र वाचन से वैराग्य रंग तो चढ़ा किन्तु मन की चंचलता न मिटी। (३) अमृत कल्प ज्ञानः—गुरु वचन का बड़ी श्रद्धा भक्ति से बहुमान कर जैना गम सूत्र सिद्धान्त के गूढ़ रहस्य को समझ उसका सतत मनन चिंतन कर उसका सदा आचरण करना अमृत कल्पज्ञान है। जैसे की अमृत पान से मानव के वर्षों के रोग शोक आधि व्याधियाँ छू मंतर हो जाती है। फिर वह एक स्वस्थ नव-जीवन का अनुभव करने लगता है। इसी प्रकार अनुभव ज्ञान भव भ्रमण के संक्रामक रोग से मुक्त होने का एक अचूक रामबाण उपाय है।

रे मानव! तू जैसे अपने दैनिक लोक व्यवहार में जनता और परिवार के लोगों से मान प्रतिष्ठा पाने और व्यापार प्रगति में सदा सतर्क सावधान रहता है। नूतन आय के महत्त्वपूर्ण मार्ग खोजने में दिन रात तन तोड़ परिश्रम करता है। इसी प्रकार अब अपने

जीवन का मोड़ बदल कर आध्यात्मिक अनुभव की कलाके अध्ययन से अपने हृदय की विशुद्धि कर आगे बढ़ । हृदय विशुद्धिः परमोधर्मः । यह अनुभव ज्ञान पाने का एक सुन्दर सरल राजमार्ग है । जैसे कि एक रसीले सांटे-शेलड़ी में रस है । वहाँ गांठ नही और जहाँ गाँठ है । वहाँ रस नही । अर्थात् हृदय और आचार विचार की शुद्धि से ही अनुभव ज्ञान का विकास होना संभव है । जहाँ हृदय के मैलापन की गाँठ है वहाँ क्या अनुभव ज्ञान और धर्म टिक सकता ? नहीं । कई लोग कहते हैं कि अनुभवी मानव अपनी महत्वपूर्ण अनुभव कला को छिपाना चाहते है किन्तु यह एक मिथ्या भ्रम है । मेरु पर्वत ही कभी किसी से छिपाया छिप सकता है ? नहीं । इसी प्रकार प्रत्येक मानव के लिये अनुभव ज्ञान का द्वार खुला है किन्तु चाहिए उसे पाने की जिज्ञासा और पूर्ण योग्यता ।

अनुभवी सत्पुरुष सदा अपनी अन्तर आत्मा में एक अनूठे अनुपम आनन्द का अनुभव करते हैं किन्तु वे भगवद्वाणी का पत्र व्यवहार के समान पुनः पिष्ट पेषण नहीं करते । संत महात्मा ज्ञानी वीतराग के शब्दों की केवल नकल करना बुद्धिमानी नहीं । किन्तु उनके प्रदर्शित सन्मार्ग का आचरण और उस पर अटल रह कर अपने हृदय कि विशुद्धि करना ही तो मानव भव की वास्तविक सफलता है । इसी में अनुपम आनन्द समाया हुआ है । जो व्यक्ति बगैर अनुभव और सदाचार के केवल सफेद पर काला कर और लम्बी चौड़ी लच्छेदार बाते बना प्रखर लेखक और वक्ता बने घूमते फिरते हैं वे ज्ञानी की दृष्टि में पूरे धर्म ठग लबाड़ी हैं । जैसे कि एक सुन्दर हृष्ट पुष्ट नव-युवक की लम्बी नाक पर एक श्वेत कुष्ट का धब्बा होने से उस के सारे रूप रंग और नखरे चौपट हो जाते हैं इसी प्रकार अनुभव ज्ञान का प्रभाव मानव की लेखन, वक्तृत्व आदि कला को चौपट कर देता है । सच है बिना अनुभव के श्रुत ज्ञानी के संशय और कर्म का समूह का अन्त होना असंभव ही है । एक तोते का " राम राम राम " शब्द रटते रटते उसका गला सूखने लगता है किन्तु फिर भी वह जीवन भर राम नाम के गूढ़ रहस्य को पा नहीं सकता है । क्यों कि अनुभव ज्ञान के बिना सारी बाते शून्य होतो हैं ।

मानों कभी किसी से प्रसंगवश वादविवाद करते समय यदि स्याद्वाद, नय, निक्षेप, हेय, उपादेय ज्ञेयादि सप्तभंगी, चतुर्भंगी त्रिभंगी आदि का गुरु गम से गहरा अनुभव न हो तो प्रत्येक मानव को शास्त्रार्थ करते समय सभी में अपने मुंहकी खाकर नीचे देखना पड़ता है । अतः श्रीपाल राम के पाठक और श्रोताओ को चाहिए कि वे अवश्य हो वयोवृद्धज्ञानवृद्ध समयज्ञ अनुभवी संत महात्मा महापुरुषों की चरण सेवा कर उनसे अनुभव ज्ञान प्राप्त करें ।

जिम जिम बहु श्रुत बहु जन संमत, बहुल शिष्य नो शेठो ।
तिम तिम जिन शासन नो वयरी, जो नवि अनुभव नेठोरे ।। मु० १

माहरे तो गुरु चरण पसाए, अनुभव दिल मांहि पेठो ।
ऋद्धि वृद्धि प्रकटी घट मांहि, आतम रति हुई बेठो रे ॥ मु. ॥ १०॥
उग्यो समकित रवि झल हल तो, भरम तिमिर सवि नाठो रे ।
तग तगता दुर्नय जे तारा, तेह नो बल पण घाठो रे ॥ मु. ॥११॥
मेरु धीरता सवि हर लीनी, रह्यो ते केवल भाठो ।
हरि सुर घट सुर तरु की शोभा, ते तो माटी काठो रे ॥ मु. ॥१२॥
हरख्यो अनुभव जोर हतो जे, मोह मल्ल जग लूंठो ।
परि परि तेहना मर्म देखावी, भारे कीधो भूंठो रे ॥ मु. ॥१३॥
अनुभव गुण आव्यो निज अंगे, मिट्यो निज रूप मांठो ।
साहिब सन्मुख सुन जर जोना, कोपा थाए उपरांठो रे ॥ मु. ॥१४
थोड़े पण दंभे दुःख पाम्या, पीठ अने महापीठो रे ।
अनुभव वंत ते दंभ न राखे, दंभ धरे ते धीठो रे ॥ मु. ॥१५॥
अनुभव वंत ते अदंभनी रचना, गायो सरस सुकंठो रे ।
भाव सुधारस ते घट घट पीयो, हुओ पूरण उत्कंठो रे ॥ मु. ॥१६॥

एक व्यक्ति को लाखों श्लोक मुख पाठ है, वह अच्छा पढ़ा लिखा चोटी का विद्वान है, उसकी सेवा में सेकड़ों शिष्य प्रशिष्य सदा हाथ बांधे खड़े रहते हैं। फिर भी यदि उसमें अन्तरंग हृदय विशुद्धि विशुद्ध आचार-विचार और अनुभव ज्ञान की कमी है। तो ज्ञानी भगवन्तों की दृष्टि में वह जिन शासन का एक घोर शत्रु है। एक सड़ापान सारे टोकने को सड़ा देता है।

श्रीपाल रास लेखक पूज्य उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज कहते हैं कि मुझे तो परम कृपालु गुरुदेव के श्री चरणों की कृपा से व्याकरण, साहित्य, न्याय, जैनागमादि सैद्धान्तिक विषय और आचार-विचार की विशुद्धि के गूढ़ रहस्य के अनुभव की जो ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हुई है उसी के प्रभाव से अब मेरे हृदय में चारों ओर विशुद्ध समकित रत्न की एक दिव्य ज्योति चमक उठी है। अब मेरे मन में संपूर्ण संकल्प विकल्प और न्याय शास्त्र के तर्क-वितर्क की शंकाओं के टिम टिमाते तारे, अनादि का अज्ञानांधकार दूर हुआ। अतः अब मैं सदा एक विशेष अनुपम आनन्द में मग्न रहता हूँ। सच है अनुभवी मानव की दृष्टि में मेरु पर्वत, काम कुंभ और कल्प वृक्ष का कोई महत्व

नहीं। मेरु पर्वत एक देखने का लम्बा चौड़ा एक मोटा पत्थर है। किन्तु अनुभवी मानव के स्थिर मन के समान उसमें पल में भव से पार होने की क्षमता नहीं। कामकुंभ और कल्पवृक्ष ये दोनों मिट्टी और लक्कड़ है। बिना विशेष पुण्योदय ये हाथ लगना भी एक समस्या है, यदि मिल भी जाए तो इनसे भव भ्रमण का अन्त होना तो असंभव ही है। अनुभवी महापुरुष को आस्रव और मोह राजा सदा दूर से ही नमस्कार करते हैं। क्योंकि वे समझते हैं कि अनुभव रंग का सम्बन्ध विशुद्धि आत्मा से है पुद्गल से नहीं।

हे प्रभो! परम कृपालु आप जिस के सामने देखते हैं तो क्या उसके सामने संसार की कोई शक्ति आँख उठाकर देख सकती है? नहीं। अतः अब में आपकी शरण पाकर निर्भय हूँ। निश्चित ही मेरे रोम रोम में अनुभव गुण विकसित हो चुका है। मेरा हृदय अनुपम आनन्द से फूला नहीं समाता। मेरी अन्तरात्मा में पूर्ण श्रद्धा और दृढ़ विश्वास है कि अब भविष्य में कर्म राजा मुझे अपने ध्येय और सन्मार्ग से कदापि डिगा न सकेगा।

संभव है श्रीपाल रास के पाठक और श्रोता गण यह समझे कि यशोविजयजी व्यर्थ ही आत्म प्रशंसा कर बातें बना रहे हैं। महानुभावो! याद रखो अनुभवी मानव सत्य को प्रकाश में लाने से कदापि न चूकेगा। जो मूर्ख सत्य पर पर्दा डालते हैं वहाँ निःसंदेह अनुभव का होना असंभव है। "कूट कपट, ईर्षा-द्वेष करना एक महान अपराध, भयंकर पाप है। पीठ और महापीठ मुनि को ईर्षा वश मनुष्य भव से हाथ धो कर उन्हें ब्राह्मी सुन्दरी के भव में स्त्री पर्याय की विडम्बना का सामना करना पड़ा।

मैंने आपके समक्ष जग-जन हिताय अपने शुद्ध हृदय से स्पष्ट दो शब्द रखे हैं। अनुभव सिद्ध रचना का रंग कदापि फीका नहीं होता। अर्थात् मैंने श्रीपाल-मयणा की रसीली कथा को अनेक राग रागिनी दोहो में ताल लय के साथ गाकर लिखी है। मेरा आपसे हार्दिक अनुरोध है कि आप नवपद श्रीसिद्धचक्र महिमा दर्शक इस चरितामृत का बड़ी श्रद्धा भक्ति से बार बार पान कर विशुद्धि आत्मस्वरूप और महत्त्वपूर्ण अनुभव ज्ञान पाने की तीव्र पीपासा को शांत कर परमपद पाए। यही शुभ कामना। शुभं भूयात्। ॐ शान्तिः।

## कलश

(राग धना श्री)

तपगच्छ नंदन सुर तरु प्रकटया, हीर विजय गुरु राया जी।
अकबर बादशाहे जस उपदेशे, पड़ह अमार बजाया जी ॥१॥

हेम सूरि जिन शासन मुद्राये, हेम समान कहाया जी।
जाचो हीरो जे प्रभु होता, शासन सोह चढ़ाया जी ॥ २ ॥
तास पेट पूर्वाचल उदयो, दिनकर तुल्य प्रतापी जी।
गंगाजल निर्मल जस कीरति, सघले मांही व्यापी जी ॥ ३ ॥
शाह सभा मांहे वाद करी ने, जिन मत थिरता थापी जी।
बहु आदर जस शाहे दीधो, बिरुद सवाई आपी जी ॥ ४ ॥
श्री विजय सेन सूरि तस पटधरी, उदय बहु गुण वंता जी।
जास नाम दश दिशि छे चावुं, जे महिमाए महंता जी ॥५॥
श्री विजय प्रभ तस पटधारी, सूरी प्रतापे छाजे जी।
एह रासनी रचना कीधी सुंदर तेहने राजेजी ॥६॥
सूरी हीर गुरुनी बहु कीरति, कीर्ति विजय उवज्झाया जी।
शिष्य तास श्री विनय विजय वर, वाचक विनय सुगुण सोहाया जी ।७॥
विद्या विनय विवेक विचक्षण, लक्षण लक्षित देहा जी।
शोभागी गीतारथ सारथ, संगत सखर सनेहाजी ॥८॥
संवत सतर अड़तीसा वर से, रही रांदेर चोमासे जी।
संघ तणी आग्रह थी मांड्यो, रास अधिक उल्लासे जी ॥९॥
सार्ध-सप्तशन गाथा विरची पहुता सुर लोके जी।
तेना गुण गाए छे गोरी, मिलि मिलि थोके थोके जी १०॥

वंश परंपरा:—श्री तपागच्छ के नन्दन वन में कल्प वृक्ष सदृश मुगल सम्राट अगबर प्रति बोधक, उनके राज्य में चारों और जैन सिद्धान्त और अहिंसा धर्म प्रचारक, कोहिनूर हीरे सम महान प्रतिभाशाली शासन प्रभावक आचार्य हीरविजयसूरिजी थे। उनके सम कालिन जैसे हीरे की अगूठी में लगा स्वर्ण ही न हो ऐसे यथा नाम तथा गुण आचार्य हेमसूरीजी थे। पूज्य आचार्य हीरविजयसूरिजी महाराज के पट्टालंकार उदीयमान सूर्य सम प्रतिभाशाली, गंगाजल समान अति लोक प्रिय, यशस्वी अगबर की राजसभा के प्रखर वादी जगत गुरु क बिरुद से भी अधिक सन्मान्य आचार्य विजयसेनसूरिजी के थे उनके पट्टधर जग

प्रसिद्ध अति लोकप्रिय विजयसेन सूरिजी के महाराज थे। इनके शासन काल में आचार्य हीरविजयसूरिजीके प्रमुख यशस्वी शिष्य महा भाग्यशाली उपाध्याय कीर्तिविजयजी के प्रधान शिष्य रूप रंग में अति सुन्दर विनय विवेक विचक्षण सत्संगी, परम गीतार्थ उपाध्याय श्री विनयविजयजी ने रांदेर नगर (गुजरात) के श्री संघ की विशेष प्रार्थना को मान देकर विक्रम सं. सतरा सो अडतीस १७३८ में इस श्रीपाल रास को लिखना आरम्भ किया। किन्तु खेद है कि इस ग्रन्थ की साढे सात सौ ७५० गाथाए लिखने के बाद सहसा उनका स्वर्गवास हो गया। फूल कुमला गया किन्तु फूल की सुवास आज भी अनेक स्त्री-पुरुषों को उपाध्यायजी की याद दिलाती है।

तास विश्वास भाजन तस पूरण प्रेम पवित्र कहायाजी।
श्री नयविजय विबुध पय सेवक, सुजस विजय उवज्झायाजी ॥ ११ ॥
भाग थाकतो पूरण कीधो, तास वचन संकेते जी।
तिणो वली समकित दृष्टि जे नर, तेह तणे हित हेतेजी ॥ १२ ॥
जे भावे ए भण शे गुणा शे, तस घर मंगल माला जी।
बंधुर सिंधुर सुन्दर मन्दिर, मणि मय झाक झमालाजी ॥ १३ ॥
देह सबल स सनेह परिच्छाद, रंग अभंग रसालाजी।
अनुक्रमें तेह महोदय पदवीं, लहशे ज्ञान विशाला जी ॥ १४ ॥

उपाध्याय विनय विजयजी के स्वर्गवास के बाद इस श्रीपाल रास को संपूर्ण करने श्रेय स्वर्गीय उपाध्याजी के परम स्नेही श्रीमान पंडित प्रवर नय विजयजी महाराज के विद्वान शिष्य महानैयायिक अनेक ग्रन्थ लेखक यशस्वी उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज को है। आपने स्वर्गीय विनय विजयजी की आज्ञानुसार जग जन हिताय सिद्धचक्राराधक सम्यग्दृष्टि स्त्री-पुरुषों के लिये इस रास के शेष भाग को इतने अच्छे सुन्दर ढंग से लिखा है कि पाठक और श्रोता को बिना प्रशस्ति पढे शायद ही पता चले कि यह रास दो विद्वानों की रचना है। इस रास को जो स्त्री-पुरुष श्रद्धा और भक्ति से सुनेंगे-सुनायेंगे उनके घर में सदा आनन्द मंगल हो उनके द्वार पर हाथी झूलते रहें, वे धन-धान्य मणि-माणक, हीरे पन्ने के आभूषण, हाट-हवेली, स्वास्थ्य लाभ और स्नेही सुविनीत परिवार के साथ फल-फूल कर अन्त में परम पद शिवसुख मोक्ष को प्राप्त होए, यही शुभ कामना।

— o —

## श्रीपाल-रास का हिन्दी अनुवाद और विवेचन

लेखक :—

मुनि श्री न्यायविजयजी महाराज

साहित्य रत्न, काव्य तीर्थ, ज्योतिष विशारद का

# उपसंहार

(१)

प्रिय पाठकों मैंने लिखा, अनुवाद श्रीपाल-रास का।
*पादलिप्त में संपन्न हुआ, यह मार्ग दर्शक मोक्ष का॥
आठ दस दो सहस्र विक्रम, माघ की यह पूर्णिमा।
यदि कुछ भूल हो उत्सूत्र हो, भगवान से मांगू क्षमा॥

(२)

साथ ही अनुरोध मेरा, प्रिय पाठकों से एक है।
संभव है इस अनुवाद में भूलें रही अनेक है॥
हंस वृत्ति से कुछ सारले, पाठक पढ़े अति प्रेम से।
मैं आभार मानूंगा सदा, दे मिथ्या दुष्कृत हृदय से॥

(३)

अभिमान राजेन्द्र कोष लेखक, सूरिवर राजेन्द्र थे।
सौधर्म-गण बृहत्तपा में, धन चंद्रसूरि भूपेन्द्र थे॥
मैं शिष्य सूरि यतीन्द्र का यह उनका आशीर्वाद है।
मुनि न्याय का यह हिन्दी में, श्रीपाल का अनुवाद है॥

---

* पादलिप्त—इस समय पालीताणा जिला भावनगर के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ सदा बड़ा दूर दूरसे सैंकड़ों हजारों यात्रालु आ आकर श्रीसिद्धगिरिराज शत्रुंजय महातीर्थ की यात्रा करते हैं।